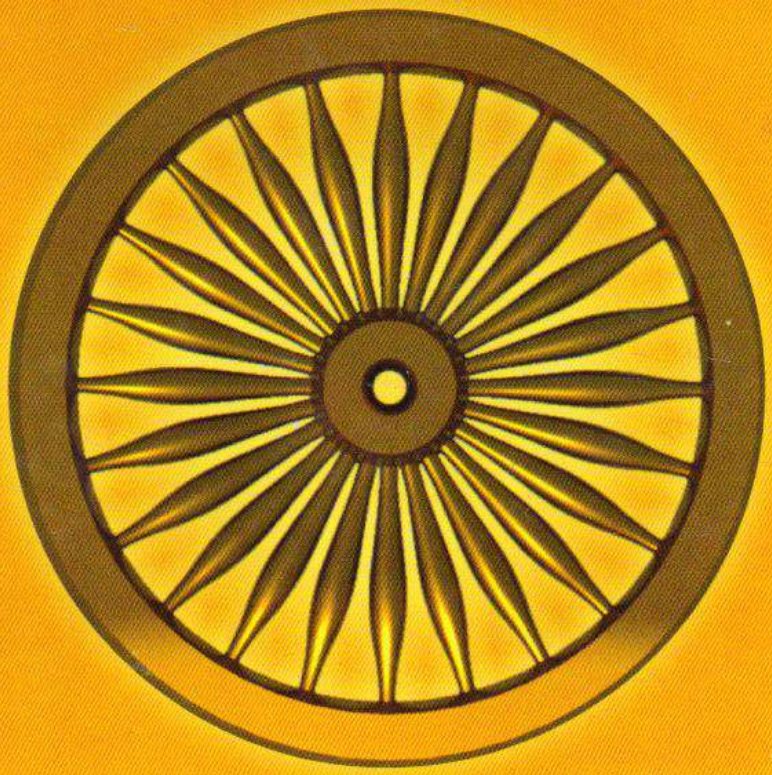
पालि-ग्रन्थमाला-5

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

(1-सगाथवग्गो)

(संस्कृतच्छाया-हिन्दी-अनुवादसहिता)



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः)
(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)
लखनऊ-परिसरः

पालि–ग्रन्थमाला–5

सुत्तपिटके

संयुत्तनिकायपालि

1. सगाथवग्गो

(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

संकल्पना मार्गदर्शनं च

प्रो. राधावल्लभत्रिपाठी, कुलपतिः

संस्कृतच्छायाकारौ

जयवन्त खण्डारे

डॉ. वेदव्यास पाण्डेय

पालि–अध्ययन–केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित–विश्वविद्यालयः)

(केन्द्रीय–मानव–संसाधन–विकास–मन्त्रालयाधीनम्)

लखनऊ–परिसरः, विशालखण्डः–4, गोमतीनगरम्, लखनऊ (उ.प्र.)

पालि–ग्रन्थमाला–5

सुत्तपिटके संयुत्तनिकायपालि
(1. सगाथवग्गो)
(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

प्रकाशक : प्रो0 सुरेन्द्र झा
© प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
लखनऊ परिसर, विशाल खण्ड–4, गोमती नगर,
लखनऊ–226010 (उ. प्र.)
दूरभाष : 0522–2393748; फैक्स : 0522–2302993
E-mail : rskslucknow@yahoo.com

सम्पादक : प्रो. विजय कुमार जैन
डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी

सहयोग : डॉ. शुक्ला मुखर्जी, परियोजना अधिकारी
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन)
56–57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली– 110058
वेबसाईट : www.sanskrit.nic.in

मूल्य : रु. 500/–

प्रथम संस्करण– 2012

मुद्रक : शिवम् आर्ट्स, 211, निशातगंज, पांचवी गली, लखनऊ–226007
मो. 94150 61690
email : shivamarts.lko@gmail.com

Pali-Granthamālā-5

Suttapitake

SAṂYUTTANIKĀYA PĀLI

(1. Sagātha Vaggo)

(With Sanskritacchāyā & Hindi Translation)

Vision & Guidance

Prof. Radhavallabh Tripathi
Vice-Chancellor

Sanskritacchāyākārau

Jayawant Khandare
Dr. Ved Byas Pandey

Pāli Study Centre

Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus,Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)

आमुख

मंगलमूर्तिः सततं वितरतु भद्रं परम्पराऽस्माकम्।
पालि–प्राकृत–संस्कृत–भाषासंगमसरस्वतीव।।
मैत्री–मुदिता–करुणोपेक्षाः श्लिष्टाः विभान्तु नित्यं ताः।
चतुष्टयीयं पाली घटयतु सुसंस्कृतं विश्वम्।।

त्रिपिटक में पालि–भाषा में भगवान् बुद्ध के 2550 वर्ष पहले दिए गए उपदेश सर्वाधिक प्रामाणिक रूप से संरक्षित हैं। पालि वही मागधी भाषा है, जिसे बुद्ध–वचनों की संवाहिका होने के कारण थाईलैंड, श्रीलंका, वर्मा, कम्बोडिया आदि दक्षिण एशियाई देशों में पवित्र भाषा का दर्जा दिया जाता है, पालि भाषा का संरक्षण–संवर्धन भी इन एशियाई देशों ने किया। कई शताब्दियों तक हम इस ज्ञान से अपरिचित रहे। योरोप के विद्वानों ने जब पालि टेक्स्ट सोसायटी के माध्यम से इसे उजागर किया तब भारत ने पुनः अपनी पुरानी धरोहर को संरक्षित करने का उपक्रम किया, इस क्रम में हमने पालि के ग्रन्थों के प्रकाशन का निश्चय किया है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना के तहत हमने पालि एवं प्राकृत का प्रोजेक्ट स्वीकार किया। उसी कम में लखनऊ में पालि अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई। जिसकी फलश्रुति ये ग्रन्थ हैं। प्राकृत की संस्कृतच्छाया की परम्परा तो सैकड़ों वर्षों से थी। पालि के मात्र धम्मपद एवं मिलिन्दप्रश्न के कुछ अंश की छाया मिलती है। संस्कृतच्छायायुक्त इस संस्करण से भारतीय प्रबुद्ध वर्ग के विचार का यह क्षेत्र बन सकेगा। जो अभी तक बहुत कम थी। हम तो इन प्राचीन भाषाओं की सेवा करना माता की सेवा के समान मानते हैं। पालि के थेरगाथा एवं थेरीगाथा से मैं स्वयं बहुत प्रभावित हूँ।

हम पाते हैं कि संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं में लोक जीवन का निरूपण करने वाली कविताएँ रची गईं। लक्ष्मीधर, शरण आदि कवियों की परंपरा लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक सक्रिय रही है। इन कवियों ने खेत–खलिहान, पामर (खेत में काम करने वाले दिहाड़ी के मजदूर), गाँव–गिराँव के जीवन और मध्यवर्गीय भारतीय परिवार तथा निम्न वर्गीय समाज के जीवन के यथार्थ का दिग्दर्शन कराने वाली मार्मिक रचनाएँ संस्कृत में प्रस्तुत की हैं। गाँव–गिराँव और खेती–खलिहानी तथा किसानों के जीवन का यथार्थ प्रामाणिक चित्रण संस्कृत की लोकधर्मी परंपरा की कविता में मिलता है। पालि में इस प्रकार की रचनाएँ बहुत कम हैं। थेरीगाथा और थेरगाथा का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है, जो खुद्दकनिकाय के अंतर्गत हैं। थेरीगाथा में थेरियाँ अपनी अनुभूतियाँ प्रस्तुत करती हैं। ये गाथाएँ स्त्रियों के आत्मालाप और स्वीकारोक्तियाँ हैं। परिवार और मध्यमवर्गीय समाज के संकीर्ण अभिशापग्रस्त जीवन के त्रास से मुक्त हो कर अनंत से जुड़ने का अनुभव थेरीगाथा की स्त्रियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। विधवा, संतानहीन होने के कारण मिलने वाली प्रताणनाएँ, स्त्री होने के कारण मिलने वाले तरह–तरह के लांछन, इन सब के दुःख की गठरी बटोर कर थेरियाँ बुद्ध के संघ में सम्मिलित हुईं, और

Pāli-Granthamālā-5

Suttapitake SAṂYUTTANIKĀYA PĀLI
(1. Sagātha Vaggo)
(With Sanskritacchāyā & Hindi Translation)

Publisher : © Prof. Surendra Jha
Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus,Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)
E-mail : rsklucknow@yahoo.com

Editor : Prof. Vijay Kumar Jain
Dr. Gurucharan Singh Negi

Assistance : Dr. Shukla Mukharjee
Project Officer
Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi-110058

Price : Rs. 500/

First Edition : 2012

Printer : Shivam Arts, 211, Nishat Ganj, Vth Gali, Lucknow- 226007
Mob. : 9415061690
email : shivamarts.lko@gmail.com

अपनी गाथाओं में उन्होंने पिछले जीवन की त्रासदी और वर्तमान में उससे मुक्ति के अनुभव को जो गहन अभिव्यक्ति दी है, वह विश्वसाहित्य में स्त्रीविमर्श की दृष्टि से दुर्लभ है। मुत्ता, इसिदासी, चन्दा, उदकहारी, विमला पुराणभणिका, मेत्तिका, पटाचारा, अड्ढकासिआ, कुंडलकेसी, किसा गोतमी आदि स्त्रियों की गाथाएँ यहाँ भारतीय नारी के जीवन की महागाथा प्रस्तुत करती हैं। परित्यक्ता होना, वेश्या बनने के लिये विवश किया जाना, प्रेमी की हत्या कर के भागना, और परिवार व समाज से तिरस्कार– इन सब के बीच का वजूद यहाँ कायम है और इसकी मुक्ति की खोज भी। मुत्ताथेरी कहती है–

सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया।
उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जकेन च।
मुत्ताम्हि जातिमरणा, भवनेत्ति समूहता" ति।।11।। – थेरीगाथा

स्त्री–मुक्ति की ऐसी गाथा संस्कृत या प्राकृत की मुक्तक कविता में इस रूप में कहीं नहीं मिलती। थेरीगाथा इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में अनन्य है। यहाँ दुर्बल और गतयौवना मेत्तिका लाठी के सहारे किसी तरह चलती थी, वह पर्वत की चट्टान पर बैठ कर मुक्ति का राग अलापती दिखती है, तो विमलापुराणभणिका वेश्या बन कर, सज–धज कर द्वार पर खड़ी कामुक प्रेमियों की प्रतीक्षा में कई–कई घड़ियाँ बिताती रही, वह पेड़ की छाँह में बैठ कर चिन्तन करती दिखती है, विधवा और निस्संतान चंदा, जो भीख माँग कर किसी तरह गुजर–बसर करती थी, उदकहारी जो पानी में स्नान करते ब्राह्मणों पर व्यंग्य करती है, पाटलिपुत्र की इसिदासी जो उज्जयिनी के अत्यंत सम्पन्न परिवार में जन्मी, विवाह के पश्चात् ससुराल में सब की सेवा करती रहती है, फिर भी अकारण लांछित की जाती है, पति के त्रास से अतिशय खिन्न हो कर वह पितृगृह में लौट आती है, पिता उसकी वेदना समझ कर दूसरा विवाह कर देते हैं, पर दूसरा विवाह होने पर भी वही नारकीय जीवन। पटचारा, जो पिता के द्वारा निश्चित संबंध में बँधना नहीं चाहती, वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है, विवाह के पश्चात् प्रेमी भी उसे छोड़ देता है, उसके दोनों बेटों की जीवनलीला अत्यंत दारुण स्थितियों में निःशेष हो जाती है। अड्ढकासिआ एक श्रेष्ठी की बेटी है, पर बलात् अपहरण के पश्चात् वेश्या होने पर विवश की जाती है। कुडलकेसी का मन एक चोर पर आ जाता है, उसकी जिद पर पिता उसका विवाह चोर से ही कर देते हैं। विवाह के पश्चात् पहाड़ पर मंदिर में पूजा करने के लिये जब वर–वधू जाते हैं, तो वह चोर उससे सारे आभूषण उतार कर सौंपने के लिये कहता है। इस विश्वासघात से आहत कुंडलकेसी उसकी हत्या कर डालती है, फिर भटकाव का अंत संघ में पहुँच कर होता है। किसा गोतमी अत्यंत दरिद्र परिवार में जन्मी, ससुराल में उसकी गरीबी के कारण उसका उपहास किया जाता है। उसका बेटा मर जाता है, किसा गोतमी पागल हो कर भटकती फिरती है। इन सब स्त्रियों को मिले लांछन, प्रताड़नाएँ और वेदनाएँ थेरीगाथा में हैं और उनसे निष्कृति की कथा भी।

थेरगाथा के थेर भी कहीं–कहीं अपनी कथा कहते हैं। वे पूर्व जीवन के प्रपंचों और विसंगतियों की चर्चा करते हैं। सुनीत थेर कहता है कि मैं नीच कुल में उत्पन्न हुआ, दरिद्र था,

खाने को नहीं मिलता था, लोग मुझ से घृणा करते थे, मैं अपमानित और तिरस्कृत जीवन बिता रहा था, मेरा मन गिरा हुआ था। फिर मैंने भिक्षु संघ के साथ आते भगवान् बुद्ध के दर्शन किये, मेरे क्लेश दूर हुए।

नीचे कुलम्हि जातोहं, दलिद्दो अप्पभोजनो।
हीनकम्मं ममं आसि, अहोसिं पुप्फछड्डको।।
जिगुच्छितो मनुस्सानं, परिभूतो च वम्मितो।
नीचं मनं करित्वान, वन्दिस्सं बहुकं जनं।।
अथद्दसासिं संबुद्धं, भिक्खुसंघपुरक्खतं।
पविसन्तं महावीरं, मगधानं पुरुत्तमं।।620–622।।

थेरीगाथा तथा थेरगाथा दोनों एक अर्थ में भारतीय दलित समाज की कराह की मार्मिक अभिव्यक्तियाँ भी हैं, पर इसके साथ ये आध्यात्मिक साधना और मुमुक्षुत्व की महागाथाएँ भी हैं।

ईसा–पूर्व तथा ईसा–पश्चात् की हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास की कतिपय शताब्दियों में वैदिक, बौद्ध तथा जैन परंपराओं के बीच वाद, विवाद और संवाद की, साहित्यिक आदान–प्रदान की जीवन्त प्रक्रिया घटित हो रही थी। इस संवाद की प्रक्रिया का साक्ष्य संस्कृत साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने दिया है। आनंदवर्धन ने तो दो कवियों के बीच संवाद की अवधारणा का सटीक विवेचन किया है। पालि की गाथाएँ और प्राकृत के मुक्तक जन–समाज में लोकप्रिय थे। इस आधार पर राजशेखर ने रचना की गुणवत्ता का एक मानक यह भी स्वीकार किया कि वह जन–जन का कंठहार बने।

पालि, संस्कृतच्छाया हिन्दी अर्थ युक्त खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग प्रथम चरण में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है सभी के लिए उपयोगी होगा। शोध–अध्येताओं को साधुवाद देना चाहता हूँ तथा विशेषज्ञों– पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रो. संघसेन सिंह, प्रो. एस. पी. नारंग, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. धर्मचंद जैन, प्रो. ब्रह्मदेवनारायण शर्मा (अब स्मृतिशेष), प्रो. ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन, प्रो. रामसागर मिश्र, प्रो. वृषभ प्रसाद जैन ने कार्यशालाओं के माध्यम से इसे संशोधित किया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ वर्तमान प्राचार्य डॉ. सुरेन्द्र झा तथा बौद्धदर्शन विभाग के प्राध्यापकों का श्रम उल्लेखनीय है। परियोजना अधिकारी एवं मंत्रालय का सहयोग भी भुलाया नहीं जा सकता।

भवतु सब्ब मंगलं।

30, मार्च, 2012

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी
कुलपति

प्रकाशकीय

प्रसन्नता का विषय है कि पालि अध्ययन केन्द्र के अध्येताओं– डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. नीलिमा चौहान, श्री जयवन्त खण्डारे, डॉ. राहुल अमृतराज, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी एवं स्वतंत्र रूप से कार्य कर रही डॉ. श्रीमती राका जैन द्वारा की गई संस्कृतच्छाया–युक्त पालि त्रिपिटक के 9 ग्रन्थ प्रथम चरण में पाँच भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। खुद्दकनिकाय के आठ ग्रन्थ– खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, थेरगाथा, थेरीगाथा, विमानवत्थु, पेतवत्थु तथा सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों में भारतीय लोक–जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। संस्कृत, पालि, व्याकरण एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी इनका विशेष महत्त्व है। इस कार्य को उत्तम बनाने के लिए कई बार कार्यशालाएँ की गईं जिनमें देश के मूर्धन्य एवं वयोवृद्ध विद्वान् सम्मिलित हुए। उक्त कार्यशाला के अवसर पर पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी जी ने कहा था कि "भारतीय दर्शन परम्परा के विकास में बौद्धों का पूर्वपक्ष के रूप में बहुत बड़ा योगदान रहा है। बीच में बौद्धों का पक्ष कमजोर होने से दर्शन की परम्परा का लेखन रुक गया, क्योंकि पूर्वपक्ष में बौद्धों का अन्य वाङ्मय तो भारतीय दार्शनिकों के समक्ष था, पालि साहित्य नहीं था।"

'पालि' भाषा में निबद्ध त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी है। इसका पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृतच्छाया–युक्त ये ग्रन्थ भारतीय मनीषियों के लिए विशेष उपयोगी होंगे। इस कार्य की सफलता में हमारे सम्माननीय कुलपति जी की कृपा एवं दूरदर्शिता रही है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कार्यशाला में पधारने वाले विद्वज्जनों, सम्पादकों, केन्द्र के अध्येताओं एवं सहयोगी प्राध्यापकों को साधुवाद देता हूँ तथा कामना करता हूँ कि पालि अध्ययन केन्द्र इसी तरह सफलतापूर्वक कार्य करता रहे तथा यह ग्रन्थमाला अनवरत चलती रहे। इस प्रकाशन से हमारे परिसर का भी गौरव बढ़ा है।

लखनऊ
30 मार्च, 2012

प्रो. सुरेन्द्र झा
प्राचार्य

सम्पादकीय

पालि त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी को संरक्षित करने वाला सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। पालि त्रिपिटक की प्रामाणिकता उनकी सङ्गीतियों के माध्यम से होती है। भगवान् बुद्ध के समय ही भिक्षु बुद्धवचनों को कंठस्थ कर लिया करते थे। सुत्तधर, विनयधर, जैसे शब्द स्पष्ट करते हैं कि बुद्धवचन मौखिक परम्परा पर आधारित थे। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात अर्हत् भिक्षुओं ने प्रथम संगीति का आयोजन किया एवं धम्म और विनय का संगायन किया गया। तदन्तर 100 वर्ष बाद द्वितीय संगीति में जब संघभेद हो गया तो स्थविर भिक्षुओं ने **मागधी** में तथा महासांघिकों ने संस्कृत में बुद्धवचनों का सङ्गायन किया। दूसरी संगीति के 135 वर्ष बाद अशोक के समय तीसरी संगीति हुई उसमें त्रिपिटक का संगायन हुआ। सम्राट अशोक ने बुद्धवचनों के प्रचार व प्रसार के लिए सम्पूर्ण एशिया के भिक्षुओं को तथा अपने पुत्र एवं पुत्री को श्रीलंका भेजा। श्रीलंका में भी बुद्धवचन कई वर्ष तक मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहे। पुनः वहाँ चौथी एवं पाँचवी संगीति हुई तथा बुद्धवचनों को पत्थरों में उत्कीर्ण कराया। छट्ठसंगायन जो 1956 ई. में बर्मा में हुआ उसी के आधार पर नवनालन्दा महाविहार से पालि त्रिपिटक देवनागरी में प्रकाशित हुआ, जो आज अनुपलब्ध है। इगतपुरी विपश्यना शोध संस्थान ने सम्पूर्ण त्रिपिटक को अट्ठकथा टीका सहित प्रकाशित किया था जो आज मात्र इण्टरनेट पर ही उपलब्ध है।

हमारे माननीय कुलपति जी की भावना थी कि त्रिपिटक का संस्थान का संस्करण विशेष एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानक का होना चाहिए साथ ही संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित होने के कारण संस्कृत छाया रहे तो और भी अच्छा होगा, क्योंकि मूलानुगामी संस्कृतच्छाया से अर्थबोध करने में सहायता प्राप्त होती है। आज त्रिपिटक का अनुवाद अंग्रेजी, स्यामी, सिंहली, बर्मी में हुआ है किन्तु हिन्दी में आधा अधूरा। संस्कृतच्छाया से पालि–प्राकृत–संस्कृत का अन्तःसम्बन्ध प्रकट हो जाता है, क्योंकि अनुवाद दूसरी भाषाओं से किया जाता है उनकी छाया नहीं हो सकती। छाया उन्हीं भाषाओं की होती है जिनका भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरण की दृष्टि से अन्तःसम्बन्ध हो। पालि साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें से 'धम्मपद' एवं 'मिलिन्दप्रश्न' के कुछ अंश की संस्कृतच्छाया पहले से उपलब्ध हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी एवं भिक्षु धर्मरक्षित के धम्मपद अनुवाद संस्कृतच्छाया के साथ प्रकाशित हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रो. संघसेन सिंह का भी 'धम्मपद' की संस्कृतच्छाया प्रकाशित है।

हमारे सम्माननीय कुलपति जी ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना को स्वीकार करते हुए उदीयमान नवयुवकों को यह दायित्व दिया जिसे इन्होंने उत्साहपूर्वक निभाया है। यह सब हमारे दूरदर्शी कुलपति जी की दृढ़ इच्छा, भागीरथ प्रयास एवं उनके कुशल नेतृत्व का परिणाम है कि हम इस दिशा में आगे बढ़ सके। इस योजना में देश के वयोवृद्ध विद्वानों ने मनोयोग से सहायता पहुँचाई। कार्यशालाओं के माध्यम से इस छाया को कई-कई बार परिष्कृत किया गया।

उद्देश्य था कि अर्थ न बदलें तथा छाया मूलानुगामी हो, अनुवाद मात्र नहीं और व्याकरण के नियमों का भी पालन हो। पालि परम्परा एवं अट्ठकथा के अर्थ को भी ध्यान दिया गया। इसी तरह शीर्षक एवं 'नाम' में भी मूल को सुरक्षित रखते हुए छाया की गई है। संस्कृतच्छाया में बौद्धसंस्कृत में प्राप्त पालि शब्दावली का भी सहयोग लिया गया है।

ग्रंथ के सन्दर्भ में

प्रथम सगाथवर्ग में देवता, देवपुत्त, कोसलराज प्रसेनजित, मार, भिक्षुणी, ब्रह्मा, ब्राह्मण, वंगीस, यक्ष एवं इन्द्र के विशेष सन्दर्भों में एक–एक स्वतंत्र संयुत्त है। उपर्युक्त के साथ भगवान् की वार्ता के रूप में ये गाथाएं हैं। गाथाओं की विभिन्न संयुत्तों में पुनरुक्ति भी है। इस वर्ग की अधिकांश गाथाएं सुत्तपिटक के अन्य ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। जैसे–वंगीस थेर से सम्बन्धित गाथाएं वंगीस थेरगाथा में, भिक्षुणी संयुत्त की गाथाएं थेरीगाथा में एवं अन्य गाथाएं धम्मपद, सुत्तनिपात आदि ग्रन्थों में पाई जाती हैं।

संयुत्तनिकाय में सुत्तपिटक के अन्य ग्रन्थों की भांति सुत्तों में प्रारम्भिक निदान, कुशलक्षेम, अभिवादन, प्रश्नोत्तर के ढंग, आश्चर्य करने, परिताप करने तथा विदा करते समय एक समान शब्दों का प्रयोग हुआ है। पुनरुक्तियों की अधिकता एवं उपमाओं के प्रयोग की बहुलता है। संवादों में इतिहास एवं आख्यानों का समावेश किया गया है। नाटकीय कियात्मकता की अभिव्यक्ति मिलती है। एक वाक्य के बार–बार आने पर उसे संक्षेप में आदि और अन्त के शब्द को देकर पेय्याल या पे0 लिखा रहता है, जिससे पहले आया सम्पूर्ण पाठ समझा जाता है। पेय्याल से तात्पर्य पातुं+अल से है जिसका अर्थ है कि इतने में ही अर्थ जानना पर्याप्त है।

पुनरुक्तियों की अधिकता का कारण विषय का स्पष्टीकरण करना भी है। प्रत्येक सुत्त विषयवस्तु की सूक्ष्मता को आगे बढ़ाता हुआ गम्भीरता की ओर बढ़ता जाता है। सुत्तों का एक दूसरे से कम सम्बन्ध होते हुए अपने आप में परिपूर्ण है। किसी दूसरे सुत्त पर स्पष्टीकरण के लिए आश्रित नहीं है। एक ही विषयवस्तु पर अनेक सुत्तों की उपलब्धि, सिद्धान्त वाक्यों का बारम्बार कथन एवं सुत्तों में व्याप्त पुनरुक्तियां विषयवस्तु को महत्वपूर्ण एवं स्मरण योग्य बनाने के लिए किया गया प्रयास प्रतीत होता है।

यह वर्ग विषय और शैली दोनों दृष्टि से बड़ा रोचक है। धर्म एवं दर्शन के महत्त्वपूर्ण विषयों पर गाथाओं में प्रश्नोत्तर आये हैं, उनसे भारतीय संस्कृति की अन्य परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके सुत्त रोचक, लालित्यपूर्ण, गम्भीर, मार्मिक एवं ऐतिहासिक हैं। इस वग्ग की गेयता के कारण इसको नवांग बुद्धवचनों में उद्धृत किया गया है। कथावत्थु में विभिन्न सन्दर्भों में भगवान् बुद्ध के वचनों को प्रतिपादित करने के लिए 'सुत्तन्त' के रूप में संयुत्तनिकाय की गाथाएं उद्धृत की गई है। पेटकोपदेश, मिलिन्दप्रश्न, में संयुत्तनिकाय के नाम सहित वचनों को उद्धृत किया गया है। धम्मपदट्ठकथा में संयुत्तनिकाय की 15 कथाएं समान रूप से मिलती हैं। आचार्य बुद्धघोष ने सगाथवग्ग की दो गाथाओं की व्याख्या में अपने 'विशुद्धिमग्ग' ग्रन्थ की रचना की है। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों में भी संयुत्तनिकाय का नामोल्लेख किया गया है एवं उसके वचनों को उद्धृत किया गया है। दिव्यावदान एवं महाव्युत्पत्ति में नामोल्लेख है। सूत्रालंकार में 17 सुत्त समान हैं। 55 चाइनीज मध्यमिक आगम में 10 सुत्तों की समानता है। भिक्षु जगदीश कश्यप ने भी इसके दार्शनिक महत्त्व एवं विषय विभाजन के महत्त्व को स्वीकार किया है।

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत पालि ग्रन्थमाला का पाँचवा भाग संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग है। इसकी संस्कृतच्छाया अपने मित्र डॉ. वेदव्यास पाण्डेय के साथ की है। इसमें मैने देवतासंयुत्त, कोसलसंयुत्त, भिक्खुनीसंयुत्त, ब्राह्मणसंयुत्त एवं वनसंयुत्त की संस्कृतच्छाया की है।

इस क्रम में मै सर्वप्रथम इस त्रिपिटक प्रकाशन योजना में प्रेरणास्रोत सम्माननीय कुलपति प्रो राधावल्लभ त्रिपाठी जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही साथ राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर के प्राचार्य प्रो. सुरेन्द्र झा जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, उनके सद्भाव से यह कार्य पूर्ण हो रहा है। प्रो. विजयकुमार जैन, अध्यक्ष बौद्ध दर्शन विभाग के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापिक करता हूँ, जिनके निर्देशन में मैंने यह कार्य किया है। विभागीय प्राध्यापक डॉ. अवधेशकुमार चौबे एवं डॉ. गुरुचरणसिंह नेगी के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, उनके मनसा–वाचा–कर्मणा अथक श्रम सद्भाव से यह कार्य पूर्ण हो रहा है। इसी क्रम में प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. धर्मचन्द्र जैन (कुरुक्षेत्र), प्रो. संघसेन सिंह, प्रो. रामसागर मिश्र एवं श्रीमती राका जैन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने संस्कृतच्छाया कार्य में आयी कठिनाईयों को दूर किया। इस कार्य में कम्प्यूटर टंकण विशेषज्ञ विकास जैन का अमूल्य योगदान रहा। इस ग्रंथ के हिन्दी रूपांतरण में स्वामी द्वारिकादास शास्त्री जी द्वारा भाषांतर किये गये ग्रंथों की सहायता ली गई है, जिनके लिये मैं उनका आभारी हूँ। इस कार्य को पूर्ण करने में मेरे माता–पिता का स्नेह एवं पत्नी श्रीमती सुशीला, बेटी सलोनी का सहयोग मिला। मेरे अभिन्न मित्र श्री घनश्याम पाल एवं पालि अध्ययन केंद्र के डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. पत्रिका जैन, डॉ. नीलिमा चौहान, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, डॉ. राहुल अमृतराज, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी, श्री प्रिंस जैन आदि सभी मित्रों का सहयोग रहा। इन सबके प्रति भी मैं आभार प्रकट करता हूँ।

– जयवंत खंडारे

प्रस्तुत संयुत्तनिकाय के सगाथवग्ग की संस्कृतच्छाया अपने मित्र श्री जयवंत खण्डारे के साथ की है। इसमें मैने देवपुत्तसंयुत्त, मारसंयुत्त, ब्रह्मसंयुत्त, वंगीससंयुत्त, यक्खसंयुत्त एवं सक्कसंयुत्त की संस्कृतच्छाया की है।

इस अवसर पर अपने गुरुजनों, मित्रों, एवं स्नेहीजनों के प्रति आभार के शब्द बरबस निःसृत हो उठते है। इस दिशा में मैं सर्वप्रथम नवनालन्दा महाविहार, नालन्दा एवं भिक्षु धर्मरक्षित जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ क्योंकि उक्त संस्था एवं विद्वान् के पालि संस्करण एवं हिन्दी अनुवाद का पूर्ण उपयोग मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ में किया है। मैं नमन करता हूँ श्रद्धेय गुरुवर प्रो. प्रद्युम्न दुबे जी को जिन्होंने समय समय पर महत्त्वपूर्ण सुझाव हमें दिया। इस त्रिपिटक प्रकाशन कि योजना के प्रेरणास्रोत सम्माननीय कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके स्नेह और आशीर्वाद के फलस्वरूप इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा हैं। संस्थान के लखनऊ परिसर के बौद्धदर्शन विभागाध्यक्ष प्रो. विजयकुमार जैन जी के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिसके निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न हो रहा है। विभागीय प्राध्यापक डॉ. अवधेशकुमार चौबे, डॉ. गुरुचरणसिंह नेगी, प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. धर्मचन्द्र जैन, प्रो. संघसेन सिंह, प्रो. रामशंकर मिश्र, प्रो. रवीनाथ मिश्र एवं डॉ. श्रीमती राका जैन के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने संस्कृतच्छाया में आयी कठिनाइयों को दूर किया। मैं अपने पिता श्री दूधनाथ पाण्डेय एवं माता श्रीमती गीता पाण्डेय के श्री चरणों में नमन अर्पित करता हूँ, जिनका स्नेह हमें प्राप्त हुआ। प्रूफ संशोधन में सहायता के लिए मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शैलेश पाण्डेय एवं अनुज वेद प्रकाश पाण्डेय, वेदपति पाण्डेय के प्रति हार्दिक स्नेह व्यक्त करता हूँ। पालि अध्ययन केंद्र के डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. पत्रिका जैन, डॉ. नीलिमा चौहान, डॉ. राहुल अमृतराज, श्री जयवंत खण्डारे, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी, श्री प्रिंस जैन, विकास जैन एवं शोध अध्येता श्री प्रदीप लुईटेल, श्री अतुल श्रीवास्तव आदि श्री विपिन द्विवेदी, अर्जुन गर्तोला मित्रों का सहयोग रहा। इन सभी के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ।

–डॉ. वेदव्यास पाण्डेय

विसयक्कमो

संयुत्तनिकायपालि

सगाथवग्गो

1. देवतासंयुत्तं 1–80

1. नळवग्गो

1. ओघतरणसुत्तं 1
2. निमोक्खसुत्तं 2
3. उपनीयसुत्तं 3
4. अच्चेन्तिसुत्तं 3
5. कतिछिन्दसुत्तं 4
6. जागरसुत्त 5
7. अप्पटिविदितसुत्तं 5
8. सुसम्मुट्ठसुत्तं 6
9. मानकामसुत्तं 6
10. अरञ्ञसुत्तं 7

2. नन्दनवग्गो

1. नन्दनसुत्तं 8
2. नन्दतिसुत्तं 9
3. नत्थिपुत्तसमसुत्तं 10
4. खत्तिय सुत्तं 10
5. समणानसुत्तं 11
6. निद्दातन्दीसुत्तं 11
7. दुक्करसुत्तं 12
8. हिरीसुत्तं 12
9. कुटिकासुत्तं 13
10. समिद्धि सुत्तं 14

3. सत्तिवग्गो

1. सत्तिसुत्तं 22
2. फुसतिसुत्तं 23
3. जटासुत्तं 23
4. मनोनिवारणसुत्तं 24
5. अरहन्तसुत्तं 25
6. पज्जोतसुत्तं 26
7. सरसुत्तं 26
8. महद्धनसुत्तं 27
9. चतुचक्कसुत्तं 28
10. एणिजङ्घसुत्तं 28

4. सतुल्लपकायिकवग्गो

1. सम्भिसुत्तं 29
2. मच्छरिसुत्तं 32
3. साधुसुत्तं 35
4. नसन्तिसुत्तं 39
5. उज्झानसञ्ञिसुत्तं 41
6. सद्धासुत्तं 44
7. समयसुत्तं 45
8. सकलिकसुत्तं 47
9. पठमपज्जुन्नधीतुसुत्तं 51
10. दुतियपज्जुन्नधीतुसुत्तं 52

5. आदित्तवग्गो

1. आदित्तसुत्तं 53
2. किंददसुत्तं 55
3. अन्नसुत्तं 55
4. एकमूलसुत्तं 56
5. अनोमसुत्तं 56
6. अच्छरासुत्तं 57
7. वनरोपसुत्तं 57
8. जेतवनसुत्तं 58
9. मच्छरिसुत्तं 59
10. घटिकारसुत्तं 61

6. जरावग्गो

1. जरासुत्तं 64
2. अजरसासुत्तं 64
3. मित्तसुत्तं 65
4. वत्थुसुत्तं 65
5. पठमजनसुत्तं 65
6. दुतियजनसुत्तं 66
7. ततियजनसुत्तं 66
8. उप्पथसुत्तं 67
9. दुतियसुत्तं 67
10. कविसुत्तं 68

7. अद्धवग्गो

1. नामसुत्तं 68

3. ततियो वग्गो
1. पुग्गलसुत्तं 182
2. अय्यिकासुत्तं 190
3. लोकसुत्तं 192
4. इस्सत्तसुत्तं 193
5. पब्बतूपमसुत्तं 198
4. मारसंयुत्तं 203–252
1. पठमो वग्गो
1. तपोकम्मसुत्तं 203
2. हत्थिराजवण्णसुत्तं 204
3. सुभसुत्तं 205
4. पठममारपाससुत्तं 206
5. दुतियमारपाससुत्तं 208
6. सप्पसुत्तं 209
7. सुपतिसुत्तं 211
8. नन्दतिसुत्तं 212
9. पठमआयुसुत्तं 213
10. दुतियआयुसुत्तं 214
2. दुतियो वग्गो
1. पासाणसुत्तं 216
2. किन्नुसीहसुत्तं 217
3. सकलिकसुत्तं 218
4. पतिरूपसुत्तं 219
5. मानससुत्तं 220
6. पत्तसुत्तं 221
7. छफस्सायतनसुत्तं 223
8. पिण्डसुत्तं 225
9. कस्सकसुत्तं 226
10. रज्जसुत्तं 229
3. ततियो वग्गो
1. सम्बहुलसुत्तं 231
2. समिद्धिसुत्तं 234
3. गोधिकसुत्तं 236
4. सत्तवस्सानुबन्धसुत्तं 241
5. मारधीतुसुत्तं 244
5. भिक्खुनीसंयुत्तं 253–270
1. आलविकासुत्तं 253
2. सोमासुत्तं 254
3. किसागोतमीसुत्तं 256
4. विजयासुत्तं 258
5. उप्पलवण्णासुत्तं 260
6. चालासुत्तं 262
7. उपचालासुत्तं 263
8. सीसुपचालासुत्तं 265
9. सेलासुत्तं 266
10. वजिरासुत्तं 268
6. ब्रह्मसंयुत्तं 271–313
1. पठमवग्गो
1. ब्रह्मायाचनसुत्तं 271
2. गारवसुत्तं 275
3. ब्रह्मदेवसुत्तं 279
4. बकब्रह्मसुत्तं 282
5. अञ्ञतरब्रह्मसुत्तं 285
6. ब्रह्मलोकसुत्तं 290
7. कोकालिकसुत्तं 293
8. कतमोदकतिस्ससुत्तं 294
9. तुदुब्रह्मसुत्तं 294
10. कोकालिकसुत्तं 296
2. दुतियवग्गो
1. सनङ्कुमारसुत्तं 302
2. देवदत्तसुत्तं 302
3. अन्धकविन्दसुत्तं 303
4. अरुणवतीसुत्तं 305
5. परिनिब्बानसुत्तं 310
7. ब्राह्मणसंयुत्तं 314–362
1. अरहन्तवग्गो पठमो
1. धनञ्जानीसुत्तं 314
2. अक्कोससुत्तं 317
3. असुरिन्दकसुत्तं 321
4. बिलङ्गिकसुत्तं 322
5. अहिंसकसुत्तं 323
6. जटासुत्तं 324
7. सुद्धिकसुत्तं 325
8. अग्गिकसुत्तं 326
9. सुन्दरिकसुत्तं 329
10. बहुधीतरसुत्तं 333
2. उपासकवग्गो
1. कसिभारद्वाजसुत्तं 338
2. उदयसुत्तं 341

3. देवहितसुत्तं 342
4. महासालसुत्तं 345
5. मानत्थद्धसुत्तं 348
6. पच्चनीकसुत्तं 352
7. नवकम्मिकसुत्तं 353
8. कट्ठहारसुत्तं 354
9. मातुपोसकसुत्तं 356
10. भिक्खकसुत्तं 357
11. सङ्गारवसुत्तं 358
12. खोमदुस्ससुत्तं 361

8. वंगीससंयुत्तं 363–386
1. निक्खन्तसुत्तं 363
2. अरतिसुत्तं 365
3. पेसलसुत्तं 367
4. आनन्दसुत्तं 368
5. सुभासितसुत्तं 369
6. सारिपुत्तसुत्तं 372
7. पवारणासुत्तं 373
8. परोसहस्ससुत्तं 377
9. कोण्डञ्ञसुत्तं 380
10. मोग्गल्लानसुत्तं 382
11. गग्गरासुत्तं 383
12. वङ्गीससुत्तं 385

9. वनसंयुत्तं 387–403
1. विवेकसुत्तं 387
2. उपट्ठानसुत्तं 388
3. कस्सपगोत्तसुत्तं 389
4. सम्बहुलसुत्तं 391
5. आनन्दसुत्तं 391
6. अनुरुद्धसुत्तं 392
7. नागदत्तसुत्तं 394
8. कुलघरणीसुत्तं 395
9. वज्जिपुत्तसुत्तं 396
10. सज्झायसुत्तं 397
11. अकुसलवितक्कसुत्तं 398
12. मज्झन्हिकसुत्तं 399
13. पाकतिन्द्रियसुत्तं 400
14. गन्धत्थेनसुत्तं 401

10. यक्खसंयुत्तं 404–424
1. इन्दकसुत्तं 404
2. सक्कनामसुत्तं 405
3. सूचिलोमसुत्तं 405
4. मणिभद्दसुत्तं 408
5. सानुसुत्तं 408
6. पियङ्करसुत्तं 411
7. पुनब्बसुसुत्तं 412
8. सुदत्तसुत्तं 414
9. पठमसुक्कासुत्तं 418
10. दुतियसुक्कासुत्तं 419
11. चीरासुत्तं 419
12. आळवकसुत्तं 420

11. सक्कसंयुत्तं 425–475

1. पठमो वग्गो
1. सुवीरसुत्तं 425
2. सुसीमसुत्तं 427
3. धजग्गसुत्तं 430
4. वेपचित्तिसुत्तं 434
5. सुभासितजयसुत्तं 438
6. कुलावकसुत्तं 442
7. नदुब्भियसुत्तं 443
8. वेरोचनअसुरिन्दसुत्तं 444
9. अरञ्ञायतनइसिसुत्तं 446
10. समुद्दकसुत्तं 447

2. दुतियो वग्गो
1. वतपदसुत्तं 450
2. सक्कनामसुत्तं 451
3. महालिसुत्तं 453
4. दलिद्दसुत्तं 457
5. रामणेय्यसुत्तं 459
6. यजमानसुत्तं 460
7. बुद्धवन्दनासुत्तं 461
8. गहट्ठवन्दनासुत्तं 462
9. सत्थारवन्दनासुत्तं 464
10. सङ्घवन्दनासुत्तं 465

3. ततियो वग्गो
1. छेत्वासुत्तं 468
2. दुब्बण्णियसुत्तं 469
3. सम्बरिमायासुत्तं 471
4. अच्चयसुत्तं 472
5. अक्कोधसुत्तं 474

परिशिष्ट 476–488

ग्रन्थ के संदर्भ में

संयुत्तनिकाय सुत्त–पिटक का तीसरा ग्रंथ है। इसमें छोटे–बड़े सभी प्रकार के सुत्तों के संग्रह हैं। इसके पाँच बड़े वर्गों में से सगाथा वर्ग एक महत्त्वपूर्ण वर्ग है। इस वर्ग के समस्त सूत्रों की संख्या 271 है। इसमें ग्यारह महत्त्वपूर्ण संयुत्त हैं– देवतासंयुत्त, देवपुत्तसंयुत्त, कोसलसंयुत्त, मारसंयुत्त, भिक्खुणीसंयुत्त, ब्रह्मसंयुत्त, ब्राह्मणसंयुत्त, वङ्गीससंयुत्त, वनसंयुत्त, यक्खसंयुत्त, सक्कसंयुत्त।

सगाथवर्ग के अधिकांश सूत्र प्रश्नोत्तर शैली मे हैं। इसकी गाथाओं में गम्भीर से गम्भीर विषयों का विवेचन, दार्शनिक तथा साहित्यिक पहलुओं का चित्रण है। साथ–साथ इसमें तत्कालीन राजनीति, समाजव्यवस्था और धार्मिक गतिविधियों का भी स्पष्ट चित्रण मिलता है।

बुद्धवचनों का प्राचीन विभाजन नौ अंगो में किया गया है। उनमें प्रथम गाथा है। इसमें संयुत्तनिकाय के सगाथवग्ग का संदर्भ दिया जाता है। सूत्रों के प्रारम्भ में सम्बन्धित स्थान, काल, व्यक्ति तथा अवस्था का परिचय दिया गया है। जहाँ, जब, जिन्हें और जिन परिस्थितियों में भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिये। तथागत के पास आगत व्यक्ति गाथाओं के माध्यम से कुछ विशेष प्रश्न पूछता था और भगवान् गाथाओं के माध्यम से ही उसे तदनुरूप उत्तर देते थे। इस विशेषता के चलते इस वर्ग का नाम सगाथावर्ग पड़ा है।

इस वर्ग में आई गाथाओं का महत्त्व इसी से पता चलता है कि इसकी दो गाथाएँ **अन्तो जटा बहिजटा.....** पर अट्ठकथाकार बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग जैसे ग्रन्थ की रचना किया। बुद्धकालीन छः तैर्थिकों का वर्णन मिलता है। भिक्षुणिसंयुक्त में भिक्षुणियों के संवाद हैं। यहाँ वजिरासुत्त की गाथा सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य में प्रख्यात है– **'यथा हि अङ्गसम्भारा.....सत्तो ति सम्मुति'**। यह गाथा मिलिन्दपञ्हो ग्रंथ में अति महत्त्वपूर्ण रूप में वर्णित होने के कारण इतनी प्रसिद्ध है कि यह सभी बौद्ध भिक्षुओं को कण्ठस्थ रहती है।

इस ग्रन्थ में मूलपालि, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

ISBN : 978-81-924536-4-4
Price : 500.00

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

॥नमः तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय॥

संयुत्तनिकायो

सगाथवग्गो

1. देवतासंयुत्तं

1. नळवग्गो

1.1.1. ओघतरणसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं एतदवोच– ''कथं नु त्वं, मारिस, ओघमतरी''ति? ''अप्पतिट्ठं ख्वाहं, आवुसो, अनायूहं ओघमतरिं''ति।

''यथा कथं पन त्वं, मारिस, अप्पतिट्ठं अनायूहं ओघमतरी''ति?

''यदाख्वाहं, आवुसो, सन्तिट्ठामि तदास्सु संसीदामि; यदाख्वाहं, आवुसो, आयूहामि तदास्सु निब्बुय्हामि। एवं ख्वाहं, आवुसो, अप्पतिट्ठं अनायूहं ओघमतरिं''ति।

(संस्कृतच्छाया) 1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु अन्यतरा देवता अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णा केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवन्तम् एतदवोचत्— ''कथं नु त्वम्, मार्ष! ओघमतर' इति? ''अप्रतिष्ठितं खल्वहम्, आयुष्मन्, अनायूहम् ओघमतरम्''इति।

''यथा कथं पुनः त्वम्, मार्ष! अप्रतिष्ठमनायूहम् ओघमतर''इति?

''यदा खल्वहम्, आयुष्मन्! संतिष्ठामि तदास्विद् संसीदामि; यदा खल्वहम्, आयुष्मन्! आयूहामि तदास्विद् निर्व्यूहामि। एवं खल्वहम्, आयुष्मन्! अप्रतिष्ठम् अनायूहम् ओघमतरम्''इति।

(हिन्दी) 1. ऐसा मैने सुना, एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक सेठ के जेतवन महाविहार में विहार कर रहे थे। तब कोई देदीप्यमान रूप वाला देवता रात बीतने पर अपनी चमक से सारे जेतवन को चमकाता हुआ, जहाँ भगवान् थे वहाँ, पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये उस देवता ने भगवान् से यह निवेदन किया-

''भगवान्''! (पूजनीय!) आपने (इस संसार में आकर) इस भवतृष्णा की बाढ़ को कैसे पार किया?''

भगवान्- ''आयुष्मन्! मैंने तो बिना रुके एवं बिना कोशिश किये ही इस बाढ़ को पार कर लिया।''

देवता- ''भगवान्! आपने बिना रुके एवं बिना कोशिश किये कैसे इस बाढ को पार कर लिया?''

भगवान्- ''क्योंकि यदि मैं कहीं रुकता तो डूब जाता, तथा कोई अतिरिक्त प्रयास करता तो बह जाता। अतः मैंने बिना रुके बिना कोशिश किये उस बाढ़ को पार किया।''

''चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अप्पतिट्ठं अनायूहं, तिण्णं लोके विसत्तिकं''ति॥

इदमवोच सा देवता। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो सा देवता– ''समनुञ्ञो मे सत्था''ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायीति।

1.1.2. निमोक्खसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं एतदवोच– 'जानासि नो त्वं, मारिस, सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं''ति?

''जानामि ख्वाहं, आवुसो, सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं''ति।

''यथा कथं पन त्वं, मारिस, जानासि सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं''ति?

(संस्कृतच्छाया) ''चिरस्य वत पश्यामि, ब्राह्मणं परिनिर्वृत्तम्।
अप्रतिष्ठम् अनायूहम्, तीर्णं लोके विसक्तिकम्''इति॥

इदमवोचत् सा देवता। समनोज्ञः शास्ता अभूत्। अथ खलु सा देवता– ''समनोज्ञः मे शास्ता'' इति भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ''इति।

2. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु अन्यतरा देवता अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णा केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान्, तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवन्तम् एतदवोचत्- ''जानासि नो त्वम्, मार्ष! सत्त्वानां निर्मोक्षं प्रमोक्षं विवेकम्'' इति?

''जानामि खल्वहम्, आयुष्मन्! सत्त्वानां निर्मोक्षं प्रमोक्षं विवेकम्''इति।

''यथा कथं पुनः त्वम्, आयुष्मन्! जानासि सत्त्वानां निर्मोक्षं प्रमोक्षं विवेकम्''इति?

(हिन्दी) ''अरे! मैंने बहुत समय बाद ऐसे ब्राह्मण (ज्ञानी) के दर्शन किये, जो बिना कहीं रुके एवं बिना कोई अतिरिक्त प्रयास किये इस सांसारिक तृष्णा (आसक्ति) को पार कर निर्वाण तक पहुँच चुका हो।''

उस देवता ने यह कहा। भगवान् ने भी उसकी इस बात का अनुमोदन किया। तब वह देवता, यह समझ कर कि भगवान् मुझसे सहमत है, भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।'

2. श्रावस्ती में.....। फिर कोई अन्य देदीप्यमान देवता किसी अन्य चान्दनी रात में जेतवन को अपनी आभा से चमकाता हुआ भगवान् के यहाँ आया। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। तब उसने भगवान् से यह पूछा- ''मार्ष! क्या आप (इस भवसागर से) प्राणियों के निर्मोक्ष (निर्वाण), प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे का उपाय जानते हैं?''

''हाँ, आयुष्मन्! मैं प्राणियों के निर्मोक्ष, प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे का उपाय जानता हूँ।''

देवता- ''भगवान! कैसे प्राणियों के उस निर्मोक्ष, प्रमोक्ष या सर्वथा छुटकारे को जानते हैं?''

''नन्दीभवपरिक्खया, सञ्ञाविञ्ञाणसङ्खया, वेदनानं निरोधा उपसमा– एवं ख्वाहं, आवुसो, जानामि सत्तानं निमोक्खं पमोक्खं विवेकं''ति।

1.1.3. उपनीयसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी''ति॥

''उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो''ति॥

1.1.4. अच्चेन्तिसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

(संस्कृतच्छाया) ''नन्दीभवपरिक्षयात्, संज्ञाविज्ञानसंक्षयात्, वेदनानां निरोधात् उपशमात्— एवं खल्वहम्, आयुष्मन्! जानामि सत्त्वानां निर्मोक्षं प्रमोक्षं विवेकम्'' इति॥

3. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''उपनीयते जीवितमल्पमायुः, जरोपनीताय न सन्ति त्राणानि।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, पुण्यानि कुर्यात् सुखावहानि''इति।

''उपनीयते जीवितमल्पमायुः, जरोपनीताय न सन्ति त्राणानि।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, लोकामिषं प्रजह्यात् शान्त्यपेक्षः''इति॥

4. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

(हिन्दी) भगवान्- ''तृष्णा मूलक कर्मबन्धन के समूलतः नष्ट हो जाने से, संज्ञा एवं विज्ञान के निवृत्त हो जाने से, वेदनाओं का निरोध एवं उपशमन (शान्ति) हो जाने से, मैं समझता हूँ, प्राणियों का इस भवसागर से निर्मोक्ष प्रमोक्ष एवं सदा के लिए छुटकारा हो जाता है।

3. श्रावस्ती में साधना के समय..... एक ओर खड़े किसी देवता ने सांसारिक भोगत्याग के विषय में भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं-

''तुम्हारा अल्प जीवन भी क्षीण होता जा रहा है, आयु कम होती जा रही है, बुढापे (जरा) से बचने का कोई उपाय नहीं(सूझ रहा) है। मृत्यु के इस भय को देखते हुये, सुखदायी पुण्यकर्म करना आरम्भ करो।''

भगवान्- ''जीवन क्षीण होता जा रहा है, आयु भी कम होती जा रही है, बुढापे से बचने का कोई उपाय दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है, यों मृत्यु के इस भय को देखते हुये, यदि तुम्हें शान्ति चाहिये तो अब से तुम सांसारिक कामभोगों को छोड़ दो (इसी में तुम्हारा हित है)।''

4. श्रावस्ती में साधना के समय....एक ओर खड़े किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी''ति॥
''अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो''ति॥

1.1.5. कतिछिन्दसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–
''कति छिन्दे कति जहे, कति चुत्तरि भावये।
कति सङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णोति वुच्चती''ति॥
''पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णोति वुच्चती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अत्येन्ति कालं तरन्ति रात्र्यः, वयोगुणाः अनुपूर्वं जहति।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, पुण्यानि कुर्यादथ सुखावहानि''इति॥
''अत्येन्ति कालं तरन्ति रात्र्यः, वयोगुणाः अनुपूर्वं जहति।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, लोकामिषं प्रजह्यात् शान्त्यपेक्षः''इति॥

5 श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-
''कति छिन्देत् कति जहेत्, कति चोत्तरि भावयेत्।
कति सङ्गातिगो भिक्षुः, ओघतीर्णः इति उच्यते'' इति॥
''पञ्च छिन्देत् पञ्च जहेत्, पञ्च चोत्तरि भावयेत्।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्षुः, ओघतीर्णः इति उच्यते''इति॥

(हिन्दी) ''समय बीतता जा रहा है, रातें बीत रही हैं, जीवन-सूत्र धीरे धीरे ढीले होते जा रहे हैं, सामने मृत्यु दिखायी दे रहा है, ऐसे में यदि तुम पुण्यकर्म करते रहो तो वे तुम्हारे लिये सुखदायी ही होंगे।''

भगवान्- समय बीतता जा रहा है... पूर्ववत्... ऐसी स्थिति में यदि तुम अब भी कामभोगों को छोड़ दो तो इसी में तुम्हें शान्ति मिलेगी।

5. श्रावस्ती में साधना के समय.....एक तरफ खड़े किसी देवता ने भगवान् से यह कहा-

''(कोई साधक भिक्षु) कितनों को काटे, कितनों को छोड़े? तथा आगे अन्य किन्हीं का कितना अभ्यास करे एवं कितनों का सङ्ग त्याग दे कि वह 'बाढ पार कर गया'- ऐसा कहा जाता हैं?''

भगवान्- ''साधक भिक्षु को चाहिये कि वह साधना करते समय अपने पाँच (अवर भागीय संयोजनों = बन्धनों) को काटने का प्रयास करे, पाँच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को छोड़ने का प्रयास करे। तथा (श्रद्धा वीर्य आदि पाँच) इन्द्रियों का अभ्यास करे एवं (राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि-इन) पाँच का सङ्ग (आसक्ति) अतिक्रान्त कर दे तो ऐसे साधक को ही लोग 'बाढ को पार गया'- ऐसा कहते हैं।

1.1.6. जागरसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''कति जागरतं सुत्ता, कति सुत्तेसु जागरा।
कतिभि रजमादेति, कतिभि परिसुज्झती''ति॥

''पञ्च जागरतं सुत्ता, पञ्च सुत्तेसु जागरा।
पञ्चभि रजमादेति, पञ्चभि परिसुज्झती''ति॥

1.1.7. अप्पटिविदितसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''येसं धम्मा अप्पटिविदिता, परवादेसु नीयरे।
सुत्ता ते नप्पबुज्झन्ति, कालो तेसं पबुज्झितुं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) 6. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

''कति जागरतां सुप्ताः, कति सुप्तेषु जागराः।
कतिभिः रजः आददाति, कतिभिः परिशुध्यति''इति॥

''पञ्च जागरेषु सुप्ताः, पञ्च सुप्तेषु जागराः।
पञ्चभिः रजः आददाति, पञ्चभिः परिशुध्यति''इति॥

7. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

''येषां धर्मा अप्रतिविदिताः, परवादेषु नीयन्ते।
सुप्तास्ते न प्रबुध्यन्ते, कालः तान् प्रबोधितुम्॥

(हिन्दी) 6. श्रावस्ती में... एक ओर खड़े किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''(आध्यात्मिक साधनाभ्यासी) जागे हुओं (साधकों) में कितनों को सोये (प्रमादी) ही माना जाय तथा सोये हुए प्रमादियों में कितने जागे माने जाय? कितने साधनों (दुर्गुणों) को अपनाने से साधक का चरित्र मैला हो जाता है और कितने साधनों (सद्गुणों) को स्वीकार करने से उसका चरित्र परिशुद्ध (पवित्र) होता है?''

भगवान्- वैसे जागे कहलाने वालों में से पाँच सोये हुए ही हैं। (उनकी साधना सम्यक् नहीं है।) तथा 'सोया हुआ' कहलाने वालों में से भी पाँच जागे ही हैं। पाँच दुर्गुणों के अपनाने से साधक का चरित्र कलुषित होता है तथा पाँच सद्गुणों के अभ्यास से साधक का चरित्र परिशुद्ध होता जाता है॥

7. श्रावस्ती में....। एक तरफ खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जिन साधकों को धर्म (चार आर्यसत्य का वास्तविक ज्ञान) अविदित ही रह गया वे अन्य धर्मावलम्बियों का मत स्वीकार कर भवजाल में फँसते जा रहे हैं। वे सोये हुए ही हैं, सोये हुए वे नहीं जागते उन्हें 'जाग्रत्' नहीं कहा जा सकता। ऐसे उन बहके हुए (प्रमत्त) साधकों के लिये अब अपना प्रमाद छोड़ने का समय आ गया है।''

''येसं धम्मा सुप्पटिविदिता, परवादेसु न नीयरे।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा, चरन्ति विसमे समं''ति॥

1.1.8. सुसम्मुट्ठसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''येसं धम्मा सुसम्मुट्ठा, परवादेसु नीयरे।
सुत्ता ते नप्पबुज्झन्ति, कालो तेसं पबुज्झितुं''ति॥
''येसं धम्मा असम्मुट्ठा, परवादेसु न नीयरे।
ते सम्बुद्धा सम्मदञ्ञा, चरन्ति विसमे समं''ति॥

1.1.9. मानकामसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''न मानकामस्स दमो इधत्थि, न मोनमत्थि असमाहितस्स।

(संस्कृतच्छाया) ''येषां धर्माः सुप्रतिविदिताः, परवादेषु न नीयन्ते।
ते सम्बुद्धाः सम्यगाज्ञाः, चरन्ति विषमे शमम्'' इति॥

8. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''येषां धर्माः सुसम्मृष्टाः, परवादेषु नीयन्ते।
सुप्ताः ते न प्रबुध्यन्ते, कालः तान् प्रबोधितुम्''इति॥
''येषां धर्माः असम्मृष्टाः, परवादेषु न नीयन्ते।
ते सम्बुद्धाः सम्यगाज्ञाः, चरन्ति विषमे शमम्''इति॥

9. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''न मानकामस्य दमः इहास्ति, न मौनमस्ति असमाहितस्य।

(हिन्दी) भगवान्- ''जिनके द्वारा धर्म भलीभाँति अभ्यस्त कर लिये गये हैं, वे अन्य धर्मावलम्बियों के मतों से बहकाये नहीं जा सकते, क्योंकि वे सम्यक्सम्बुद्ध हो चुके हैं, वे सब कुछ जान चुके हैं। विषम स्थान में भी वे सतत अप्रमत्त (सावधान) रहते हुए अपना आचरण सम ही रखते हैं॥''

8. श्रावस्ती में.....। एक तरफ खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही-

''जो आज भी धर्म की वास्तविकता के विषय में मोहग्रस्त हैं तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मतों में उलझे हुए हैं वे तो वस्तुतः सोये हुए (वास्तविकता से अनभिज्ञ) ही हैं, उन्हें जागे नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों के प्रबुद्ध होने (वास्तविकता से परिचित होने) का समय आ गया है।'' भगवान्- ''जो सद्धर्मों के वास्तविक ज्ञान के विषय में प्रमत्त नहीं है तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मतों के जंजाल में नहीं फँसे हैं, उन्हें सम्बुद्ध एवं वस्तुतत्त्वज्ञ (सम्यग्ज्ञ) समझना चाहिये। वे विषम मार्ग में भी समत्व ग्रहण करने का सामर्थ्य रखते हैं॥''

9. श्रावस्ती में...। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही-''अपने अभिमान चाहने वाला साधक अपनी इन्द्रियों का दमन कभी नहीं कर सकता। समाधिस्थ हुए विना चार आर्यसत्यों का ज्ञान(=मौन)

एको अरञ्ञे विहरं पमत्तो, न मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं''ति॥
''मानं पहाय सुसमाहितत्तो, सुचेतसो सब्बधि विप्पमुत्तो।
एको अरञ्ञे विहरं अप्पमत्तो, स मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं''ति॥

1.1.10. अरञ्ञसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''अरञ्ञे विहरन्तानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं।
एकभत्तं भुञ्जमानानं, केन वण्णो पसीदती''ति॥
''अतीतं नानुसोचन्ति, नप्पजप्पन्ति नागतं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन वण्णो पसीदति''॥

(संस्कृतच्छाया) एकोऽरण्ये विहरन् प्रमत्तः, न मृत्युध्येयस्य तरेत् पारम्''इति॥
''मानं प्रहाय सुसमाहितात्मा, सुचेतसः सर्वथा विप्रमुक्तः।
एकोऽरण्ये विहरन् अप्रमत्तः, स मृत्युध्येयस्य तरेत् पारम्''इति॥

10. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता सा देवता भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''अरण्ये विहरताम्, शान्तानाम् ब्रह्मचारिणाम्।
एकभक्तं भुञ्जमानानाम्, कथं वर्णः प्रसीदति''इति॥
"अतीतं नानुशोचन्ति, न प्रजल्पन्ति अनागतम्।
प्रत्युत्पन्नेन यापयन्ति, तेन वर्णः प्रसीदति"॥

(हिन्दी) उसी तरह असम्भव है जैसे कोई जङ्गल में अकेला चलने वाला असावधान प्राणी मृत्यु के राज्य (=भय) को पार नहीं कर सकता।''

भगवान्- ''जो साधक अभिमान को छोड़कर, अपने चित्त को अच्छि तरह समाधिस्थ कर प्रसन्नचित्त वाला (भवतृष्णा से) सर्वथा विमुक्त हो चुका है, वह जङ्गल में विचरण करने वाले सावधान यात्री की तरह मृत्युभय को पार कर लेता है।''

10. श्रावस्ती में.....। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जो साधक वन में एकाकी साधनारत रहते हैं, शान्त हैं, धर्म की निरन्तर उपासना करते रहते हैं, एक समय ही भोजन करते हैं, ऐसा होने पर भी उनके चेहरे पर किस कारण निरन्तर प्रसन्नता झलकती रहती है?''

भगवान्- ''वे अपने बीते हुए के विषय में शोक नहीं करते, इसी तरह अपने भविष्य के विषय में भी व्यर्थ नहीं सोचते, केवल वर्तमान के अनुसार अपने (जीवन) को बिताते चलते हैं, इसी लिये उन साधकों के मुख पर प्रसन्नता झलकती रहती है।

''अनागतप्पजप्पाय, अतीतस्सानुसोचना।
एतेन बाला सुस्सन्ति, नळोव हरितो लुतो''ति॥ **नळवग्गो पठमो॥**

तस्सुद्दानं- ओघं निमोक्खं उपनेय्यं, अच्चेन्ति कतिछिन्दि च।
जागरं अप्पटिविदिता, सुसम्मुट्ठा मानकामिना।
अरञ्ञे दसमो वुत्तो, वग्गो तेन पवुच्चति॥

2. नन्दनवग्गो

1.2.1. नन्दनसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरा तावतिंसकायिका देवता नन्दने वने अच्छरासङ्घपरिवुता दिब्बेहि पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारियमाना

(संस्कृतच्छाया) ''अनागतप्रजल्पेन, अतीतस्यानुशोचनात्।
एतेन बालाः शुष्यन्ति, नलम् इव हरितं *लुतम्*'' इति॥

तस्योद्दानम्- ओघं निर्मोक्षम् उपनेयम्, अत्येन्ति कतिछिन्द च।
जागरम् अप्रतिविदिताः, सुसम्मृष्टाः मानकामिना।
अरण्ये दशम उक्तः, वर्गस्तत्र प्रोच्यते॥

1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्यारामे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत– "भिक्षवः!" इति। "भदन्त!" इति ते भिक्षवो भगवन्तं प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्– ''भूतपूर्वं भिक्षवः! अन्यतरा त्रायस्त्रिंशकायिकदेवता नन्दनवने अप्सरस्सङ्गपरिवृता। दिव्यैः पञ्चभिः कामगुणैः समर्पिता समङ्गीभूता परिचार्यमाणा

(हिन्दी) (''इसके विपरीत) मूर्ख जन अपने भविष्य की कल्पना में लगे रहते हैं, या फिर अपने अतीत का व्यर्थ चिन्तन करते रहते हैं, इसी (चिन्ता के) कारण उन का चेहरा उसी तरह सूखा रहता है जैसे कटा हुआ हरा नरकट (नड़ = नदी किनारे खड़ा सरपत) सूखा रहता है।''

इस वर्ग में- 1. ओघ, 2. निर्मोक्ष, 3. उपनीय, 4. 'अत्येन्ति', 5. कतिछिन्न, 6. जाग्रत्, 7. अप्रतिविदित, 8. सुसम्मृष्ट, 9. मानकाम एवं 10. अरण्य- ये दश सुत्त इस नडवर्ग में कहे गये हैं।

1. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। वहाँ कभी भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया- ''भिक्षुओ!'' ''हाँ, भन्ते'' कहते हुए भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने उनको यह बताया- 'वे सुख का नहीं जान सकते जिन्होंने यशस्वी त्रायस्त्रिंश देवों का वासस्थान नन्दनवन नहीं देखा।''

तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''न ते सुखं पजानन्ति, ये न पस्सन्ति नन्दनं।
आवासं नरदेवानं, तिदसानं यसस्सिनं''ति॥

''एवं वुत्ते, भिक्खवे, अञ्ञतरा देवता तं देवतं गाथाय पच्चभासि–

''न त्वं बाले पजानासि, यथा अरहतं वचो।
अनिच्चा सब्बसङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो''ति॥

1.2.2. नन्दतिसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोहि तथेव नन्दति।
उपधीहि नरस्स नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) तस्यां वेलायाम् इमां गाथामभाषिष्ट—

''न ते सुखं प्रजानन्ति, ये न पश्यन्ति नन्दनम्।
आवासं नरदेवानाम्, त्रिदशानां यशस्विनाम्'' इति॥

एवम् उक्ते, भिक्षवः! अन्यतरा देवता तां देवतां गाथया प्रत्यभाषिष्ट -

"न त्वं बाले! प्रजानासि, यथा अर्हतां वचः।
अनित्याः सर्वसंस्काराः, उत्पादव्ययधर्मिणः।
उत्पद्य निरुध्यन्ति, तेषामुपशमः सुखः'' इति॥

2. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''नन्दति पुत्रैः पुत्रवान्, गोमान् गोभिः तथैव नन्दति।
उपधिभिः नरस्य नन्दना, न हि स नन्दति यः निरुपधिः'' इति॥

(हिन्दी) ''भिक्षुओ! बहुत पहले कोई त्रायस्त्रिंश लोक का देवता नन्दन वन में अप्सराओं के समूह से घिरा हुआ, पाँचों इन्द्रियों के कामभोगों का उपभोग करता हुआ, उन्हीं में आसक्तचित्त रहता हुआ यह गाथा बोला-

''ऐसा कहे जाने पर, भिक्षुओ! किसी अन्य देवता ने उस को, यह गाथा सुनकर, उत्तर दिया-

''अरे मूर्ख! तूँ वह सब नहीं जानता जो अर्हत् जन इस विषय में कहते हैं। उन का कहना है कि-

सभी संस्कार (लोक में उत्पन्न पदार्थ) उत्पत्ति एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये तो उत्पन्न एवं विनष्ट होते रहते हैं। उनका बिल्कुल शान्त होना ही वास्तविक सुख है।''

2. श्रावस्ती में....। एक ओर खड़े हुए किसी देवता ने भगवान् से यह गाथा कही-

''पुत्रों वाला पुत्रों से ही सुख मानता है, उसी तरह कोई गोपाल अपने पशुओं से ही सुख मानता है, क्योंकि सांसारिक वस्तुओं में तथाकथित राग से ही मनुष्य को सुख का अनुभव होता है। जिसके पास कोई सांसारिक वस्तु है ही नहीं, उसे आनन्द भी नहीं!''

''सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोहि तथेव सोचति।
उपधीहि नरस्स सोचना, न हि सो सोचति यो निरूपधी''ति॥

1.2.3. नत्थिपुत्तसमसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''नत्थि पुत्तसमं पेमं, नत्थि गोसमितं धनं।
नत्थि सूरियसमा आभा, समुद्दपरमा सरा''ति॥
''नत्थि अत्तसमं पेमं, नत्थि धञ्ञसमं धनं।
नत्थि पञ्ञासमा आभा, वुट्ठि वे परमा सरा''ति॥

1.2.4. खत्तियसुत्तं

''खत्तियो द्विपदं सेट्ठो, बलीबद्दो चतुप्पदं।
कोमारी सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तान पुब्बजो''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''शोचति पुत्रैः पुत्रमान्, गोमान् गोभिः तथैव शोचति।
उपधिभिः नरस्य शोचना, न हि सः शोचति यः निरुपधिः''इति॥

3. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथां अभाषिष्ट—

''नास्ति पुत्रसमं प्रेम, नास्ति गोभिः समं धनम्।
नास्ति सूर्यसमा आभा, समुद्रपरमाः सरसाम्''इति॥
''नास्ति आत्मसमं प्रेम, नास्ति धान्यसमं धनम्।
नास्ति प्रज्ञासमा आभा, वृष्टिः वै परमं सरः''इति॥

4. ''क्षत्रियो द्विपदेषु श्रेष्ठः, बलीवर्दः चतुष्पदेषु।
कुमारी श्रेष्ठा भार्याणाम्, यश्च पुत्रेषु पूर्वजः''इति॥

(हिन्दी) भगवान्- ''पुत्रों वाला उन पुत्रों की चिन्ता में दिन रात डूबा रहता है, और गोपाल अपनी गायों (पशुओं) की चिन्ता में डूबा रहता है, क्योंकि ये सभी सांसारिक पदार्थ सभी प्राणियों के लिये चिन्ता का विषय बने रहते हैं। हाँ! सांसारिक पदार्थों का सर्वथा त्याग करने वाले (अर्हत्) को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं सताती, अतः वही वस्तुतः सुखी है।''

3. श्रावस्ती में....। एक तरफ खड़ा कोई देवता भगवान् के सम्मुख इस गाथा के माध्यम से यह बोला- ''पुत्र के जैसा कोई प्रिय नहीं है, पशु (गौ) के समान कोई धन नहीं है। सूर्य के समान कोई प्रकाशवान् आभा नहीं है, जलराशियों में सबसे बढ़कर समुद्र है।'' भगवान्- ''नहीं, वस्तुतः अपने आप(के समान) से अन्य कोई प्रिय नहीं है, धान्य के समान कोई धन नहीं है। प्रज्ञा (बुद्धि) के समान कोई अन्य प्रकाशक पदार्थ नहीं है, तथा वर्षा से बढ़कर अन्य कोई विशाल जलराशि नहीं है-ऐसा समझ।''

4. देवता- ''दो पैरों वाले प्राणियों (मनुष्यों) में क्षत्रिय श्रेष्ठ है, चार पैरों वाले प्राणियों (पशुओं) में बैल श्रेष्ठ है। स्त्रियों में कुमारी श्रेष्ठ है, तथा पुत्रों में जो सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ (ज्येष्ठ) है वही श्रेष्ठ है।''

''सम्बुद्धो द्विपदं सेट्ठो, आजानीयो चतुप्पदं।
सुस्सूसा सेट्ठा भरियानं, यो च पुत्तानमस्सवो''ति॥

1.2.5. सणमानसुत्तं

''ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, तं भयं पटिभाति मं''ति॥
''ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, सा रति पटिभाति मं''ति॥

1.2.6. निद्दातन्दीसुत्तं

''निद्दा तन्दी विजम्भिता, अरती भत्तसम्मदो।
एतेन नप्पकासति, अरियमग्गो इध पाणिनं''ति॥
''निद्दं तन्दिं विजम्भितं, अरतिं भत्तसम्मदं।
वीरियेन नं पणामेत्वा, अरियमग्गो विसुज्झती''ति

(संस्कृतच्छाया) "सम्बुद्धः द्विपदेषु श्रेष्ठः, आजानीयः चतुष्पदेषु।
सुश्रूषा श्रेष्ठा भार्यासु, यश्च पुत्राणामास्रवः''इति॥

5. ''स्थिते मध्याह्निके काले, सन्निषण्णेषु पक्षिषु।
स्वनति बृहदारण्यम्, तत् भयं प्रतिभाति माम्''इति॥
"स्थिते मध्याह्निके काले, सन्निषण्णेषु पक्षिषु।
स्वनति एव बृहदारण्यम्, सा रतिः प्रतिभाति माम्''इति॥

6. ''निद्रा तन्द्रा विजृम्भिता, अरतिः भक्तसम्मदः।
एतैः न प्रकाशते, आर्यमार्ग इह प्राणिनाम्''इति॥
"निद्रा तन्द्रा विजृम्भितम्, अरतिः भक्तसम्मदः।
वीर्येण तान् प्रणम्य, आर्यमार्गः विशुध्यति''इति॥

(हिन्दी) भगवान्- ''दो पैरों वाले प्राणियों में बुद्ध श्रेष्ठ है, चौपायों में सुशिक्षित अश्व श्रेष्ठ होता है। स्त्रियों में उसे श्रेष्ठ कहना चाहिये जो सेवा करने वाली हो, तथा पुत्रों में वह श्रेष्ठ है जो माता पिता का आज्ञाकारी है।''

5. देवता- ''दिन में दोपहर के समय, जब कि पक्षी भी चुपचाप शान्त बैठे जाते हैं, सन सन करता हुआ यह विशाल अरण्य मुझे बहुत भयदायक लगता है''। भगवान्- ''दिन में दोपहर के समय, जब कि पक्षी भी चुपचाप बैठ जाते हैं, सन सन करता हुआ यह विशाल अरण्य मुझे बहुत ही आनन्ददायक लगता है।''

6. देवता- निद्रा, तन्द्रा, जम्हाई लेना, अरुचि, भोजन के बाद का आलस्य- ये सब कारण हैं जिनसे साधक लोग आर्यमार्ग का समीचीनतया साक्षात्कार नहीं कर पाते॥'' भगवान्- ''निद्रा, तन्द्रा, जम्हाई, अरुचि एवं भोजन के बाद के आलस्य को प्रयत्न (उत्साह) पूर्वक दबाकर आर्यमार्ग सम्यक्तया शुद्ध हो जाता है॥''

1.2.7. दुक्करसुतं

''दुक्करं दुतितिक्खं च, अब्यत्तेन च सामञ्ञं।
बहूहि तत्थ सम्बाधा, यत्थ बालो विसीदती''ति॥
''कतिहं चरेय्य सामञ्ञं, चित्तं चे न निवारये।
पदे पदे विसीदेय्य, सङ्कप्पानं वसानुगो''ति॥
''कुम्मोव अङ्गानि सके कपाले, समोदहं भिक्खु मनोवितक्के।
अनिस्सितो अञ्ञमहेठयानो, परिनिब्बुतो नूपवदेय्य कञ्ची''ति॥

1.2.8. हिरीसुतं

''हिरीनिसेधो पुरिसो, कोचि लोकस्मिं विज्जति।
यो निन्दं अपबोधति, अस्सो भद्रो कसामिवा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''दुष्करं दुर्तितिक्षञ्च, अव्यक्तेन चैव श्रामण्यम्।
बहवस्तत्र सम्बाधाः, यत्र बालो विसीदति''इति॥
''कत्यहः चरेत् श्रामण्यम्, चित्तं चेन्न निवारयेत्।
पदे पदे विसीदेत्(सः), संकल्पानां वशानुगः''इति॥
''कूर्म इव अङ्गान् स्वके कपाले, समवदहन् भिक्षुः मनोवितर्कान्।
अनिःश्रितोऽन्यमहेठयन्, परिनिर्वृत्तो नोपवदेत् कञ्चित्''इति॥

8. ''ह्रीनिषेधः पुरुषः, कश्चित् लोकेऽस्मिन् विद्यते।
यो निन्दाम् अपबोधयति, अश्वो भद्रः कशामिव''इति॥

(हिन्दी) 7. देवता- मूर्ख द्वारा श्रमण (भिक्षु) भाव धारण करना, उसके आचरण में होने वाली कठिनाइयों को सहन करना, तथा उसका पालन करना कठिन है, क्योंकि इनमें नाना प्रकार की बाधाएँ आती रहती हैं, जिनसे वे हार मान बैठते हैं।

भगवान्- ''वह यदि अपने चित्त को वश में नहीं रख सकता तो कितने दिन तक श्रमणभाव का पालन कर पायेगा, क्योंकि वह अपने सङ्कल्प विकल्पों के वश में हो कर कभी भी च्युत हो सकता है।॥ ''

''अतः श्रेष्ठ साधक, कछुआ जैसे अपने समस्त शरीर को अपने कपाल के नीचे समेट लेता है वैसे ही, अपने मनः सङ्कल्पों को शान्त रखता हुआ, स्वतन्त्र रहकर किसी को कष्ट न देता हुआ निर्वाण का ही साक्षात्कार करे, किसी की भी निन्दा में प्रवृत्त न हो॥''

8. देवता- ''संसार में ऐसे कुछ ही लोग हैं जो पापकर्मों के करने में सङ्कोच करते हैं।
वे परनिन्दा से ऐसे ही भय खाते हैं, जैसे सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक से भय खाता है।''
भगवान्- ''थोड़े से भी पापकर्म के करने में जो सङ्कोच करते हैं तथा सदा सावधान रह कर लोक में विचरण करते हैं, वे अपने दुःखों का अन्त कर विषम परिस्थितियों में भी सम आचरण करते हैं॥''

''हिरीनिसेधा तनुया, ये चरन्ति सदा सता।
अन्तं दुक्खस्स पप्पुय्य, चरन्ति विसमे समं''ति॥

1.2.9. कुटिकासुत्तं

''कच्चि ते कुटिका नत्थि, कच्चि नत्थि कुलावका।
कच्चि सन्तानका नत्थि, कच्चि मुत्तोसि बन्धना''ति॥
''तग्घ मे कुटिका नत्थि, तग्घ नत्थि कुलावका।
तग्घ सन्तानका नत्थि, तग्घ मुत्तोम्हि बन्धना''ति॥
''किन्ताहं कुटिकं ब्रूमि, किं ते ब्रूमि कुलावकं।
किं ते सन्तानकं ब्रूमि, किन्ताहं ब्रूमि बन्धनं''ति॥
''मातरं कुटिकं ब्रूसि, भरियं ब्रूसि कुलावकं।
पुत्ते सन्तानके ब्रूसि, तण्हं मे ब्रूसि बन्धनं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''ह्रीनिषेधात् तनुकाः, ये चरन्ति सदा स्मृताः।
अन्तं दुःखस्य प्राप्य, चरन्ति विषमे समम्''इति।

9. ''कच्चित् ते कुटिका नास्ति, कच्चित् नास्ति कुलावकः।
कच्चित् सन्तानको नास्ति, कच्चित् मुक्तोऽसि बन्धनात्''इति॥
''तद्धि मे कुटिका नास्ति, तद्धि नास्ति कुलावकः।
तद्धि मे सन्तानको नास्ति, तद्धि मुक्तोऽस्मि बन्धनात्''इति॥
''किं तान्यहं कुटिकां ब्रुवे, किं ते ब्रुवे कुलावकम्।
किं ते सन्तानं ब्रुवे, किं तान्यहं ब्रुवे बन्धनम्?''इति।
''मातरं कुटिकां ब्रूषे, भार्यां ब्रूषे कुलावकम्।
पुत्रान् सन्तानान् ब्रूषे, तृष्णां मे ब्रूषे बन्धनम्''इति।

(हिन्दी) 9. देवता- ''क्या आपके पास कुटिया नहीं है? क्या आपका कोई घोंसला नहीं है? क्या आपको कोई पुत्र पौत्रादि सन्तान नहीं है? क्या आप सभी बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं?''

भगवान्- ''न मेरी कोई कुटिया है, न कोई घोंसला (आवासस्थान)। न मेरी कोई सन्तान ही है, अतः मैं सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हूँ। देवता- ''क्या आप समझे कि मैंने आपके लिये 'कुटिया' किसे कहा? 'घोंसला' किसे कहा? 'सन्तान' किसे कहता हूँ? तथा 'बन्धन' किसे कहा?''

भगवान्- हाँ, तुमने 'कुटिया' से मेरी माता की तरफ सङ्केत किया है, 'घोंसला' कह कर मेरी भार्या की तरफ सङ्केत किया है। 'सन्तान' कहकर मेरे पुत्र पौत्रादि की तरफ सङ्केत किया है एवं 'बन्धन' से मेरी सांसारिक तृष्णा की तरफ तुम्हारा सङ्केत है।''

''साहु ते कुटिका नत्थि, साहु नत्थि कुलावका।
साहु सन्तानका नत्थि, साहु मुत्तोसि बन्धना''ति॥

1.2.10. समिद्धिसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति तपोदारामे। अथ खो आयस्मा समिद्धि रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन तपोदा तेनुपसङ्कमि गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासि गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येन आयस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठिता आयस्मन्तं समिद्धिं गाथाय अज्झभासि–

''अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, न हि भुत्वान भिक्खसि।
भुत्वान भिक्खु भिक्खस्सु, मा तं कालो उपच्चगा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''साधु ते कुटिका नास्ति, साधु नास्ति कुलावकम्।
साधु सन्तानको नास्ति, साधु मुक्तोऽसि बन्धनात्''इति॥

10 एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहं विहरति तपोदारामे। अथ खलु आयुष्मान् समृद्धिः रात्रौ प्रत्यूषसमयं प्रत्युत्थाय यत्र तपोदा, तत्रोपसमक्राम्यत् गात्राणि परिसिञ्चितुम्। तपोदि गात्राणि परिषिच्य प्रत्युत्तर्य एकचीवरः अस्थाद् गात्राणि पूर्वापयमाणः (पूर्वभावं प्रापयमाणः)। अथ खलु अन्यतरा देवता अभिक्रान्ताय रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं तपोदम् अवभास्य यत्र आयुष्मान् समृद्धिः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य विहायसे स्थिता आयुष्मन्तं समृद्धिं गाथया अध्यभाषिष्ट— ''अभुक्त्वा भिक्षषे भिक्षो! न हि भुक्त्वा भिक्षषे।
भुक्त्वा भिक्षो! भिक्षस्व, मा तव काल उपात्यगात्''इति॥

(हिन्दी) देवता-''ठीक है, तब तो आपके पास न कोई कुटिया है, न कोई घोंसला तथा न कोई सन्तान। अतः आप सभी बन्धनों से मुक्त हैं॥''

10.ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के तपोदाराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् समृद्धि रात्रि के अन्तिम प्रहर में बहुत सबेरे उठ कर तपोदा कुण्ड में स्नान हेतु पहुँचे। तपोदा में स्नान कर एक वस्त्र पहिने हुए वे अपना शरीर सुखा रहे थे। तभी कोई आभायुक्त देवता तपोदा को देदीप्यमान करता हुआ समृद्धि भिक्षु के समीप आया। वहाँ आकर, आकाश में ही खड़े खड़े उसने आयुष्मान् समृद्धि से यह गाथा कही- ''भिक्षु जी! आप पाच कामभोगों का उपयोग किये विना (इतनी अल्प आयु में) ही भिक्षु बनकर घर घर भीख माँगने लगे गये। उन कामभोगों का उपभोग करके ही आप भिक्षु क्यों नहीं बने? भिक्षु! अब भी समय है, आप पहले उन पाँचों कामभागों का उपभोग कर लें। भोग करके आप भिक्षाटन करें, काल को ऐसे ही मत गवावें॥''

''कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति।
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा मं कालो उपच्चगा''ति॥

अथ खो सा देवता पथवियं पतिट्ठहित्वा आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच– ''दहरो त्वं भिक्खु, पब्बजितो सुसु काळकेसो, भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो, पठमेन वयसा, अनिक्कीळितावी कामेसु। भुञ्ज, भिक्खु, मानुसके कामे; मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावी''ति।

''न ख्वाहं, आवुसो, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावामि। कालिकञ्च ख्वाहं, आवुसो, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावामि। कालिका हि, आवुसो, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा; आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''कालं वै अहं न जानामि, छन्नः कालो न दृश्यते।
तस्मात् अभुक्त्वा भिक्षे, मा मम काल उपात्यगात्''इति॥

अथ खलु सा देवता पृथिव्यां प्रतिष्ठाय आयुष्मन्तं समृद्धिम् एतदवोचत्— ''दहरस्त्वं भिक्षो! प्रव्रजितः शिशुः कालकेशः, भद्रेण यौवनेन समन्वागतः, प्रथमेन वयसा, अनक्रीडितोऽसि कामेषु। भुङ्क्ष्व, भिक्षो! मानुषकान् कामान्, मा संदृष्टिकं हित्वा कालिकम् अनुधाव''इति।

''न खल्वहम्, आयुष्मन्! संदृष्टिकं हित्वा कालिकम् अनुधावामि। कालिकञ्च खल्वहम्, आयुष्मन्! हित्वा संदृष्टिकम् अनुधावामि। कालिका हि, आयुष्मन्! कामा उक्ताः भगवता बहुदुःखाः बहूपायासाः, आदीनवोऽत्र भूयः। संदृष्टिकः अयं धर्मोऽकालिकः एहि पश्यकः औपनयिकः प्रत्यक्षं वेदितव्यो विज्ञैः''इति।

(हिन्दी) भिक्षु ''मृत्युकाल के विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता, क्योंकि वह काल सभी के लिए अज्ञात है। अतः मैं (अपना इसी में हित देखते हुए) कामभोगों का उपभोग किये विना ही भिक्षुभाव (प्रव्रज्या) को प्राप्त हो गया हूँ कि मेरा यह अमूल्य समय व्यर्थ न बीत जाय।''

तब वह देवता पृथ्वी पर उतर कर, आयुष्मान् समृद्धि से यह बोला- ''भिक्षु! तुम तो अपनी भरी जवानी में ही भिक्षुभाव को प्राप्त हो गये हो! अभी तो तुम तरूण हो, तुम्हारे केश भी काले हैं, तुम पर युवावस्था का भारी दबाव है, अभी तुम्हारी यह तरूण अवस्था है, अभी तक तुमने कामभोगों का भी क्या उपभोग किया होगा, या संसार क्या देखा होगा! अतः, भिक्षु! अभी तो तुम कामभोगों का उपभोग करने में ही अपना मन लगाओ। वर्तमान को छोड़कर भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं के पीछे मत दौड़ो ।''

''नहीं, आयुष्मन्! मैं वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य के मायाजाल में नहीं दौड़ता हूँ, उलटे भविष्य के बात की उपेक्षा कर वर्तमान के ही पीछे दौड़ रहा हूँ, भगवान् ने तो कहा है- सांसारिक काम भोग मुद्दत की चीज हैं; उनके फेर में पड़ने से बड़ा दुःख उठाना पड़ता है, बड़ी परेशासनी होती है; उनमे बड़े ऐब हैं। और यह धर्म देखते ही देखते फल देनेवाला है, बिना किसी देरी के; जो चाहे इस धर्म को अजमा सकता है; यह धर्म परम-पद तक ले जाने वाला है; विज्ञ लोग इस धर्म को अपने ही आप अनुभाव करते है।

''कथञ्च, भिक्खु, कालिका कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो? कथं सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही''ति?

''अहं खो, आवुसो, नवो अचिरपब्बजितो अधुनागतो इमं धम्मविनयं। न ताहं सक्कोमि वित्थारेन आचिक्खितुं। अयं सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो राजगहे विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छ। यथा ते भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्यासी''ति।

''न खो, भिक्खु, सुकरो सो भगवा अम्हेहि उपसङ्कमितुं, अञ्ञाहि महेसक्खाहि देवताहि परिवुतो। सचे खो त्वं, भिक्खु, तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छेय्यासि, मयम्पि आगच्छेय्याम धम्मस्सवनाया''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''कथञ्च, भिक्षो! कालिकाः कामा उक्ताः भगवता बहुदुःखाः बहूपायासाः, आदीनवोऽत्र भूयः? कथं संदृष्टिकोऽयं धर्मोऽकालिक एहि पश्यकः औपनयिकः प्रत्यक्षं वेदितव्यः विज्ञैः'' इति?

अहं खलु, आयुष्मन्! नवोऽचिरप्रव्रजितः अधुनागतः इदं धर्मविनयम्। न तान्यहं शक्नोमि विस्तारेण आचक्षितुम्। अयं सः भगवान् अर्हत् सम्यक्यम्बुद्धो राजगृहे विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तम् उपसङ्क्रम्य एतमर्थं पृच्छ। यथा त्वां भगवान् व्याकरोति तथा तं धारेः''इति।

''न खलु, भिक्षो! सुकरः स भगवान् अस्माभिः उपसङ्क्रमितुम्, अन्याभिः महेशाख्याभिः देवताभिः परिवृतः। स चेत् खलु त्वं भिक्षो! तं भगवन्तम् उपसङ्क्रम्य एतमर्थं पृच्छेः, वयमपि आगच्छेयं धर्मश्रवणाय''इति।

(हिन्दी) भिक्षु! तथागत ने इन कामगुणों को सामयिक एवं दुष्परिणामदायक क्यों कहा है और अपने उपदिष्ठ धर्म को वर्तमान में भी फलप्रद तथा निर्वाण तक पहुँचाने वाला क्यों कह दिया है? विद्वान लोग धर्म को अपने ही आप कैसे अनुभव करते हैं?

''आयुष्मन्! मैं तथागत के इस धर्म में नया ही प्रव्रजित हुआ हूँ अतः इस विषय में विस्तार से कुछ नहीं कह पाऊँगा। हाँ, भगवान् अभी राजगृह के तपोदाराम में ही विराजमान हैं, अच्छा हो कि आप उनके सम्मुख पहुँचकर उन्हीं से पूछें; जैसा भगवान् बतावें वैसा ही समझें!''

''भिक्षु! भगवान् के सम्मुख पहुँचना हम जैसों के लिये इतना सरल नहीं है, क्योंकि वे दूसरे बड़े बड़े यशस्वी देवताओं से घिरे रहते हैं। अतः अच्छा यही होगा कि आप उनसे जब इस बात को पूंछे तो मैं भी उस समय उसे सुनने के लिये आ सकता हूँ।''

''एवमावुसो''ति खो आयस्मा समिद्धि तस्सा देवताय पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समिद्धि भगवन्तं एतदवोच– ''इधाहं, भन्ते, रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन तपोदा तेनुपसङ्कमिं गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासिं गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठिता इमाय गाथाय अज्झभासि–

''अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, न हि भुत्वान भिक्खसि।
भुत्वान भिक्खु भिक्खस्सु, मा तं कालो उपच्चगा''ति॥

''एवं वुत्ते अहं, भन्ते, तं देवतं गाथाय पच्चभासिं–

(संस्कृतच्छाया) ''एवमायुष्मन्'' इति खलु आयुष्मान् समृद्धिः तां देवतां प्रतिश्रुत्य यत्र भगवान् तत्र उपसमक्राम्यत्; उपसंक्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु आयुष्मान् समृद्धिः भगवन्तम् एतदवोचत्— ''इह अहम्, भदन्त! रात्र्याः प्रत्यूषसमयं प्रत्युत्थाय यत्र तपोदा तत्रोपसमक्राम्यम् गात्राणि परिसिञ्चितुम्। तपोदि गात्राणि परिषिच्य प्रत्युत्तर्य एकचीवरः अतिष्ठम् गात्राणि पूर्वापयमाणः। अथ खलु, भदन्त! अन्यतरा देवता अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णा केवलकल्पं तपोदम् अवभास्य यत्राहं तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसंक्रम्य विहायसे स्थिता अनया गाथया अध्यभाषिष्ट—

''अभुक्त्वा भिक्षषे भिक्षो! न हि भुक्त्वा भिक्षषे।
भुक्त्वा भिक्षो! भिक्षस्व, मा तं कालम् उपात्यगात्''इति॥

''एवम् उक्तोऽहम्, भदन्त! तां देवतां गाथया प्रत्यभाषिष्ट—

(हिन्दी) आयुष्मान् समृद्धि ने ''ठीक है'' कहते हुए देवता को उत्तर दिया। और वह स्वयं भगवान् के सम्मुख पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर प्रणाम कर एक तरफ बैठते हुए यह निवेदन करने लगा- ''भन्ते! रात्रि व्यतीत होने पर, बहुत सबेरे उठकर मैं तपोदा कुण्ड में.... तभी कोई आभायुक्त देवता तपोदा को देदीप्यमान करता हुआ जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर, आकाश में ही खड़े खड़े उसने यह गाथा कही-

''भिक्षु जी! आप कामभोगों का उपयोग किये विना (इतनी अल्प आयु में) ही भिक्षु बनकर घर घर भीख माँगने लगे गये। उन कामभोगों का उपभोग करके ही आप भिक्षु क्यों नहीं बने? भिक्षु! अब भी समय है, आप पहले उन पाँचों कामभागों का उपभोग कर लें। भोग करके आप भिक्षाटन करें, काल को ऐसे ही मत गवावें॥'' ''भन्ते! उसके ऐसा कहने पर मैंने देवता को इस गाथा में उत्तर दिया।

''कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति।
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा मं कालो उपच्चगा''ति॥

''अथ खो, भन्ते, सा देवता पथवियं पतिट्ठहित्वा मं एतदवोच– 'दहरो त्वं, भिक्खु, पब्बजितो सुसु काळकेसो, भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो, पठमेन वयसा, अनिक्कीळितावी कामेसु। भुञ्ज, भिक्खु, मानुसके कामे; मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावी''ति।

''एवं वुत्ताहं, भन्ते, तं देवतं एतदवोचं– 'न ख्वाहं, आवुसो, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावामि; कालिकञ्च ख्वाहं, आवुसो, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावामि। कालिका हि, आवुसो, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा; आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''कालं वै अहं न जानामि, छन्नः कालो न दृश्यते।
तस्मात् अभुक्त्वा भिक्षे, मा मम काल उपात्यगात्''इति॥

''अथ खलु, भदन्त! सा देवता पृथिव्यां प्रतिष्ठाय माम् एतदवोचत्— 'दहरः त्वम्, भिक्षो! प्रव्रजितः शिशुः कालकेशः, भद्रेण यौवनेन समन्वागतः, प्रथमेन वयसा अनक्रीडितोऽसि कामेषु। भुङ्क्ष्स्व भिक्षो! मानुषकान् कामान्, मा संदृष्टिकं हित्वा कालिकम् अनुधाव''इति।

''एवम् उक्तोऽहम्, भदन्त! तां देवताम् एतदवोचम्— ''न खल्वहम्, आयुष्मन्! संदृष्टिकं हित्वा कालिकम् अनुधावामि; कालिकं च खल्वहम्, आयुष्मन्! हित्वा संदृष्टिकम् अनुधावामि। कालिका हि, आयुष्मन्! कामा उक्ताः भगवता बहुदुःखाः बहूपायासाः, आदीनवोऽत्र भूयः। संदृष्टिकोऽयं धर्मोऽकालिक एहिपश्यकः, औपनयिकः प्रत्यक्षं वेदितव्यो विज्ञैः''इति।

(हिन्दी) भिक्षु ''मृत्युकाल के विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता, क्योंकि वह काल सभी के लिए अज्ञात है। अतः मैं (अपना इसी में हित देखते हुए) कामभोगों का उपभोग किये बिना ही भिक्षा प्राप्त करता हूँ कि मेरा यह अमूल्य समय व्यर्थ न बीत जाय।''तब वह देवता पृथ्वी पर उतर कर, ऐसा बोला- ''भिक्षु! तुम तो अपनी भरी जवानी में ही भिक्षुभाव को प्राप्त हो गये हो! अभी तो तुम तरुण हो, तुम्हारे केश भी काले हैं, तुम पर युवावस्था का भारी दबाव है, अभी तुम्हारी यह तरुण अवस्था है, अभी तक तुमने कामभोगों का भी क्या उपभोग किया होगा, या संसार क्या देखा होगा! अतः, भिक्षु! अभी तो तुम कामभोगों का उपभोग करने में ही अपना मन लगाओ। वर्तमान को छोड़कर भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं के पीछे मत दौड़ो।''

''भन्ते! उसके ऐसा कहने पर मैंने यह उत्तर दिया-'नहीं, आयुष्मन्! मैं वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं के पीछे नहीं दौड़ता हूँ, उलटे भविष्य के बात की उपेक्षा कर वर्तमान के ही पीछे दौड़ रहा हूँ, ... पूर्ववत्...

''एवं वुत्ते, भन्ते, सा देवता मं एतदवोच– 'कथं च, भिक्खु, कालिका कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा; आदीनवो एत्थ भिय्यो? कथं सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'ति?

एवं वुत्ताहं, भन्ते, तं देवतं एतदवोचं– 'अहं खो, आवुसो, नवो अचिरपब्बजितो अधुनागतो इमं धम्मविनयं, न ताहं सक्कोमि वित्थारेन आचिक्खितुं। अयं सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो राजगहे विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छ। यथा ते भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्यासी'''ति।

''एवं वुत्ते, भन्ते, सा देवता मं एतदवोच– 'न खो, भिक्खु, सुकरो सो भगवा अम्हेहि उपसङ्कमितुं, अञ्ञाहि महेसक्खाहि देवताहि परिवुतो। सचे खो, त्वं भिक्खु, तं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पुच्छेय्यासि, मयम्पि आगच्छेय्याम धम्मस्सवनाया'ति। सचे, भन्ते, तस्सा देवताय सच्चं वचनं, इधेव सा देवता अविदूरे''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''एवमुक्ते, भदन्त! सा देवता माम् एतदवोचत्— ''कथञ्च, भिक्षो! कालिकाः कामाः उक्ताः भगवता बहुदुःखाः बहूपायासाः, आदीनवोऽत्र भूयः? कथं संदृष्टिकः अयं धर्मोऽकालिक एहिपश्यकः औपनयिकः प्रत्यक्षं वेदितव्यो विज्ञैः''इति?

एवमुक्तम्, भदन्त! तां देवतां एतदवोचत्- 'अहं खलु, आयुष्मन्! नवः अचिरप्रव्रजितोऽधुनागत इमं धर्मविनयम्, त्वाहं शक्नोमि विस्तरेण आचक्षितुम्। अयं स भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्धो राजगृहे विहरति तपोदारामे। तं भगवन्तम् उपसङ्क्रम्य एतमर्थं पृच्छ। यथा त्वां भगवान् व्याकरोति तथा तं धारेः''इति।

''एवम् उक्ते, भदन्त! सा देवता माम् एतदवोचत्— 'न खलु भिक्षो! सुकरः स भगवान् अस्माभिः उपसमक्रमितुम्, अन्याभिः महेशाख्याभिः देवताभिः परिवृतः। सचेत् खलु त्वं भिक्षो!, तं भगवन्तम् उपसङ्क्रम्य एतमर्थं पृच्छेः, अहमपि आगच्छेयम् धर्मश्रवणाय''इति। सचेत्, भदन्त! तस्याः देवतायाः सत्यं वचनम्, इहैव सा देवता अविदूरे''इति॥

(हिन्दी)...भिक्षु! तथागत ने इन कामगुणों को सामयिक एवं दुष्परिणामदायक क्यों कहा है और अपने उपदिष्ठ धर्म को वर्तमान में भी फलप्रद तथा निर्वाण तक पहुँचाने वाला क्यों कह दिया है? विद्वान लोग धर्म को अपने ही आप कैसे अनुभव करते हैं?

''आयुष्मन्! मैं तथागत के इस धर्म में नया ही प्रव्रजित हुआ हूँ, अतः इस विषय में विस्तार से कुछ नहीं कह पाऊँगा। हाँ, भगवान् अभी राजगृह के तपोदाराम में ही विराजमान हैं, अच्छा हो कि आप उनके सम्मुख पहुँचकर उन्हीं से पूँछे!''

ऐसा कहकर वह देवता, मुझसे बोला-''भिक्षु! भगवान् के सम्मुख पहुँचना हम जैसों के लिये इतना सरल नहीं है, क्योंकि वे प्रायः बड़े बड़े यशस्वी देवताओं से घिरे रहते हैं। अतः अच्छा यही होगा कि आप उनसे समझ कर मुझे बता दें। ...से सुनने के लिये उपस्थित हो जाऊँगा। यदि उस देवता का कहना सत्य है, तो वह भी इस समय यहाँ कहीं समीप में ही उपस्थित होगा।''

एवं वुत्ते, सा देवता आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच– ''पुच्छ, भिक्खु, पुच्छ, भिक्खु, यमहं अनुप्पत्ता''ति। अथ खो भगवा तं देवतं गाथाहि अज्झभासि–

''अक्खेय्यसञ्ञिनो सत्ता, अक्खेय्यस्मिं पतिट्ठिता।
अक्खेय्यं अपरिञ्ञाय, योगमायन्ति मच्चुनो॥
''अक्खेय्यं च परिञ्ञाय, अक्खातारं न मञ्ञति।
तञ्हि तस्स न होतीति, येन नं वज्जा न तस्स अत्थि।
सचे विजानासि वदेहि यक्खा''ति॥

''न ख्वाहं, भन्ते, इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे, भन्ते, भगवा तथा भासतु यथाहं इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं जानेय्यं''ति।

(संस्कृतच्छाया) एवमुक्ते, सा देवता आयुष्मन्तं समृद्धिम् एतदवोचत्— ''पृच्छ, भिक्षो!, पृच्छ, भिक्षो!, यमहमनुप्राप्तः। अथ खलु भगवान् तां देवतां गाथाभिः अध्यभाषिष्ट—

''आख्येयसंज्ञिनः सत्त्वाः, आख्येयास्मिन् प्रतिष्ठिताः।
आख्येयमपरिज्ञाय, योगमायान्ति मृत्योः।
आख्येयञ्च परिज्ञाय, आख्यातारं न मन्यते॥
तद्धि तस्य न भवतीति, यत्र तं वद्यः न तस्य अस्ति।
स चेत् विजानासि वद यक्ष''इति॥

''न खल्वहम्, भदन्त! भगवता संक्षिप्तेन भाषितस्य विस्तरेण अर्थमाजानामि। साधु माम्, भदन्त! भगवान् तथा भाषस्व यथाहम् अस्य भगवता संक्षिप्तेन भाषितस्य विस्तरेण अर्थं जानीयाम्''इति।

(हिन्दी) ऐसा निवेदन किये जाने पर उस देवता ने आयुष्मान् समृद्धि से यह कहा- ''पूछो, भिक्षु! पूछो, भिक्षु! मैं पहूँच गया हूँ।''

तब भगवान् ने इन गाथाओं के माध्यम से उस देवता से यह कहा-''लोक में जिन प्राणियों को 'जीव' कहा जाता है, वह संज्ञा मात्र है। उस संज्ञा पर ही उनका समग्र लोकव्यवहार प्रतिष्ठित है। इस संज्ञा की वास्तविकता का ज्ञान न होने से प्राणी मृत्यु के अधीन होते रहते हैं। जो इस संज्ञा की वास्तविकता (तत्त्व) को जान गया है वह पंचस्कन्धातिरिक्त आत्मा की मिथ्यादृष्टि में नहीं पड़ता। उस (ज्ञानी) को ऐसा कुछ नहीं रह जाता, जिससे उस पर कोई तद्विषयक सतृष्णता का दोषारोपण कर सके। यक्ष! यदि तुमने ऐसे किसी ज्ञानी (क्षीणास्रव) को देखा हो तो बताओ?''

'भन्ते! मैं आपके इस संक्षिप्त कथन का निष्कर्ष नहीं समझ पाया। अतः आप इस संक्षिप्त कथन का अर्थ विस्तार पूर्वक बतावें तो मैं समझ सकूँ।''

''समो विसेसी उद वा निहीनो, यो मञ्ञती सो विवदेथ तेन।
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसीति न तस्स होति।
सचे विजानासि वदेहि यक्खा''ति॥

''इमस्सापि ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स न वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे, भन्ते, भगवा तथा भासतु यथाहं इमस्स भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं जानेय्यं''ति।

''पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा, अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे।
तं छिन्नगन्थं अनिघं निरासं, परियेसमाना नाज्झगमुं।
देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा सब्बनिवेसनेसु।
सचे विजानासि वदेहि यक्खा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''समो विशेषी उत वा निहीनः, यो मन्यते स विवदेत् तेन।
तिसृषु विधासु अविकम्पमानः, समो विशेषीति न तस्य भवति।
तच्चेद् विजानासि वद इह यक्ष''इति॥

''अस्यापि खल्वहम्, भदन्त! भगवता संक्षिप्तेन भाषितस्य न विस्तरेण अर्थम् आजानामि। साधु माम्, भदन्त!, भगवान् तथा भाषस्व यथाहं अस्य भगवता संक्षिप्तेन भाषितस्य विस्तरेण अर्थम् जानेयम्''इति।

''प्राजहात् संख्यां न विमानमध्यगात्, अच्छिनत् तृष्णाम् इह नामरूपे।
तं छिन्नग्रथम् अनिघम् निराशम्, पर्येषमाणाः नाध्यजगाम।
देवाः मनुष्याः इह वा दूरं वा, स्वर्गेषु वा सर्वनिवेशनेषु।
तच्चेद् विजानासि वद इह यक्षाः''इति॥

(हिन्दी) भगवान् बोले- ''मैं किसी के बराबर हूँ, 'किसी से ऊँचा हूँ, या 'किसी से नीचा हूँ'- ऐसे विचारों वाला पुरुष लोक में विविध विवादों में फँसता रहता है। इसके विपरीत, जो इन तीनों अवस्थाओं में पडने पर स्वचित्त को स्थिर रखता है उसका लोक में किसी से कोई विवाद नहीं होता। ''यक्ष! यदि तुम ऐसे किसी (ज्ञानी) पुरुष को जानते हो तो बताओ?''

देवता- ''भन्ते! मैं आपके इस कथन का भी तात्पर्य नहीं समझ पाया। अच्छा होता कि आप ही इस बात को भी कुछ विस्तार से समझाते। जिससे मैं कुछ अधिक समझ सकूँ॥''

भगवान्- ''जिसने अपने राग द्वेष एवं मोह को छोड़ दिया है वह फिर माता के गर्भ में नहीं आता। नाम एवं रूप के प्रति होने वाली समस्त तृष्णा को जिसने काट डाला है, ऐसे उस कटे गाँठ वाले (सांसारिक बन्धनों) तथा दुःखों से मुक्त एवं तृष्णारहित ज्ञानी पुरुष को, कोई खोजते रहने पर भी, विना सौभाग्य के प्राप्त नहीं कर सकता। ''हे यक्ष! ऐसा ज्ञानी पुरुष तुमने देवलोक में या मनुष्यलोक में, इस लोक या परलोक में, स्वर्ग या अन्य किसी जीवलोक में देखा हो तो बताओ?''

''इमस्स ख्वाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि–

''पापं न कयिरा वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सब्बलोके।
कामे पहाय सतिमा सम्पजानो, दुक्खं न सेवेथ अनत्थसंहितं''ति॥

नन्दनवग्गो दुतियो।

तस्सुद्दानं- नन्दना नन्दति चेव, नत्थिपुत्तसमेन च।
खत्तियो सणमानो च, निद्दातन्दी च दुक्करं।
हिरी कुटिका नवमो, दसमो वुत्तो समिद्धिना ति॥

3. सत्तिवग्गो

1.3.1. सत्तिसुतं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अस्य खल्वहम्, भदन्त! भगवता संक्षिप्तेन भाषितस्य एवं विस्तरेण अर्थम्
आजानामि— ''पापं न कुर्याद् वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सर्वलोके।
कामान् प्रहाय स्मृतिमान् सम्प्रज्ञानः, दुःखं न सेवेत अनर्थसंहितम्''इति॥
तस्योद्दानम्- नन्दना, नन्दति चैव, नास्तिपुत्रसमश्च।
क्षत्रियः सणमानश्च, निद्रातन्द्री च दुष्करम्।
ह्री कुटिका नवमः, दशम उक्तः समृद्धिना इति॥

1. श्रावस्तीनिदान्। एकान्ते स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''शक्त्या इव अवमृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
कामरागप्रहाणाय, स्मृतो भिक्षुः परिव्रजेत्''इति॥

(हिन्दी) देवता- ''भन्ते! भगवान् के इस संक्षिप्त कथन का मैं इतना ही विस्तारार्थ जानता हूँ-''स्वहिताकांक्षी पुरुष शरीर, वचन या मन से होने वाला कोई पाप न करे, वह समस्त संसार में स्मृतिमान् होकर कामभोगों का उपभोग न करता हुआ विचरण करे। अपने लिये अनर्थकारी दुःखों को न बढ़ावे।''

इस वर्ग की सूत्र सूची- इस वर्ग में 1. नन्दन, 2. नन्दति, 3. नास्तिपुत्रसम, 4. क्षत्रिय, 5. सणमान, 6. निद्रातन्द्रा,7. दुष्कर, 8. ह्री, 9. कुटिका एवं 10. समृद्धि- ये दश सूत्र हैं।

1. श्रावस्ती में....। वह देवता भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला- ''जैसे भाला लेकर कोई आक्रमण करने आ जाय, या शिर पर आग लग गईहो, (उस समय जैसे सावधान होकर उसका प्रतीकार करना पड़ता है) उसी तरह कामभोगों में उत्पन्न आसक्ति को हटाने के लिये भिक्षु को स्मृतिमान् होकर लोक में त्यागमय भावना से रहें।''

''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
सक्कायदिट्ठिप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥

1.3.2. फुसतिसुत्तं

''नाफुसन्तं फुसति च, फुसन्तञ्च ततो फुसे।
तस्मा फुसन्तं फुसति, अप्पदुट्ठपदोसिनं''ति॥
''यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातंव खित्तो''ति॥

1.3.3. जटासुत्तं

''अन्तो जटा बहि जटा, जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि, को इमं विजटये जटं''ति॥
''सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।

(संस्कृतच्छाया) ''शक्त्या इव अवमृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
सत्कायदृष्टिप्रहाणाय, स्मृतो भिक्षुः परिव्रजेत्'' इति॥

2. ''नस्पृशन्तं स्पृशति च, स्पृशन्तं च ततः स्पृशेत्।
तस्मात् स्पृशन्तं स्पृशति, अप्रदुष्टप्रदोषिणम्'' इति॥
यः अप्रदुष्टाय नराय दुष्यति, शुद्धाय पुरुषायानङ्गणाय।
तमेव बालं प्रत्येति पापम्, सूक्ष्मो रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तः''इति॥

3. ''अन्तो जटा बहिः जटा, जटाभिः जटिताः प्रजाः।
तत् त्वाम्, गौतम! पृच्छामि, कः इमाम् विजटयेत् जटाम्?''इति।
''शीले प्रतिष्ठाय नरः सप्रज्ञः चित्तं प्रज्ञां च भावयन्।

(हिन्दी) भगवान्- ''जैसे भाला....पूर्ववत्.....प्रतीकार करना पड़ता है, उसी तरह सत्कायदृष्टि (मिथ्या आत्मदृष्टि) के प्रहाण के लिये संन्यासी बन कर भिक्षु को लोक में स्मृतिमान् होकर विचरण करना चाहिये॥''

2. देवता- ''न स्पर्श करने वाले को स्पर्श नहीं करता। स्पर्श करने वाले को स्पर्श करता है। अतः निर्दोष पर दोष लगाने वाले जैसे स्पर्श करने वाले पुरुष को स्पर्श करता है॥'' भगवान्- जो निष्पाप, निर्दोष एवं शुद्ध (ज्ञानी) पुरुष पर असत्य दोषारोपण करता है, वह समस्त दोष, प्रतिकूल वायु में फेंकी गयी धूल की तरह, उलट कर दोषारोपण करने वाले पर ही जा पड़ता है।

3. देवता- ''यहाँ अन्दर भी जटा (उलझन) है, बाहर भी जटा है, यों इस संसार की यह समस्त प्रजा जटा में उलझी हुई है। अतः हे गौतम! मैं आप से ही पूछ रहा हूँ कि इस जटा (सांसारिक माया-जाल) को सुलझाने में कौन समर्थ है?''

भगवान्- ''तपस्वी, प्रज्ञावान् एवं विवेकशील पुरुष शील (सदाचार) में प्रतिष्ठित (अभ्यस्त)

आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥
''येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, तेसं विजटिता जटा॥
''यत्थ नामञ्च रूपञ्च, असेसं उपरुज्झति।
पटिघं रूपसञ्ञा च, एत्थेसा छिज्जते जटा''ति॥

1.3.4. मनोनिवारणसुतं

''यतो यतो मनो निवारये, न दुक्खमेति नं ततो ततो।
स सब्बतो मनो निवारये, स सब्बतो दुक्खा पमुच्चति'॥
''न सब्बतो मनो निवारये, न मनो संयतत्तमागतं।
यतो यतो च पापकं, ततो ततो मनो निवारये''ति॥

(संस्कृतच्छाया) आतापी निपकः भिक्षुः सः इमां विजटयेत् जटाम्॥
येषां रागश्च द्वेषश्च अविद्या च विराजिताः।
क्षीणास्रवा अर्हन्तः, तेषां विजटिताः जटाः॥
''यत्र नाम च रूपं च, अशेषम् उपरुध्यते।
प्रतिघं रूपसंज्ञा च अत्रैषा छिद्यते जटा''इति॥
4 ''यतो यतो मनः निवारयेत्, न दुःखमेति तं ततस्ततः।
स सर्वतो मनः निवारयेत्, स सर्वतो दुःखात् प्रमुच्यते''॥
''न सर्वतो मनः निवारयेत्, न मनः संयतत्वमागतम्।
यतो यतश्च पापकम्, ततस्ततः मनः निवारयेत्''इति॥

(हिन्दी) होता हुआ चित्त समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए उत्साहसम्पन्न होकर निपुणता से इस जटा (सांसारिक माया-जाल) को सुलझा सकता है। ''जिन साधकों का चित्त राग द्वेष से विहीन हो चुका है, अविद्यान्धकार विनष्ट हो चुका है, ऐसे क्षीणास्रव (निर्मलचित्त) ज्ञानी भिक्षु ही इस जटा को काटने में समर्थ हो सके हैं।''जहाँ (जिस ज्ञानी के चित्त में) नाम एवं रूप सर्वथा निरुद्ध हो चुके हैं और प्रतिघसंज्ञा (कामभव) एवं रूपसंज्ञा (रूपभव) भी निरुद्ध हो चुकी हैं, वहाँ ये जटा कटी हुई (विनष्ट) ही समझे जाने चाहिये।''

4. देवता- ''कोई साधक जिस जिस (लौकिक या लोकोत्तर शुभ या अशुभ विषय) से स्वचित्त का निवारण (हटा) कर लेता है, उसको उस उस (विषय की ओर से) कोई दुःख नहीं रह जाता। अतः वह (साधक) सभी सांसारिक विषयों से अपने चित्त का निवारण कर ले तो वह उनके द्वारा होने वाले सभी दुःखों से मुक्ति पा सकता है। भगवान्- ''नहीं, ऐसा नहीं है। साधक के लिये सभी विषयों से मन का निवारण करना उचित नहीं होगा, जो मन अपने वश में आ गया है। (जैसे 'दान दूँगा, ''शील का पालन करूँगा'- इत्यादि शुभ भावनाओं से जो चित्त निगृहीत हो चुका है, उन भावनाओं से चित्त को हटाना उचित नहीं है)। हाँ, जिस जिस भावना से पाप (होने की सम्भावना) हो वहाँ से साधक को स्वचित्त का निवारण अवश्य करना चाहिये।''

1.3.5. अरहन्तसुत्तं

''यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।
अहं वदामीतिपि सो वदेय्य, ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्या''ति॥
''यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।
अहं वदामीतिपि सो वदेय्य, ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्य।
लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा, वोहारमत्तेन सो वोहरेय्या''ति॥
''यो होति भिक्खु अरहं कतावी, खीणासवो अन्तिमदेहधारी।
मानं नु खो सो उपगम्म भिक्खु, अहं वदामीतिपि सो वदेय्य।
ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्या''ति॥
''पहीनमानस्स न सन्ति गन्था, विधूपिता मानगन्थस्स सब्बे।
स वीतिवत्तो मञ्ञतं सुमेधो, अहं वदामीतिपि सो वदेय्य॥

(संस्कृतच्छाया) 5.''यो भवति भिक्षु अर्हत् कर्ता, क्षीणास्रवोऽन्तिमदेहधारी।
अहं वदामि इत्यपि स वदेत्, मां वदन्तीत्यपि स वदेत्''इति।
'यो भवति भिक्षु अर्हत् कर्ता, क्षीणास्रवोऽन्तिमदेहधारी।
अहं वदामि इत्यपि स वदेत्, मां वदन्तीत्यपि स वदेत्।
लोके संज्ञां कुशलो विदित्वा, व्यवहारमात्रेण स व्यवहरेत्''इति॥
''यो भवति भिक्षु अर्हत् कर्ता, क्षीणास्रवोऽन्तिमदेहधारी।
मानं नु खलु स उपगम्य भिक्षुः, अहं वदामि इत्यपि स वदेत्।
मां वदन्तीति अपि स वदेत्?''इति॥
''प्रहीणमानस्य न सन्ति ग्रन्थाः, विधूपिताः मानग्रन्थाः अस्य सर्वे।
स वीतवृत्तः मन्यतां सुमेधः, अहं वदामि इति अपि स वदेत्।

(हिन्दी) 5. देवता-''जो भिक्षु कृतकृत्य होकर अर्हत् (ज्ञानी) की स्थिति में पहुँच गया है, जिसका चित्त सभी विकारों से दूर हो चुका है, इस लोक में उसने अपना यह अन्तिम देह धारण किया है, (इसके बाद) उसका निर्वाण प्राप्त कर लेना सुनिश्चित है, वह लोकव्यवहार में 'मैं कहता हूँ'- यह भी कह सकता है और 'मुझे कहते हैं'- यह भी कह सकता है।'' भगवान्- ''जो भिक्षु कृतकृत्य होकर अर्हत् हो चुका है, जिसका चित्त निर्विकार है, जो अन्तिमदेहधारी की स्थिति में पहुँच चुका है, वह लोकव्यवहार में 'मैं कहता हूँ- ऐसा भी बोलता है, और 'मुझे कहते हैं'- ऐसा भी बोलता है, किन्तु वह, पण्डित लोगों की बोलचाल के कारण, केवल व्यवहारमात्र के लिये ऐसा प्रयोग करता है।'' देवता- ''जो भिक्षु कृतकृत्य... पूर्ववत्... अन्तिमदेहधारी की स्थिति में पहुँच चुका है, वह क्या देहाभिमान के कारण 'मैं कहता हूँ, ऐसा, और 'मुझे कहते हैं' ऐसा बोलता है? भगवान्- ''जिन धर्म-साधकों का देहाभिमान चित्त से दूर हो चुका है, ऐसे साधकों के चित्त में अभिमान की कोई ग्रन्थि अवशिष्ट नहीं रहती। उनके तो सभी मान एवं ग्रन्थियाँ विनष्ट हो चुकी हैं।

''ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्य। लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा।
वोहारमत्तेन सो वोहरेय्या''ति॥

1.3.6. पज्जोतसुत्तं

''कति लोकस्मिं पज्जोता, येहि लोको पकासति।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं''ति॥
''चत्तारो लोके पज्जोता, पञ्चमेत्थ न विज्जति।
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा॥
''अथ अग्गि दिवारत्तिं, तत्थ तत्थ पकासति।
सम्बुद्धो तपतं सेट्ठो, एसा आभा अनुत्तरा''ति॥

1.3.7. सरसुत्तं

''कुतो सरा निवत्तन्ति, कत्थ वट्टं न वत्तति।

(संस्कृतच्छाया) ''माम् वदन्तीत्यपि स वदेत्।
लोके संज्ञां कुशलो विदित्वा, व्यवहारमात्रेण स व्यवहरेत्'' इति॥

6. ''कति लोके प्रद्योताः, यैः लोकः प्रकाशते।
भगवन्तं प्रष्टुमागत्य कथं जानीयाम तद् वयम्?'' इति॥
''चत्वारो लोके प्रद्योताः, पञ्चमोऽत्र न विद्यते।
दिवा तपति आदित्यः रात्रावभाति चन्द्रमा॥
''अथ अग्निः दिवारात्रौ, तत्र तत्र प्रकाशते।
सम्बुद्धस्तपतां श्रेष्ठः, एषा आभा अनुत्तरा''इति॥

7. ''कुतः स्वराः निवर्तन्ते, कुत्र वृत्तं न वर्तते।

(हिन्दी) ऐसा ज्ञानी साधक लोकव्यवहारमात्र चलाने हेतु ही 'मैं कहता हूँ या 'मुझे कहते हैं'- ऐसा बोलता है। उस कुशल ज्ञानी को लोकव्यवहार (समज्ञा) चलाने के लिये ही ऐसा प्रयोग करता है।''

6. देवता- ''लोक में ऐसी कितनी प्रकाशक वस्तुएँ हैं, जिनसे यह लोक प्रकाशित होता रहा है? भगवान् से हम यही पूछने आये हैं। (कृपया हमें इस विषय में कुछ बताइये कि) हम भी उन्हें कैसे जानें?''

भगवान्- ''लोक में प्रकाशक वस्तुएँ चार ही हैं, पाँचवीं ऐसी कोई वस्तु नहीं जो लोक को प्रकाशित कर सके। जिनमें पहला प्रकाशक है सूर्य, जो दिन में लोक को प्रकाशित करता रहता है तथा दूसरा प्रकाश है चन्द्रमा, जो रात्रि में लोक को प्रकाशित करता रहता है। तीसरी प्रकाशक वस्तु है- अग्नि, जो लोक को दिन रात प्रकाशित करती रहती है। इन (तीनों) प्रकाशक वस्तुओं से भी श्रेष्ठ हैं- बुद्ध, जिनकी आभा (स्वाभाविक प्रकाश, जैसे- उनका जन्मजात ज्ञान, प्रीति, श्रद्धा, धर्मकथा आदि) लोक में अद्वितीय (अलौकिक) कहलाती है।

7. देवता- ''संसार में स्वर (आवाज), कहाँ जा कर रुक जाता है? आगे नहीं बढ़ पाता? (अर्थात् उसे मार्ग नहीं मिलता, वहीं चक्कर काटता रहा है?)

कत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झती''ति॥
''यत्थ आपो च पथवी, तेजो वायो न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति, एत्थ वट्टं न वत्तति।
एत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झती''ति॥

1.3.8. महद्धनसुत्तं

''महद्धना महाभोगा, रट्ठवन्तोपि खत्तिया।
अञ्ञमञ्ञाभिगिज्झन्ति, कामेसु अनलङ्कता॥
''तेसु उस्सुक्कजातेसु, भवसोतानुसारिसु।
केध तण्हं पजहिंसु, के लोकस्मिं अनुस्सुका''ति॥
''हित्वा अगारं पब्बजिता, हित्वा पुत्तं पसुं वियं।
हित्वा रागं च दोसं च, अविज्जञ्च विराजिय।

(संस्कृतच्छाया) कुत्र नाम च रूपञ्च, अशेषम् उपरुध्यते'' इति॥
''यत्र आपश्च पृथ्वी च, तेजो वायुश्च न गाधते।
अतः स्वराः निवर्तन्ते, तत्र वृत्तं न वर्तते।
तत्र नाम च रूपञ्च अशेषम् उपरुध्यते'' इति॥

8. ''महाधनाः महाभोगाः, राष्ट्रवन्तोऽपि क्षत्रियाः।
अन्योऽन्यमभिगृध्यन्ति, कामेषु अनलङ्कृताः॥
''तेषु औत्सुक्यजातेषु, भवस्रोतानुसारिषु।
के इह तृष्णां प्राहासिषुः, के लोके अनुत्सुकाः''इति॥
''हित्वा अगारं प्रव्रजिताः, हित्वा पुत्रं पशुमिव।
हित्वा रागञ्च द्वेषञ्च, अविद्यां च विराज्य।

(हिन्दी) कहाँ तक पहुँच कर ये लौकिक नाम-रूप पूर्णतः निरुद्ध हो जाते हैं?''

भगवान्- ''जहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु की गति (पहुँच) रुक जाती है वहीं स्वरों की गति भी रुक जाती है, वहाँ सभी नाम एवं रूप सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं।''

8. देवता- ''महाधनवाले, महाभोगवाले एवं विशाल साम्राज्य वाले राजा लोग भी कामभोगों से अतृप्त रहते हुए पारस्परिक सम्पत्ति पर लोभ-दृष्टि रखते हैं। ''ऐसे लोगों के भी धन के प्रति उत्सुक बने रहने पर, तथा सांसारिक प्रवाह में पड़े रहने पर कौन अन्य साधारण जन ऐसा होगा जो इस लोक में धन के प्रति अनुत्सुक हो, या जिसे धन की तृष्णा न सताती हो या जिसने उस तृष्णा का त्याग कर दिया हो?''

भगवान्- ''जिन्होंने घर वार, पुत्र, पशु एवं अपने प्रिय जनों को सर्वदा के लिये सर्वथा त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली हो, जो राग द्वेष का भी त्याग कर चुके हों, जिनका अविद्यान्धकार नष्ट हो चुका हो,

खीणासवा अरहन्तो, ते लोकस्मिं अनुस्सुका''ति॥

1.3.9. चतुचक्कसुत्तं

''चतुचक्कं नवद्वारं, पुण्णं लोभेन संयुतं।
पङ्कजातं महावीर, कथं यात्रा भविस्सती''ति॥
''छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च, इच्छा लोभञ्च पापकं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, एवं यात्रा भविस्सती''ति॥

1.3.10. एणिजङ्घसुत्तं

''एणिजङ्घं किसं वीरं, अप्पाहारं अलोलुपं।
सीहं वेकचरं नागं, कामेसु अनपेक्खिनं।
उपसङ्कम्म पुच्छाम, कथं दुक्खा पमुच्चती''ति॥
''पञ्च कामगुणा लोके, मनोछट्ठा पवेदिता।

(संस्कृतच्छाया) क्षीणास्रवाः अर्हन्तः, ते लोके अनुत्सुकाः''इति॥

9. ''चतुश्चक्रं नवद्वारम्, पूर्णं लोभेन संयुतम्।
पङ्कजातं महावीर! कथं यात्रा भविष्यति''इति॥
''छित्वा नद्धिं वरत्रञ्च, इच्छालोभञ्च पापकम्।
समूलं तृष्णाम् अवभूय, एवं यात्रा भविष्यति''इति॥

10. ''एणिजङ्घ कृशं वीरम्, अल्पाहारम् अलोलुपम्।
सिंहमिव एकचरं नागम्, कामेषु अनपेक्षिणम्।
उपसङ्क्रम्य पृच्छामः, कथं दुःखात् प्रमुच्यते''इति॥
''पञ्च कामगुणाः लोके, मनःषष्ठाः प्रवेदिताः।

(हिन्दी) जो क्षीणास्रव एवं अर्हत् हो चुके हों उन्हें तुम्हारे उस नश्वर धन में क्या उत्सुकता होगी।''

9. देवता- हे महावीर! बुद्ध! मेरा यह शरीररूप रथ चार चक्रो (चार ईर्यापथ- खड़े होना, बैठना सोना और चलना) वाला है, इसके नौ द्वार (नेत्र आदि इन्द्रियाँ) हैं, यह अशुचिपूर्ण एवं लोभ से भरा पड़ा है। मार्ग भी कीचड़ से भरा पड़ा है, ऐसे में मेरी यह (निर्वाण) यात्रा कैसे सरल(सुगम) होगी?''

भगवान्- वैरभाव तथा लोभरूप रस्सी को काटकर, मूल पापमय इच्छाओं तथा लोभ का परित्याग कर, तृष्णा को (जड़ से) उखाड़ कर, (निर्वाणनगर की) यात्रा करोगे तो यह अवश्य सरल होगी।''

10. कोई देवता- ''हे एणिमृग के समान जङ्घाओं वाले, कृशकाय परन्तु बलशाली, अल्पाहारी, लोभरहित, सिंह के समान एकाकी विचरण करने वाले, निष्पाप एवं कामभोगों के प्रति निरपेक्ष! आप से हम इतना ही पूछते हैं कि इन भवदुःखों से हमारी मुक्ति कैसे हो सकती है?''

भगवान्- सांसारिक पाँच (इन्द्रयों के पाँच) कामभोग, छठा मन-इनमें उत्पन्न होने वाली सभी

एत्थ छन्दं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुच्चती''ति॥ **सत्तिवग्गो ततियो।**

तस्सुद्दानं– सत्तिया फुसति चेव, जटा मनोनिवारणा।
अरहन्तेन पज्जोतो, सरा महद्धनेन च।
चतुचक्केन नवमं, एणिजङ्घेन ते दसा ति॥

4. सतुल्लपकायिकवग्गो

1.4.1. सब्भिसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवनेअनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।

(संस्कृतच्छाया) अत्रच्छन्दं विराज्यैवं दुःखात् प्रमुच्यते''इति॥
तस्योद्दानम्- शक्तिः स्पृशति चैव, जटा मनोनिवारणम्।
अर्हन्त प्रद्योतः, स्वराः महाधनश्च।
चतुश्चक्रः नवञ्च, एणिजङ्घं ते दशा इति॥

1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु सम्बहुलाः सतुल्लपकायिकाः देवताः अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवनमावभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यन्, उपसङ्क्राम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट–

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।

(हिन्दी) इच्छाओं को त्यागकर साधना में लीन रहने वाले साधक को दुःखों से मुक्ति मिल सकती है॥''

1.शक्तिसूत्र, 2. स्पृशति, 3. जटा, 4. मनोनिवारण, 5. अर्हत्, 6. प्रद्योत, 7. स्वर, 8. महाधन, 9. चतुश्चक्र एवं 10. एणिजङ्घ-ये दश सूत्र इस शक्तिवर्ग में व्याख्यात हुए हैं।

1. ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती स्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा बनवाये जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उसी समय बहुत से तेजस्वी रूप वाले स्वतुल्यप्रकायिक देवता चान्दनी रात बीतने पर समग्र जेतवन को चमकाते हुए, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुंचे। वहाँ पहुंचकर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए उन देवताओं में से एक देवता, गाथा के माध्यम से, भगवान् के सम्मुख यह बोला- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ ही अपनी ऊठ बैठ रखे तथा सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोल

सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सेय्यो होति न पापियो''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।

सतं सद्धम्ममञ्ञाय, पञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।

सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सोकमज्झे न सोचती''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।

सतं सद्धम्ममञ्ञाय, ञातिमज्झे विरोचती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) सतां सद्धर्ममाज्ञाय, श्रेयो भवति न पापी''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।

सतां सद्धर्ममाज्ञाय, प्रज्ञा लभ्यते नान्यतः''इति॥

अथ खल्वपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।

सतां सद्धर्ममाज्ञाय, शोकमध्ये न शोचति''इति॥

अथ खल्वपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।

सतां सद्धर्ममाज्ञाय, ज्ञातिमध्ये विरोचते''इति॥

(हिन्दी) बढ़ाये; क्योंकि सज्जनों का धर्म (-आचरण) जानने से वह सबके लिये सर्वदा श्रेयस्कर ही होता है। उसके कारण अहित नहीं होता॥''

तब दूसरे देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ ही अपनी ऊठ बैठ रखे तथा सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोल बढ़ाये; क्योंकि सज्जनों का धर्माचरण जानने से ही ज्ञान प्राप्त होता है, अन्य किसी उपाय से नहीं॥''

फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...सद्धर्म का आचरण जानने से व्यवहार में शोक की स्थिति आने पर भी, वह उसके कारण शोकाकुल नहीं हो पाता॥''

फिर उनमें किसी अन्य स्वतुल्यप्रकायिक देवता ने यह गाथा भगवान् को सुनाते हुए कही- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरणज्ञान के द्वारा समाज में अपनी विशिष्ट सम्मानजनक स्थिति बना लेने के कारण अपने पारिवारिक जनों में शोभित होता (प्रशंसा प्राप्त करता) है॥''

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता गच्छन्ति सुग्गति''न्ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता तिट्ठन्ति सातत''न्ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच– ''कस्स नु खो, भगवा, सुभासित''न्ति?

सब्बासं वो सुभासितं परियायेन, अपि च ममपि सुणाथ–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सब्बदुक्खा पमुच्चती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, सत्त्वाः गच्छन्ति सुगतिम्''इति॥

अथ खल्वपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, सत्त्वाः तिष्ठन्ति सततम्''इति॥

अथ खल्वपरा देवता भगवन्तमेतदवोचत्— ''कस्य नु खलु, भगवन्! सुभाषितम्''इति?

''सर्वासां वो सुभाषितं पर्यायेण, अपि च ममापि श्रृणुत—

''सद्भिरेव समासेत्, सद्भिः कुर्यात् संस्तवम्।
सतां सधर्ममाज्ञाय, सर्वदुःखात्प्रमुञ्चति''इति॥

(हिन्दी) फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने...पूर्ववत्...कही- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण जानने के कारण, ऐसे प्राणी देहपात के बाद, सुगति (स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं॥''

फिर उनमें से किसी अन्य देवता ने...पूर्ववत्...कही- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण के कारण प्राणी सतत सात्त्विक सुखोपभोग करते रहते हैं॥'' तब उनमें से किसी देवता ने भगवान् से यह निवेदन किया- ''भगवन्! इन देवताओं द्वारा कथित सुभाषितों में कौन सुभाषित श्रेष्ठ है?''

''यों तो इन में सभी का कहना उचित ही है, फिर भी मेरा मन्तव्य यह है- ''स्वहिताकांक्षी पुरुष को चाहिए कि वह सज्जनों के साथ ही बैठे उठे, सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोल बढ़ावे। ऐसा करने से वह पुरुष इन सज्जनों के धर्माचरण से भलीभांति परिचित हो कर स्वयं यह धर्माचरण करता हुआ सभी प्रकार के दुःखों से अपने को मुक्त रखता है॥''

इदमवोच भगवा। अत्तमना ता देवतायो भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायिंसूति।

1.4.2. मच्छरिसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति।
पुञ्ञं आकङ्खमानेन, देय्यं होति विजानता''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''यस्सेव भीतो न ददाति मच्छरी, तदेवाददतो भयं।

(संस्कृतच्छाया) इदमवोचद् भगवान्। आप्तमनाः ताः देवताः भगवन्तमभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधुः'' इति।

2. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु सम्बहुलाः *सतुल्लपकायिका* देवताः अभिक्रान्तायाः रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवनमावभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः, उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्तम् स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

''मात्सर्यात् च प्रमादाच्च, एवं दानं न दीयते।
पुण्यमाकाङ्क्षता, देयं भवति विजानता'' इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''यस्यैव भीतो न ददाति मत्सरी, तदेवाददतः भयम्।

(हिन्दी) भगवान् ने वह प्रवचन किया। इसे सुनकर प्रसन्न हुए उन देवताओं ने भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से अन्तर्धान हो गया।

2. ऐसा मैंने सुना है, एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती स्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा बनवाये जेतवनाराम मे विहार कर रहे थे। उसी समय बहुत से तेजस्वी रूप वाले स्वतुल्यप्रकायिक देवता चाँदनी रात बितने पर समग्र जेतवन को प्रभासित करते हुए, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुंचे। वहाँ पहुंचकर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए उन देवताओं में से एक देवता, गाथा के माध्यम से, भगवान् के सम्मुख यह बोला-

''दाता मात्सर्य और प्रमाद से दान नहीं करते। जो पुण्य चाहता हो उसे विवेकपूर्वक प्रमादरहित होकर ही दान करना चाहिये।'' तब, दूसरा देवता बोला- ''कञ्जुस जिस के डर से दान नहीं करता है, नहीं देने से उसे वह भय लगा ही रहता है, भूख और प्यास- जिससे कञ्जुस डरता है। इतना ही नहीं, ये दोनों (भूख और प्यास) भय उस मूर्ख का इस

जिघच्छा च पिपासा च, यस्स भायति मच्छरी।
तमेव बालं फुसति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
''तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''ते मतेसु न मीयन्ति, पन्थानंव सहब्बजं।
अप्पस्मिं ये पवेच्छन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥
''अप्पस्मेके पवेच्छन्ति, बहुनेके न दिच्छरे।
अप्पस्मा दक्खिणा दिन्ना, सहस्सेन समं मिता''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

(संस्कृतच्छाया) जिघत्सा च पिपासा च, याभ्यां विभेति मत्सरी।
तमेव बालं स्पृशति, अस्मिन् लोके परस्मिञ्च॥
''तस्मात् विनीय मात्सर्यम्, दद्यात् दानम् मलाभिभू।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठा भवन्ति प्राणिनः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''ते मृतेषु न म्रियन्ते, पन्थानम् इव सहव्रजम्।
अल्पे ये प्रयच्छन्ति, एषः धर्मः सनातनः॥
''अल्पानैके प्रयच्छन्ति, बहवो नैके न दिदित्सन्ते।
अल्पादपि दक्षिणा दत्ता, सहस्रेण समं मिता''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

(हिन्दी) लोक और परलोक में भी लगा रहता हैं। इस कारण वह कभी भी भली भांति दान नहीं कर पाता। अतः बुद्धिमान् पुरुष को कंजूसी करना छोड़ निर्मल चित्त से दानकर्म करना चाहिये; क्योंकि प्राणियों द्वारा इस तरह किया गया दान ही परलोक में पुण्यप्रद तथा इस लोक में प्रतिष्ठापरक होता है।''

तभी दूसरे किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''ऐसे प्राणी को देहपात के बाद की संसार में मरा हुआ नहीं माना जाता। अर्थात् उसके मरने के बाद भी संसार में उसका नाम प्रतिष्ठा के साथ लेते हैं जो अपने थोड़े से भी पाये हुए को साथियों के साथ बैठकर मिल-बाँट कर खाता है। सज्जनों के बीच यही सनातन धर्म चला आ रहा है।''

''थोड़ा रहने पर भी कितने दान देते हैं, बहुत रहने पर भी कितने दान नहीं देते; थोड़ा रहने पर भी जो दान दिया जाता है, वह हजार का दान दिये गये की भी बराबरी करता हैं।''

''दुद्ददं ददमानानं, दुक्करं कम्म कुब्बतं।
असन्तो नानुकुब्बन्ति, सतं धम्मो दुरन्वयो॥
''तस्मा सतञ्च असतं, नाना होति इतो गति।
असन्तो निरयं यन्ति, सन्तो सग्गपरायना''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके एतदवोच–

''कस्स नु खो, भगवा, सुभासितं''ति?

''सब्बासं वो सुभासितं परियायेन; अपि च ममपि सुणाथ–

''धम्मं चरे यो पि समुञ्जकं चरे, दारञ्च पोसं ददमप्पकस्मिं।
सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं, कलम्पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) ''दुर्ददम् ददमानानां, दुष्करं कर्म कुर्वन्तम्
असन्तः नानुकुर्वन्ति सतां धर्मो दुरन्वयः॥
''तस्मात्सताञ्च असतम्, नाना भवति इतो गतिः।
असन्तः निरयं यान्ति, सन्तस्स्वर्गपरायणाः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके एतद्वोचत्—

''कस्य नु खलु, भगवान् सुभाषितम्''इति?

''सर्वेषां वो सुभाषितं पर्यायेण, अपि च मामपि शृणुत—

''धर्मञ्चरेत् योऽपि समुञ्जकञ्चरेत्, दारान् च पोषयन् ददन्नल्पके।
शतं सहस्राणां सहस्रं योगिनाम्:, कलामपि नार्हति तथाविधस्य ते''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवन्तं गाथया अभाषिष्ट—

(हिन्दी) तब किसी अन्य देवता ने भगवान् को यह गाथा सुनायी- ''दानदाताओं में कठिन से कठिन दान करने वाले का तथा कर्मयोगियों में कठिन से कठिन कर्म करने वाले का मूर्खजन अनुकरण नहीं कर पाते; क्योंकि सज्जनों के धर्माचरण का अनुकरण साधारणजनों के लिये बहुत कठिन होता है।

''इसी कारण, इस संसार में देहपात के बाद, सज्जनों तथा असज्जनों की गति पृथक् पृथक् होती है। मरणानन्तर असज्जन नरक में पहुंचते हैं तो सज्जन निश्चिततापूर्वक स्वर्गसुख भोगते हैं॥''

इस प्रसङ्ग में किसी देवता ने भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की-

''भगवन्! इन वक्ताओं में किस देवता का कथन उचित है?''

भगवान् ने कहा ''यूँ तो इन सभी देवताओं का कथन उचित ही है, तो भी मेरी ओर ये सुनों- ''जो बुद्धिमान प्राणी, मूंज में से सींक निकालने के समान धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण पूर्वक आचरण करता है और अपनी थोड़ी सी कमाई में से अपनी स्त्री तथा बाल बच्चों का पोषण करता हुआ भी उचित पात्र को कुछ न कुछ दान करता रहता है वही वस्तुतः धर्माचारी है।

''केनेस यञ्ञो विपुलो महग्गतो, समेन दिन्नस्स न अग्घमेति।
कथं [इदं पदं कत्थचि सीहळपोत्थके नत्थि] सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं,
कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते''ति॥
''ददन्ति हेके विसमे निविट्ठा, छेत्वा वधित्वा अथ सोचयित्वा।
सा दक्खिणा अस्सुमुखा सदण्डा, समेन दिन्नस्स न अग्घमेति॥
''एवं सतं सहस्सानं सहस्सयागिनं।
कलं पि नाग्घन्ति तथाविधस्स ते''ति॥

1.4.3. साधुसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रतिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो

(संस्कृतच्छाया) ''केन एषः यज्ञो विपुलो महद्व्रतः, समेन दत्तस्य न अर्हतामेति।
कथं शतं सहस्राणां सहस्रं यागिनाम्:,
कलामपि नार्हति तथाविधस्य ते''इति॥
''ददति ह्येके विषमे निविष्टाः, छित्वा वधित्वा अथ शोचयित्वा।
सा दक्षिणा अश्रुमुखा सदण्डा, समेन दत्तस्य न अर्हतामेति॥
''एवं शतं सहस्राणाम् सहस्रयागिनाम्:, कलामपि नार्हन्त तथाविधस्य ते''इति॥

3. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु सम्बहुलाः *सतुल्लपकायिकाः* देवताः अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवनमावभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रामिषुः, उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता

(हिन्दी) ऐसे पुण्यात्मा दानी की, वे लोग जो लाखों का दान करते हों, या हजारों शास्त्रविहित यज्ञ करते हों, एक अंश की भी समानता नहीं कर पाते।'' तब दूसरे देवता ने भगवान् से प्रश्न किया- ''क्यों उनका यह यज्ञादि द्वारा किया हुआ विशाल एवं महार्घ दान भी इस दान के एक अंश की भी बराबरी नहीं कर पाता, जबकि वे लाखों मुद्राओं का दान एवं हजारों यज्ञ करते हैं इसके उलट इस का यह छोटा सा दान है?''

तब भगवान् ने उस देवता के प्रश्न का यह उत्तर दिया- ''कुछ लोग हिंसा, वध, बन्धन आदि अनुचित साधनों का प्रयोग करते हुए ये दान तथा यज्ञादि कर्म करते हैं उनका यह दूसरों को रुलाकर, मार कर, काटकर दुःख देकर किया हुआ दान शान्तिपूर्वक किये गये दान की बराबरी नहीं कर पाता। अतएव लाखों मुद्राओं के दाता तथा हजारों यज्ञों के सम्पादयिता भी उस दान के एक अंश की समता नहीं कर पाते।''

3. श्रावस्ती में ही.....। एक समय बहुत से सतुल्यप्रकायिकदेवता चाँदनी रात में प्रायः समग्र जेतवन को आलोकित करते हुए, जहां भगवान् थे वहां पहुंचे। पहुंचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े होकर उनमें से एक देवता ने भगवान् के

सन्तिके इमं उदानं उदानेसि–''साधु खो, मारिस, दानं।

मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति।

पुञ्ञं आकङ्खमानेन, देय्यं होति विजानता''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''साधु खो, मारिस, दानं; अपि च अप्पकस्मिम्पि साहु दानं।

''अप्पस्मेके पवेच्छन्ति, बहुनेके न दिच्छरे।

अप्पस्मा दक्खिणा दिन्ना, सहस्सेन समं मिता''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिम्पि साहु दानं। अपि च सद्धायपि साहु दानं''।

''दानञ्च युद्धञ्च समानमाहु, अप्पापि सन्ता बहुके जिनन्ति।

(संस्कृतच्छाया) भगवतोऽन्तिके इदम् उदानम् उदानैषीत्- "साधु खलु, मार्ष! दानम्।

मात्सर्यात् च प्रमादाच्च, एवम् दानं न दीयते।

पुण्यमाकांक्षता, देयं भवति विजानता''इति।

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदम् उदानम् उदानीतवान्–''साधु खलु, मार्ष! दानम्; अपि च अल्पके अपि साधु दानम्''।

''अल्पाद् प्रयच्छन्ति, बहवो नैके न दिदित्सन्ते।

अल्पादपि दक्षिणा दत्ता, सहस्रेण समं मिता''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदम् उदानम् उदानीतवान्– ''साधु खलु, मार्ष! दानम्; अल्पके अपि साधु दानम्। अपि च श्रद्धयापि साधु दानम्''।

"दानं च युद्धं च समानमाहुः, अल्पापि शान्ताः बहुकान् जयन्ति।

(हिन्दी) सम्मुख अपना यह हर्षोद्गार प्रकट किया- ''भगवान्! दान देना बहुत अच्छा सत्कर्म है। परन्तु यह दान कंजूसी से, प्रमाद से याचकों को नहीं दिया जाता। पुण्य की आकांक्षा वाले सत्पुरुष को समझ बूझकर ही दान करना चाहिये।'' उसी समय वहां उपस्थित एक अन्य देवता ने इस विषय में अपना अभिमत यों प्रकट किया- ''भगवान्! दान देना बहुत अच्छा कर्म है। अल्प वस्तु का भी दान बहुत उत्तम है।

बहुत लोग वस्तु की अल्प मात्रा रहने पर उसका सहर्ष दान कर देते हैं, परन्तु बहुत से लोग वस्तु की बहुलता होने पर भी उसे अल्प मात्रा में भी देना नहीं चाहते। यहां अल्प वस्तु रहने पर भी जो उसका कुछ अंश भी दान कर देता है वह सामान्यतः किये गये हजार दान के तुल्य है।''

तब इस दान के विषय में दूसरे किसी देवता ने भगवान् के सम्मुख अपना अभिमत प्रकट किया- ''भगवान्! दान देना सत्कर्म है, वस्तु की कमी रहने पर भी उसका दान करना अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है; परन्तु यही दान यदि श्रद्धापूर्वक दिया जाय जो उस से भी उत्तम है। यहाँ दान और युद्ध कर्म में एक समानता देखी जाती है। युद्ध में कभी संख्या में अल्प वीर योद्धाओं द्वारा भी अच्छी बड़ी सेना पर विजय पा ली जाती है।

अप्पम्पि चे सद्दहानो ददाति, तेनेव सो होति सुखी परत्था''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिम्पि साहु दानं। सद्धायपि साहु दानं; अपि च धम्मलद्धस्सापि साहु दानं''॥

''यो धम्मलद्धस्स ददाति दानं, उट्ठानवीरियाधिगतस्स जन्तु।
अतिक्कम्म सो वेतरणिं यमस्स, दिब्बानि ठानानि उपेति मच्चो''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिम्पि साहु दानं। सद्धायपि साहु दानं; धम्मलद्धस्सापि साहु दानं। अपि च विचेय्य दानं पि साहु दानं''॥

''विचेय्य दानं सुगतप्पसत्थं, ये दक्खिणेय्या इध जीवलोके।
एतेसु दिन्नानि महप्फलानि, बीजानि वुत्तानि यथा सुखेत्ते''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अल्पमपि चेत् श्रद्धधानः ददाति, तेनैव सः भवति सुखी परत्र''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् उदानीतवान्— ''साधु खलु, मार्ष! दानम्; अल्पे अपि साधुदानम्, श्रद्धयापि साधुदानम्; अपि च धर्मलब्धस्यापि अपि साधु दानम्''।

"यः धर्मलब्धस्य ददाति दानम्, उत्थानवीर्याधिगतस्य जन्तु।
अतिक्रम्य सः वैतरणीं यमस्य, दिव्यानि स्थानानि उपैति मर्त्यः''इति॥

अथ खलु अपरा भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् उदानीतवान्— "साधु खलु, मार्ष! दानम्; अल्पके अपि साधुदानम्। श्रद्धयापि साधुदानम्; धर्मलब्धस्य अपि साधुदानम्। अपि च विचित्य दानमपि साधुदानम्''॥

"विचित्य दानं सुगतप्रशस्तम्, ये दाक्षिणेया इह जीवलोके।
एतेषु दत्तानि महाफलानि, बीजानि उक्तानि यथा सुक्षेत्रे''इति॥

(हिन्दी) इसी तरह श्रद्धा के साथ किया हुआ अल्प वस्तु का दान भी परलोक के लिये सुखदायी होता है।''

तब किसी अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख इसी विषय में अपना अभिमत यूँ प्रकट किया-''भगवान्! दान करना उत्तम है, वस्तु की अल्पमात्रा होते हुए भी उस का दान कर देना उससे अधिक उत्तम है; इन दोनों से भी अधिक उत्तम है श्रद्धापूर्वक देना; परन्तु मेरा अभिमत यह है कि धर्मपूर्वक अधिगत वस्तु का दान सर्वोत्तम है। ''जो पुरुष अपने श्रम से धर्मपूर्वक प्राप्त वस्तु का दान करता है वह यमराज की वैतरणी नदी को पार कर दिव्य (स्वर्ग के) सुखमय स्थानों को प्राप्त करता है।''

एक अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख इस विषय में अपना अभिमत प्रकट किया-''भगवान्! दान करना... पूर्ववत्... धर्मपूर्वक प्राप्त वस्तु का इनसे भी उत्तम है; परन्तु मेरी दृष्टि में इस अल्प वस्तु का श्रद्धापूर्वक तथा इसे धर्मपूर्वक प्राप्त कर किया हुआ दान भी यदि किसी सत्पात्र को विचार कर किया जाय तो यह उससे भी उत्तम होगा। ''क्योंकि विचार कर उस सत्पात्र को किये गये दान की आप सुगत ने भी प्रशंसा की है जो इस संसार में वस्तुतः दान करने योग्य हैं। ऐसे सत्पात्र को किया गया दान उसी तरह अधिक फलदायक होता है, जैसे अच्छे खेत में बोया हुआ बीज अधिक फलदायक होता है।''

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''साधु खो, मारिस, दानं; अप्पकस्मिम्पि साहु दानं; सद्धाय पि साहु दानं; धम्मलद्धस्सा पि साहु दानं; विचेय्य दानं पि साहु दानं; अपि च पाणेसु पि साधु संयमो''।

''यो पाणभूतानि अहेठयं चरं, परूपवादा न करोन्ति पापं।
भीरुं पसंसन्ति न हि तत्थ सूरं, भया हि सन्तो न करोन्ति पापं''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवन्तं एतदवोच– ''कस्स नु खो, भगवा, सुभासितं''ति?

''सब्बासं वो सुभासितं परियायेन, अपि च ममपि सुणाथ–

''सद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं, दाना च खो धम्मपदं व सेय्यो।
पुब्बे च हि पुब्बतरे च सन्तो, निब्बानमेवज्झगमुं सपञ्ञा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इममुदानम् उदानीत्— "साधु खलु, मार्ष! दानम्; अल्पे अपि साधु दानम्। श्रद्धयापि साधु दानम्; धर्मलब्धस्यापि साधु दानम्; विचित्य दानम् अपि साधु दानम्; अपि च प्राणिषु अपि साधुसंयमः''।

"यः प्राणभूतान् अहेठ्यन् चरन्, परोपवादान्न करोति पापम्।
भीरुं प्रशंसन्ते तत्र शूरम्, भयात् हि सन्तः न कुर्वन्ति पापम्''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवन्तम् एतदवोचत्— कस्य नु खलु भगवन्, सुभाषितम्''इति"?

"सर्वेषां वः सुभाषितम् पर्यायेण, अपि च ममपि शृणुत–

"श्रद्धाया हि दानं बहुधा प्रशस्तम्, दानात् च खलु धर्मपदम् एव श्रेयः।
पूर्वे च हि पूर्वतरे च सन्तः निर्वाणमेव अध्यागमन् सप्रज्ञाः"इति॥

(हिन्दी) उसी समय किसी देवता ने...अपना अभिमत यों प्रकट किया-'' भगवान्! दान करना उत्तम है, अल्प का दान और भी उत्तम तथा उसका श्रद्धापूर्वक दान अपेक्षाकृत अधिक उत्तम है। धर्माधिगत वस्तु का सत्पात्र को विचार कर दान करना भी उत्तम है; परन्तु मेरे विचार से इन सब से भी उत्तम कर्म है- साधक द्वारा जीवों के प्रति हिंसा आदि में अपनी इन्द्रियों पर संयम रखना।

''जो प्राणियों को कष्ट दिये बिना संसार में विचरण करता है, परनिन्दा से भय खाता है, तथा किसी भी प्रकार का पापकर्म नहीं करता, पाप कर्म से जो भयभीत रहता है, उसी की सज्जन प्रशंसा करते हैं, उसे वे वीर मानते हैं। सज्जन पापकर्म से डरते हैं, अतः उसका सम्पादन कथमपि नहीं करते।''

अन्त में, उन्हीं में से एक देवता ने पूछा-''भगवन्! इनमें से किसका कथन ठीक है?''

तब भगवान् ने यह उत्तर दिया- ''यद्यपि आप लोगों में से सभी का कथन (अपनी अपनी दृष्टि से) उचित ही है, फिर भी मेरी ओर से सुनों- श्रद्धापूर्वक दिया गया दान प्रायः सज्जनों द्वारा प्रशस्त है, धर्म को जानना दान से भी श्रेष्ठ है, अपितु यहां मेरा अभिमत तो यह है कि प्राचीन काल से आज तक सभी सन्त प्रज्ञा के द्वारा ही निर्वाण को प्राप्त कर पाये हैं। अतः दानादि की अपेक्षा प्रज्ञा ही सर्वोत्तम है, क्योंकि निर्वाण की प्राप्ति में प्रज्ञा की महत्ता सर्वविदित है।

1.4.4. नसन्तिसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''न सन्ति कामा मनुजेसु निच्चा, सन्तीध कमनीयानि येसु बद्धो।
येसु पमत्तो अपुनागमनं, अनागन्ता पुरिसो मच्चुधेय्या''ति॥

''छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं; छन्दविनया अघविनयो; अघविनया दुक्खविनयो''ति॥

''न ते कामा यानि चित्रानि लोके, सङ्कप्परागो पुरिसस्स कामो।
तिट्ठन्ति चित्रानि तथेव लोके, अथेत्थ धीरा विनयन्ति छन्दं॥

(संस्कृतच्छाया) 4. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्याऽरामे। अथ खलु सम्बहुलाः सतुल्लपकायिकाः देवताः अभिक्रान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवने अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रामिषुः, उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते स्थिता। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता भगवतः सन्तिकम् इमां गाथामभाषिष्ट—

"न सन्ति कामाः मनुजेषु नित्याः, सन्तीह कमनीयाः येषु बद्धाः।
येषु प्रमत्तः अपुनरागमनम्, अनागन्तारः पुरुषाः मृत्युधेयत्''इति॥

"छन्दजम् अघं छन्दजं दुःखम्; छन्दविनयात् अघविनयः; अघविनयात् दुःखविनयः''इति॥

"न ते कामाः यानि चित्राणि लोके, संकल्परागः पुरुषस्य कामः।
तिष्ठन्ति चित्राणि तथैव लोके, अथात्र धीरा विनयन्ति छन्दः॥

(हिन्दी) 4. एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवन मे विहार कर रहे थे। उस समय, बहुत से स्वतुल्यप्रकायिक देवता चाँदनी रात्रि में...पूर्ववत्...खड़े हो गये।

''मनुष्यों के चित्त में उत्पन्न होने वाली कामवासनाएं नित्य (स्थायी) नहीं हैं।

फिर भी वे चित्र विचित्र वासनाएँ पुरुषों को संसार में आसक्त किये रहती हैं जिन से वह संसार में फँसा रहता है। जिनमें फंस कर मनुष्य अपना लक्ष्य भूल जाते हैं और अन्त में वे अपुनरागम (निर्वाण) को न प्राप्त कर बार बार मृत्युमुख में गिरते रहते हैं।

''कामना से पाप उत्पन्न होता है, कामना से ही दुःख उत्पन्न होता है। इसके विपरीत, कामना की निवृत्ति से पाप निवृत्त होता है, कामना की ही निवृत्ति से दुःख निवृत्त होता है।

''संसार के ये सुन्दर पदार्थ 'काम' नहीं हैं, अपितु पुरुषों का इनके प्रति जो मानसिक सङ्कल्प या राग है वही 'काम' है। यदि साधक पुरुष अपनी वासना को शान्त कर ले तो ये सांसारिक पदार्थ यहीं पड़े रह जाते हैं। तब ज्ञानियों की उन के प्रति कोई इच्छा नहीं रह जाती।

''कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मिममसज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा॥
''पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा, अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे।
तं छिन्नगन्थं अनिघं निरासं, परियेसमाना नाज्झगमुं।
देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा सब्बनिवेसनेसू''ति॥
''तं चे हि नाद्दक्खुं तथाविमुत्तं (इच्चायस्मा मोघराजा),
देवा मनुस्सा इध वा हुरं वा।
नरुत्तमं अत्थचरं नरानं, ये तं नमस्सन्ति पसंसिया ते''ति॥
''पसंसिया ते पि भवन्ति भिक्खू (मोघराजाति भगवा),
ये तं नमस्सन्ति तथाविमुत्तं।
अञ्ञाय धम्मं विचिकिच्छं पहाय, सङ्गातिगा ते पि भवन्ति भिक्खू''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "क्रोधं जहेत् विप्रजहेत् मानम्, संयोजनं सर्वम् अतिक्रमेत्।
तं नामरूपे असज्यमानम्, अकिञ्चनं नाऽनुपतन्ति दुःखानि॥
"प्राहासीत् शंका न विमानमध्यगमत्, अच्छिनत् तृष्णाम् इह नामरूपे।
तं छिन्नग्रन्थम् अनिघम् निराशम्, पर्येषमाणा नाध्यगमन्।
देवाः मनुष्या इह वा दूरं वा, स्वर्गेषु वा सर्वनिवेशनेषु''इति॥
"तं चेत् नापश्यन् तथाविमुक्तम् (इति आयु. मोघराजा) देवाः मनुष्या इह वा दूरं वा।
नरोत्तमम् अर्थचरन्तं नराणाम्, ये तं नंस्यन्ति प्रशंस्यास्ते''इति॥
"प्रशंस्यास्तेऽपि भवन्ति भिक्षवः (मोघराजेति भगवान्),
ये तं नंस्यन्ति तथाविमुक्तम्।
आज्ञाय धर्मं विचिकित्सां प्रहाय, सङ्घातिगाः तेऽपि भवन्ति भिक्षवः''इति॥

(हिन्दी) ''इसके लिये साधक को इतना ही करना है कि वह क्रोध का त्याग कर दे। मान को स्वचित्त से पूर्णतः हटा दे। सभी सांसारिक बन्धनों को काटकर गिरा दे। ऐसे साधक को जो नाम रूप के प्रति अनासक्त है, त्यागी है, उसको सांसारिक दुःख नहीं सताते॥ तब उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख इस गाथा के माध्यम से यह निवेदन किया- ''जिसने आकांक्षाओं (ग्रन्थियों) का त्याग कर दिया है, जो सङ्कल्प विकल्प से दूर हो चुका है, जिसने नाम रूप के प्रति जायमान तृष्णा को काट डाला है, ऐसा निर्ग्रन्थ निष्पाप एवं निरासक्त ज्ञानी पुरुष देवताओं एवं मनुष्यों द्वारा इस लोक, स्वर्ग लोक अथवा किसी भी लोक में खोजने पर भी नहीं मिल पाता॥''तब आयुष्मान् मोघराज ने कहा- ''यदि देव एवं मनुष्य इस लोक या परलोक में उस को नहीं देख पाये तो ऐसे परमार्थ के ज्ञाता नरश्रेष्ठ को जो प्रणाम करते हैं वे धन्य हैं, प्रशंसा के योग्य हैं।'' भगवान् ने कहा-''मोघराज! वे भिक्षु धन्य हैं जो वैसे ज्ञानी एवं मुक्त मनुष्य को प्रणाम करते हैं। वे भिक्षुजन धर्मज्ञान प्राप्त कर तथा सांसारिक संशयों को हटाकर सभी बन्धनों से ऊपर उठ जाते हैं''।

1.4.5. उज्झानसञ्ञिसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला उज्झानसञ्ञिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा वेहासं अट्ठंसु। वेहासं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अञ्ञथा सन्तमत्तानं, अञ्ञथा यो पवेदये।
निकच्च कितवस्सेव, भुत्तं थेय्येन तस्स तं॥
''यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे।
अकरोन्तं भासमानानं, परिजानन्ति पण्डिता''ति॥
''न यिदं भासितमत्तेन, एकन्तसवनेन वा।
अनुक्कमितवे सक्का, यायं पटिपदा दळ्हा।

(संस्कृतच्छाया) 5. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्याऽऽरामे। अथ खलु सम्बहुलाः उद्ध्यानसंज्ञिकाः देवताः अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रामिषुः, उपसङ्क्रम्य विहायसम् अस्थुः। विहायसम् स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

"अन्यथा सन्तमात्मानम्, अन्यथा यः प्रवेदयेत्।
निकृष्ट कितवस्यैव, भुक्तम् स्तेयेन तस्य तत्॥
"यद्धि कुर्यात् तद्धि वदेत्, यन्न कुर्यात् तन्न वदेत्।
अकुर्वन्तं भाषमाणानाम्, परिजानन्ति पण्डिताः''इति॥
"नेदं भाषितमात्रेण एकान्ते श्रवणेन वा।
अनुक्रमितुं शक्या, येयं प्रतिपदा दृढा।

(हिन्दी) 5. एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब कुछ उद्ध्यानसंज्ञी (दोषारोपण की चेतनायुक्त) देवता चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को अपनी आभा से चमकाते हुए भगवान् के सम्मुख आये। आकर आकाश में खड़े हो गये। आकाश में खड़े हुए उन देवताओं में से एक ने (भगवान् को लक्ष्य कर) ये गाथा कहीं-

''अपना अन्यथा आचरण रहते हुए भी अपने को अन्य प्रकार का बताने वाला पुरुष धूर्तता एवं ठगी करता हुआ मानो चोरी के ही भोग भोगता है। ''अतः जो करे वही बताना चाहिये, जो न करे उसे नहीं बताना चाहिये। न किये हुए को अपना बताने वाले की एक न एक दिन विद्वान् लोग वास्तविकता जान ही लेते हैं। अन्त में वह उनकी निन्दा का पात्र ही होता है।''

भगवान् ने उत्तर दिया-''यह केवल कहने या सुननेमात्र से नहीं किया जा सकता; क्योंकि (साधक का) यह मार्ग इतना कठिन है कि ज्ञानी पुरुष ही इसकी साधना द्वारा मार से मुक्त हो पाते हैं।

याय धीरा पमुच्चन्ति, झायिनो मारबन्धना॥

''न वे धीरा पकुब्बन्ति, विदित्वा लोकपरियायं।

अञ्ञाय निब्बुता धीरा, तिण्णा लोके विसत्तिकं''ति॥

अथ खो ता देवतायो पथवियं पतिट्ठहित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोचुं– ''अच्चयो नो, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, या मयं भगवन्तं आसादेतब्बं अमञ्ञिम्हा। तासं नो, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया''ति। अथ खो भगवा सितं पात्वाकासि। अथ खो ता देवतायो भिय्योसोमत्ताय उज्झायन्तियो वेहासं अब्भुग्गञ्छुं। एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अच्चयं देसयन्तीनं, यो चे न पटिगण्हति।

कोपन्तरो दोसगरु, स वेरं पटिमुञ्चती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) यया धीराः प्रमुच्यन्ते, ध्यानिनः मारबन्धनात्॥

"न वै धीराः प्रकुर्वन्ति, विदित्वा लोकपर्यायम्।

आज्ञाय निवृत्ताः धीराः, तीर्णाः लोके विसक्तिकाम्''इति॥

अथ खलु ताः देवताः पृथिव्यां प्रतिष्ठाय भगवतः पादयोः शिरसा निपत्य भगवन्तम् एतदवोचन्—-अत्ययः वयम्, भदन्त! अत्यगमन् यथाबालं यथामूढं यथा अकुशलं, ये वयं भगवन्तम् अपसादयितव्यम् अमंस्महि। तान् अस्मान्, भदन्त! भगवान् अत्ययम् अत्ययतः प्रतिगृह्णातु आयतिं संवराय''इति। अथ खलु भगवान् स्मितम् प्रादुरकार्षीत्। अथ खलु ताः देवताः भूयसः मात्रया उद्ध्यायन्त्यः विहायसम् अभ्युदगमन्। एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

"अत्ययम् देशयतीना, यः चेन्न प्रतिगृह्णाति।

कोपान्तरो दोषगुरुः, स वैरं प्रतिमुञ्चति''इति॥

(हिन्दी) ''ज्ञानी पुरुष ऐसा कार्य कभी नहीं करते। वे संसार की गतिविधि (मर्यादा) जान कर ही आचरण करते हुए निर्वाण तक पहुंचते हैं तथा इस भयानक भवसागर को निस्तृष्ण होकर उसे पार कर जाते हैं॥''

तब उन देवताओं ने पृथ्वी पर आकर भगवान् के श्रीचरणों में अपना शिर झुकाकर कहा- ''भन्ते! हम लोगों से भयङ्कर प्रमाद (अत्यय) हुआ। मूर्ख के समान, मूढ के समान, अविवेकी के समान आप को सिखाना चाहा। अतः श्रीमन्! हमारे इस अपराध को प्रमाद समझते हुए क्षमा करें, जिससे हमारा भविष्य में हित हो, कल्याण हो।'' यह सुनकर भगवान् मुस्करा दिये। तब वे देवता प्रायश्चित्त करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाश मार्ग से ही पुनः लौट गये। परन्तु उनमें से एक देवता वहीं रुक कर भगवान् से यह कहने लगा-

''दोष करने वाले देवताओं द्वारा दोष बताये जाने पर भी जो उसे स्वीकार नहीं करता, उसे क्षमा नहीं करता, मन में उस के प्रति क्रोध करता हुआ उसके प्रति वैर ही बांधता है।''

''अच्चयो चे न विज्जेथ, नोचिधापगतं सिया।
वेरानि न च सम्मेय्युं, केनीध कुसलो सिया''ति॥
''कस्सच्चया न विज्जन्ति, कस्स नत्थि अपागतं।
को न सम्मोहमापादि, को च धीरो सदा सतो''ति॥
''तथागतस्स बुद्धस्स, सब्बभूतानुकम्पिनो।
तस्सच्चया न विज्जन्ति, तस्स नत्थि अपागतं।
सो न सम्मोहमापादि, सो व धीरो सदा सतो''ति॥
''अच्चयं देसयन्तीनं, यो चे न पटिगण्हति।
कोपन्तरो दोसगरु, स वेरं पटिमुञ्चति।
तं वेरं नाभिनन्दामि, पटिग्गण्हामि वोच्चयं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "अत्ययः चेन्न विद्येत, नो चेत् इह अपगतं स्यात्।
वैराणि न च शाम्येयुः कस्मादिह कुशलः स्यात्''इति॥
''कस्यात्ययाः न विद्यन्ते, कस्य नास्ति अपागतम्।
को न सम्मोहमापद्यत, कश्च धीरः सदा स्मृतः''इति॥
"तथागतस्य बुद्धस्य, सर्वभूतानुकम्पिनः।
तस्य अत्ययाः न विद्यन्ते, तस्य नास्ति अपागतम्।
सः न सम्मोहमापद्यत, स एव धीरः सदा स्मृतः''इति॥
"अत्ययं देशयतीनाम्, यश्चेन्न प्रतिगृह्णाति।
कोपान्तरो दोषगुरुः, स वैरं प्रतिमुञ्चति।
तं वैरं नाभिनन्दामि, प्रतिगृह्णामि वोऽत्ययम्''इति॥

(हिन्दी) भगवान्-''यदि संसार में कोई प्रमाद न भी करे, तथा उसके वैर शान्त न भी हो जायं तो भला वह कुशल कैसे हो सकता है!''

देवता-''प्रमाद कौन नहीं करता! भूल किससे नहीं होती! इस संसार के चकाचौंध में कौन मुग्ध नहीं होता! कौन पण्डित सदा स्मृतिमान् रहा है?''

भगवान्- ''जो तथागत बुद्ध सभी प्राणियों पर कृपालु हैं, उनसे कोई प्रमाद नहीं होता, उनसे कोई भूल नहीं होती, वे इस संसार के(चकाचौंध) से भ्रम में नहीं पड़ते! वे सदा सावधान एवं स्मृतिमान् रहते हैं।

''अपना प्रमाद (अपराध) स्वयं स्वीकार करने वाले को जो क्षमा नहीं कर देता, तथा उसके प्रति वैर बांध लेता है' ऐसा कहने वाले के प्रति मैं कोई वैर भावना नहीं रखता।

अतः मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा करता हूँ।''

1.4.6. सद्धासुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुला सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सद्धा दुतिया पुरिसस्स होति, नो चे अस्सद्धियं अवतिट्ठति।
यसो च कित्ती च तत्वस्स होति, सग्गं च सो गच्छति सरीरं विहाया''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, संयोजनं सब्बमतिक्कमेय्य।
तं नामरूपस्मिममसज्जमानं, अकिञ्चनं नानुपतन्ति सङ्गा''ति॥

''पमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।

(संस्कृतच्छाया) 6. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्याऽऽरामे। अथ खलु सम्बहुलाः सतुल्लपकायिकाः देवताः अभिक्रान्तायां रात्र्याम् अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रामिषुः, तत्र उपसङ्क्रम्य एकान्तम् अस्थुः। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

"श्रद्धा द्वितीया पुरुषस्य भवति, न च अश्रद्दधन् अवतिष्ठति।
यशश्च कीर्तिश्च ततोऽस्य भवति, स्वर्गञ्च स गच्छति शरीरं विहाय''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

"क्रोधं जह्याद् विप्रजह्यात् मानम्, संयोजनं सर्वमतिक्रमेत्।
तं नामरूपेऽसजन्तम्, अकिञ्चनं नानुपतन्ति सङ्गाः"इति॥

"प्रमादमनुयुञ्जन्ति बालाः दुर्मेधिनः जनाः।

(हिन्दी) 6. एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवन मे विहार कर रहे थे।उस समय, बहुत से स्वतुल्यप्रकायिक देवता चान्दनी रात्रि में...पूर्ववत्...खड़े हो गये। तब उनमें से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख इस गाथा के माध्यम से यह कहा-

''जिस साधक पुरुष की (धर्म के प्रति) सदा श्रद्धा बनी रहती है, जो उसके प्रति कभी श्रद्धारहित नहीं होता, ऐसे पुरुष की लोक में कीर्ति एवं प्रशंसा दिनानुदिन फैलती ही रहती है, तथा देहपात के बाद वह सीधा स्वर्ग लोक में पहुंचता है।''

तभी दूसरे देवता ने इन गाथाओं के माध्यम से यह कहा-''जो क्रोध का सर्वथा त्याग कर दे, वृथाभिमान से पूर्णतः मुक्त हो जाय, सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाय। ऐसे नाम एवं रूप के प्रति अनासक्त रहने वाले तथा अपरिग्रही (त्यागी) पुरुष को संसार की कोई आसक्ति नहीं रह जाती।''

भगवान्- ''मूर्ख एवं कुबुद्धि जन ही प्रमाद किया करते हैं।

अप्पमादञ्च मेधावी, धनं सेट्ठं व रक्खति॥
''मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरति सन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति परमं सुखं''ति॥

1.4.7. समयसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। अथ खो चतुन्नं सुद्धावासकायिकानं देवतानं एतदहोसि– ''अयं खो भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं महावने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि; दसहि च लोकधातूहि देवता येभुय्येन सन्निपतिता होन्ति भगवन्तं दस्सनाय भिक्खुसङ्घं च। यंनून मयं पि येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्याम;

(संस्कृतच्छाया) अप्रमादं च मेधावी, धनं श्रेष्ठमिव रक्षति॥
"मा प्रमादमनुयुजीत, मा कामरतिः संस्तवम्।
अप्रमत्तो हि ध्यायन्, प्राप्नोति परमं सुखम्''इति॥

7. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् शाक्येषु विहरति कपिलवस्तौ महावने महता भिक्षुसङ्घेन सार्धं पञ्चमात्रैः भिक्षुशतैः सर्वैरेव अर्हद्भिः दशभिः लोकधातुभिः देवताः यद् भूयसा सन्निपतिताः भवन्ति भगवन्तं दर्शनाय भिक्षुसंघञ्च। अथ खलु चतुर्णां शुद्धावासकायिकानां देवतानाम् एतदभूत्— "अयं खलु भगवान् शाक्येषु विहरति कपिलवस्तुनः महावने महताभिक्षुसंघेन सार्धं पञ्चमात्रैः भिक्षुशतैः सर्वैरेव अर्हद्भिः दशभिः लोकधातुभिः देवता यद् भूयसा सन्निपतिताः भवन्ति भगवन्तं दर्शनार्थं भिक्षुसंघञ्च। यन्नूनं वयमपि यत्र भगवान् तत्रोपसङ्क्राम्येम;

(हिन्दी) ज्ञानी पुरुष तो अपने अप्रमाद (स्मृति) की रक्षा में उसी तरह तत्पर रहते हैं, जैसे कोई व्यापारी अपने धन की रक्षा में तत्पर रहता है। ''अतः किसी भी प्रकार के प्रमाद में न लगे। सांसारिक कामराग का साथ न पकड़ो; क्यों कि प्रमादरहित होकर निर्वाण की ओर ध्यान लगाने वाला साधक ही परमसुख (निर्वाण) को कर पाता है।''

7. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध शाक्य देश में स्थित कपिलवस्तु नगर के पास महावन में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, जिनमें सभी भिक्षु अर्हत्व प्राप्त कर चुके थे, विहार कर रहे थे। उस समय दशों लोकधातुओं से चलकर अनेक देवता भगवान् एवं भिक्षुसङ्घ के दर्शनहेतु आते रहते थे। तब चार शुद्धावासकायिक देवताओं के मन में यह विचार हुआ-

''यह भगवान् शाक्य देश में स्थित कपिलवस्तु नगर के पास महावन में पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विराजमान हैं। भगवान् और भिक्षुसंघ के दर्शनार्थ तो क्यों न हम लोग भी भगवान् दशों लोक के बहुत से देवता आ इकट्ठे हुए हैं। तो क्यों न हम लोग भी भगवान् के पास

उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके पच्चेकं गाथं भासेय्यामा''ति।

अथ खो ता देवता– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य। एवमेव– सुद्धावासेसु देवेसु अन्तरहिता भगवतो पुरतो पातुरहेसुं। अथ खो ता देवता भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''महासमयो पवनस्मिं, देवकाया समागता।
आगतम्ह इमं धम्मसमयं, दक्खिताये अपराजितसङ्घं''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''तत्र भिक्खवो समादहंसु, चित्तमत्तनो उजुकं अकंसु।
सारथी व नेत्तानि गहेत्वा, इन्द्रियानि रक्खन्ति पण्डिता''ति॥

(संस्कृतच्छाया) उपसङ्क्रम्य भगवतोऽन्तिके प्रत्येकां गाथां भाषेमहि"इति।

अथ खलु ताः देवताः—तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः सङ्कुचितं बाहुं वा प्रसारयेत्, प्रसारितं च बाहुं सङ्कोचयेत्। एवमेव शुद्धावासेषु देवेषु अन्तर्हित्य भगवतः पुरतः प्रादुरभूवन्। अथ खलु सा देवताः भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

"महासमयो वनखण्डे, देवकायाः समागताः।
आगतोऽस्मि इमं धर्मसमयम्, दर्शनाय अपराजितसंघम्''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट—

"तत्र भिक्षवः समादधुः, चित्तमात्मनः ऋजुमकार्षुः।
सारथि इव नद्धान् गृहीत्वा, इन्द्रियाणि रक्षन्ति पण्डिताः"इति॥

(हिन्दी) के दर्शनहेतु चलें। तथा वहां चल कर हममें से प्रत्येक देवता एक एक गाथा के माध्यम से भगवान् बुद्ध से संवाद करें''।

तब वे देवता, जैसे कोई बलवान् अपनी समेटी बाँह को पसार देता है, और पसारी बाँह को समेट लेता है; उसी तरह शुद्धावास देवलोक में अन्तर्धान होकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। वहाँ एक ओर खड़े हुए उन देवताओं में से एक देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला-

''इस वनखण्ड में भिक्षुसङ्घ की विशाल धर्मसभा विराजमान है। देवगण भी यहां आकर एकत्र हुए हैं। इस धर्मसभा में हम लोग भी इस अपराजित भिक्षुसङ्घ के दर्शनार्थ आये हैं। तब एक अन्य देवता ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''इस धर्मसभा में सभी भिक्षु समाधिनिष्ठ हैं, सभी ने अपने चित्त को विकाररहित कर सरल बना लिया है। जैसे रथ का सारथि घोड़ों की लगाम पकड़कर उन्हें नियन्त्रित रखता है, उसी तरह उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रखा है॥''

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''छेत्वा खीलं छेत्वा पलिघं, इन्दखीलं ऊहच्च मनेजा।
ते चरन्ति सुद्धा विमला, चक्खुमता सुदन्ता सुसुनागा''ति॥

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

ये केचि बुद्धं सरणं गतासे, न ते गमिस्सन्ति अपायभूमिं।
पहाय मानुसं देहं, देवकायं परिपूरेस्सन्ती''ति॥

1.4.8. सकलिकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये। तेन खो पन समयेन भगवतो पादो सकलिकाय खतो होति। भुसा सुदं भगवतो वेदना वत्तन्ति सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा; ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथामभाषिष्ट।

"छित्वा कीलम् छित्वा परिघम्, इन्द्रकीलम् उद्धृत्य अनेजसः।
ते चरन्ति शुद्धाः विमलाः, चक्षुष्मन्तः सुदन्ताः शिशुनागाः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"ये केचित् बुद्धं शरणं गताः, न ते गमिष्यन्ति अपायभूमिम्।
प्रहाय मानुषं देहम्, देवकायं परिपूरयिष्यन्ति''इति॥

8. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति मद्रकुक्षिमृगदाये। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवतः पादः शकलिकया क्षतः भवति। भृशा स्वित् भगवतः वेदना वर्तते, शारीरिका वेदना दुःखा तीव्रा, क्षरा, कटुका अशाता अमनापा; ताः स्वित् भगवान् स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः। अथ खलु भगवान् चतुर्गुणां संघाटीं प्रज्ञाय दक्षिणेन

(हिन्दी) तभी एक अन्य देवता ने यह गाथा कही- ''राग द्वेष मोह के सभी आवरण स्वचित्त से हटाकर, सांसारिक दृढ बन्धन को नष्ट कर, स्थिरचित्त हो कर चतुर शिक्षित एवं युवा हाथी की तरह शुद्ध और निर्मल मार्ग पर विचरण करते हैं।'' अन्त में, एक देवता ने भी भगवान् के सम्मुख यह बात कही- ''जो साधक पुरुष भगवान् बुद्ध की शरण में आ गये हैं उनका कभी अपाय (नरक, प्रेत लोक, असुर एवं तिर्यग्) योनियों में पतन नहीं होगा। अपितु वे इस मानव देहपात के बाद देवलोक में ही उत्पन्न होंगे।''

8. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह स्थित मद्रकुक्षि मृगदाव में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् का एक चरण पत्थर के किसी टुकड़े के आघात से क्षत विक्षत हो गया। उसके कारण भगवान् के शरीर में दुःखद तीव्र कठोर एवं असह्य वेदनाएं होने लगीं। भगवान् स्थिरचित्त एवं स्मृतिमान् तथा सम्प्रज्ञ होकर उन वेदनाओं को सहन कर रहे थे। तब भगवान् चतुर्गुण सङ्घाटी को बिछवाकर, दाहिनी करवट लेटकर,

पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो।

अथ खो सत्तसता सतुल्लपकायिका देवतायो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं मद्दकुच्छिं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो एका देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''नागो वत, भो, समणो गोतमो; नागवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''सीहो वत, भो, समणो गोतमो; सीहवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''आजानीयो वत, भो,

---

(संस्कृतच्छाया) पार्श्वेण सिंहशय्यां कल्पयति पादे पादम् अत्याधाय स्मृतः सम्प्रज्ञानः।

अथ खलु सप्तशतं सतुल्लपकायिकाः देवताः अभिक्रान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं मद्रकुक्षिम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्, उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्ते स्थिता खलु एका देवता भगवतोऽन्तिके इदम् उदानमवादीत्-"नागोवत्, भोः! श्रमण गौतमः, नागवताः च समुपपन्नाः शारीरिकाः वेदना दुःखा तीव्रा, क्षरा, कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः" इति।

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत्— "सिंहवत्, भोः! श्रमण गौतमः! सिंहवता च समुपपन्ना शारीरिका वेदना दुःखा तीव्रा क्षरा कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत्— "आजानेयवत्, भोः!

(हिन्दी) सिंहशय्या आसन लगा कर कुछ हटा कर पैर पर पैर रखते हुए स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर लेट गये। उसी समय सात सौ सतुल्यप्रकापिक देवता चाँदनी रात में समस्त मद्रकुक्षि मृगदाव को आलोकित करते हुए भगवान् के सम्मुख पहुंचे। पहुंच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े उन देवताओं में से एक देवता ने यह हर्षोद्गार प्रकट किया-''अरे! ये श्रमण गौतम बलशाली हाथी के तुल्य हैं। ये अपने इसी नागबल के सहारे से इन दुःखद, तीव्र एवं कठोर तथा असह्य शारीरिक वेदनाओं को स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर सहन कर रहे है''।

तब दूसरे किसी देवता ने भी यह हर्षोद्गार प्रकट किया-''अरे! ये श्रमण गौतम सिंह के समान हैं। अपने उस सिंह-बल से ही ये इन दुःखद तीव्र एवं कठोर तथा असह्य शारीरिक वेदनाओं को स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर सहन कर रहे हैं।'' तब किसी अन्य देवता ने भी यह हर्षोद्गार प्रकट किया- ''अरे! ये श्रमण गौतम श्रेष्ठ अश्वसदृश (आजानेय बल) हैं;

समणो गोतमो; आजानीयवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''निसभो वत, भो, समणो गोतमो; निसभवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''धोरय्हो वत, भो, समणो गोतमो; धोरय्हवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''दन्तो वत, भो, समणो गोतमो; दन्तवता च समुप्पन्ना सारीरिका वेदना दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो''ति।

(संस्कृतच्छाया) श्रमण गौतमः! आजानेयवता च समुपपन्ना शारीरिका वेदना दुःखा तीव्रा क्षरा कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत्— ''वृषभवत्, भोः श्रमण गौतमः! वृषभ वता च समुपपन्ना शारीरिका वेदना दुःखा तीव्रा क्षरा कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत्— ''धौरेयवत्, भोः श्रमण गौतमः! धौरयवता च समुपपन्ना शारीरिका वेदना दुःखा तीव्रा क्षरा कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः''इति॥

अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत् — ''दान्तवत्, भोः! श्रमण गौतमः! दान्तवता च समुपपन्ना शारीरिकवेदना दुःखा तीव्रा क्षरा कटुका अशाता अमनापा स्मृतः सम्प्रज्ञानः अधिवासयति अविहन्यमानः''इति॥

(हिन्दी) ये अपने अनुपम अश्वबल के आधार पर ही इन दुःखद तीव्र एवं कठोर तथा असह्य शारीरिक वेदनाओं को स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर सहन कर रहे हैं।

तब दूसरे किसी देवता ने भी यह हर्षोद्गार प्रकट किया- ''अरे! ये श्रमण गौतम वृषभसदृश (बेजोड़ बल) हैं। ये अपने वृषभ बल के सहारे से ही इन दुःखद तीव्र एवं कठोर तथा असह्य शारीरिक वेदनाओं को स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर सहन कर रहे हैं''।

तब दूसरे किसी देवता ने....पूर्ववत्...धोरेय्य (भारी भार वाहक)....दान्त (संयमी).....।

तब किसी अन्य देवता ने तब किसी अन्य देवता ने भी यह हर्षोद्गार प्रकट किया- ''अरे! इस श्रमण के समाधि के अभ्यास से विमुक्त चित्त को देखो! इनका यह चित्त न उठा है, न दबा है, न कोई प्रयत्न कर रोका गया है; अपितु यह पूर्णतः स्वाभाविक है।

अथ खो अपरा देवता भगवतो सन्तिके इमं उदानं उदानेसि– ''पस्स समाधिं सुभावितं चित्तञ्च सुविमुत्तं, न चाभिनतं न चापनतं न च ससङ्खारनिग्गय्हवारितगतं। यो एवरूपं पुरिसनागं पुरिससीहं पुरिसआजानीयं पुरिसनिसभं पुरिसधोरय्हं पुरिसदन्तं अतिक्कमितब्बं मञ्ञेय्य किमञ्ञत्र अदस्सना''ति।

''पञ्चवेदा सतं समं, तपस्सी ब्राह्मणा चरं।
चित्तं च नेसं न सम्मा विमुत्तं, हीनत्थरूपा न पारङ्गमा ते॥
''तण्हाधिपन्ना वतसीलबद्धा, लूखं तपं वस्ससतं चरन्ता।
चित्तं च नेसं न सम्मा विमुत्तं, हीनत्थरूपा न पारङ्गमा ते॥
''न मानकामस्स दमो इधत्थि, न मोनमत्थि असमाहितस्स।
एको अरञ्ञे विहरं पमत्तो, न मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु अपरा देवता भगवतोऽन्तिके इदमुदानम् अवादीत्— "पश्य समाधिं सुभावितचित्तं सुविमुक्तं च, न चाभिनतं न चापनतं न च संस्कारनिगृह्यवारितगतम्। यः एवं रूपम् पुरुषनागं पुरुषसिंहं पुरुष आजानेयं पुरुषर्षभं पुरुषधौरेयं पुरुषदान्तं अनति-क्रमितव्यं मन्येत, किमन्यत्र अदर्शनः"इति।

"पञ्चवेदान् वर्षशतम्, तपस्विब्राह्मणाः चरन्तः।
चित्तं च तेषां न सम्यग् विमुक्तम्, हीनार्थरूपाः न पारङ्गमाः ते॥
"तृष्णाधिपन्नाः व्रतशीलबद्धाः, रुक्षं तपः वर्षशतं चरन्तः।
चित्तं च तेषां न सम्यग् विमुक्तम्, हीनार्थरूपाः न पारङ्गमाः ते॥
''न मानकामस्य दम इहास्ति, न मौनमस्ति असमाहितस्य।
एकोऽरण्ये विहरन् प्रमत्तः, न मृत्युध्येयस्य तरेत् पारम्"इति॥

(हिन्दी) जो ऐसे को साधारण नाग, सिंह, आजानीय, वृषभ, भारवाहक तथा संयमी कह कर चुप हो जाता है वह अपने अज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रकट करता''।

''कोई ब्राह्मण भले ही सौ वर्ष तक पंचांग वेद का अभ्यास करता रहे। सौ वर्ष भले ही तपस्या करता रहे, किन्तु इन कर्मों से उस का चित्त पूर्णतः विमुक्त नहीं हो सकता क्यों कि हीन लक्ष्य वाले पारगामी नहीं जा सकते।

''कोई तृष्णा से प्रेरित तथा शीलव्रतपरामर्शयुक्त होकर सौ वर्षों तक रूक्ष तपस्या करता रहे; परन्तु इन कर्मों से उसका चित्त सांसारिक बन्धनों से पूर्णतः विमुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि हीन लक्ष्यवाले कर्मों से पारगामी नहीं हो सकते।

''आत्मदृष्टि पुरुष आत्मसंयमी नहीं हो सकता, इसी तरह असमाहित मुनिभाव को प्राप्त नहीं हो सकता, वह जंगल में जाकर अकेला भी प्रमादयुक्त होकर साधना कर के मृत्युराज के बन्धन से पार नहीं जा सकता।

''मानं पहाय सुसमाहितत्तो, सुचेतसो सब्बधि विप्पमुत्तो।
एको अरञ्ञे विहरमप्पमत्तो, स मच्चुधेय्यस्स तरेय्य पारं''ति॥

1.4.9. पठमपज्जुन्नधीतुसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं महावनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''वेसालियं वने विहरन्तं, अग्गं सत्तस्स सम्बुद्धं।
कोकनदाहमस्मि अभिवन्दे, कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता॥
''सुतमेव पुरे आसि, धम्मो चक्खुमतानुबुद्धो।
साहं दानि सक्खि जानामि, मुनिनो देसयतो सुगतस्स॥

(संस्कृतच्छाया) "मानं प्रहाय सुसमाहितात्मा, सुचेतसः सर्वाधिविप्रमुक्तः।
एकोऽरण्ये विहरन् प्रमत्तः, स मृत्युध्येयस्य तरेत् पारम्''इति॥

9. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्यां विहरति महावने कूटागारशालायाम्। अथ खलु कोकनदा पर्जन्यस्य(प्रद्युम्न) दुहिता अभिक्रान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णा केवलकल्पं महावनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्तम् अतिष्ठत्। एकान्तं स्थिता खलु सा देवता कोकनदा पर्जन्यस्य दुहिता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

"वैशाल्यां वने विहरन्तम्, अग्रं सत्त्वेषु सम्बुद्धम्।
कोकनदाहमस्मि अभिवन्दे, कोकनदा पर्जन्यस्य दुहिता॥
"श्रुतम् एव पुरा आसीत्, धर्मः चक्षुष्मतानुबुद्धः।
साहमिदानीं साक्षात् जानामि, मुनिं देशयन्तं सुगतम्॥

(हिन्दी) ''क्योंकि वही साधक मृत्युराज के बन्धन के पार जा सकता है जो मान छोड़कर, सुसमाहित चित्त होकर, सावधानीपूर्वक जंगल में एकाकी जा कर साधना में निरन्तर लगा रहे।''

9. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध वैशाली के महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे। तब कोई कोकनदा नामक पर्जन्यधीता (मेघपुत्री) चांदनी रात्रि में उस महावन को अपने तेज से आलोकित करती हुई भगवान् के सम्मुख आयी। वहां आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गयी। एक ओर खड़ी उस पर्जन्यधीता कोकनदा देवता ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएं कहीं-

''वैशाली के महावन में समाधिरत पुरुषोत्तम भगवान् बुद्ध को मैं कोकनदा नामक पर्जन्यधीता प्रणाम करती हूं। ''आज से पहले तो मैंने इस आर्य धर्म के विषय में सुना ही था जिसको सर्वज्ञ बुद्ध ने साक्षात् किया है। आज मैं उस को साक्षात् जान रही हूँ।

''ये केचि अरियं धम्मं, विगरहन्ता चरन्ति दुम्मेधा।
उपेन्ति रोरुवं घोरं, चिररत्तं दुक्खं अनुभवन्ति॥
''ये च खो अरिये धम्मे, खन्तिया उपसमेन उपेता।
पहाय मानुसं देहं, देवकाय परिपूरेस्सन्ती''ति॥

1.4.10. दुतियपज्जुन्नधीतुसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो चूळकोकनदा पज्जुन्नस्स धीता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं महावनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता चूळकोकनदा पज्जुन्नस्स धीता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''इधागमा विज्जुपभासवण्णा, कोकनदा पज्जुन्नस्स धीता।
बुद्धं च धम्मं च नमस्समाना, गाथा चिमा अत्थवती अभासि॥

(संस्कृतच्छाया) "ये केचित् आर्यधर्मम्, विगर्हन्ताः चरन्ति दुर्मेधाः।
उपयान्ति रौरवं घोरम्, चिररात्रं दुःखम् अनुभवन्ति॥
"ये च खलु आर्यधर्मे, क्षान्त्या उपशमेन उपेता।
प्रहाय मानुषं देहम्, देवकायं परिपूरयिष्यन्ति''इति॥

10. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्यां विहरति महावने कूटागारशालायाम्। अथ खलु चुल्लकोकनदा पर्जन्यस्य दुहिता अभिक्रान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं महावनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्तम् अतिष्ठत्। एकान्तं स्थिता खलु सा देवता चुल्लकोकनदा पर्जन्यस्य दुहिता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

"इह आगमम् विद्युतप्रभासवर्णा, कोकनदा पर्जन्यस्य दुहिता।
बुद्धञ्च धर्मञ्च नमती, गाथा इमा अर्थवती अभाषिष्ट॥

(हिन्दी) जो कोई मूर्ख इस आर्यधर्म की निन्दा करेंगे वे रौरव नरक में जाकर गिरेंगे। तथा वहाँ चिरकाल तक दुःख भोगेंगे॥ ''इसके विपरीत, जो कोई इस आर्य धर्म का धीरता एवं शान्ति के साथ पालन करते हैं, वे इस मानव देह छोडने के बाद देवलोक में उत्पन्न होते हैं।''

10. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध वैशाली स्थित महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे। तब छोटी कोकनदा पर्जन्यधीता चाँदनी रात्रि में...पूर्ववत्...पहुँची। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर...ये गाथाएँ कहीं-

''हाँ मैं बिजली की चमक जैसी कान्तीवाली, कोकनदा पर्जन्यधीता बुद्ध और धर्म को प्रणाम करते हुए, मैंने यह सार्थक गाथा कही।

''बहुना पि खो तं विभजेय्यं, परियायेन तादिसो धम्मो।
संखित्तमत्थं लपयिस्सामि, यावता मे मनसा परियत्तं॥
''पापं न कयिरा वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सब्बलोके।
कामे पहाय सतिमा सम्पजानो, दुक्खं न सेवेथ अनत्थसंहितं''ति॥

सतुल्लपकायिकवग्गो चतुत्थो।

तस्सुद्दानं- सब्भिमच्छरिना साधु, न सन्तुज्झानसञ्ञिनो।
सद्धा समयो सकलिकं, उभो पज्जुन्नधीतरो ति॥

5. आदित्तवग्गो

1.5.1. आदित्तसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा

(संस्कृतच्छाया) "बहुनाऽपि खलु तं विभजेयम्, पर्यायेण तादृशं धर्मम्।
संक्षिप्तम् अर्थं लपिष्यामि, यावत् मम मनसः पर्यन्तम्।
"पापं न कुर्यात् वचसा मनसा, कायेन वा किञ्चन सर्वलोके।
कामान् प्रहाय स्मृतिमान् सम्प्रज्ञः, दुःखं न सेवेत अनर्थसंहितम्''इति॥

तस्योद्दानम्– सद्भिः मात्सर्येण साधु, न सन्ति उद्ध्यानसंज्ञिनः।
श्रद्धा समयः सकलिकम्, उभे पर्जन्यदुहितारौ इति॥

1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु अन्यतरा देवता अभिक्रान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णा केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य

(हिन्दी) ''यद्यपि मैं ऐसे महान् धर्म के विषय में अनेक प्रकार से कह सकती हूँ; तथापि मैं संक्षेप में ही कहना चाहती हूँ। जहाँ तक मेरी बुद्धि (मन) की पहुंच है। ''इस संसार में आकर मन एवं वचन तथा शरीर से कोई पाप न करें। अपितु सभी प्रकार की वासनाओं का त्याग कर, स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर ऐसा कोई अनर्थकारी कर्म न करे जो परिणाम में दुःखावह हो।''

सुत्त-समुदायइतने सुत्त व्याख्यात हुए हैं-1. सब्भि, 2. मात्सर्य, 3. साधु, 4. न सन्ति, 5. उद्ध्यानसंज्ञी, 6. श्रद्धा, 7. समय, 8. शकलिक, 9. प्रथम पर्जन्यधीता एवं 10. द्वितीय पर्जन्यधीतासुत्त।

1. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाये जेतवन में विहार कर रहे थे। उसी समय चाँदनी रात्रि में कोई देवता समस्त जेतवन को अपनी चमक से चमकाती हुई जहाँ भगवान् थे वहाँ आई, आकर भगवान् से अभिवादन कर

एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''आदित्तस्मिं अगारस्मिं, यं नीहरति भाजनं।
तं तस्स होति अत्थाय, नो च यं तत्थ डय्हति॥
''एवं आदित्तको लोको, जराय मरणेन च।
नीहरेथेव दानेन, दिन्नं होति सुनीहतं॥
''दिन्नं सुखफलं होति, नादिन्नं होति तं तथा।
चोरा हरन्ति राजानो, अग्गि डहति नस्सति॥
''अथ अन्तेन जहति, सरीरं सपरिग्गहं। एतदञ्ञाय मेधावी, भुञ्जेथ च ददेथ च।
दत्वा च भुत्वा च यथानुभावं। अनिन्दितो सग्गमुपेति ठानं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) एकान्तम् अस्थात्। एकान्तं स्थिता खलु सा देवता भगवतोऽन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

"आदीप्ते अगारे, यत् निहरति भाजनम्।
तत् तस्य भवति अर्थाय, न च यत् तत्र दह्यते॥
"एवम् आदीप्तको लोकः, जरसा मरणेन च।
निहरेदेव दानेन, दत्तं भवति सुनिर्हृतम्।
"दत्तं सुखफलं भवति, नादत्तं भवति तत् तथा।
चौराः हरन्ति राजानः, अग्निः दहति नश्यति॥
"अथ अन्तेन जहति, शरीरं सपरिग्रहम्। एतदाज्ञाय मेधावी, भुञ्जीत च दद्यात् च।
दत्वा च भुक्त्वा च यथानुभावम्। अनिन्दितः स्वर्गमुपैति स्थानम्''इति॥

(हिन्दी) एक ओर खड़ा हो गई। एक ओर खड़ी हो वह देवता भगवान् के सम्मुख गाथाओं के माध्यम से यह बोली-''कदाचित् घर में आग लग जाने पर जो वस्तु सुरक्षित बाहर निकाल ली जाती है, वही उसके कार्य (प्रयोजन) की रह जाती है; वह नहीं जो वहीं जलकर भस्म हो जाती है। ''इस सारे लोक में आग लग गई है, जरा की आग, मरण की आग, दान देकर बाहर निकाल लो। दान देकर ही इस संसार में सुरक्षित रहा जा सकता है। दानकर्म ही सुरक्षा में एकमात्र हेतु है। ''दान करने से सुखोपलब्धि होती है, दान न करने पर सुख कहाँ और कैसे मिलेगा? दान करने से बचे धन को या तो चोर चुरा ले जायेंगे, या राजा छीन लेंगे। या उसे कभी आग से जल जाने का भय है, या फिर वह अन्य किसी प्रकार से नष्ट हो जाता है।

''और अन्त में तो सभी कुछ यहीं छूट जाता है-मनुष्य का यह शरीर भी तथा उसकी जीवनपर्यन्त अर्जित समस्त सम्पत्ति भी। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अपनी अर्जित सम्पत्ति का उपभोग करे तथा अवशिष्ट का दान करता रहे।

''इस तरह धर्मपूर्वक स्वार्जित सम्पत्ति का उपभोग एवं दान ही मनुष्य को देवलोक में पहुँचाने का साधन बनते हैं।

1.5.2. किंददसुत्तं

''किंददो बलदो होति, किंददो होति वण्णदो।
किंददो सुखदो होति, किंददो होति चक्खुदो।
को च सब्बददो होति, तं मे अक्खाहि पुच्छितो''ति॥
''अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो।
यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो॥
''सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं।
अमतं ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासती''ति॥

1.5.3. अन्नसुत्तं

''अन्नमेवाभिनन्दन्ति, उभये देवमानुसा।
अथ को नाम सो यक्खो, यं अन्नं नाभिनन्दती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) 2. ''किं ददो बलदो भवति, किं ददो भवति वर्णदः?
किं ददो सुखदः भवति, किं ददो भवति चक्षुदः?
कश्च सर्वददः भवति? तन्मे आख्याहि पृच्छितः''इति॥
''अन्नदो बलदो भवति, वस्त्रदो भवति वर्णदः॥
यानदः सुखदो भवति, दीपदो भवति चक्षुदः।
''सः च सर्वदो भवति, यो ददाति उपाश्रयम्।
अमृतं ददः च सः भवति, यः धर्ममनुशास्ति''इति॥

3. ''अन्नमेवाभिनन्दतः, उभौ देवमनुषौ।
अथ को नाम सः यक्षः, यः अन्नं नाभिनन्दति'' इति॥

(हिन्दी) 2. देवता का प्रश्न- क्या देनेवाला बल देता है? क्या देनेवाला वर्ण देता है? क्या देनेवाला सुख देता है? क्या देनेवाला चक्षु (ज्ञान) देता है?

भगवान् का उत्तर- ''अन्न का देनेवाला बल देता है। (अर्थात् अन्न के दान से दाता को बल मिलता है।) वस्त्र का देने वाला वर्ण प्रदान करता है। वाहन (सवारी) देने वाला सुख प्रदान करता है तथा प्रदीप देने वाला मानो चक्षुर्दान करता है।

''वह दाता तो सब कुछ देने वाना माना जाता है जो किसी बेघर को आवासहेतु घर देता है। तथा लोक में वह पुरुष मानो अमृत ही प्रदान करता है जो दूसरों को धर्मोपदेश करता है।''

3. देवता- ''देवता एवं मनुष्य दोनों ही अन्न की एकान्ततः प्रशंसा करते हैं। ऐसा कौन यक्ष (देवता या प्राणी) है जो अन्न की प्रशंसा न करता हो?''

''ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
''तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥

1.5.4. एकमूलसुतं

''एकमूलं द्विरावट्टं, तिमलं पञ्चपत्थरं।
समुद्दं द्वादसावट्टं, पातालं अतरी इसी''ति॥

1.5.5. अनोमसुतं

''अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं, पञ्ञाददं कामालये असत्तं।
तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे कममानं महेसिं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "ये अन्नं ददति श्रद्धया, विप्रसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिन् लोके परस्मिंश्च॥
"तस्मात् विनीय मत्सरम्, दद्यात् दानं मलाभिभूः।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठाः भवन्ति प्राणिनाम्" इति॥

4. ''एकमूलं द्व्यावृत्तम्, त्रिमलं पञ्चप्रस्तरम्।
समुद्रं द्वादसावर्तम्, पातालम् अतरत् ऋषिः''इति॥

5. "अनोमनाम निपुणार्थदर्शिनम्, प्रज्ञाददं कामालये असक्तम्।
यं पश्यत सर्वविदं सुमेधम्, आर्ये पथे क्रममान्तं महर्षिम्"इति॥

(हिन्दी) भगवान्- ''जो उस अन्न का श्रद्धापूर्वक प्रसन्न चित्त से दान करते हैं, उन्हीं को इस लोक या परलोक में वह अन्न प्राप्त होता है। ''अतः स्वहितैषी पुरुष को कंजूसी का परित्याग कर यह दान अवश्य करना चाहिये, जो कि इस लोक में पापनिवारक भी है तथा पुण्यफलदायक भी है; जिनके सहारे से प्राणी परलोक (स्वर्ग) में स्थायी निवास प्राप्त कर सकता है।''

4. ''एक मूल वाले, दो मुख वाले, तीन मल वाले, पांच विस्तार वाले, बारह भंवर वाले समुद्र तथा पाताल- इन सभी को ज्ञानी पार कर गये। (अट्ठकथा- ''एकमूलं- अविद्या तृष्णा का मूल है, तथा तृष्णा अविद्या का। द्विरावट्टं-वही तृष्णा शाश्वत एवं उच्छेद दृष्टियों के भेद से दो प्रकार (मुख) वाली है। तिमलं- उस (तृष्णा) में राग, द्वेष एवं मोह- ये तीन मल होते हैं। पंचपत्थरं-पांच काम गुण इसके विस्तार हैं। समुद्दं- यह तृष्णा कभी पूर्ण नहीं होती-इस अर्थ में इसको 'समुद' कहा गया है। द्वादसावट्टं-अध्यात्म एवं बाह्य भेद से बारह आयतनों को यहां 'भंवर' कहा गया है। पातालं-तृष्णा के गाम्भीर्य (गहराई) की कोई सीमा नहीं है, अतः इसे 'पाताल' की उपमा दी गयी है।)

5. ''इन अनोम (श्रेष्ठ) नाम वाले, सूक्ष्मद्रष्टा, प्रज्ञा (ज्ञान) के देने वाले, लौकिक कामभोगों में अनासक्त, सर्वज्ञ एवं मेधावी महर्षि को देखो जो आर्य मार्ग पर आगे ही आगे बढ़ते जा रहे हैं।''

1.5.6. अच्छरासुत्तं

''अच्छरागणसङ्घुट्ठं, पिसाचगणसेवितं।
वनन्तं मोहनं नाम, कथं यात्रा भविस्सती''ति॥
''उजुको नाम सो मग्गो, अभया नाम सा दिसा।
रथो अकूजनो नाम, धम्मचक्केहि संयुतो॥
''हिरी तस्स अपालम्बो, सत्यस्स परिवारणं।
धम्माहं सारथिं ब्रूमि, सम्मादिट्ठिपुरेजवं॥
''यस्स एतादिसं यानं, इत्थिया पुरिसस्स वा।
स वे एतेन यानेन, निब्बानस्सेव सन्तिके''ति॥

1.5.7. वनरोपसुत्तं

''केसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति।

(संस्कृतच्छाया) 6. "अप्सरागणसङ्घोषितम्, पिशाचगणसेवितम्।
वनं तत् मोहनं नाम, कथं यात्रा भविष्यति''इति?"
"ऋजुकः नाम सः मार्गः, अभया नाम सा दिशा।
रथोऽकूजनो नाम, धर्मचक्रैः संयुतः॥
"ह्री तस्य अपालम्बः, सत्यस्य परिवारणम्।
धर्ममहं सारथिं ब्रवीमि, सम्यग्दृष्टिपुरेजवम्॥
''यस्य एतादृशं यानम्, स्त्रियाः पुरुषस्य वा।
स वै एतेन यानेन, निर्वाणस्यैव सन्तिकम्''इति॥

7. "केषां दिवा च रात्रौ च, सदा पुण्यं प्रवर्धते।

(हिन्दी) 6. देवता- ''अप्सराओं के परिहास से गूंजता हुआ, पिशाचसमूहों से सेवित, मोहदायक उस (नन्दन) वन की यात्रा सुखपूर्वक किस मार्ग से पूर्ण हो पाएगी? (मेरी मुक्ति कैसे होगी?'')

भगवान्- ''वह मार्ग बहुत सरल है, वहाँ (निर्वाण) तक जाने के लिये वह भवशून्य है, उस पदयात्रा का साधन कोई शब्द न करने वाला रथ है, जिसमें (शारीरिक वीर्य एवं चैतसिक वीर्य रूप) धर्मचक्र लगे हुए हैं।

''अध्यात्म एवं बाह्य ह्री (पाप करने में लज्जा) वहाँ अपालम्ब (यात्री को रथ से नीचे गिरने से रक्षार्थ सहारा देने हेतु लकड़ी का तख्ता) है। स्मृति उस पर बिछी चादर है, धर्म ही उस रथ में सारथि है। सम्यग्दृष्टि ही उस रथ का आगे आगे दौड़ने वाला सवार (अग्रगामी अश्वारोही) है।

''जिस किसी स्त्री के पास या किसी पुरुष के पास ऐसा अपूर्व (विशिष्ट) यान है उस पथिक को इस यान से निर्वाण के पास पहुंचा हुआ ही समझना चाहिये।'

7. देवता- ''किसका पुण्य दिन रात बढ़ता रहता है?

धम्मट्ठा सीलसम्पन्ना, के जना सग्गगामिनो''ति॥
''आरामरोपा वनरोपा, ये जना सेतुकारका।
पपं च उदपानं च, ये ददन्ति उपस्सयं॥
''तेसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति।
धम्मट्ठा सीलसम्पन्ना, ते जना सग्गगामिनो''ति॥

1.5.8. जेतवनसुतं

''इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
''कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
''तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥

(संस्कृतच्छाया) धर्मस्थाः शीलसम्पन्नाः, के जनाः स्वर्गगामिनः''इति॥
"आरामरोपाः वनरोपाः, ये जनाः सेतुकारकाः।
प्रपाञ्च उदपानं च, ये ददति उपाश्रयम्॥
"तेषां दिवा च रात्रौ च, सदा पुण्यं प्रवर्धते।
धर्मस्थाः शीलसम्पन्नाः, ते जनाः स्वर्गगामिनः''इति॥

8. "इदं हि तत् जेतवनम्, ऋषिसंघनिसेवितम्।
उषितं धर्मराजेन, प्रीतिसञ्जननं मम॥
"कर्म विद्या च धर्मश्च, शीलं जीवितमुत्तमम्।
एतेन मर्त्याः शुद्धन्ति, नहि गोत्रेण धनेन वा॥
"तस्मात् हि पण्डितः पुरुषः, सम्पश्यन् अर्थमात्मनः।
योनिशः विचिनुयात् धर्मम्, एवं तत्र विशुद्धति॥

(हिन्दी) कैसे धर्मारूढ एवं शीलसम्पन्न पुरुष स्वर्ग तक पहुंचते हैं?''
भगवान्- ''उद्यानों में तथा वनों में वृक्ष लगाने वाले, नदियों पर पुल बनवाने वाले, प्याऊ बनाकर जल पिलाने की व्यवस्था करने वाले, कूआ खुदवाने वाले, यात्रियों के लिये धर्मशाला बनवाने वाले पुरुषों के पुण्य दिन रात बढ़ते रहते हैं। धर्ममार्गारूढ़ तथा शीलसम्पन्न पुरुष स्वर्ग जाया करते हैं''।

8. ''ऋषियों से सेवित (उपभोग में लाया गया) यह जेतवन, जहां धर्मराज (भगवान् बुद्ध) वास करते है, मुझमें भारी श्रद्धा उत्पन्न करता है। ''कर्म विद्या, धर्म एवं शील का पालन ही उत्तम जीवन है। इन्हीं से मनुष्यों की पापशुद्धि होती है। न गोत्र से न धन होने से पापशुद्धि हुआ करती है। ''अतः बुद्धिमान पुरुष को, अपना हित देखते हुए, धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण करना चाहिये, तभी उसका चित्त शुद्ध हो पाता है।

''सारिपुत्तोव पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया''ति॥

1.5.9. मच्छरिसुत्तं

''येध मच्छरिनो लोके, कदरिया परिभासका।
अञ्ञेसं ददमानानं, अन्तरायकरा नरा॥
''कीदिसो तेसं विपाको, सम्परायो च कीदिसो।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं''ति॥
''येध मच्छरिनो लोके, कदरिया परिभासका।
अञ्ञेसं ददमानानं, अन्तरायकरा नरा॥
''निरयं तिरच्छानयोनिं, यमलोकं उपपज्जरे।
सचे एन्ति मनुस्सत्तं, दलिद्दे जायरे कुले॥

(संस्कृतच्छाया) ''सारिपुत्र इव प्रज्ञया, शीलेन उपशमनेन च।
योऽपि पारङ्गतः भिक्षुः, एतावपरमः स्यात्''इति॥

9. ''ये इह मत्सरिणः लोके, कदर्याः परिभाषकाः।
अन्येषाम् ददमानानाम्, अन्तरायकराः नराः।
''कीदृशः तेषां विपाकः, सम्परायश्च कीदृशः।
भगवन्तं प्रष्टुमागताः, कथं जानीयुः तत् वयम्''इति?
''ये इह मत्सरिणः लोके, कदर्याः परिभाषकाः।
अन्येषां ददमानानाम्, अन्तरायकराः नराः।
''निरयं तिर्यञ्चा योनिं, यमलोकम् उपपद्यन्ते।
सचेत् एन्ति मनुष्यत्वम्, दरिद्रे जायन्ते कुले।

(हिन्दी) ''सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा, शील तथा मन की शान्ति द्वारा जो भिक्षु पार चला गया है यही उसका परम पद है।''

9. देवता- ''संसार में जो कंजूस कहे जाते हैं, ऐसे लोग अतिलोभी, चिढ़कर दूसरों को दान देते देखकर उनको गालियाँ देने वाले, उसमें भी विघ्न डालने वाले होते हैं।

''उनके इन कार्यों का परिणाम तथा भावीफल कैसा होगा? यह जानने के लिये ही हम लोग भगवन् के पास आये हैं कि हम उसे कैसे जानें?''

भगवान्-''संसार में उक्त प्रकार के कंजूस लोग ....पूर्ववत्..... यहां से देहपात के बाद, नरक, पशु योनि, अथवा यमलोक में जाते हैं।यदि (किसी अन्य शुभकर्मवश) वे मनुष्ययोनि प्राप्त कर लें तो यहां आकर भी उनका जन्म दरिद्र कुल में ही होता है।

''चोळं पिण्डो रती खिड्डा, यत्थ किच्छेन लब्भति।
परतो आसीसरे बाला, तम्पि तेसं न लब्भति।
दिट्ठे धम्मेस विपाको, सम्पराये च दुग्गती''ति॥
''इति हेतं विजानाम, अञ्ञं पुच्छाम गोतम।
येध लद्धा मनुस्सत्तं, वदञ्ञू वीतमच्छरा॥
''बुद्धे पसन्ना धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा।
कीदिसो तेसं विपाको, सम्परायो च कीदिसो।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं''ति॥
''येध लद्धा मनुस्सत्तं, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
बुद्धे पसन्ना धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा।
एते सग्गा पकासन्ति, यत्थ ते उपपज्जरे॥

(संस्कृतच्छाया) ''चोलं पिण्डः रतिक्रीडा, यत्र कृच्छ्रेन लभ्यते।
परतः आशंसन्ति बालाः, तमपि तैः हि न लभ्यते।
दृष्टे धर्मेष विपाकः, सम्पराये च दुर्गतिः'' इति॥
''इति ह्येतत् विजानीम्, अन्यम् पृच्छामः गौतम!
ये इह लब्धाः मनुष्यत्वम्, वदान्याः वीतमत्सराः॥
''बुद्धे प्रसन्नाः धर्मे च, संघे च तीव्रगौरवाः।
कीदृशः तेषां विपाकाः, सम्परायश्च कीदृशः।
भगवन्तं प्रष्टुमगमाम, कथम् जानीयाम तद् वयम्''इति॥
''ये इह लब्ध्वाः मनुष्यत्वम्, वदान्या वीतमत्सराः।
बुद्धे प्रसन्नाः धर्मे च, संघे च तीव्रगौरवाः।
एते स्वर्गे प्रकाशन्ते, यत्र ते उपपद्यन्ते॥

(हिन्दी) ''जहां उनको अन्न, वस्त्र, रतिक्रीड़ा आदि उपभोगसामग्री भी बहुत कठिनता से ही मिल पाती हैं। उन्हें वे मूर्ख दूसरों से मांगते रहते हैं, फिर भी सुगमता से उपलब्ध नहीं होतीं। आँखों के देखते ही देखते उनका यह फल होता है। (यह तो उनके वर्तमान जन्म का फल है।) परलोक में उनकी बड़ी दुर्गति होती है''। देवता- ''हे गौतम! यह हमने इसे जान लिया हैं। हम आप से एक दूसरा प्रश्न पूछते हैं, कि जो यहाँ मनुष्यत्व प्राप्तकर उदार एवं कंजूसी रहित होकर बुद्ध के प्रति श्रद्धालु धर्म एवं सङ्घ के प्रति तीव्र गौरवयुक्त हैं; उनके इन कार्य का फल कैसा होगा? तथा परलोक उनका कैसा होगा? हम आप से यह जानने आये हैं, इसे हम आप से कैसे जानें!'' भगवान्- ''जिन्होंने यह मानव जन्म ग्रहण किया है, स्वभाव से उदार एवं कंजूसीरहित हैं, कर्म से बुद्ध के प्रति श्रद्धालु एवं धर्म तथा सङ्घ के प्रति तीव्र गौरवयुक्त हैं, ऐसे लोग स्वर्ग में शोभित होते हैं, जबकि यहां से देहपात के बाद उनका वहां जन्म होता है।

''सचे एन्ति मनुस्सत्तं, अड्ढे आजायरे कुले।
चोळं पिण्डो रती खिड्डा, यत्थाकिच्छेन लब्भति॥
''परसम्भतेसु भोगेसु, वसवत्ती व मोदरे।
दिट्ठे धम्मेस विपाको, सम्पराये च सुग्गती''ति॥

1.5.10. घटीकारसुत्तं

''अविहं उपपन्नासे, विमुत्ता सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणा, तिण्णा लोके विसत्तिकं''ति॥
''के च ते अतरुं पङ्कं, मच्चुधेय्यं सुदुतरं।
के हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगम् उपच्चगुं''ति॥
''उपको पलगण्डो च, पुक्कुसाति च ते तयो।
भद्दियो खण्डदेवो च, बाहुरग्गि च सिङ्गियो।

(संस्कृतच्छाया) "सचेत् यान्ति मनुष्यत्वम्, आढ्ये आजायन्ते कुले।
चोलं पिण्डः रतिक्रीडा, यत्र कृच्छ्रेन लभ्यते॥
परसम्भृतेषु भोगेषु, वशवर्तिन इव मोदन्ते।
दृष्टे धर्मेष विपाकः, सम्पराये च सुगतिः''इति॥

10. "अविहेषु उपपन्नाः, विमुक्ताः सप्त भिक्षवः।
रागद्वेषपरिक्षीणाः, तीर्णाः लोके विसक्तिकम्''इति॥
"के च ते अतरन् पङ्कम्, मृत्युध्येयं सुदुस्तरम्।
के हित्वा मानुषं देहम्, दिव्ययोगं उपागमन्''इति॥
"उपकः *पलगण्ड*श्च, *पुक्कुसाती* च ते त्रयः।
भद्रियः खण्डदेवश्च, *बहुरग्गि* च सिङ्गियः।

(हिन्दी) ''वे यदि यहां मनुष्यत्व प्राप्त करते हैं तो किसी वैभवशाली कुल में उन की उत्पत्ति होती है; तथा उन्हें यहां वस्त्र, अन्न, रति क्रीड़ा आदि उपभोग सामग्री बहुलता से मिलती है। तथा इन का यथेच्छ उपभोग कर वशवर्ती देवों के समान जीवन का आनन्द उठाते हैं। यह तो इन के इस लोक में जन्म का फल है। परलोक में तो उनकी सुगति होनी ही है।''

10. घटीकार देवता- ''सात भिक्षु अपने राग द्वेष विकार क्षीण कर, संसार के प्रति वीततृष्ण हो कर, इस लोक को पार कर अविह देवों में उत्पन्न हुए।

''वे कौन थे जो इस कीचड़ को लांघ गये, कठिनता से पार जाने योग्य मृत्युसागर को भी पार कर गये? कौन इस मानव देहपात के बाद दिव्य स्थान को प्राप्त हो गये?

''वे सात ये थे-1. उपक, 2. पलगण्ड, 3. पुक्कुसाति, 4. भद्दिय, 5. खण्डदेव, 6. बाहुरग्गि एवं 7. सिङ्गिय। वे सात इस मानव देहपात के बाद दिव्य भाव को प्राप्त हुए।

ते हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगम् उपच्चगुं''ति॥
''कुसली भाससी तेसं, मारपासप्पहायिनं।
कस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं''ति॥
''न अञ्ञत्र भगवता, नाञ्ञत्र तव सासना।
यस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं॥
''यत्थ नामञ्च रूपञ्च, असेसं उपरुज्झति।
तं ते धम्मं इधञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं''ति॥
''गम्भीरं भाससी वाचं, दुब्बिजानं सुदुब्बुधं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, वाचं भाससि ईदिसं''ति॥
''कुम्भकारो पुरे आसिं, वेकळिङ्गे घटीकरो।
मातापेत्तिभरो आसिं, कस्सपस्स उपासको॥

(संस्कृतच्छाया) ते हित्वा मानुषं देहम्, दिव्ययोगं उपागमन्''इति॥
कुशलं भाषसि तेषाम्, मारपाशप्रहायिणाम्।
कस्मात् ते धर्ममाज्ञाय, अच्छिदन् भवबन्धनम्''इति?
"नान्यत्र भगवता, नान्यत्र तव शासनात्।
यस्य ते धर्मम् आज्ञाय, अच्छिदन् भवबन्धनम्॥
"यत्र नामञ्च रूपञ्च, अशेषम् उपरुध्यते।
तत् ते धर्मम् इह आज्ञाय, अच्छिदन् भवबन्धनम्''इति॥
"गम्भीरां भाषसे वाचाम्, दुर्विजानन् सुदुर्बुधम्।
कस्य त्वं धर्ममाज्ञाय, वाचं भाषसे ईदृशाम्''इति?
"कुम्भकारः पुरा आसम्, वेकलिङ्गे घटीकारः।
मातापितृभरोऽऽसम्, कश्यपस्य उपासकः॥

(हिन्दी) भगवान्- ''उस मारपाश के बन्धन को काटने वालों के विषय में आप ठीक ही कह रहे हैं। परन्तु क्या आप लोग यह भी जानते हैं कि वे किसके द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन कर अपने इन बन्धनों को काटने में समर्थ हुए?'' देवता- ''भगवान् को छोड़कर अन्यत्र कहीं और नहीं, आप के धर्म को छोड़कर अन्यत्र कहीं और नहीं। आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म को जान कर के ही वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हुए! ''जहां नाम और रूप-दोनों सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। आपके उस धर्म को जान कर वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हो सके।'' भगवान्- ''तुम तो बहुत गम्भीर बातें कर रहे हो! पहले इस (धर्म) को ठीक जानना ही कठिन है, फिर ठीक से समझना तो और भी कठिन! यह तो बताओ कि किस धर्म को जान कर ऐसी गम्भीर वाणी बोल रहे हो?'' देवता- ''पहले मैं एक घटीकार (कुम्भकार) था, वेकलिङ्गनगर में एक घड़ा बनाने वाला, उसी आजीविका से मैं अपने माता पिता का पालन पोषण करता था, मैं भगवान् काश्यप बुद्ध का उपासक था।

''विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा ते सगामेय्यो, अहुवा ते पुरे सखा॥
''सोहमेते पजानामि, विमुत्ते सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणे, तिण्णे लोके विसत्तिकं''ति॥
''एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि भग्गव।
कुम्भकारो पुरे आसि, वेकळिङ्गे घटीकरो।
मातापेत्तिभरो आसि, कस्सपस्स उपासको॥
''विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा मे सगामेय्यो, अहुवा मे पुरे सखा''ति॥
''एवमेतं पुराणानं, सहायानं अहु सङ्गमो।
उभिन्नं भावितत्तानं, सरीरन्तिमधारिनं''ति॥ **आदित्तवग्गो पञ्चमो।**

(संस्कृतच्छाया) "विरतः मैथुनात् धर्मात्, ब्रह्मचारी निरामिषः।
अभवत् ते सग्राम्यः, अभवत् ते पुरा सखा॥
"सोऽहमेतान् प्रजानामि, विमुक्तान् सप्त भिक्षून्।
रागद्वेषपरिक्षीणान्, तीर्णान् लोके विसक्तिकम्''इति॥
"एवमेतत् तदा आसीत्, यथा भाषसे भगवान्।
कुम्भकारः पुरा आसीत्, वेकलिङ्गे घटीकारः।
मातापितृभरोऽऽसीत्, कश्यपस्य उपासकः॥
"विरतः मैथुनधर्मात्, ब्रह्मचारी निरामिषः।
अभवत् मम सग्राम्यः, अभवत् मम पुरा सखा''इति॥
एवमेतत् पुराणानाम्, सहायानाम् अभूत् सङ्गमः।
उभयोः भावितात्मनाम्, शरीरान्तिमधारिणम्ः''इति।

(हिन्दी) ''मैं मैथुन धर्म से विरत रह कर ब्रह्मचारी (एकान्ततः धर्मोपासक), पूर्ण त्यागी, अपरिग्रही था। हम दोनों (भगवान् काश्यप और मैं) एक ही ग्राम के वासी थे। वे पहले मेरे मित्र थे। ''अतः मैं इन सातों (पूर्वोक्त) भिक्षुओं को जानता हूं। वे सातों भिक्षु भवबन्धन से मुक्त होकर अपने राग द्वेष मोह क्षीण कर चुके थे, अतः वे भवसागर से मुक्त हो गये।''

भगवान्- ''आप उस समय ऐसे ही थे, जैसा कि भार्गव! आप कह रहे हो। आप पहले वेकलिङ्ग ग्राम में घड़ा बनाने वाले घटीकार थे। इसी वृत्ति से आप अपने माता पिता का पालन पोषण करते थे।

''आप मैथुन धर्म से विरत रह कर एकान्ततः धर्मोपासना करते हुए, पूर्णतः त्यागी एवं अपरिग्रही थे। आप और मैं एक ही ग्राम के वासी थे, आप और मैं दोनों पहले सखा थे।'' (निगमन-) यों यह पुराने दो मित्रों का संलाप हुआ। दोनों भावितात्मा (आत्मज्ञानी) एवं अन्तिम देहधारी थे।

तस्सुद्दानं– आदित्तं किंददं अन्नं, एकमूलअनोमियं।
अच्छरावनरोपजेतं, मच्छरेन घटीकरोति॥

6. जरावग्गो

1.6.1. जरासुत्तं

''किंसु याव जरा साधु, किंसु साधु पतिट्ठितं।
किंसु नरानं रतनं, किंसु चोरेहि दूहरं''ति॥
''सीलं याव जरा साधु, सद्धा साधु पतिट्ठिता।
पञ्ञा नरानं रतनं, पुञ्ञं चोरेहि दूहरं''ति॥

1.6.2. अजरसासुत्तं

''किंसु अजरसा साधु, किंसु साधु अधिट्ठितं।
किंसु नरानं रतनं, किंसु चोरेह्यहारियं''ति॥
''सीलं अजरसा साधु, सद्धा साधु अधिट्ठिता।
पञ्ञा नरानं रतनं, पुञ्ञं चोरेह्यहारियं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) तस्योद्दानम्– आदित्यं किंददं अन्नम्, एकमूलअनोमियम्।
अप्सरावनरोपजेतम्, मत्सरेण घटीकारः''इति॥

1. "किंस्वित् यावत् जरा साधु, किंस्वित् साधु प्रतिष्ठितम्।
किंस्वित् नराणां रत्नम्, किंस्वित् चौरैः दुर्हरम्''इति।
"शीलं यावत् जरा साधु, श्रद्धा साधु प्रतिष्ठिता।
प्रज्ञा नराणां रत्नम्, पुण्यं चौरैः दुर्हरम्''इति॥

2. "किंस्वित् अजरसा साधु, किंस्वित् साधु अधिष्ठितम्।
किंस्वित् नराणां रत्नम्, किंस्वित् चौरैः अहार्यम्'इति॥
"शीलं अजरसा साधु, श्रद्धा साधु अधिष्ठिता।
प्रज्ञा नराणां रत्नम्, पुण्यं चौरैः अहार्यम्" इति॥

(हिन्दी) सुत्त-समुदाय- इस वर्ग में इन दश सुत्तों का व्याख्यान है, जैसे-1. आदित्य, 2. किन्दद, 3. अन्न, 4. एकमूल, 5. अनोम, 6. अप्सरा, 7. वनरोप, 8. जेतवन, 9. मात्सर्य, एवं 10. घटीकार सुत्त।

1. देवता- ''वह कौन वस्तु है जो बुढापे तक ठीक हो? स्थिरता पाने के लिये क्या उचित है? मनुष्यों का रत्न (श्रेष्ठ वस्तु) क्या है? तथा चोर किसे नहीं चुरा सकते?'' भगवान्- ''शील का पालन बुढापे तक उचित है, दृढ सङ्कल्पित के लिये श्रद्धा उचित है, प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है, पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता।

2. देवता- ''बुढापा न आने से भी क्या उचित है? स्थिरता के लिये कौन वस्तु उचित है? मनुष्यों का रत्न क्या है? चोरों द्वारा क्या नहीं चुराया जा सकता?'' भगवान्- ''शील का पालन बुढापा न आने पर करना उचित है। अधिष्ठित श्रद्धा भी उचित है। प्रज्ञा मनुष्यों का रत्न है। पुण्य चोरों से नहीं चुराया जा सकता।

1.6.3. मित्तसुत्तं

''किंसु पवसतो मित्तं, किंसु मित्तं सके घरे।
किं मित्तं अत्थजातस्स, किं मित्तं सम्परायिकं''ति॥
''सत्थो पवसतो मित्तं, माता मित्तं सके घरे।
सहायो अत्थजातस्स, होति मित्तं पुनप्पुनं।
सयंकतानि पुञ्ञानि, तं मित्तं सम्परायिकं''ति॥

1.6.4. वत्थुसुत्तं

''किंसु वत्थु मनुस्सानं, किंसूध परमो सखा।
किंसु भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पथविस्सिता''ति ॥
''पुत्ता वत्थु मनुस्सानं, भरिया च परमो सखा।
वुट्ठिं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पथविस्सिता''ति॥

1.6.5. पठमजनसुत्तं

''किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति।

(संस्कृतच्छाया) 3. "किंस्वित् प्रवसतः मित्रम्, किंस्वित् मित्रं स्वके गृहे।
किं मित्रम् अर्थजातस्य, किं मित्रं साम्परायिकम्''इति?
"सार्थः प्रवसतः मित्रम्, माता मित्रं स्वके गृहे।
सहायः अर्थजातस्य, भवति मित्रं पुनः पुनः।
स्वयंकृतानि पुण्यानि, तन्मित्रं साम्परायिकम्''इति॥

4. "किंस्वित् वस्तु मनुष्याणाम्, किंस्विदिह परमः सखा।
किंस्वित् भूता उपजीवन्ति, ये प्राणिनः पृथ्वींश्रिताः"इति?
"पुत्राः वस्तु मनुष्याणाम्, भार्या च परमः सखा।
वृष्ट्या भूता उपजीवन्ति, ये प्राणिनः पृथ्वींश्रिताः"इति॥

5. "किंस्वित् जनयति पुरुषम्, किंस्वित् तस्य विधावति।

(हिन्दी) 3. देवता- ''प्रवास में कौन मित्र है? अपने घर में कौन मित्र है? आवश्यकता पडने पर कौन मित्र है? परलोक में कौन मित्र है? भगवान्- ''यात्रा में सार्थवाह मित्र का कार्य देता है। अपने घर में माता सब से बड़ी मित्र है। साथी आवश्यकता पडने पर मित्र होता है। स्वकृत पुण्य कर्म ही परलोक में सहायक होता है।''

4. देवता- ''मनुष्यों का आधार क्या है? इस लोक में सबसे बड़ा साथी कौन है? किसके आधार पर सभी पृथ्वीवासी प्राणी जीवित रहते हैं?'' भगवान्- ''पुत्र मनुष्यों के आधार हैं। इस लोक में पत्नी सबसे बड़ी सहायक (साथी) है। पृथ्वीवासी सभी प्राणी वर्षा के आधार पर जीवित रहते हैं''।

5. देवता- ''मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है? उसका वह क्या है जो दौड़ता रहता है?

किंसु संसारमापादि, किंसु तस्स महब्भयं''ति॥
''तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।
सत्तो संसारमापादि, दुक्खमस्स महब्भयं''ति॥

1.6.6. दुतियजनसुत्तं

''किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति।
किंसु संसारमापादि, किस्मा न परिमुच्चती''ति॥
''तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।
सत्तो संसारमापादि, दुक्खा न परिमुच्चती''ति॥

1.6.7. ततियजनसुत्तं

''किंसु जनेति पुरिसं, किंसु तस्स विधावति।
किंसु संसारमापादि, किंसु तस्स परायनं''ति॥
''तण्हा जनेति पुरिसं, चित्तमस्स विधावति।

(संस्कृतच्छाया) किंस्वित् संसारमापद्यत्, किंस्वित् तस्य महाभयम्''इति?
"तृष्णा जनयति पुरुषम्, चित्तमस्य विधावति।
सत्त्वः संसारमापद्यत्, दुःखमस्य महाभयम्''इति।

6. "किंस्वित् जनयति पुरुषम्, किंस्वित् तस्य विधावति।
किंस्वित् संसारमापद्यत्, कस्मात् न परिमुच्यते"इति?
"तृष्णा जनयति पुरुषम्, चित्तमस्य विधावति।
सत्त्वः संसारमापद्यत्, दुःखात् न परिमुच्यते"इति।

7. "किंस्वित् जनयति पुरुषम्, किंस्वित् तस्य विधावति।
किंस्वित् संसारमापद्यत्, किंस्वित् तस्य परायणम्''इति?॥
"तृष्णा जनयति पुरुषम्, चित्तमस्य विधावति।

(हिन्दी) कौन आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है? उसके लिये सबसे बड़ा भय क्या है?'' भगवान्- ''तृष्णा मनुष्य को पैदा करती है। मनुष्य का चित्त दौड़ता रहता है। प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। दुःख मनुष्य के लिये सबसे बड़ा भय है''।

6. देवता- ''मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है? उसका वह क्या है जो दौड़ता रहता है? कौन आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है? वह किससे मुक्त नहीं हो पाता? भगवान्- ''तृष्णा मनुष्य को उत्पन्न करती है। मनुष्य का चित्त दौड़ता रहता है। प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। मनुष्य दुःख से मुक्त नहीं हो पाता''।

7. देवता- ''मनुष्य को कौन उत्पन्न करता है? उसका वह क्या है जो दौड़ता रहता है? कौन आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है? उसका आश्रय क्या है? भगवान्- ''तृष्णा मनुष्य को उत्पन्न करती है। मनुष्य का चित्त दौड़ता रहता है।

सत्तो संसारमापादि, कम्मं तस्स परायनं''ति॥

1.6.8. उप्पथसुत्तं

''किंसु उप्पथो अक्खातो, किंसु रत्तिन्दिवक्खयो।
किं मलं ब्रह्मचरियस्स, किं सिनानमनोदकं''ति॥
''रागो उप्पथो अक्खातो, वयो रत्तिन्दिवक्खयो।
इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स, एत्थायं सज्जते पजा।
तपो च ब्रह्मचरियञ्च, तं सिनानमनोदकं''ति॥

1.6.9. दुतियसुत्तं

''किंसु दुतिया पुरिसस्स होति, किंसु चेनं पसासति।
किस्स चाभिरतो मच्चो, सब्बदुक्खा पमुच्चती''ति॥
''सद्धा दुतिया पुरिसस्स होति, पञ्ञा चेनं पसासति।
निब्बानाभिरतो मच्चो, सब्बदुक्खा पमुच्चती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) सत्त्वः संसारमपद्यत्, कर्म तस्य परायणम्''इति॥

8. "किंस्वित् उत्पथ आख्यातः, किंस्वित् रात्रिदिवक्षयः।
किं मलं ब्रह्मचर्यस्य, किं स्नानमनुदकम्''इति?
"राग उत्पथ आख्यातः, वयः रात्रिदिवक्षयः।
स्त्री मलं ब्रह्मचर्यस्य, अत्रायं सज्यते प्रजा।
तपः च ब्रह्मचर्यं च, तत् स्नानमनुदकम्''इति॥

9. "किंस्वित् द्वितीया पुरुषस्य भवति, किंस्वित् चैनं प्रशासते।
कस्य चाभिरतः मर्त्यः, सर्वदुःखात् प्रमुच्यते" इति?॥
"श्रद्धा द्वितीया पुरुषस्य भवति, प्रज्ञा चैनं प्रशासते।
निर्वाणाभिरतः मर्त्यः, सर्वदुःखात् प्रमुच्यते" इति॥

(हिन्दी) प्राणी आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। कर्म ही मनुष्य का आश्रय है''।

8. देवता- ''किस राह को लोग कुमार्ग कहते है? रात दिन क्षीण होने वाला क्या है? ब्रह्मचर्य का मल क्या है? कौन स्नान जल के विना किया जा सकता है?

भगवान्- ''राग को विद्वज्जन कुमार्ग कहते हैं। आयु रात दिन क्षीण होने वाली है। स्त्री ब्रह्मचर्य का मल है, जिसमें सभी प्राणी आसक्त हो जाते हैं। तपस्या एवं ब्रह्मचर्य ही बिना जल का स्नान है।

9. देवता- ''पुरुष का साथी (द्वितीय) क्या होता है? कौन उस पर नियन्त्रण करता है? किसमें तन्मय होकर मनुष्य दुःखों से मुक्ति पा जाता है?

भगवान्- ''श्रद्धा पुरुष का साथी है। प्रज्ञा उस पर नियन्त्रण करती है। निर्वाण में तन्मय होकर मनुष्य सब दुःखों से मुक्त हो जाता है''।

1.6.10. कविसुत्तं

''किंसु निदानं गाथानं, किंसु तासं वियञ्जनं।
किंसु सन्निस्सिता गाथा, किंसु गाथानमासयो''ति॥
''छन्दो निदानं गाथानं, अक्खरा तासं वियञ्जनं।
नामसन्निस्सिता गाथा, कवि गाथानमासयो''ति॥ **जरावग्गो छट्ठो।**

तस्सुद्दानं– जरा अजरसा मित्तं, वत्थु तीणि जनानि च।
उप्पथो च दुतियो च, कविना पूरितो वग्गो ति॥

7. अद्धवग्गो

1.7.1. नामसुत्तं

''किंसु सब्बं अद्धभवि, किस्मा भिय्यो न विज्जति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति ॥
''नामं सब्बं अद्धभवि, नामा भिय्यो न विज्जति।
नामस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति॥

(संस्कृतच्छाया) 10. "किंस्वित् निदानं गाथानाम्, किंस्वित् तासां व्यंजनम्।
किंस्वित् सन्निश्रिताः गाथाः, किंस्वित् गाथानामाश्रयः''इति?
"छन्दो निदानं गाथानाम्, अक्षरं तासां व्यंजनम्।
नामसन्निश्रिताः गाथाः, कविः गाथानामाश्रयः''इति ॥

तस्योद्दानम्– जरा अजरसा मित्रम्, वस्तु त्रीणि जनानि च।
उत्पथः द्वितीयश्च, कविना पूरितः वर्गः''इति ॥

1. ''किंस्वित् सर्वम् अभ्यभूत्, कस्माद् भूयः न विद्यते।
कस्यस्वित् एकधर्मस्य, सर्वे एव वशमन्वगमन्''इति॥
''नाम सर्वम् अभ्यभूत्, नाम्ना भूयः न विद्यते।
नाम्नः एकधर्मस्य, सर्वे एव वशमन्वगमन्''इति॥

(हिन्दी) 10. देवता- ''गाथाओं का मूल कारण क्या है? उनके व्यंजन क्या हैं? उनका आधार क्या है? गाथाओं का आश्रय क्या है?'' भगवान्-''गाथाओं का मूल कारण छन्द है। अक्षर गाथा के विभेदक हैं। नाम के आधार पर गाथा बनती है। तथा कवि ही उस गाथा का आश्रय है''।

सुत्त-समुदाय- इस वर्ग में 10 सुत्त व्याख्यात हैं, जैसे-1. जरा, 2. अजरसा, 3. मित्र, 4. वस्तु, 5.,6., 7. जनसुत्त, 8. उत्पथ, 9. द्वितीय एवं 10. कविसुत्त।

1. देवता- ''वह क्या है जो सब कुछ अपने भीतर रखता है? किससे अधिक कुछ नहीं है? किस एक धर्म के सब वश में चले आते हैं?'' भगवान्- ''नाम सभी को अपने भीतर रखता है। नाम से अधिक कुछ नहीं है। एक धर्म नाम के वश में सब चले आते हैं।'' (यहा अट्ठकथा का स्पष्टीकरण यह है- संसार में

1.7.2. चित्तसुत्तं

''केनस्सु नीयति लोको, केनस्सु परिकस्सति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति॥
''चित्तेन नीयति लोको, चित्तेन परिकस्सति।
चित्तस्स एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति॥

1.7.3. तण्हासुत्तं

''केनस्सु नीयति लोको, केनस्सु परिकस्सति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति॥
''तण्हाय नीयति लोको, तण्हाय परिकस्सति।
तण्हाय एकधम्मस्स, सब्बेव वसमन्वगू''ति॥

1.7.4. संयोजनसुत्तं

''किंसु संयोजनो लोको, किंसु तस्स विचारणं।

(संस्कृतच्छाया) 2.''केनस्वित् नीयते लोकः, केनस्वित् परिकृष्यते।
कस्यस्वित् एकधर्मस्य, सर्वे एव वशमन्वगमन्''इति?
"चित्तेन नीयते लोकः, चित्तेन परिकृष्यते।
चित्तस्य एकधर्मस्य, सर्वे एव वश मन्वगमन्''इति॥

3. ''केनस्वित् नीयते लोकः, केनस्वित् परिकृष्यते।
कस्यस्वित् एकधर्मस्य, सर्वे एव वशमन्वगमन्''इति?
''तृष्णाया नीयते लोकः तृष्णाया परिकृष्यते।
तृष्णाया एकधर्मस्य, सर्वे एव वशमन्वगमन्''इति॥

4. ''किंस्वित् संयोजनः लोकः, किंस्वित् तस्य विचारणम्।

(हिन्दी) कोई जीव या वस्तु ऐसी नहीं है जो नामरहित हो। यहाँ तक कि जिस वस्तु का नाम ज्ञात नहीं होता, उसको भी लोकव्यवहार में 'अनामक' नाम से व्यवहृत करने लगते हैं)

2. देवता- ''लोक किससे नियन्त्रित होता है? किससे यह क्षीण होता है? किस एक धर्म के वश में सब हो जाते हैं?'' भगवान्- ''यह समस्त जगत् चित्त के द्वारा नियन्त्रित होता है। तथा चित्त के कारण ही यह क्षीण होता है। इस एक धर्म चित्त के ही वश में सब हो जाते हैं।''

3. देवता- ''किस से लोक नियन्त्रित होता है? किससे यह क्षीण होता है? किस एक धर्म के वश में सब हो जाते हैं?'' भगवान्- ''यह समस्त जगत् तृष्णा के द्वारा नियन्त्रित होता है तथा तृष्णा के कारण ही यह क्षीण होता है। तृष्णा एक धर्म के वश में सब चले आते हैं।''

4. देवता- ''यह समस्त लोक किस बन्धन बँधा हुआ है? उसका व्यवस्थापन कौन करता है?

किस्सस्सु विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चती''ति॥
''नन्दीसंयोजनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, निब्बानं इति वुच्चती''ति॥

1.7.5. बन्धनसुत्तं

''किंसु सम्बन्धनो लोको, किंसु तस्स विचारणं।
किस्सस्सु विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं''ति॥
''नन्दीसम्बन्धनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं''ति॥

1.7.6. अत्तहतसुत्तं

''केनस्सुब्भाहतो लोको, केनस्सु परिवारितो।
केन सल्लेन ओतिण्णो, किस्स धूपायितो सदा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) कस्यस्वित् विप्रहाणेन, निर्वाणम् इत्युच्यते'' इति।
''नन्दीसंयोजनो लोकः, वितर्कोऽस्य विचारणम्।
तृष्णायाः विप्रहाणेन, निर्वाणम् इत्युच्यते'' इति॥

5. ''किंस्वित् सम्बन्धनो लोकः, किंस्वित् तस्य विचारणम्।
कस्यस्वित् विप्रहाणेन, सर्वं छिनत्ति बन्धनम्'' इति।
''नन्दीसम्बन्धनो लोकः, वितर्कोऽस्य विचारणम्।
तृष्णायाः विप्रहाणेन, सर्वं छिनत्ति बन्धनम्'' इति॥

6. ''केनस्वित् अभ्याहतो लोकः, केनस्वित् परिवारितः।
केन शल्येन अवतीर्णः, कस्मात् धूपायितः सदा'' इति।

(हिन्दी) किस के प्रहाण होने से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है?''

भगवान्- ''यह समस्त जगत् तृष्णा (नन्दी) के बन्धन से बँधा हुआ है। वितर्क उस का व्यवस्थापन करता है। तृष्णा के विशेष प्रहाण से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है॥''

5. देवता- ''यह समस्त जगत् किस पाश (बन्धन) में फँसा हुआ है? इसका व्यवस्थापन कौन करता है? किस के प्रहाण से सभी तरह के पाश कट जाते हैं?''

भगवान्-''यह समस्त जगत् तृष्णा के पाश से बँधा हुआ है। इसका व्यवस्थापन वितर्क से होता है। तृष्णा के प्रहाण से 'निर्वाण' ऐसा कहा जाता है॥''

6. देवता- ''यह समस्त जगत् किस के द्वारा सताया जाता है? किससे यह घिरा हुआ है? यह जगत् किस तीर से बिंधा हुआ है? तथा यह किससे सदा धुँवाता रहता है?''

''मच्चुनाब्भाहतो लोको, जराय परिवारितो।
तण्हासल्लेन ओतिण्णो, इच्छाधूपायितो सदा''ति॥

1.7.7. उड्डितसुत्तं

''केनस्सु उड्डितो लोको, केनस्सु परिवारितो।
केनस्सु पिहितो लोको, किस्मिं लोको पतिट्ठितो''ति॥
''तण्हाय उड्डितो लोको, जराय परिवारितो।
मच्चुना पिहितो लोको, दुक्खे लोको पतिट्ठितो''ति॥

1.7.8. पिहितसुत्तं

''केनस्सु पिहितो लोको, किस्मिं लोको पतिट्ठितो।
केनस्सु उड्डितो लोको, केनस्सु परिवारितो''ति॥
''मच्चुना पिहितो लोको, दुक्खे लोको पतिट्ठितो।
तण्हाय उड्डितो लोको, जराय परिवारितो''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''मृत्युनाभ्याहतः लोकः, जरया परिवारितः।
तृष्णाशल्येन अवतीर्णः, इच्छया धूपायते सदा'' इति॥

7. ''केनस्वित् उड्डयितः लोकः, केनस्वित् परिवारितः।
केनस्वित् पिहितः लोकः, कस्मिन् लोकः प्रतिष्ठितः''इति।
''तृष्णया उड्डयितः लोकः, जरया परिवारितः।
मृत्युना पिहितः लोकः, दुःखे लोकः प्रतिष्ठितः''इति॥

8. ''केनस्वित् पिहितः लोकः, कस्मिन् लोकः प्रतिष्ठितः।
केनस्वित् उड्डयितः लोकः, केनस्वित् परिवारितः''इति।
''मृत्युना पिहितः लोकः, दुःखे लोकः प्रतिष्ठितः।
तृष्णया उड्डयितो लोकः, जरया परिवारितः''इति॥

(हिन्दी) भगवान्- ''मृत्यु से यह लोक सताया जाता है। जरा से यह घिरा हुआ है। तृष्णा के तीर से बिंधा हुआ है। इच्छा से सदा धुँवाता रहता है।''

7. देवता- ''यह समस्त जगत् किसके द्वारा लाँघ लिया गया है? यह किससे घिरा हुआ है? यह किससे ढका छिपा है? तथा यह जगत् किस में प्रतिष्ठित है?'' भगवान्- ''तृष्णा द्वारा यह समस्त जगत् उल्लङ्घित है। जरा द्वारा घिरा हुआ है। मृत्यु द्वारा यह ढका छिपा है। तथा यह समस्त जगत् दुःख में प्रतिष्ठित है।''

8. देवता- ''यह जगत् किससे ढका हुआ है? किसमें प्रतिष्ठित है? किसके द्वारा लाँघा गया है? तथा किससे परिवारित है?''

भगवान्- ''यह समस्त जगत् मृत्यु से ढका हुआ है। यह दुःख में प्रतिष्ठित है। तृष्णा द्वारा यह लाँघ लिया गया है तथा जरा से घिरा हुआ है।''

1.7.9. इच्छासुत्तं

''केनस्सु बज्झती लोको, किस्स विनयाय मुच्चति।
किस्सस्सु विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं''ति॥
''इच्छाय बज्झती लोको, इच्छाविनयाय मुच्चति।
इच्छाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं''ति॥

1.7.10. लोकसुत्तं

''किस्मिं लोको समुप्पन्नो, किस्मिं कुब्बति सन्थवं।
किस्स लोको उपादाय, किस्मिं लोको विहञ्ञती''ति॥
''छसु लोको समुप्पन्नो, छसु कुब्बति सन्थवं।
छन्नमेव उपादाय, छसु लोको विहञ्ञती''ति॥ **अद्धवग्गो सत्तमो।**

(संस्कृतच्छाया) 9. ''केनस्वित् बध्यते लोकः, कस्य विनयात् मुच्यते।
कस्यस्वित् विप्रहाणेन, सर्वं छिनत्ति बन्धनम्''इति॥
''इच्छया बध्यते लोकः, इच्छाविनयात् मुच्यते।
इच्छायाः विप्रहाणेन, सर्वं छिनत्ति बन्धनम्''इति॥

10. ''कस्मिन् लोकः समुपपन्नः, कस्मिन् करोति सन्थवम्।
कस्य लोक उपादायः, कस्मिन् लोको विहन्यते''इति?
''षट्सु लोकः समुपपन्नः, षट्सु करोति सन्थवम्।
षण्णामेव उपादायः, षट्सु लोको विहन्यते''इति॥

(हिन्दी) 9. देवता- ''यह लोक किस में उलझता है? किस के निग्रह से मुक्त हो पाता है? किसके प्रहाण से सभी बन्धनों को काटने में समर्थ हो पाता है।''

भगवान्- ''यह लोक में इच्छाओं में उलझ जाता है। इन्हीं इच्छाओं को यदि वह दबा दे, नियन्त्रित कर ले तो वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो सकता है। इच्छाओं के प्रहाण (नाश या त्याग) से सभी बन्धन काटने में समर्थ हो सकता है।''

10. देवता- ''यह लोक किस के होने से उत्पन्न होता है? कितनों में साथ रहता है? यह किस को ग्रहण कर होता है? तथा किसके कारण सङ्कटग्रस्त होता है?''

भगवान्- ''यह लोक छह आध्यात्मिक आयतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एवं मन) के होने उत्पन्न होता है। छह में साथ रहता है। छह को ही ग्रहण कर उत्पन्न होता है तथा इन छह के कारण ही यह सङ्कटग्रस्त होता है।''

तस्सुद्दानं– नामं चित्तञ्च तण्हा च, संयोजनञ्च बन्धना।
अब्भाहतुड्डितो पिहितो, इच्छा लोकेन ते दसा ति॥

8. छेत्वावग्गो

1.8.1. छेत्वासुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा''ति॥
''कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स देवते।
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती''ति॥

1.8.2. रथसुत्तं

''किंसु रथस्स पञ्ञाणं, किंसु पञ्ञाणमग्गिनो।

(संस्कृतच्छाया) तस्योद्दानम्– नामं चित्तञ्च तृष्णा च, संयोजनञ्च बन्धना।
अभ्याहतुड्डयितः पिहितः, इच्छा लोकेन ते दश इति॥

1. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्तं स्थिता खलु सा देवता भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"किंस्वित् छित्वा सुखं शेते, किंस्वित् छित्वा न शोचति।
कस्यस्वित् एकधर्मस्य, वधं रोचसे गौतम!"इति॥
"क्रोधं छित्वा सुखं शेते, क्रोधं छित्वा न शोचति।
क्रोधस्य विषमूलस्य, मधुराग्रस्य देवते!
वधम् आर्याः प्रशंसन्ति, तं हि छित्वा न शोचति"इति॥

2. "किंस्वित् रथस्य प्रज्ञानम्, किंस्वित् प्रज्ञानमग्नेः।

(हिन्दी) सुत्त-समुदाय- इस वर्ग में दश सूत्रों का व्याख्यान हुआ है, जैसे-1. नाम, 2. चित्त, 3. तृष्णा, 4. संयोजन, 5. बन्धन, 6. अभ्याहत, 7. उड्डित, 8. पिहित, 9. इच्छा एवं 10 लोक सूत्र।

1. भगवान् ने श्रावस्ती में .....। एक तरफ खड़े किसी देवता ने भगवान् से गाथा के माध्यम से यह प्रश्न किया-''किसको काट कर मनुष्य सुखपूर्वक सोता है? किसको काटने के बाद वह शोकमग्न नहीं होता?
हे गौतम! मुझ को यह भी बताइये कि आप किस एक धर्म के नाश का उपदेश करते हैं?''
भगवान्-''क्रोध को काट कर मनुष्य सुखपूर्वक सोता है। क्रोध को काट देने पर शोक नहीं रहता। हे देवता! वर्तमान में मीठा लगने वाले परन्तु परिणाम में विषतुल्य क्रोध का नाश ही आर्य जनों द्वारा प्रशस्त माना गया है। उसके नष्ट होने पर मनुष्य कभी शोकसंविग्न नहीं होता।''

2. देवता- ''क्या देखकर रथ का आगमन ज्ञात होता है? तथा क्या देखकर अग्नि का अस्तित्व ज्ञात हो जाता है?

किंसु रट्ठस्स पञ्ञाणं, किंसु पञ्ञाणमित्थिया''ति॥
''धजो रथस्स पञ्ञाणं, धूमो पञ्ञाणमग्गिनो।
राजा रट्ठस्स पञ्ञाणं, भत्ता पञ्ञाणमित्थिया''ति॥

1.8.3. वित्तसुत्तं

''किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किंसु सुचिण्णो सुखमावहति।
किंसु हवे सादुतरं रसानं, कथंजीविं जीवितमाहु सेट्ठं''ति॥
''सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं''ति॥

1.8.4. वुट्ठिसुत्तं

''किंसु उप्पततं सेट्ठं, किंसु निपततं वरं।
किंसु पवजमानानं, किंसु पवदतं वरं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) किंस्वित् राष्ट्रस्य प्रज्ञानम्, किंस्वित् प्रज्ञानं स्त्रियाः''इति?
"ध्वजः रथस्य प्रज्ञानम्, धूमः प्रज्ञानमग्नेः।
राजा राष्ट्रस्य प्रज्ञानम्, भर्ता प्रज्ञानं स्त्रियाः''इति॥

3. "किंस्विदिह वित्तं पुरुषस्य श्रेष्ठम्, किंस्वित् सुचीर्णः सुखमावहति।
किंस्वित् हवै स्वादुतरं रसानाम्, कथंजीविं जीवितमाहुः श्रेष्ठम्''इति॥
"श्रद्धा इह वित्तं पुरुषस्य श्रेष्ठम्, धर्मः सुचीर्णः सुखमावहति।
सत्यं हवै स्वादुतरं रसानाम्, प्रज्ञाजीविं जीवितमाहुः श्रेष्ठम्''इति॥

4. "किंस्वित् उत्पतताम् श्रेष्ठम्, किंस्वित् निपततां वरम्।
किंस्वित् प्रव्रजमानाम्, किंस्वित् प्रवदतां वरम्" इति॥

(हिन्दी) किसी राष्ट्र का ज्ञान कैसे होता है? इसी तरह किसी स्त्री की पहचान कैसे होती है? ''
भगवान्- ''दूर से ध्वज को देखकर रथ का आगमन ज्ञात हो जाता है। इसी तरह दूर से धूआँ देख कर अग्नि का ज्ञान हो जाता है। राजा के अस्तित्व से राष्ट्र का ज्ञान हो जाता है। तथा पति को देखकर स्त्री के विषय में बहुत कुछ जाना जा सकता है।''

3. देवता- ''संसार में पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है? क्या उपार्जित किया हुआ सुखदायी होता है? रसों में स्वादिष्ठ रस कौन होता है? तथा मनुष्य के कैसे जीवन को बुद्धिमान् लोग श्रेष्ठ कहते हैं?''
भगवान्- ''संसार में पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन श्रद्धा है। धर्म का उपार्जन ही सर्वदा सुखदायी होता है। रसों में स्वादिष्ठ रस सत्य का होता है, जो परिणाम में सर्वदा मधुर ही होता है। तथा प्रज्ञापूर्वक जीवन बुद्धिमान् लोग श्रेष्ठ मानते हैं।''

4. देवता- ''ऊपर उठते रहने वालों में क्या श्रेष्ठ है? गिरने वालों में सर्वोत्तम क्या है? घूमते रहने वालों में श्रेष्ठ क्या है? तथा बोलने वालों में उत्तम कौन है?''

''बीजं उप्पततं सेट्ठं, वुट्ठि निपततं वरा।
गावो पवजमानानं, पुत्तो पवदतं वरो ति॥
''विज्जा उप्पततं सेट्ठा, अविज्जा निपततं वरा।
सङ्घो पवजमानानं, बुद्धो पवदतं वरो''ति॥

1.8.5. भीतासुत्तं

''किंसूध भीता जनता अनेका, मग्गो चनेकायतनप्पवुत्तो।
पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ, किस्मिं ठितो परलोकं न भाये''ति॥
''वाचं मनं च पणिधाय सम्मा, कायेन पापानि अकुब्बमानो।
बव्हन्नपानं घरमावसन्तो, सद्धो मुदू संविभागी वदञ्ञू।
एतेसु धम्मेसु ठितो चतूसु, धम्मे ठितो परलोकं न भाये''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "बीजम् उत्पततां श्रेष्ठम्, वृष्टिः निपततां वरम्।
गावः प्रव्रजमानाम्, पुत्रः प्रवदतां वरम्''इति॥
''विद्याः उत्पततां श्रेष्ठा, अविद्या निपततां वरा।
संघः प्रव्रजमानाम्, बुद्धः प्रवदतां वरः"इति॥

5. "किंस्वदिह भीता जनता अनेका, मार्गश्चानेकायतनप्रवृत्तः?
पृच्छामि त्वां गौतम! भूरिप्रज्ञ! कुत्र स्थितः परलोकान्न बिभेति"इति?
"वाचं मनश्च प्रणिधाय सम्यक्, कायेन पापम् अकुर्वाणः।
बह्वन्नपानं गृहमावसन्तः, श्रद्धः मृदुः संविभागी वदान्यः।
एतेषु धर्मेषु स्थितः चतुर्षु, धर्मे स्थितः परलोकान्न बिभेति॥

(हिन्दी) भगवान्- ''ऊपर उठने (उगने) वालों में बीज श्रेष्ठ है। गिरने वालों में वृष्टि सर्वोत्तम है। घूमते रहने वालों में गौ सर्वश्रेष्ठ है। तथा बोलने वालों में पुत्र सर्वोत्तम है (क्योंकि पुत्र का अधिक बोलना भी माता पिता को प्रिय ही लगता है)। ''

''उगने वालों में विद्या श्रेष्ठ है। गिरने वालों में अविद्या सबसे बड़ी है। घूमते रहने वालों में भिक्षुसङ्घ एवं वक्ताओं में बुद्ध सर्वश्रेष्ठ हैं।''

5. देवता- ''संसार में अनेक लोग भयभीत क्यों हैं? मार्ग अनेकविध कहा गया हैं, हे महाज्ञानी गौतम! मैं आप से पूछता हूँ कि साधक किस मार्ग पर खड़ा रह कर परलोक से भय न माने?''

भगवान्- ''वाणी एवं मन को संयत कर, शरीर से कोई पाप न करता हुआ, अन्न-पान सामग्री से पूर्ण घर में रहता हुआ, श्रद्धालु एवं मृदु स्वभाव वाला बन कर, बाँट कर खाने वाला, उदारचित्त साधक चार धर्माचरण करता हुआ परलोक में भय नहीं मानता।''

1.8.6. नजीरतिसुत्तं

''किं जीरति किं न जीरति, किंसु उप्पथोति वुच्चति।
किंसु धम्मानं परिपन्थो, किंसु रत्तिन्दिवक्खयो।
किं मलं ब्रह्मचरियस्स, किं सिनानमनोदकं॥
''कति लोकस्मिं छिद्दानि, यत्थ वित्तं न तिट्ठति।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं''ति॥
''रूपं जीरति मच्चानं, नामगोत्तं न जीरति।
रागो उप्पथोति वुच्चति॥
''लोभो धम्मानं परिपन्थो, वयो रत्तिन्दिवक्खयो।
इत्थी मलं ब्रह्मचरियस्स, एत्थायं सज्जते पजा।
तपो च ब्रह्मचरियञ्च, तं सिनानमनोदकं॥

(संस्कृतच्छाया) 6. "किंस्वित् जीर्यते किं न जीर्यते, किंस्वित् उत्पथ इति उच्यते?
किंस्वित् धर्माणां परिपन्थाः, किंस्वित् रात्रिदिवक्षयाः?
किं मलं ब्रह्मचर्यस्य, किं स्नानमनुदकम्॥
"कति, लोकेऽस्मिन् छिद्राणि, यत्र चित्तं न तिष्ठति?
भगवन्तं प्रष्टुमगमाम, कथं जानीयाम तत् मया''इति?
"रूपं जीर्यते मर्त्याणाम्, नामगोत्रं न जीर्यते।
रागः उत्पथ इति प्रोच्यते॥
"लोभः धर्माणां परिपन्था, वयः रात्रिदिवक्षयः।
स्त्री मलं ब्रह्मचर्यस्य, अत्रयं सज्यते प्रजा।
तपश्च ब्रह्मचर्यञ्च, एतत् स्नानमनुदकम्॥

(हिन्दी) 6. देवता- ''क्या जीर्ण होता है? क्या जीर्ण नहीं होता? कैसे कुमार्ग पर चला जाता है? धर्म का विरोधी क्या है, अर्थात् कार्य में क्या बाधक होता है? दिन रात क्या क्षय हो रहा है? ब्रह्मचर्यका मल क्या है? क्या बि ना पानी का स्नान है? लोक में कितने छिद्र हैं जहाँ चित्त स्थिर नहीं रहता? ये ही प्रश्न पूछने के लिये हम आप के पास आये हैं। हम इनको कैसे समझे।''

भगवान्- ''मनुष्यों का रूप पुराना हो जाता है। उसके नाम और पुराने नहीं होते। राग के कारण मनुष्य कुपथगामी हो जाता है। लोभ धर्म कार्य से बाधक होता है। मनुष्य की आयु रात दिन क्षीण होती चलती है। स्त्री ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना) का मल है, यहीं लोग आसक्त होकर फँस जाते हैं। तप एवं ब्रह्मचर्य-ये दोनों 'जल के विना स्नान' कहलाते हैं।

''छ लोकस्मिं छिद्दानि, यत्थ चित्तं न तिट्ठति।
आलस्यं च पमादो च, अनुट्ठानं असंयमो।
निद्दा तन्दी च ते छिद्दे, सब्बसो तं विवज्जये''ति॥

1.8.7. इस्सरियसुत्तं

''किंसु इस्सरियं लोके, किंसु भण्डानमुत्तमं।
किंसु सत्थमलं लोके, किंसु लोकस्मिमब्बुदं॥
''किंसु हरन्तं वारेन्ति, हरन्तो पन को पियो।
किंसु पुनप्पुनायन्तं, अभिनन्दन्ति पण्डिता''ति॥
''वसो इस्सरियं लोके, इत्थी भण्डानमुत्तमं।
कोधो सत्थमलं लोके, चोरा लोकस्मिमब्बुदा॥
''चोरं हरन्तं वारेन्ति, हरन्तो समणो पियो।
समणं पुनप्पुनायन्तं, अभिनन्दन्ति पण्डिता''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''लोके षट् छिद्राणि, यत्र चित्तं न तिष्ठति।
आलस्यञ्च प्रमादः च, अनुत्साहम् असंयमः।
निद्रा तन्द्रा च ते छिद्रे, सर्वशः तत् विवर्जयेत्''इति॥

7. "किंस्वित् ऐश्वर्यं लोके, किंस्वित् भाण्डानामुत्तमम्?
किंस्वित् शास्त्रमलं लोके, किंस्वित् लोकेर्बुदम्?
"किंस्वित् हरतः वार्यन्ते, हरन् पुनः कः प्रियः?
किंस्वित् पुनर्पुनरायन्तम्, अभिनन्दन्ति पण्डिताः"इति?
"वशः ऐश्वर्यं लोके, स्त्री भाण्डानामुत्तमम्।
क्रोधः शास्त्रमलं लोके, चौराः लोकेर्बुदाः॥
"चौरं हरतः वार्यन्ते, विहरन्तः श्रमणः प्रियः।
श्रमणं पुनःपुनः आयन्तम्, अभिनन्दन्ति पण्डिताः"इति॥

(हिन्दी) लोक में ये छह छिद्र हैं, जहाँ चित्त स्थिर नहीं होता-1. आलस्य, 2. प्रमाद, 3. ऊत्साहहीनता, 4. असंयम, 5. निद्रा एवं 6. तन्द्रा। साधक इन का सर्वथा वर्जन करे।''

7. देवता- ''संसार में ऐश्वर्य क्या है? कौन सी उपभोग की वस्तु सर्वोत्तम है? लोक में शास्त्र का मल क्या है? तथा वहाँ विनाश का कारण क्या है? लोग किसको ले जाने से रोकते हैं? ले जाने वालों में कौन प्रिय है? पण्डित जन किस बार बार आते हुए का अभिनन्दन करते हैं? भगवान्- ''संसार में किसी को अधीन (वश में) रखना ऐश्वर्य कहलाता है। लौकिक वस्तुओं में स्त्री सर्वोत्तम है। लोक में शास्त्र का मल क्रोध है, तथा चोर लोक में विनाश के कारण हैं। चोर को वस्तु ले जाने से लोग रोकते हैं। पुनः पुनः आने वालों में भिक्षु सर्वप्रिय है। बार बार आते हुए भिक्षु (श्रमण) का सभी बुद्धिमान् अभिनन्दन करते हैं।''

1.8.8. कामसुत्तं

''किमत्थकामो न ददे, किं मच्चो न परिच्चजे।
किंसु मुञ्चेय्य कल्याणं, पापिकं न च मोचये''ति॥
''अत्तानं न ददे पोसो, अत्तानं न परिच्चजे।
वाचं मुञ्चेय्य कल्याणं, पापिकञ्च न मोचये''ति॥

1.8.9. पाथेय्यसुत्तं

''किंसु बन्धति पाथेय्यं, किंसु भोगानमासयो।
किंसु नरं परिकस्सति, किंसु लोकस्मि दुज्जहं।
किस्मिं बद्धा पुथू सत्ता, पासेन सकुणी यथा''ति॥
''सद्धा बन्धति पाथेय्यं, सिरी भोगानमासयो।
इच्छा नरं परिकस्सति, इच्छा लोकस्मि दुज्जहा।
इच्छाबद्धा पुथू सत्ता, पासेन सकुणी यथा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) 8. ''किमर्थकामः न दद्यात्, किं मर्त्यः न परित्यजेत्।
किंस्वित् मुञ्चेत् कल्याणम्, पापिकं न च मोचयेत्''इति?
''आत्मानं न दद्यात् पुरुषः, आत्मानं न परित्यजेत्।
वाचं मुञ्चेत् कल्याणीम्, पापिकां च न मोचयेत्''इति॥

9. ''किंस्वित् बध्नाति पाथेयम्, किंस्वित् भोगानामाश्रयः।
किंस्वित् नरं परिकर्षति, किंस्वित् लोके दुर्जहम्?
कस्मिन् बद्धानि पृथु सत्त्वानि, पाशेन शकुनिः यथा''इति?
श्रद्धा बध्नाति पाथेयम्, श्रीः भोगानामाश्रयः।
इच्छा नरं परिकर्षति, इच्छा लोके दुर्जहा।
इच्छाबद्धाः पृथु सत्त्वाः, पाशेन शकुनिः यथा''इति॥

(हिन्दी) 8. देवता- ''परमार्थ की इच्छा रखने वाला क्या न दे? मनुष्य किसका परित्याग न करे? किस कल्याण को बाहर निकालने दे? तथा किस बुरे को बाहर न निकालने दे?''
भगवान्- ''परमार्थेच्छु अपना दान न कर डाले। मनुष्य अपना परित्याग न करे। कल्याणी वाक् ही मुख से निकाले। अशुभ वाणी मुख से न निकलने दे।''
9. देवता-''मार्गव्यय (पाथेय) कौन बाँधता है? भोगों का आधार क्या है? मनुष्य को कौन खींच लेता है? लोक में क्या कठिनता से छोड़ने योग्य है? सरल प्राणी किस में बँध जाते हैं? जैसे पक्षी जाल में फँस जाता है?''
भगवान्- ''श्रद्धा मार्गव्यय बाँधती है। सभी लोग ऐश्वर्य में बँध जाते हैं। इच्छा मनुष्य को खींचती है। लोक में इच्छा का त्याग बहुत कठिन है। इस वासना में ही जीव बँधे हैं, जैसे जाल में पक्षी।''

1.8.10. पज्जोतसुत्तं

''किंसु लोकस्मि पज्जोतो, किंसु लोकस्मि जागरो।
किंसु कम्मे सजीवानं, किमस्स इरियापथो॥
''किंसु अलसं अनलसञ्च, माता पुत्तंव पोसति।
किं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पथविस्सिता''ति॥
''पञ्ञा लोकस्मि पज्जोतो, सति लोकस्मि जागरो।
गावो कम्मे सजीवानं, सीतस्स इरियापथो॥
''वुट्ठि अलसं अनलसञ्च, माता पुत्तंव पोसति।
वुट्ठिं भूता उपजीवन्ति, ये पाणा पथविस्सिता''ति॥

1.8.11. अरणसुत्तं

''केसूध अरणा लोके, केसं वुसितं न नस्सति।
केध इच्छं परिजानन्ति, केसं भोजिस्सियं सदा॥

(संस्कृतच्छाया) 10. "किंस्वित् लोके प्रद्योतः, किंस्वित् लोके जागरः?
किंस्वित् कर्म सजीवानाम्, किमस्य ईर्या पथः?
"किंस्वित् अलसमनलसञ्च, माता पुत्रमिव पोषयति?
कस्मिन् भूता उपजीवन्ति, ये प्राणाः पृथ्वींश्रिताः।
"प्रज्ञा लोके प्रद्योतः, स्मृति लोके जागरः।
गावः कर्म सजीवानाम्, सीता अस्य इर्यापथः॥
"वृष्टिः अलसमनलसञ्च, माता पुत्रमिव पोषयते।
वृष्टिभूता उपजीवन्ति, ये प्राणाः पृथ्वींश्रिताः"इति॥
11. किंस्वित् इह अरणाः लोके, केषामुषितं न नश्यति।
के इह इच्छां परिजानन्ति, केषां भुञ्ज्युः सदा?

(हिन्दी) 10. देवता- ''लोक में चमकने वाला (प्रकाश) क्या है? लोक में सदा जाग्रत् कौन है? प्राणियों में कौन कार्य में सबसे अधिक सहायक होता है? तथा उसके चलने का मार्ग क्या है? माता जैसे पुत्र की रक्षा करती है वैसे ही आलसी एवं उद्योगी-दोनों की रक्षा कौन करता है? किसके रहने से सभी प्राणी, जो पृथ्वी पर बसते हैं, प्राण धारण करते हैं?'' भगवान्- ''प्रज्ञा ही लोक में प्रकाश है। स्मृति ही लोक में सदा जागती रहती है। प्राणियों में बैल सबसे अधिक साथ देता है। जोत उसके चलने का मार्ग है। वृष्टि (वर्षा) ही आलसी एवं उद्यमी-दोनों की रक्षा उसी तरह करती है, जैसे माता पुत्र की। वृष्टि के होने से ही सब प्राणी, जितने पृथ्वी पर बसते हैं, जीवन धारण करते हैं''।

11. देवता- ''लोक में कौन क्लेशरहित हैं? किन का ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ नहीं जाता? कौन इच्छा को भली भाँति समझता है? तथा कौन किसी के दास सदा रहते हैं?''

''किंसु माता पिता भाता, वन्दन्ति नं पतिट्ठितं।
किंसु इध जातिहीनं, अभिवादेन्ति खत्तिया''ति॥
''समणीध अरणा लोके, समणानं वुसितं न नस्सति।
समणा इच्छं परिजानन्ति, समणानं भोजिस्सियं सदा॥
''समणं माता पिता भाता, वन्दन्ति नं पतिट्ठितं।
समणीध जातिहीनं, अभिवादेन्ति खत्तिया''ति॥

छेत्वावग्गो अट्ठमो।

तस्सुद्दानं– छेत्वा रथञ्च चित्तञ्च, वुट्ठि भीता नजीरति।
इस्सरं कामं पाथेय्यं, पज्जोतो अरणेन चा ति॥

(संस्कृतच्छाया) "किंस्वित् माता पिता भ्राता, वन्दन्ते नं प्रतिष्ठितम्?
किंस्वित् इह जातिहीनम्, अभिवादयन्ति क्षत्रिया:"इति?
"श्रमणा इह अरणाः लोके, श्रमणानामुषितम् न नश्यति।
श्रमणाः इच्छां परिजानन्ति, श्रमणानां भुञ्ज्युः सदा॥
"श्रमणं माता पिता भ्राता, वन्दन्ते तं प्रतिष्ठितम्।
श्रमणमिह जातिहीनम्, अभिवादयन्ति क्षत्रिया:''इति॥

तस्योद्दानम्– छित्वा रथञ्च चित्तञ्च, वृष्टि भीताः न जीर्यते।
ऐश्वर्यं कामं पाथेय्यं, प्रद्योतः अरणेन चेति॥

(हिन्दी) ''माता पिता एवं भाई किस प्रतिष्ठित की वन्दना करते हैं? किस जातिहीन की क्षत्रिय जन भी वन्दना करते हैं?''

भगवान्- ''श्रमण (सन्तजन) ही लोक में क्लेशरहित हैं। सन्तों की धर्मसाधना नष्ट नहीं होती। यहाँ जाति अभिमान से रहित सन्त (श्रमण) की लोक में माता पिता एवं भाई भी वन्दना करते हैं। इसी जातिहीन श्रमण की क्षत्रिय (राजा) भी पूजा (अभिवादन) करते हैं''।

सुत्त-समुदाय- इस वर्ग में ये एकादश सुत्त व्याख्यात हैं, जैसे-1. छित्वा, 2. रथ, 3. चित्त, 4. वृष्टि, 5. भीत, 6. नजीर्यते, 7. ऐश्वर्य, 8. काम, 9. पाथेय, 10. प्रद्योत एवं 11. अरण सुत्त।

देवतासंयुत्तं समत्तं।

******

2. देवपुत्तसंयुत्तं

1. पठमवग्गो

2.1.1. पठमकस्सपसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो कस्सपो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो कस्सपो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– ''भिक्खुं भगवा पकासेसि, नो च भिक्खुनो अनुसासं''ति।

''तेन हि कस्सप, तञ्ञेवेत्थ पटिभातू''ति।

''सुभासितस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च।
एकासनस्स च रहो, चित्तवूपसमस्स चा''ति॥

इदमवोच कस्सपो देवपुत्तो; समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो कस्सपो देवपुत्तो ''समनुञ्ञो मे सत्था''ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति।

---

1. (संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु कश्यपः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु कश्यपः देवपुत्रः भगवन्तम् एतदवोचत्— "भिक्षुं भगवान् प्राकाशयत, न च भिक्षोः अनुशासनम् "इति। "तेन हि कश्यप! त्वमेव अत्र प्रतिभातु"इति।

"सुभाषितस्य शिक्षेत, श्रमणोपासनस्य च।
एकाशनस्य च रहः, चित्तोपशमनस्य च"इति॥

इदमवोचत् कश्यपः देवपुत्रः; समनुज्ञः शास्ता अभूत्। अथ खलु कश्यपः देवपुत्रः ''समनुज्ञः मे शास्ता'' इति भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

---

1. (हिन्दी) ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। तब कभी देवपुत्र काश्यप चाँदनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा होकर काश्यप देवपुत्र भगवान् से बोला- ''भगवान् ने भिक्षुओं को प्रकाशित किया है, परन्तु भिक्षु-अनुशासन पर अभी तक कोई प्रकाश नहीं डाला।'' ''तो काश्यप, तुम ही बताओ, जैसा तुमने उस अनुशासन को समझा है?''

(काश्यप ने कहा-) ''सदुपदेश की शिक्षा एवं श्रमणों की सेवा, एक बार भोजन, एकान्तवास एवं चित्त की शान्ति का भिक्षु को अभ्यास करना चाहिये।''

काश्यप ने यह कहा। भगवान् ने भी इसका अनुमोदन किया। तब काश्यप देवपुत्र ने भगवान् को भी सहमत जानकर उनकी वन्दना एवं प्रदक्षिणा कर वह वहीं अन्तर्धान हो गया।

2.1.2. दुतियकस्सपसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो कस्सपो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''भिक्खु सिया झायी विमुत्तचित्तो, आकङ्खे चे हृदयस्सानुपत्तिं।
लोकस्सञत्वा उदयब्बयञ्च, सुचेतसो अनिस्सितो तदानिसंसो''ति॥

2.1.3. माघसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो माघो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो माघो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा''ति॥

---

2. (संस्कृतच्छाया) श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थितः खलु कश्यपः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

"भिक्षुः स्यात् ध्यायी विमुक्तचित्तः, आकांक्षेत् चेत् हृदयस्यानुप्राप्तिम्।
लोकस्य ज्ञात्वा उदयव्ययञ्च, सुचेतसः अनिःश्रितः तदानृशंस्य"इति॥

3. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु माघः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु माघः देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"किं छित्वा सुखं शेते, किं छित्वा न शोचति।
कस्यास्य एकधर्मस्य, वधं रोचते गौतम"इति॥

---

2. (हिन्दी) श्रावस्ती में। एक तरफ खड़े हुए देवपुत्र काश्यप ने भगवान् से इस गाथा से निवेदन किया-

''यदि कोई भिक्षु ध्यानी विमुक्तचित्त होकर अपना मनःसङ्कल्प (अर्हत्पदप्राप्ति) पूर्ण करना चाहे तो उसे चाहिये कि वह संसार के उत्पाद एवं विनाश स्वभाव को जानकर, पवित्र मन वाला होकर, संसार के प्रति अनासक्त भाव से विचरण करे। इसी में इसकी प्रशंसा है।''

3. श्रावस्ती में। तब कभी माघ नामक देवपुत्र चाँदनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े हुए उस माघ देवपुत्र ने भगवान् को गाथाओं के माध्यम से यो निवेदन किया-

''साधक क्या काटकर सुख से सोता है? क्या काट कर वह शोकमग्न नहीं होता? हे गौतम! आप ऐसे किस एक धर्म का वध उचित बताते है?''

''कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स वत्रभू।
वधं अरिया पसंसन्ति, तञ्हि छेत्वा न सोचती''ति॥

2.1.4. मागधसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो मागधो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''कति लोकस्मिं पज्जोता, येहि लोको पकासति।
भवन्तं पुट्ठुमागम्म, कथं जानेमु तं मयं''ति॥
''चत्तारो लोके पज्जोता, पञ्चमेत्थ न विज्जति।
दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा॥
''अथ अग्गि दिवारत्तिं, तत्थ तत्थ पकासति।
सम्बुद्धो तपतं सेट्ठो, एसा आभा अनुत्तरा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "क्रोधं छित्वा सुखं शेते, क्रोधं छित्वा न शोचति।
क्रोधस्य विषमूलस्य, मधुराग्रस्य वृत्रभू!।
वधम् आर्याः प्रशंसन्ति, तं हि छित्वा न शोचति"इति॥

4. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थितः खलु मागधः देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"कति लोके प्रद्योताः, यैः लोकः प्रकाशते।
भवन्तं प्रष्टुमागम्य, कथं जानीमहे तद् वयम्"इति?
"चत्वारो लोके प्रद्योताः, पंचमोऽत्र न विद्यते।
दिवा तपति आदित्यः, रात्रावाभाति चन्द्रमाः॥
"अथाग्निः दिवारात्रौ, तत्र तत्र प्रकाशते।
सम्बुद्धस्तपतां श्रेष्ठः, एषा आभा अनुत्तरा"इति॥

(हिन्दी) (भगवान् ने उत्तर दिया-) ''साधक अपने क्रोध को नष्ट करके ही सुख पूर्वक सो सकता है। ऐसा करने पर उसे सांसारिक वस्तुओं के प्रति शोकमग्न भी नहीं होना पड़ता।

यह क्रोध जो कि वर्तमान में बहुत अच्छा लगता है, परन्तु इसका परिणाम भयानक विषसम्पृक्त है, हे वृत्रहा! इसका नाश करना आर्य पण्डितजनों ने प्रशस्त कहा है। इस नाश से साधक को कहीं भी शोकसंविग्न नहीं होना पड़ता।''

4. श्रावस्ती में। एक ओर खड़े मागध देवपुत्र ने भगवान् से गाथा द्वारा यह प्रश्न किया-

''लोक में कितने प्रकार के प्रकाश हैं? जिनसे यह लोक प्रकाशित होता है? हम लोग यह बात कैसे जानें?-यह पूछने के लिये ही हम आपके पास आये हैं।''

''लोक में चार प्रकार के प्रकाश है, पाँचवाँ इनके अतिरिक्त कोई नहीं है।1. दिन में सूर्य तपता है, 2. रात्रि में चन्द्रमा शोभित होता है, 3. अग्नि भी जहाँ तहाँ दिन रात प्रकाश करती ही रहती है। तथा 4. भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध इन प्रकाशमान वस्तुओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। इन की आभा अलौकिक है।''

2.1.5. दामलिसुत्तं

सावत्थिनिदान। अथ खो दामलि देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो दामलि देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''करणीयमेतं ब्राह्मणेन, पधानं अकिलासुना।
कामानं विप्पहानेन, न तेनासीसते भवं''ति ॥
''नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स (दामलीति भगवा), कतकिच्चो हि ब्राह्मणो।
''याव न गाधं लभति नदीसु, आयूहति सब्बगत्तेभि जन्तु।
गाधञ्च लद्धान थले ठितो यो, नायूहती पारगतो हि सोव॥

---

5. (संस्कृतच्छाया) श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु दामलिः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु दामलिः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

"करणीयम् एतद् ब्राह्मणेन, प्रधानम् अग्लास्नुना।
कामानां विप्रहाणेन, न तेनाशिष्यते भवम्"इति॥
"नास्ति कृत्यं ब्राह्मणस्य (दामलीति भगवान्), कृतकृत्यो हि ब्राह्मणः।
यावत् न गाधं लभते नदीषु, आयूहति सर्वगात्रैः जन्तुः।
गाधञ्च लब्ध्वा स्थले स्थितो यः, नायूहति पारगतो हि स एव॥

(हिन्दी) श्रावस्ती में। तब दामलि देवपुत्र चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को अपने तेज से आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहा आया। वहाँ आकर भगवान् को प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ा हो गया ।एक तरफ खड़े होकर दामलि देवपुत्र भगवान् को यह गाथा कहा-

''यहाँ ब्राह्मण को क्रियाशील रहते हुए साधना में वृद्धि का प्रयास करना चाहिये। वासनाओं के सर्वथा प्रहाण से ही उसे यहाँ पुनः जन्म ग्रहण की आवश्यकता नहीं होती।''

(भगवान् ने कहा-) ''दामलि! ब्राह्मण को कोई कृत्य नहीं करना पड़ता। वह कृतकृत्य है।

''जैसे नदी में तैरने वाला जब तक नदी की गम्भीरता का ज्ञान नहीं कर लेता तभी तक वह अपने शरीर के सभी अङ्गों से नदी में तैरने का प्रयत्न करता है। नदी के गाम्भीर्य का ज्ञान होने पर वह स्थल पर आकर बैठ जाता है। तब वह वैसा कोई प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि वह नदी का गाम्भीर्य जान चुका है।

''एसूपमा दामलि ब्राह्मणस्स, खीणासवस्स निपकस्स झायिनो।
पप्पुय्य जातिमरणस्स अन्तं, नायूहती पारगतो हि सो''ति ॥

2.1.6. कामदसुत्तं

सावत्थिनिदान । एकमन्तं ठितो खो कामदो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– ''दुक्करं भगवा, सुदुक्करं भगवा''ति।

''दुक्करं वापि करोन्ति (कामदाति भगवा), सेखा सीलसमाहिता।
ठितत्ता अनगारियुपेतस्स, तुट्ठि होति सुखावहा''ति॥
''दुल्लभा भगवा यदिदं तुट्ठी''ति।
''दुल्लभं वापि लभन्ति (कामदाति भगवा), चित्तवूपसमे रता।
येसं दिवा च रत्तो च, भावनाय रतो मनो''ति॥
''दुस्समादहं भगवा यदिदं चित्तं''ति ।

(संस्कृतच्छाया) "एषोपमा दामले! ब्राह्मणस्य, क्षीणास्रवस्य निपुणस्य ध्यायिनः।
प्राप्य जन्ममरणयोः अन्तम्, नायूहति पारगतो हि सः"इति॥

6. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थितः खलु कामदः देवपुत्रः भगवन्तम् एतदवोचत्—दुष्करं भगवन्! सुदुष्करं भगवन्!"इति।

"दुष्करं वापि कुर्वन्ति (कामद इति भगवान्), शैक्षाः शीलसमाहिताः।
स्थित्वा अनागारिकोपेतस्य, तुष्टिः भवति सुखावहा"इति॥
"दुर्लभा भगवन्! येयं तुष्टिः"इति।
"दुर्लभं वापि लभन्ते (कामद इति भगवान्), चित्तोपशमे रताः।
येषां दिवा च रात्रौ च, भावनायां रतं मनः"इति॥
"दुःशमादहं भगवन्! यदिदं चित्तम्"इति।

(हिन्दी) ''दामलि! नदी का यह दृष्टान्त उस क्षीणास्रव, चतुर ध्यानी ब्राह्मण के लिये भी समझ लो। वह जन्म-मरण की वास्तविकता जानने के बाद कोई प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि वह भवसागर को पार कर चुका है।''

6. श्रावस्ती में। एक तरफ खड़े कामद देवपुत्र ने भगवान् को यह गाथा कहा- ''भगवन्? यह तो दुष्कर है! अत्यधिक दुष्कर है।''

भगवान् बोले- कामद! दुष्कर होने पर भी साधक लोग इसे पूर्ण कर ही लेते हैं। वे शैक्ष्य, शीलसम्पन्न, स्थिरचित्त एवं प्रव्रजित साधक इसे पूर्ण कर अत्यधिक सुखद सन्तोष का अनुभव करते हैं।

भगवन्! जिसे आप सन्तोष कह रहे हैं, यह भी तो दुर्लभ ही है? कामद, इस दुर्लभ को भी वैसे साधक प्राप्त कर ही लेते हैं जिनका चित्त कामादि विकारों से शान्त हो चुका है, तथा जिन का मन दिन रात साधना में ही रमा रहता है। भगवन्! चित्त को ऐसी साधना में लगाना भी दुष्कर ही ज्ञात होता है?

''दुस्समादहं वापि समादहन्ति (कामदाति भगवा), इन्द्रियूपसमे रता।
ते छेत्वा मच्चुनो जालं, अरिया गच्छन्ति कामदा''ति॥
''दुग्गमो भगवा, विसमो मग्गो''ति॥
''दुग्गमे विसमे वापि, अरिया गच्छन्ति कामद।
अनरिया विसमे मग्गे, पपतन्ति अवंसिरा।
अरियानं समो मग्गो, अरिया हि विसमे समा''ति॥

2.1.7. पञ्चालचण्डसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो पञ्चालचण्डो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सम्बाधे वत ओकासं, अविन्दि भूरिमेधसो।
यो झानमबुज्झि बुद्धो, पटिलीननिसभो मुनी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "दु:शमादहं वापि समादहन्ति (कामद इति भगवान्), इन्द्रियोपशमे रता:।
ते छित्वा मृत्यो: जालम्, आर्या: गच्छन्ति कामद! "इति॥
"दुर्गमो भगवन्! विषमो मार्ग:"इति॥
"दुर्गमे विषमे वापि, आर्या: गच्छन्ति कामद!।
अनार्या: विषमे मार्गे, प्रपतन्ति अधोशिरा:।
आर्याणां समो मार्ग:, आर्या: हि विषमे समा:"इति॥

7. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थित: खलु पाञ्चालचण्डो देवपुत्र: भगवत: अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

"सम्बाधे वत अवकाशम्, अविन्दन् भूरिमेधस:।
यो ध्यानमबुधत् बुद्ध:, प्रतिलीनवृषभो मुनि:"इति॥

(हिन्दी) हाँ, कामद, अवश्य दुष्कर लगता है। परन्तु जो साधक, इन्द्रिय संयम में निरन्तर लगे हुए हैं, वे आर्यजन एक न एक दिन मृत्युपाश को काट कर पार चले ही जाते हैं।

''भगवन्! ऐसे चंचल चित्त पर स्थायी संयम कर लेना भी तो दुर्गम लगता है, विषम मार्ग लगता है?''

(भगवान् ने कहा-) ''दुर्गम कहो या विषम, कामद!

आर्यजन तो इस मार्ग पर चल कर भवसागर पार कर ही लेते है। हाँ तुम्हारा कहना भी ठीक ही है, क्योंकि अनार्य जन इस मार्ग पर चलने का प्रयत्न करने पर औधे मुँह गिर पड़ते हैं। अतः यों कहना चाहिये कि यह मार्ग आर्यजनों के लिये सरल प्रतीत होता है, वही यह मार्ग अनार्यो के लिये विषम है, दुर्गम है।''

7. श्रावस्ती में। एक ओर खड़े पांचालचण्ड नामक देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''सङ्कीर्ण एवं विषम मार्ग में भी ध्यानाभ्यासरत, ज्ञानी, निरहङ्कार, श्रेष्ठ भूरिप्रज्ञ मुनि लोग आगे बढ़ने का अवसर निकाल ही लेते हैं।''

''सम्बाधे वापि विन्दन्ति (पञ्चालचण्डाति भगवा), धम्मं निब्बानपत्तिया।
ये सतिं पच्चलत्थंसु, सम्मा ते सुसमाहिता''ति॥

2.1.8. तायनसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो तायनो देवपुत्तो पुराणतित्थकरो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो तायनो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
नप्पहाय मुनी कामे, नेकत्तमुपपज्जति॥
कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं॥

(संस्कृतच्छाया) "सम्बाधे वापि विन्दन्ति (पाञ्चालचण्ड इति भगवान्), धर्मं निर्वाणप्राप्तये।
ये स्मृतिं प्रत्यलभन्तः, सम्यक् ते सुसमाहिताः"इति॥

8. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु तायनः देवपुत्रः पुराणतीर्थङ्करः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु तायनः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट —

"छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य, कामान् प्रणुद ब्राह्मण।
नापहाय मुनिः कामान्, नैकत्वमुत्पद्यते॥
"कुर्याच्चेत् कुर्वीतैतद्, दृढ़मेनं पराक्राम्येत्।
शिथिलो हि परिव्राजः, भूय आकिरते रजः॥

(हिन्दी) भगवान् बोले- ''हाँ, पांचालचण्ड! जिन्होंने निर्वाण प्राप्तिहेतु धर्म को जान लिया, वे स्मृतिमान् होकर समाहित मन से सङ्कीर्ण एवं विषम मार्ग में भी आगे बढ़ने का उपाय खोज लेते हैं।

8. श्रावस्ती में। तब तायन देवपुत्र, जो पूर्वजन्म में एक तीर्थङ्कर चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को अपने तेज से आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े होकर तायन देवपुत्र भगवान् के पास यह गाथा कहा-

''हे ब्राह्मण! काम-स्रोतों को काट दें, पराक्रम कर। कामभोगों से दूर रह। कामभोगों का त्याग किये विना मुनि साधनमार्ग में एकाग्रता की ओर नहीं बढ़ सकता।

''यदि पराक्रम करना ही है तो उस साधनों में दृढ पराक्रम करना चाहिये। जो प्रव्रजित अपने उद्देश्य की प्राप्ति में शिथिल है वह अपने चित्त को पहले की अपेक्षा अधिक मलयुक्त कर लेता है।

''अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तपति दुक्कटं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति॥
''कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायूपकड्ढति॥
''यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठञ्च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं''ति॥

इदमवोच तायनो देवपुत्तो; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि– ''इमं, भिक्खवे, रत्तिं तायनो नाम देवपुत्तो पुराणतित्थकरो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं

(संस्कृतच्छाया) ''अकृतं दुष्कृतात् श्रेयः, पश्चात् तपति दुष्कृतम्।
कृतं च सुकृतं श्रेयः, यत् कृत्वा नानुतप्यते॥
"कुशो यथा दुर्गृहीत, हस्तमेवानुकृन्तति।
श्रामण्यं दुष्परामृष्टम्, निरयाय उपकर्षति॥
"यत् किञ्चित् शिथिलं कर्म, संक्लिष्टं च यद् व्रतम्।
संकृच्छ्रं ब्रह्मचर्यम्, न तद् भवति महाफलम्"इति॥

इदमवोचत् तायनः देवपुत्रः, इदमुक्त्वा भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

अथ खलु भगवान् तस्यां रात्रौ अत्ययेन भिक्षून् आमन्त्रयत— इमां भिक्षवः! रात्रौ तायनः नाम देवपुत्रः पुराणतीर्थङ्करः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं

(हिन्दी) ''किसी कार्य को मिथ्या पद्धति से करने की अपेक्षा उसे आरम्भ न करना ही अच्छा है। यदि उसे आरम्भ करे तो उस सम्यक् पद्धति से आगे बढ़ाते हुए पूर्ण कर ही विश्राम ले। इससे मन में किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं होता।

''यदि कभी किसी कुश के तृण को मिथ्या पद्धति से पकड़ा जाय तो वह हाथ ही काट देगा, इसी तरह श्रमणभाव की साधना भी मिथ्या पद्धति से आरम्भ की जायगी तो इसका दुष्परिणाम अन्त में नरकपात ही होगा।

''जो कुछ भी शिथिल कर्म हैं, जो व्रत कष्टसाध्य हैं, जो ब्रह्मचर्य झूठा है ये सभी अधिक शुभफलप्रद नहीं होते हैं।''

वह तायन देवपुत्र यों बोला। यों कहकर भगवान् को अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब भगवान् ने उस रात्रि के बीत जाने पर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ! आज रात्रि में,

जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भिक्खवे, तायनो देवपुत्तो मम अन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
नप्पहाय मुनी कामे, नेकत्तमुपपज्जति॥
''कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं॥
''अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तपति दुक्कटं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति॥
''कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायूपकड्ढति॥

(संस्कृतच्छाया) जेतवनम् अवभास्य यत्र अहं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य मां अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु, भिक्षवः! तायनः, देवपुत्रः मम अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''छिन्धि स्रोतः पराक्रम्य, कामान् प्रणुद ब्राह्मण!।
नापहाय मुनिः कामान्, नैकत्वमुपपद्यते॥
''कुर्याच्चेत् कुर्वीतैतत्, दृढ़मेनं पराक्राम्येत्।
शिथिलो हि परिव्राजः, भूय आकिरति रजः॥
''अकृतं दुष्कृतात् श्रेयः, पश्चात् तपति दुष्कृतम्।
कृतं च सुकृतं श्रेयः, यत् कृत्वा नाऽनुतप्यते॥
''कुशो यथा दुर्गृहीतः, हस्तमेवानुकृन्तति।
श्रामण्यं दुष्पराम्रष्टम्, निरयाय उपकर्षति"॥

(हिन्दी) तायन देवपुत्र ने, मेरे पास आकर.....एक ओर खड़े होकर ये गाथाएँ कहीं-

''हे ब्राह्मण! काम-स्रोतों को काट दें, पराक्रम कर। कामभोगों से दूर रह। कामभोगों का त्याग किये विना मुनि साधनमार्ग में एकाग्रता की ओर नहीं बढ़ सकता।

''यदि पराक्रम करना ही है तो उस साधनों में दृढ पराक्रम करना चाहिये। जो प्रव्रजित अपने उद्देश्य की प्राप्ति में शिथिल है वह अपने चित्त को पहले की अपेक्षा अधिक मलयुक्त कर लेता है।

''किसी कार्य को मिथ्या पद्धति से करने की अपेक्षा उसे आरम्भ न करना ही अच्छा है। यदि उसे आरम्भ करे तो उस सम्यक् पद्धति से आगे बढ़ाते हुए पूर्ण कर ही विश्राम ले। इससे मन में किसी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं होता। ''यदि कभी किसी कुश के तृण को मिथ्या पद्धति से पकड़ा जाय तो वह हाथ ही काट देगा, इसी तरह श्रमणभाव की साधना भी मिथ्या पद्धति से आरम्भ की जायगी तो इसका दुष्परिणाम अन्त में नरकपात ही होगा।

''यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठञ्च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं''ति॥

''इदमवोच, भिक्खवे, तायनो देवपुत्तो, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि। उग्गण्हाथ, भिक्खवे, तायनगाथा; परियापुणाथ, भिक्खवे, तायनगाथा; धारेथ, भिक्खवे, तायनगाथा। अत्थसंहिता, भिक्खवे, तायनगाथा आदिब्रह्मचरियिका''ति।

2.1.9. चन्दिमसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन चन्दिमा देवपुत्तो राहुना असुरिन्देन गहितो होति। अथ खो चन्दिमा देवपुत्तो भगवन्तं अनुस्सरमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
सम्बाधपटिपन्नोस्मि, तस्स मे सरणं भवा''ति॥

अथ खो भगवा चन्दिमं देवपुत्तं आरब्भ राहुं असुरिन्दं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) ''यत् किञ्चित् शिथिलं कर्म, संक्लिष्टं च यद् व्रतम्।
संकृच्छ्रं ब्रह्मचर्यम्, न तद् भवति महाफलम्''इति॥

इदमवोचत्, भिक्षवः! तायनः देवपुत्रः, इदमुक्त्वा माम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ। उद्गृह्णीयात भिक्षवः! तायनगाथा; परिपूर्णेत् भिक्षवः! तायनगाथा; धारयेत्, भिक्षवः! तायनगाथा। अर्थसंहिता, भिक्षवः! तायनगाथा आदिब्रह्मचारयिकाः"इति।

९. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये चन्द्रमाः देवपुत्रः राहुणा असुरेन्द्रेण गृहीतो भवति। अथ खलु चन्द्रमाः देवपुत्रः भगवन्तम् अनुस्मरन् तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

''नमः ते बुद्ध वीर अस्तु, विप्रमुक्तोऽसि सर्वतः।
सम्बाधप्रतिपन्नोऽस्मि, तस्य मे शरणं भव"इति॥

अथ खलु भगवान् चन्द्रमसं देवपुत्रम् आरभ्य राहुम् असुरेन्द्रं गाथया अध्यभाषिष्ट—

(हिन्दी) ''जो कुछ भी शिथिल कर्म हैं, जो व्रत कष्टसाध्य हैं, जो ब्रह्मचर्य झूठा है ये सभी अधिक शुभफलप्रद नहीं होते हैं।'' भिक्षुओ! तायन देवपुत्र ने यह कहा। यों कहकर मेरा अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ! इन गाथाओं को सीख लो, कण्ठस्थ कर लो, इनके अनुसार अभ्यास करो। भिक्षुओ! तायन की कही ये गाथाएँ तुम्हारी धर्मसाधना में दृढ़ता लाने वाली होंगी।''

९. श्रावस्ती में। उस समय चन्द्रमा देवपुत्र असुरेन्द्र राहु द्वारा पकड़ लिया गया था। तब चन्द्रमा देवपुत्र ने भगवान् को स्मरण करते हुये यह गाथा कही-

''हे महावीर बुद्ध! आप को नमस्कार है, आप सर्वथा विमुक्त हैं। मैं इस समय विपत्ति में पड़ा हूँ। कृपया आप मेरे शरणस्थल बनिये।''

तब भगवान् ने चन्द्रमा देवपुत्र को लक्ष्य कर असुरेन्द्र राहु से गाथाओं के माध्यम से यों कहा-

''तथागतं अरहन्तं, चन्दिमा सरणं गतो।
राहु चन्दं पमुञ्चस्सु, बुद्धा लोकानुकम्पका''ति॥

अथ खो राहु असुरिन्दो चन्दिमं देवपुत्तं मुञ्चित्वा तरमानरूपो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा संविग्गो लोमहट्ठजातो एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो राहुं असुरिन्दं वेपचित्ति असुरिन्दो गाथाय अज्झभासि–

''किं नु सन्तरमानोव, राहु चन्दं पमुञ्चसि।
संविग्गरूपो आगम्म, किं नु भीतोव तिट्ठसी''ति॥
''सत्तधा मे फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य चन्दिमं''ति॥

2.1.10. सूरियसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन सूरियो देवपुत्तो राहुना असुरिन्देन गहितो होति।

(संस्कृतच्छाया) ''तथागतम् अर्हन्तम्, चन्द्रमा शरणं गतः।
राहो चन्द्रं प्रमुञ्चस्व, बुद्धाः लोकानुकम्पकाः"इति॥

अथ खलु राहुः असुरेन्द्रः चन्द्रमसं देवपुत्रं मुक्त्वा त्वरमाणरूपः यत्र वेपचित्तिः असुरेन्द्रः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य संविग्नो लोमहृष्टजातः एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु राहुम् असुरेन्द्रं वेपचित्तिः असुरेन्द्रः गाथया अध्यभाषिष्ट—

''किन्नु संत्वरमाणः, राहो चन्द्रमसं प्रामुञ्चत्।
संविघ्नरूपः आगम्य, किन्नु भीत इव तिष्ठसि"इति?
''सप्तधा मे फाले मूर्धा, जीवन्तः न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोऽस्मि नो चेत्, मुञ्चेयं चन्द्रमसम्"इति॥

१०. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये सूर्यः देवपुत्रः राहुणा असुरेन्द्रेण गृहीतो भवति।

(हिन्दी) ''हे राहु! यह चन्द्रमा देवपुत्र तथागत अर्हत् की शरण में आ चुका है, अतः तूँ इस चन्द्रमा को छोड़ दे। बुद्ध तो लोक पर सहज दयालु होते हैं, इसी दया के कारण तुझसे कह रहे हैं।''

तब राहु असुरेन्द्र, चन्द्रमा देवपुत्र को छोड़कर, शीघ्र ही वहाँ पहुँचा जहाँ वेपचित्ति असुरराज बैठा था। वहाँ पहुँचकर दुःखसंविग्न एवं भय के कारण रोमांचित होकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ उस राहु असुरेन्द्र से असुरराज वेपचित्ति ने गाथा में कहा-

''हे राहु! क्यों तुम इतनी शीघ्रता दिखाते हुए चन्द्रमा को छोड़कर चले आये? तथा यहाँ भी भयभीत के सदृश क्यों बैठे हो?''

''मेरा मस्तक सात भागों में विभक्त हो जाता, जन्मपर्यन्त मुझे कभी सुख न मिलता, तथागत बुद्ध के कहने पर यदि मैं उस चन्द्रमा को न छोड़ता।''

अथ खो सूरियो देवपुत्तो भगवन्तं अनुस्सरमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
सम्बाधपटिपन्नोस्मि, तस्स मे सरणं भवा''ति॥

अथ खो भगवा सूरियं देवपुत्तं आरब्भ राहुं असुरिन्दं गाथाहि अज्झभासि–

''तथागतं अरहन्तं, सूरियो सरणं गतो।
राहु सूरियं पमुञ्चस्सु, बुद्धा लोकानुकम्पका॥
''यो अन्धकारे तमसि पभङ्करो, वेरोचनो मण्डली उग्गतेजो।
मा राहु गिली चरमन्तलिक्खे, पजं ममं राहु पमुञ्च सूरियं''ति॥

अथ खो राहु असुरिन्दो सूरियं देवपुत्तं मुञ्चित्वा तरमानरूपो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा संविग्गो लोमहट्ठजातो एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सूर्यः देवपुत्रः भगवन्तम् अनुस्मरन् तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट —

''नमः ते बुद्ध वीर अस्तु, विप्रमुक्तोऽसि सर्वतः।
सम्बाधप्रतिपन्नोऽस्मि, तस्य मे शरणं भवान्,इति॥

अथ खलु भगवान् सूर्यं देवपुत्रम् आरभ्य राहुम् असुरेन्द्रं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट—

''तथागतम् अर्हन्तम्, सूर्यः शरणं गतः।
राहो सूर्यं प्रमुञ्चस्व, बुद्धाः लोकानुकम्पकाः"इति॥
''योऽन्धकारे तमसि प्रभङ्करः, वेरोचनः मण्डली उग्रतेजः।
मा राहो गिर चरनन्तरिक्षे, प्रजां मां राहो प्रमुञ्च सूर्यम्''इति॥

अथ खलु राहुः असुरेन्द्रः सूर्यं देवपुत्रं मुक्त्वा त्वरमाणरूपः यत्र वेपचित्तिः असुरेन्द्रः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य संविग्नो लोमहृष्टजातः एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः

(हिन्दी) १०. श्रावस्ती में। उस समय सूर्य देवपुत्र असुरेन्द्र राहु द्वारा पकड़ लिया गया था। तब उस सूर्य देवपुत्र ने भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए यह गाथा कही-

''हे महावीर बुद्ध! आपको प्रणाम है। आप सर्वथा मुक्त हैं। मैं इस समय भयानक विपत्ति में फँस गया हूँ। कृपया मुझ को अपनी शरण दें।''

तब भगवान् ने सूर्य देवपुत्र की मुक्ति के लिये असुरेन्द्र राहु से गाथओं में कहा-

''हे राहु! यह सूर्य देवपुत्र तथागत अर्हत् की शरण में आ चुका है, अतः इसे तू छोड़ दे। बुद्ध तो लोक पर सहज दयालु होते हैं, अतः तुझसे इसकी मुक्ति के लिये कह रहे हैं॥

''जो काले अन्धकार में समस्त संसार को प्रकाश देता है, जो चमकने वाला है। यह मण्डल वाला तथा उग्रतेजस्वी है, आकाशचारी है, राहु! इसे न निगल, राहु! तू मेरे पुत्र सूर्य देवपुत्र को छोड़ दे।''

तब वह राहु असुरेन्द्र सूर्यदेवपुत्र को छोड़कर शीघ्र ही असुरराज वेपचित्ति के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचकर घबराया हुआ तथा भय से रोमांचित होकर एक ओर बैठ गया।

खो राहुं असुरिन्दं वेपचित्ति असुरिन्दो गाथाय अज्झभासि–

''किं नु सन्तरमानोव, राहु सूरियं पमुञ्चसि।
संविग्गरूपो आगम्म, किं नु भीतोव तिट्ठसी''ति॥
''सत्तधा मे फले मुद्धा, जीवन्तो न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोम्हि, नो चे मुञ्चेय्य सूरियं''ति॥

पठमो वग्गो।

तस्सुद्दानं– द्वे कस्सपा च माघो च, मागधो दामलि कामदो।
पञ्चालचण्डो तायनो, चन्दिमसूरियेन ते दसा ति॥

२. अनाथपिण्डिकवग्गो

2.2.1. चन्दिमससुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो चन्दिमसो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं

(संस्कृतच्छाया) खलु राहुम् असुरेन्द्रं वेपचित्तिः असुरेन्द्रः गाथया अध्यभाषिष्ट—

''किन्नु संत्वरमानो, राहो सूर्यं प्रामुञ्चत्।
संविग्नरूपः आगम्य, किन्नु भीत इव तिष्ठसि''इति?
''सप्तधा मे फाले मूर्धा, जीवन्तः न सुखं लभे।
बुद्धगाथाभिगीतोऽस्मि नो चेत्, मुञ्चेयं सूर्यम्''इति॥

तस्योद्दानम्– द्वौ कश्यपौ च माघश्च, मागधः दामलिः कामदः।
पाञ्चालचण्डः तायनः, चन्द्रमस्सूर्येन ते दश इति॥

1. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु चन्द्रमाः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम्

(हिन्दी) तब उस राहु को असुरराज वेपचित्ति ने गाथा में कहा-

''अरे राहु! तुम इतना शीघ्र सूर्य को छोड़कर कैसे चले आये! यहाँ आ कर भी तुम घबराये हुए तथा भय से रोमांचित दिख रहे हो! इतना भयभीत क्यों हो?''

(राहु ने कहा-) ''मेरा मस्तक सात भागों में विभक्त हो जाता, या मैं जीवित रहकर भी अवशिष्ट आयु में सुख से वंचित ही रह जाता, यदि मैं तथागत बुद्ध के कहने पर उस सूर्य को न छोड़ता।''

उस वर्ग का उदान- इस वर्ग में प्रथम काश्यप, द्वितीय काश्यप, माघ, मागध, दामलि, कामद, पंचालचण्ड, तायन, चन्द्रमा एवं सूर्यसूत हैं॥

1. श्रावस्ती में। तब चन्द्रमस देवपुत्र चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा होकर उसने

अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो चन्दिमसो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''ते हि सोत्थिं गमिस्सन्ति, कच्छे वामकसे मगा।
झानानि उपसम्पज्ज, एकोदि निपका सता''ति॥
''ते हि पारं गमिस्सन्ति, छेत्वा जालंव अम्बुजो।
झानानि उपसम्पज्ज, अप्पमत्ता रणञ्जहा''ति॥

2.2.2. वेण्डुसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो वेण्डु देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सुखिता व ते मनुजा, सुगतं पयिरुपासिय।
युञ्जं गोतमसासने, अप्पमत्ता नु सिक्खरे''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु चन्द्रमाः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"ते हि स्वस्तिं गमिष्यन्ति, कच्छे वा मशकाः मृगाः।
ध्यानानि उपसम्पद्य, एकाग्रो निपुणः सदा"इति॥
"ते हि पारं गमिष्यन्ति, छित्वा जालम् इव अम्बुजः।
ध्यानानि उपसम्पद्य, अप्रमत्ताः रणञ्जहाः"इति॥

2. एकान्ते स्थितः खलु विष्णुः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

"सुखिता इव ते मनुजाः, सुगतं पर्युपास्याः।
युञ्जते गौतमशासने, अप्रमत्ताः ननु शिक्षन्ते"इति॥

(हिन्दी) भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''मच्छर मक्खी रहित तड़ाग में पड़े पशु के समान यहाँ वे ही ध्यानाभ्यासी साधक सुखी रहेंगे जो एकाग्रचित्त, प्रज्ञावान् एवं स्मृतिमान् हैं।

तथा वे ही साधक इस संसार से पारगामी होंगे, जो मछली के समान जाल काटकर, ध्यानाभ्यासरत, प्रमादरहित होकर क्लेशत्यागी हो चुके हैं।

2. एक ओर खड़ा विष्णु (वेण्डु) देवपुत्र भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला-

''वे ही मनुष्य सुखी हैं, जो बुद्ध की उपासना कर, उनके धर्मोपदेश के अनुसार धर्मसाधना करते हुए अप्रमत्त (सावधान) रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।''

''ये मे पवुत्ते सिट्ठिपदे (वेण्डूति भगवा), अनुसिक्खन्ति झायिनो।
काले ते अप्पमज्जन्ता, न मच्चुवसगा सियुं''ति॥

2.2.3. दीघलट्ठिसुत्तं

एवं मे सुतं– एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो दीघलट्ठि देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं वेळुवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो दीघलट्ठि देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''भिक्खु सिया झायी विमुत्तचित्तो, आकङ्खे चे हृदयस्सानुपत्तिं।
लोकस्स ञत्वा उदयब्बयं च, सुचेतसो अनिस्सितो तदानिसंसो''ति॥

2.2.4. नन्दनसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो नन्दनो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) "ये मे प्रोक्ते शिक्षापदे (वेण्डू इति भगवान्), अनुशिक्षन्ते ध्यानिनः।
काले ते अप्रमाद्यन्तः, न मृत्युवशगाः स्युः"इति॥

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। अथ खलु दीर्घयष्टिः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु दीर्घयष्टिः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"भिक्षुः स्यात् ध्यानी विमुक्तचित्तः, आकाङ्क्षेत् चेत् हृदयस्यानुप्राप्तिम्।
लोकस्य ज्ञात्वा उदयव्ययं च, सुचेतसः अनिःश्रितः तदानिशंस"इति॥

4. एकान्ते स्थितः खलु नन्दनः देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट–

(हिन्दी) (भगवान् का उत्तर-) ''हे विष्णु! जो ध्यानी मेरे द्वारा उपदिष्ट शिक्षाओं का पालन करते हैं, वे यथोचित काल में प्रमाद न करते हुए कभी भी मृत्यु के अधीन नहीं होते॥''

3. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। तब एक दीर्घयष्टि देवपुत्र देवपुत्र चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा होकर उसने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''यदि साधक भिक्षु ध्यानी, विमुक्तचित्त वाला हो चुका हो, वह मन की आन्तरिक इच्छा के रूप में अर्हत्पद प्राप्त करना चाहे तो उसे चाहिये कि वह संसार के उत्पाद एवं विनाश की वास्तविकता (प्रकृति) जानकर पवित्रमन एवं आसक्तिरहित हो जाय। यही उसका माहात्म्य है।''

4. एक तरफ खड़ा नन्दन देवपुत्र भगवान् को गाथा के द्वारा बोला-

''पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ, अनावटं भगवतो ञाणदस्सनं।
कथंविधं सीलवन्तं वदन्ति, कथंविधं पञ्ञवन्तं वदन्ति।
कथंविधो दुक्खमतिच्च इरियति, कथंविधं देवता पूजयन्ती''ति॥
''यो सीलवा पञ्ञवा भावितत्तो, समाहितो झानरतो सतीमा।
सब्बस्स सोका विगता पहीना, खीणासवो अन्तिमदेहधारी॥
''तथाविधं सीलवन्तं वदन्ति, तथाविधं पञ्ञवन्तं वदन्ति।
तथाविधो दुक्खमतिच्च इरियति, तथाविधं देवता पूजयन्ती''ति॥

2.2.5. चन्दनसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो चन्दनो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–
''कथंसु तरति ओघं, रत्तिन्दिवमतन्दितो।
अप्पतिट्ठे अनालम्बे, को गम्भीरे न सीदती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''पृच्छामि त्वां गौतम भूरिप्रज्ञ, अनावृतं भगवतः ज्ञानदर्शनम्।
कथंविधं शीलवन्तं वदन्ति, कथंविधं प्रज्ञावन्तं वदन्ति।
कथंविधं दुःखमतीत्य ईरयते, कथंविधं देवताः पूजयन्ति।
''यः शीलवान् प्रज्ञावान् भावितात्मा, समाहितः ध्यानरतः स्मृतिमान्।
सर्वस्य शोकाः विगताः प्रहीणाः, क्षीणास्रवः अन्तिमदेहधारी॥
''तथाविधं शीलवन्तं वदन्ति, तथाविधं प्रज्ञावन्तं वदन्ति।
तथाविधं दुःखमतीत्य ईरयते, तथाविधं देवताः पूजयन्ति"इति॥

5. एकान्ते स्थितः खलु चन्दनः देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-
"कथं सः तरति ओघम्, रात्रिं दिवमतन्द्रितः।
अप्रतिष्ठे अनालम्बे, को गम्भीरे न सीदति"इति?

(हिन्दी) ''हे महाज्ञानी गौतम! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप का ज्ञानदर्शन अनावृत (=खुला, स्पष्ट) है।यहाँ यह बतावें कि कैसे साधक को आप 'शीलवान्' कहते हैं, तथा किस को 'प्रज्ञावान्' कहते हैं? कैसा साधक दुःखों से रहित हो सकता है? तथा कैसे गुणसम्पन्न पुरूष की देवता भी पूजा तथा प्रशंसा करते हैं?''

(भगवान्-) जो साधक शीलवान्, प्रज्ञावान्, स्थिरचित्त, समाहित, ध्यानरत, स्मृतिमान्, क्षीण आश्रवों वाला, अन्तिम देहधरी तथा सर्वशोकप्रहीण है।

ऐसे साधक को 'शीलवान्' कहा जाता है। ऐसे साधक को ही 'प्रज्ञावान्' भी कहते हैं। ऐसा साधक ही सांसारिक दुःखों का अतिक्रमण कर जाता है तथा ऐसे गुणवान् साधक की ही देवता भी पूजा एवं प्रशंसा भी करते हैं''।

5. एक तरफ खड़े हुए चन्दन देवपुत्र ने भगवान् को गाथा के द्वारा बोला- ''दिन रात साधनारत रह कर कौन बाढ़ को पार कर जाता है? अप्रतिष्ठित एवं निराधार गहरे जल में कौन डूब जाता है?''

''सब्बदा सीलसम्पन्नो, पञ्ञवा सुसमाहितो।
आरद्धवीरियो पहितत्तो, ओघं तरति दुत्तरं॥
''विरतो कामसञ्ञाय, रूपसंयोजनातिगो।
नन्दीरागपरिक्खीणो, सो गम्भीरे न सीदती''ति॥

2.2.6. वासुदत्तसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो वासुदत्तो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥
''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
सक्कायदिट्ठिप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "सर्वदा शीलसम्पन्नः, प्रज्ञावान् सुसमाहितः।
आरब्धवीर्यः प्रहितात्मा, ओघं तरति दुस्तरम्॥
"विरतः कामसंज्ञाय, रूपसंयोजनातिगः।
नन्दीरागपरिक्षीणः, सः गम्भीरे न सीदति"इति॥

6. एकान्ते स्थितः खलु वासुदत्तः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''शाक्तिवा इव अवमृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
कामरागप्रहाणाय, स्मृतिमान् भिक्षुः परिव्रजेत्"इति॥
''शाक्तिवा इव अवमृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
सत्कायदृष्टिप्रहाणाय, स्मृतिमान् भिक्षुः परिव्रजेत्"इति॥

(हिन्दी) (भगवान्-) ''जो साधक सर्वदा शीलसम्पन्न है, प्रज्ञावान् है, समाहितचित्त है, साधना में सतत उद्योगरत है, ऐसा साधक ही उस भयङ्कर ओघ को पार कर जाता है।''

''जो साधक कामसंज्ञाओं से विरत हो चुका है, रूपसंयोजन से मुक्त हो चुका है, जिसका नन्दी, राग पूर्णतः क्षीण हो चुका है, वही गहरे जल में नहीं डूबता है।''

6. वासुदत्त देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख एक ओर खड़े हो कर यह गाथा कही-

''जैसे किसी को भाला लग गया हो, या कहीं शिर पर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो, वैसे ही भिक्षु को कामभोगों (सांसारिक भोगविलासों) की इच्छा के प्रहाण के लिये स्मृतिमान् हो कर साधनारत रहना चाहिये॥

''जैसे किसी को भाला लग गया हो, या कहीं सिर पर अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो, वैसे ही भिक्षु को सत्कायदृष्टि प्रहाण हेतु साधनारत रहना चाहिये।''

2.2.7. सुब्रह्मसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो सुब्रह्मा देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''निच्चं उत्रस्तमिदं चित्तं, निच्चं उब्बिग्गमिदं मनो।
अनुप्पन्नेसु किच्छेसु, अथो उप्पतितेसु च।
सचे अत्थि अनुत्रस्तं, तं मे अक्खाहि पुच्छितो''ति॥

''नाञ्ञत्र बोज्झङ्गतपसा, नाञ्ञत्रिन्द्रियसंवरा।
नाञ्ञत्र सब्बनिस्सग्गा, सोत्थिं पस्सामि पाणिनं''ति॥

''इदमवोच...पे॰... तत्थेवन्तरधायी''ति।

2.2.8 ककुधसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा साकेते विहरति अञ्जनवने मिगदाये। अथ खो ककुधो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं अञ्जनवनं ओभासेत्वा येन

---

7. (संस्कृतच्छाया) एकान्ते स्थितः खलु सुब्रह्मा देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"नित्यम् उत्त्रस्तमिदं चित्तम्, नित्यम् उद्विग्नमिदं मनः।
अनुपपन्नेसु कृच्छ्रेषु, अथ उपपतितेषु च।
स चेत् अस्ति अनुत्रस्तम्, तं मे आख्याहि पृच्छतः"इति?

''नान्यत्र बोध्यङ्गतपसा, नान्यत्रेन्द्रियसंवराः।
नान्यत्र सर्वनिस्सर्गात्, स्वस्ति पश्यामि प्राणिनाम्"इति॥

"इदमवोचत्...पे॰... तत्रैवान्तर्दधौ"इति।

8. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् साकेते विहरति अञ्जनवने मृगदावे। अथ खलु ककुधः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पम् अञ्जनवनम् अवभास्य यत्र

---

7. (हिन्दी) एक ओर खड़े सुब्रह्मा नामक देवता ने भगवान् से यह गाथा कही-

''यह चित्त नित्य निरन्तर व्यग्र रहता है, मन उद्विग्न रहता है। जिस उपाय से भविष्य के कठिन कर्मों का ध्यान कर या कृत कर्मों के विषय में चित्त की व्यग्रता न हो, उसी उपाय को जानने के लियें हम आप के पास आये हैं, कृपया वह उपाय बताइये?

(भगवान्-) ''बोध्यङ्ग के सतत अभ्यास, निरन्तर इन्द्रियसंयम, तथा सभी सांसारिक भोगपदार्थों का त्याग-इन उपायों के अतिरिक्त मैं अन्य उपाय नहीं समझता कि जिससे चित्त की इस व्यग्रता का नाश हो तथा प्राणियों का सर्वथा कल्याण हो।''

यह कहा ..... पूर्ववत्...वहीं अन्तर्धान हो गया।

8. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् साकेत स्थित अंजनवन के मृगदाव में विहार कर रहे थे। उसी समय कभी कोई ककुध देवपुत्र चान्दनी रात्रि में समस्त अंजनवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे

भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ककुधो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– ''नन्दसि, समणा''ति? ''किं लद्धा, आवुसो''ति? ''तेन हि, समण, सोचसी''ति? ''किं जीयित्थ, आवुसो''ति? ''तेन हि, समण, नेव नन्दसि न च सोचसी''ति? ''एवमावुसो''ति।

''कच्चि त्वं अनघो भिक्खु, कच्चि नन्दी न विज्जति।
कच्चि तं एकमासीनं, अरती नाभिकीरती''ति॥
''अनघो वे अहं यक्ख, अथो नन्दी न विज्जति।
अथो मं एकमासीनं, अरती नाभिकीरती''ति॥
''कथं त्वं अनघो भिक्खु, कथं नन्दी न विज्जति।
कथं तं एकमासीनं, अरती नाभिकीरती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु ककुधः देवपुत्रः भगवन्तम् एतदवोचत्— ''नन्दसि, श्रमण''इति? ''किं लब्धा, आयुष्मन्!''इति? ''तेन हि, श्रमण, शोचसि''इति? ''किं अजीवीत्, आयुष्मन्!''इति? ''तेन हि, श्रमण! नैव नन्दसि न च शोचसि''इति? ''एवमायुष्मन्!''इति।

"कश्चित् त्वम् अनघो भिक्षुः, कश्चित् नन्दी न विद्यते।
कश्चित् त्वम् एकासीनम्, अरतिः नाभिकिरति"इति?
"अनघः वै अहं यक्ष, अथ नन्दी न विद्यते।
अथ माम् एकासीनम्, अरतिः नाभिकिरति"इति॥
"कथं त्वम् अनघो भिक्षुः, कथं नन्दी न विद्यते।
कथं त्वम् एकासीनम्, अरतिः नाभिकिरति"इति?

(हिन्दी) वहाँ आया और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस ककुध देवपुत्र ने भगवान् से पूछा- ''श्रमण! आनन्द से तो हो?'' ''क्या पा कर?'' ''तो, श्रमण! क्या चिन्तन कर रहे हो?'' ''क्या हम जीवें भी न, हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'' ''तो क्या, श्रमण! न आप आनन्दित है, न आप को कोई चिन्ता ही है?'' ''ऐसा ही समझो।''

''श्रमण! न तो आप आनन्दित हैं? न कोई चिन्ता ही कर रहे हैं? तो क्या एकान्त में यो एकाकी बैठे हुए आपका मन उदास नहीं होता?''

(भगवान्-) ''हे यक्ष! न मुझे कोई आनन्द है, न कोई चिन्ता ही। अतः मेरे मन को एकाकी रहने पर भी, किसी प्रकार की उदासीनता नहीं सताती।''

(ककुध-)''हे श्रमण! आप किस कारण से निरानन्द हैं? आप कहते हैं कि आपको कोई चिन्ता भी नहीं सताती? फिर भी आपका मन एकान्त पा कर भी, उदास क्यों नहीं होता?''

''अघजातस्स वे नन्दी, नन्दीजातस्स वे अघं।
अनन्दी अनघो भिक्खु, एवं जानाहि आवुसो''ति॥
''चिरस्सं वत पस्सामि, ब्राह्मणं परिनिब्बुतं।
अनन्दिं अनघं भिक्खुं, तिण्णं लोके विसत्तिकं''ति॥

2.2.9. उत्तरसुत्तं

राजगहनिदानं। एकमन्तं ठितो खो उत्तरो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी''ति॥
''उपनीयति जीवितमप्पमायु, जरूपनीतस्स न सन्ति ताणा।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो''ति॥

---

9. (संस्कृतच्छाया) "अघजातस्य वै नन्दी, नन्दीजातस्य वै अघम्।
अनन्दी अनघो भिक्षुः, एवं जानीहि आयुष्मन्"इति॥
"चिरात् वत पश्यामि, ब्राह्मणं परिनिर्वृतम्।
अनन्दिम् अनघं भिक्षुम्, तीर्णं लोके विसक्तिकम्"इति॥

राजगृहनिदानम्। एकान्ते स्थितः खलु उत्तरः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—
''उपनयति जीवितमल्पमायुः, जरोपनीतस्य न सन्ति त्राणाः।
एतं भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, पुण्यानि कुर्यात् सुखावहानि"इति॥
''उपनयति जीवितमल्पमायुः, जरोपनीतस्य न सन्ति त्राणाः।
एतं भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, लोकामिषं प्रजह्यात् शान्तिप्रेक्षः"इति॥

---

9. (हिन्दी) (भगवान्-) ''चिन्तित पुरूष को आनन्द होता है तथा आनन्दित पुरूष को चिन्ता। भिक्षु को जब किसी प्रकार की चिन्ता ही नहीं होती तो उसे आनन्द किस बात का होगा।''

(ककुध-) ''बहुत समय के बाद ऐसा परिनिर्वृत भिक्षु देख रहा हूँ। जिस को न कोई चिन्ता है, न कोई आनन्द जो भवसागर को पार कर गये हैं।''

राजगृह में। एक ओर खड़े उत्तर देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''मनुष्य का अनमोल जीवन बीत रहा है, आयु भी अल्प ही है, बुढापे से बचने का कोई उपाय नहीं है। अतः (साधक) मृत्यु से भय मानता हुआ जीवन में सुख प्रदान करने वाले पुण्य कर्म करे।''

भगवान्-) ''हाँ, यह अनमोल जीवन बीत रहा है, आयु भी अल्प ही है, तथा बुढापे से बचने का कोई उपाय भी नहीं है। अतः (साधक) मृत्यु का भय मानता हुआ सांसारिक कामभोगों का परित्याग कर दे, यदि उसे अपने जीवन में स्थायी शान्ति (निर्वाण) चाहिये।''

2.2.10. अनाथपिण्डिकसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो अनाथपिण्डिको देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''इदञ्हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
''कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
''तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥
''सारिपुत्तोव पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
योपि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया''ति॥

इदमवोच अनाथपिण्डिको देवपुत्तो। इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं

10.(संस्कृतच्छाया) एकान्ते स्थितः खलु अनाथपिण्डिकः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

''इदं हि तत् जेतवनम्, ऋषिसङ्घनिसेवितम्।
उषितं धर्मराजेन, प्रीतिसञ्जननं मम॥
''कर्म विद्या च धर्मश्च, शीलं जीवितमुत्तमम्।
एतेन मर्त्याः शुध्यन्ते, नहि गोत्रेण धनेन वा॥
''तस्मात् हि पण्डितः पुरुषः, सम्पश्यन् अर्थमात्मनः।
योनिशः विचिनुयाद् धर्मम्, एवं तत्र विशुध्यते॥
''शारिपुत्रः इव प्रज्ञया, शीलेन उपशमनेन च।
योऽपि पारङ्गतः भिक्षुः, एषः परमः स्यात्''इति॥

इदमवोचत् अनाथपिण्डिकः देवपुत्रः। इदम् उक्त्वा भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां

(हिन्दी) 10.एक ओर खड़े हो अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं- ''ऋषियों द्वारा सेवित यह जेतवन, जहाँ धर्मराज (भगवान् बुद्ध) का आवास है, मुझमें अत्यधिक श्रद्धा उत्पन्न करता है॥

''कर्म विद्या, धर्म एवं शील का पालन ही उत्तम जीवन है। इन्हीं से मनुष्यों की पापशुद्धि होती है। केवल उच्च गोत्र होने या अधिक धन होने से पापशुद्धि नहीं हुआ करती।

''अतः बुद्धिमान पुरुष को, अपना हित देखते हुए, धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण करना चाहिये, तभी उसका चित्त शुद्ध हो पाता है।

''सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा, शील तथा मन की शान्ति द्वारा जो भिक्षु पार चला गया है यही उसका परम पद है।''

कत्वा तत्थेवन्तरधायी ति। अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि– ''इमं, भिक्खवे, रत्तिं अञ्ञतरो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भिक्खवे, सो देवपुत्तो मम अन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''इदञ्हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥
''कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥
''तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥

(संस्कृतच्छाया) कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति। अथ खलु भगवान् तस्याः रात्र्याः अत्ययेन भिक्षून् आमन्त्रयत— इमां भिक्षवः, रात्र्याम् अन्यतरः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्राहं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य माम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु, भिक्षवः, सः देवपुत्रः मम अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट —

''इदं हि तत् जेतवनम्, ऋषिसङ्घनिसेवितम्।
उषितं धर्मराजेन, प्रीतिसञ्जननं मम ॥
''कर्म विद्या च धर्मश्च, शीलं जीवितमुत्तमम्।
एतेन मर्त्याः शुध्यन्ते, नहि गोत्रेण धनेन वा॥
''तस्मात् हि पण्डितः पुरुषः, सम्पश्यन् अर्थमात्मनः।
योनिशः विचिनुयाद् धर्मम्, एवं तत्र विशुध्यते॥

(हिन्दी) अनाथपिण्डिक देवपुत्र यह बोला। यह बोलकर वह भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया। तब भगवान् ने, उस रात्रि के बीतने पर, भिक्षुओं आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ! बीती हुई रात्रि में कोई देवपुत्र चान्दनी रात्रि में अपने आलोक से समस्त जेतवन को अवभासित करता हुआ मेरे पास आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर खड़े होकर ये गाथाएँ बोला-

''ऋषियों द्वारा सेवित यह जेतवन, जहाँ धर्मराज (भगवान् बुद्ध) का आवास है, मुझमें अत्यधिक श्रद्धा उत्पन्न करता है॥

''कर्म विद्या, धर्म एवं शील का पालन ही उत्तम जीवन है। इन्हीं से मनुष्यों की पापशुद्धि होती है। केवल उच्च गोत्र होने या अधिक धन होने से पापशुद्धि नहीं हुआ करती॥

''अतः बुद्धिमान पुरुष को, अपना हित देखते हुए, धर्म का सूक्ष्म विश्लेषण करना चाहिये, तभी उसका चित्त शुद्ध हो पाता है।

''सारिपुत्तोव पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
योपि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया''ति॥

''इदमवोच, भिक्खवे, सो देवपुत्तो। इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी''ति। एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच– ''सो हि नूनं, भन्ते, अनाथपिण्डिको देवपुत्तो भविस्सति। अनाथपिण्डिको गहपति आयस्मन्ते सारिपुत्ते अभिप्पसन्नो अहोसी''ति। ''साधु साधु, आनन्द, यावतकं खो, आनन्द, तक्काय पत्तब्बं अनुप्पत्तं तं तया। अनाथपिण्डिको हि सो, आनन्द, देवपुत्तो''ति।

अनाथपिण्डिकवग्गो दुतियो।

तस्सुद्दानं– चन्दिमसो च वेण्डु च, दीघलट्ठि च नन्दनो।
चन्दनो वासुदत्तो च, सुब्रह्मा ककुधेन च।
उत्तरो नवमो वुत्तो, दसमो अनाथपिण्डिकोति॥

(संस्कृतच्छाया) ''शारिपुत्रः इव प्रज्ञया, शीलेन उपशमनेन च।
योऽपि पारङ्गतः भिक्षुः, एषः परमः स्यात्''इति॥

इदमवोचत्, भिक्षवः, सः देवपुत्रः। इदम् उक्त्वा माम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति। एवमुक्ते, आयुष्मान् आनन्दः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''स हि नूनम्, भदन्त!; अनाथपिण्डिकः देवपुत्रः भविष्यति। अनाथपिण्डिकः गृहपतिः आयुष्मते शारिपुत्रे अभिप्रसन्नः अभवत्'' इति। ''साधु साधु, आनन्द! यावत् खलु, आनन्द! तर्काय प्राप्तव्यम् अनुप्राप्तं तत् त्वया। अनाथपिण्डिकः हि सः, आनन्द! देवपुत्रः"इति। अनाथपिण्डिकवर्ग द्वितीयः।

तस्योद्दानम्– चन्द्रमा च वेण्डुश्च, दीर्घयष्टिश्च नन्दनः।
चन्दनः वासुदत्तश्च सुब्रह्मा ककुधेन च ।
उत्तरः नवम उक्तः दशमः अनाथपिण्डिकः इति॥

(हिन्दी) ''सारिपुत्र की तरह प्रज्ञा, शील तथा मन की शान्ति द्वारा जो भिक्षु पार चला गया है यही उसका परम पद है।''

''भिक्षुओ! वह देवपुत्र यों बोला। इस के बाद वह मुझे प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया। भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया- ''वह देवपुत्र अवश्य ही अनाथपिण्डिक देवपुत्र रहा होगा, क्योंकि वह अनाथपिण्डिक गृहपति ही आयुष्मान् सारिपुत्र के प्रति इतना अधिक श्रद्धालु था।'' ''साधु आनन्द, साधु! जो बात किसी के द्वारा अनुमान से जानी जा सकती थी उसे तुमने (प्रत्यक्षवत्) जान लिया। आनन्द! वह देवपुत्र अनाथपिण्डिक ही था।''

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में चन्द्रमस्, वेण्डु, दीर्घयष्टि, नन्दन, चन्दन, वासुदत्त, सुब्रह्मा, ककुध, उत्तर, एवं अनाथपिण्डिक सुत्त हैं।

३. नानातित्थियवग्गो

2.3.1. सिवसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सिवो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सिवो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सेय्यो होति न पापियो॥
'सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, पञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सोकमज्झे न सोचति॥

1.(संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु शिवः देवपुत्रः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु शिवः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, श्रेयो भवति न पापकः॥
''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय,प्रज्ञा लभते नान्यतः"इति॥
''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, शोकमध्ये न शोचति"इति॥

1.(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन में विहार कर रहे थे। तब कभी शिव नामक देवपुत्र ने चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को अपने तेज से आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े होकर शिव देवपुत्र भगवान् के पास यह गाथा कहा-

''स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ रहे तथा सज्जनों के साथ ही अपना मेल जोड़ (-संस्तव) बढ़ाये; क्योंकि सज्जनों का धर्म (आचरण) जानने से वह सबके लिये सर्वदा श्रेयस्कर ही होता है। उसके कारण पुरुष की पाप की तरफ प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती।''

''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्... जानने से ही प्रज्ञा प्राप्त हो सकती है, अन्य किसी उपाय से नहीं।''

''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...सद्धर्म का आचरण जानने से व्यवहार में शोक की स्थिति आने पर भी, वह उसके कारण शोकाकुल नहीं हो पाता।''

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, ञातिमज्झे विरोचति॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं॥
''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सत्ता तिट्ठन्ति सातत''न्ति॥

अथ खो भगवा सिवं देवपुत्तं गाथाय पच्चभासि–

''सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, सब्बदुक्खा पमुच्चती''ति॥

2.3.2. खेमसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो खेमो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

(संस्कृतच्छाया) ''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, ज्ञातिमध्ये विरोचते"इति॥
''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, सत्त्वाः गच्छन्ति सुगतिम्"इति॥
''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, सत्त्वाः तिष्ठन्ति सातत्यम्"इति॥

अथ खलु भगवान् शिवं देवपुत्रं गाथया प्रत्यभाषिष्ट–

''सद्भिरेव समासीत्, सद्भिः कुर्वीत संस्तवम्।
सतां सद्धर्ममाज्ञाय, सर्वदुःखात् प्रमुच्यते"इति॥

2. एकान्ते स्थितः खलु क्षेमः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

(हिन्दी) ''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरणज्ञान के द्वारा समाज में अपनी विशिष्ट सम्मानजनक स्थिति बना लेने के कारण अपने पारिवारिक जनों में शोभित होता है।''

''स्वहिताकांक्षी पुरुष...पूर्ववत्...धर्माचरण जानने के कारण, ऐसे प्राणी देहपात के बाद, सुगति (स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं।''

''स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ रहे, सज्जनों के साथ मेल जोल बढ़ावे। ऐसा करने से वह पुरुष इन सज्जनों के धर्माचरण के कारण प्राणी सतत सात्त्विक सुखोपभोग करते रहते हैं॥''

तब भगवान् ने उस शिव देवपुत्र को गाथा में उत्तर दिया-

स्वहिताकांक्षी पुरुष सज्जनों के साथ रहे, सज्जनों के साथ मेल जोल बढ़ावे। ऐसा करने से वह पुरुष इन सज्जनों के धर्माचरण से भलीभांति परिचित हो कर सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है।

2. एक ओर खड़े क्षेम देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ कहीं-

''चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकप्फलं॥
''न तं कम्मं कतं साधु, यं कत्वा अनुतप्पति।
यस्स अस्सुमुखो रोदं, विपाकं पटिसेवति॥
''तञ्च कम्मं कतं साधु, यं कत्वा नानुतप्पति।
यस्स पतीतो सुमनो, विपाकं पटिसेवति॥
''पटिकच्चेव तं कयिरा, यं जञ्ञा हितमत्तनो।
न साकटिकचिन्ताय, मन्ता धीरो परक्कमे॥
''यथा साकटिको मट्ठं, समं हित्वा महापथं।
विसमं मग्गमारुय्ह, अक्खच्छिन्नोव झायति॥

(संस्कृतच्छाया) ''चरन्ति बालाः दुर्मेधाः, अमित्रेण इव आत्मना।
कुर्वन्तः पापकं कर्म, यद् भवति कटुकं फलम्॥
''न तत् कर्म कृतं साधु, यत् कृत्वा अनुतप्यते।
यस्य अश्रुमुखो रुदन्, विपाकं प्रतिसेवते॥
''तच्च कर्म कृतं साधु, यत् कृत्वा नानुतप्यते।
यस्मिन् प्रतीतो सुमनः, विपाकं प्रतिसेवते॥
''प्रतिकृत्यैव तत् कुर्यात्, यज्जानीयाद् हितमात्मनः।
न शाकटिकचिन्तायाः, मन्ताधीरः परिक्रमे॥
''यथा शाकटिकः मृष्टम्, समं हित्वा महापथम्।
विषमं मार्गमारुह्य, अक्षच्छिन्न इव ध्यायति॥

(हिन्दी) ''मूर्ख दुर्बुद्धिजन अपना शत्रु स्वयं होकर, पापकर्म करते हुए विचरण किया करते है, जो परिणाम में अत्यधिक कटु फल देने वाला होता है।

''वह कर्म किया हुआ अच्छा नहीं कहलाता, जिसको कर के पश्चात्ताप करना पड़े। जिसका फल आँसुओं के साथ (अर्थात् रोते हुए) भोगना पड़े।

''वही कर्म अच्छा कहलाता है, जिसको करने के बाद पश्चात्ताप भी न करना पड़े, तथा जिसका फलभोग हम आनन्द के साथ करते रहें।

''बुद्धिमान् पुरूष पहले ही (पटिकच्चेव) वह कार्य आरम्भ कर दे जिसके करने में वह अपना हित मानता हो। तथा उसकी पूर्ति हेतु समग्र तत्परता से लग जाय। अपने विचारों में 'करूँ या न करूँ, इस ऊहापोह से शिथिलता न आने दे।''

''जैसे कोई मूर्ख गाड़ीवान समतल एवं पक्की राजमार्ग को छोड़कर ऊँचे नीचे (विषम) मार्ग पर अपनी गाड़ी चलाकर बैलों से अपनी गाड़ी का धुरा तुड़ाकर चिन्ता में पड़ जाता है।

''एवं धम्मा अपक्कम्म, अधम्ममनुवत्तिय।
मन्दो मच्चुमुखं पत्तो, अक्खच्छिन्नोव झायती''ति॥

2.3.3. सेरीसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो सेरी देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''अन्नमेवाभिनन्दन्ति, उभये देवमानुसा।
अथ को नाम सो यक्खो, यं अन्नं नाभिनन्दती''ति॥
''ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
''तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता–

---

3. (संस्कृतच्छाया) ''एवं धर्मान् अपक्रम्य, अधर्ममनुवृत्य।
मन्दः मृत्युमुखं प्राप्तः, अक्षच्छिन्न इव ध्यायति"इति॥
एकान्ते स्थितः खलु स्वैरी देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-
"अन्नमेवाभिनन्दतः, उभौ देवमनुष्यौ।
अथ को नाम सः यक्षः, यदन्नं नाभिनन्दति"इति॥
"येऽन्नं ददति श्रद्धया, विप्रसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिन् लोके परस्मिंश्च॥
''तस्मात् विनीय मत्सरिम्, दद्यात् दानं मलाभिभूः।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठा भवति प्राणिनाम्"इति॥
आश्चर्यम्, भदन्त! अद्भुतम्, भदन्त! यावत् सुभाषितमिदम्, भदन्त्! भगवता—

(हिन्दी) ''इसी तरह धर्मविरूद्ध, एवं अधर्म के अनुकूल किसी मूर्ख साधक को मृत्युसुख में पड़कर, धुरा टूट जाने वाले मूर्ख गाड़ीवान की तरह अन्त में पश्चात्ताप ही करना पड़ता है।''

3. एक ओर खड़े स्वैरी देवपुत्र ने भगवान् के सम्मुख इन गाथाओं से यों निवेदन किया-

''देवता एवं मनुष्य-दोनों ही अन्न के प्रति अभिनन्दन प्रकट करते हैं। भला ऐसा कौन बुद्धिमान् प्राणी है जिस को अन्न अभिनन्दनीय न लगता हो।''

''जो अन्न को श्रद्धालु मन से दूसरों को देता है तो वही अन्न दूसरे समय इस लोक या परलोक में दाता के उपयोग में आता है।

अतः कंजूसी का परित्याग कर, मुक्तहस्त से प्रभूत दान करना चाहिये, क्योंकि पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है। भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है! भगवान ने कितना उचित कहा है कि-

''ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
''तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥

''भूतपुब्बाहं, भन्ते, सिरी नाम राजा अहोसिं दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। तस्स मय्हं, भन्ते, चतूसु द्वारेसु दानं दीयित्थ समण-ब्राह्मण-कपणद्धिक-वनिब्बकयाचकानं।

अथ खो मं, भन्ते, इत्थागारं उपसङ्कमित्वा एतदवोच– 'देवस्स खो दानं दीयति; अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयम्पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा'ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामाति वदन्ते किन्ति वदेय्य'न्ति? सो ख्वाहं, भन्ते, पठमं द्वारं इत्थागारस्स अदासिं। तत्थ इत्थागारस्स दानं दीयित्थ; मम दानं पटिक्कमि।

(संस्कृतच्छाया) "येऽन्नं ददति श्रद्धया, विप्रसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिन् लोके परस्मिंश्च॥
''तस्मात् विनीय मत्सरिम्, दद्यात् दानं मलाभिभूः।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठा भवति प्राणिनाम्"इति॥

भूतपूर्वमहम्, भदन्त! स्वैरी नाम राजा अभूवम् दायकः दानपतिः दानस्य वर्णवादी। तस्य मम, भदन्त!, चतुर्षु द्वारेषु दानं दीयते स्म श्रमणब्राह्मणकृपणाध्विकवनीयकयाचकेभ्यः।

अथ खलु माम्, भदन्त! स्त्र्यागारम् उपसङ्क्रम्य एतदवोचत्ृ देवस्स खलु दानं दीदाते, अस्माकं दानं न दीयते। साधु वयमपि देवं निःश्राय दानानि दद्याम, पुण्यानि कुर्याम' इति। तस्य मम, भदन्त! एतदभूत्— अहं खल्वस्मि दायकः दानपतिः दानस्य वर्णवादी। दानं दास्यामः इति वदतः किमिति वदेयम्'इति? स खल्वहं भदन्त!, प्रथमं द्वारं स्त्र्यागाराय अददाम्। तत्र स्त्र्यागारस्य दानं दीयते स्म, मम दानं प्रत्यक्रमीत्।

(हिन्दी) जो इस अन्न को श्रद्धालु मन से.....पूर्ववत्.....प्राणियों का आधार होता है।''

''भन्ते! बहुत पहले मैं स्वैरी नामक राजा था। मैं स्वयं दानी था, तथा अन्य दानपतियों एवं उनके द्वारा किये गये दान की प्रशंसा करता था। मेरे नगर के चारों द्वारों पर श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, यात्रियों एवं विकलाङ्गों तथा याचकों को नित्यदान किया जाता था।

''भन्ते! जब मैं अन्तःपुर में जाता था तो मेरी रानियाँ कहती थी- 'आप तो दान कर रहे हैं, हम नहीं कर पा रही हैं। अच्छा होता कि किसी उपाय से हम भी दान कर पाती। आपके आधार पर हम भी पुण्यार्जन कर लेती।''''भन्ते! तब मुझे यह विचार मन में आया- मैं दान देता हूँ, दान की प्रशंसा करता हूँ। जो ये स्वयं कह रही हैं- 'हम भी दान करेंगी', तो मैं इनकी कितनी प्रशंसा करूँ। आज से मैं नगर के चार द्वारों में से एक द्वार 'स्त्रीद्वार' प्रख्यात कर देता हूँ। यों मैने नगर का प्रथम द्वार दानहेतु अपने अतःपुर को दे दिया। वहाँ स्त्रियों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट जाता था।

''अथ खो मं, भन्ते, खत्तिया अनुयन्ता उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं– 'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयम्पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा'ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामाति वदन्ते किन्ति वदेय्य'न्ति? सो ख्वाहं, भन्ते, दुतियं द्वारं खत्तियानं अनुयन्तानं अदासिं। खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

''अथ खो मं, भन्ते, बलकायो उपसङ्कमित्वा एतदवोच– 'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयति; अम्हाकं दानं न दीयति। साधु मयम्पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा'ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामाति वदन्ते किन्ति वदेय्य'न्ति? सो ख्वाहं भन्ते, ततियं द्वारं बलकायस्स अदासिं। तत्थ बलकायस्स दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

(संस्कृतच्छाया) "अथ खलु माम्, भदन्त! क्षत्रियाः अनुयान्तः उपसङ्क्रम्य एतदवोचन्— देवस्य खलु दानं दीयते, स्त्र्यागारस्य दानं दीयते, अस्माकं दानं न दीयते । साधु वयमपि देवं निःश्राय दानानि दद्याम, पुण्यानि कुर्याम' इति। तस्य मम, भदन्त! एतदभूत्- अहं खल्वस्मि दायकः दानपतिः दानस्य वर्णवादी। दानं दास्यामः इति वदतः किमिति वदेयम्' इति? सः खल्वहम्, भदन्त! द्वितीयं द्वारं क्षत्रियेभ्यः अनुयातृभ्यः अददाम्। तत्र क्षत्रियाणाम् अनुयातृणां दानं दीयते स्म, मम दानं प्रत्यक्रमीत्।

अथ खलु माम्, भदन्त! बलकायः उपसङ्क्रम्य एतदवोचत्— देवस्य खलु दानं दीयते; स्त्र्यागारस्य दानं दीयते; क्षत्रियाणाम् अनुयातृणां दानं दीयते; अस्माकं दानं न दीयते। साधु वयमपि देवस्य निःश्राय दानानि दद्याम, पुण्यानि कुर्याम"इति। तस्य मम, भदन्त! एतदभूत्— अहं खल्वस्मि दायकः दानपतिः दानस्य वर्णवादी। दानं दास्यामः इति वदतः किमिति वदेयम्'इति? स खल्वहं भदन्त! तृतीयं द्वारं बलकायाय अददाम्। तत्र बलकायस्य दानं दीयते स्म, मम दानं प्रत्यक्रमीत्।

(हिन्दी) ''तब कभी, भन्ते! मेरे अनुगामी सामन्त मेरे पास आये, वे भी मुझसे बोले- 'देव! आप भी दान करते हैं, आप का अन्तःपुर भी दान करता है, परन्तु हमें दान करने का अवसर नहीं मिलता। अच्छा हो कि हम भी आप के सहारे से कुछ दान कर लिया करें, यों हम भी कुछ पुण्य कमा लें।' तब भी मेरे मन में वही विचार आया...पूर्ववत्...। तब मैंने नगर का दूसरा द्वार दानहेतु अपने अनुगामी क्षत्रियों को दे दिया।

''तब कभी, भन्ते! मेरी सेना के बड़े अधिकारी मेरे पास आये, वे भी बोले-.....पूर्ववत्.....तब मैने नगर का तीसरा द्वार अपनी सेना के बड़े अधिकारियों को दान हेतु दे दिया। वहाँ सामन्तों की ओर से दान दिया जाने लगा, मेरा दान लौट जाता था।

''अथ खो मं, भन्ते, ब्राह्मणगहपतिका उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं– 'देवस्स खो दानं दीयति; इत्थागारस्स दानं दीयति; खत्तियानं अनुयन्तानं दानं दीयति; बलकायस्स दानं दीयति; अम्हाकं दानंन दीयति। साधु मयम्पि देवं निस्साय दानानि ददेय्याम, पुञ्ञानि करेय्यामा'ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'अहं खोस्मि दायको दानपति दानस्स वण्णवादी। दानं दस्सामाति वदन्ते किन्ति वदेय्यं'ति? सो ख्वाहं, भन्ते, चतुत्थं द्वारं ब्राह्मणगहपतिकानं अदासिं। तत्थ ब्राह्मणगहपतिकानं दानं दीयित्थ, मम दानं पटिक्कमि।

''अथ खो मं, भन्ते, पुरिसा उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं– 'न खो दानि देवस्स कोचि दानं दीयती'ति। एवं वुत्ताहं, भन्ते, ते पुरिसे एतदवोचं– 'तेन हि, भणे, यो बाहिरेसु जनपदेसु आयो सञ्जायति ततो उपड्ढं अन्तेपुरे पवेसेथ, उपड्ढं तत्थेव दानं देथ समण-ब्राह्मण-कपणद्धिक-वनिब्बक-याचकानं'ति। सो ख्वाहं, भन्ते, एवं दीघरत्तं कतानं पुञ्ञानं एवं दीघरत्तं कतानं कुसलानं धम्मानं परियन्तं नाधिगच्छामि– एत्तकं पुञ्ञं ति वा एत्तको पुञ्ञविपाकोति वा एत्तकं सग्गे ठातब्बं ति वाति। अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते!

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु माम्, भदन्त! ब्राह्मणगृहपतिकाः उपसङ्क्रम्य एतदवोचन्— देवस्य खलु दानं दीयते; स्त्र्यागारस्य दानं दीयते; क्षत्रियाणाम् अनुयातृणां दानं दीयते; बलकायस्य दानं दीयते, अस्माकं दानं न दीयते। साधु वयमपि देवं निःश्राय दानानि दद्याम, पुण्यानि कुर्याम"इति। तस्य मम, भदन्त! एतदभूत् — अहं खल्वस्मि दायकः दानपति दानस्य वर्णवादी। दानं दास्यामः इति वदतः किमिति वदेयम्'इति? सः खल्वहम्, भदन्त! चतुर्थं द्वारं ब्राह्मणगृहपतिकेभ्यः अददाम्। तत्र ब्राह्मणगृहपतिकानां दानं दीयते स्म, मम दानं प्रत्यक्रमीत्।

अथ खलु माम्, भदन्त! पुरुषाः उपसङ्क्रम्य एतदवोचन्– न खलु इदानीं देवस्य, किञ्चित् दानं दीयते 'इति। एवम् उक्तोहम्, भदन्त! तान् पुरुषान् एतदवोचम्– 'तेन हि, भणे, यः बहिः जनपदेषु आयः संजायते तत् उपार्द्धम् अन्तःपुरं प्रवेशयेत् उपार्द्धम् तत्रैव दानं दद्यात् श्रमणब्राह्मण-कृपणाद्धिकवनीयकयाचकेभ्यः"इति। सः खल्वहम्, भदन्त! एवं दीर्घरात्रं कृतानां पुण्यानाम् एवं दीर्घरात्रं कृतानां कुशलानां धर्माणां पर्यन्तं नाधिगच्छामि— एतावत् पुण्यम् इति वा, एतावतः पुण्यविपाकः इति वा, एतावत् स्वर्गे स्थातव्यम् इति वा इति। आश्चर्यं भदन्त! अद्भुतं भदन्त!

(हिन्दी) ''तब कभी, भन्ते! मेरे नगर के कुछ प्रमुख ब्राह्मण मेरे पास आये तथा बोले-.....पूर्ववत्.....। तब मैने नगर का चतुर्थ द्वार उन ब्राह्मणगृहपतियों को दान हेतु दे दिया।''

''तब, भन्ते! मेरे राजकोष के अधिकारियों ने आकर मुझसे कहाँ- 'देव! अब आपकी ओर से कोई दान नहीं हो रहा है।' ऐसा कहे जाने पर मैने उनको ओदश दिया- 'तो तुम ऐसा करो कि बाह्य जनपदों से आगत आय का आधा भाग अन्तःपुर में भेजा करो तथा आधा भाग वही श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, यात्रियों एवं विकलाङ्गों एवं याचकों को दान कर दिया करो।' इस तरह, भन्ते, मेरा इतना पुण्य है, या इतने पुण्य से मैं कितने काल तक स्वर्ग में रह पाऊँगा इस का अन्त नहीं जान पा रहा हूँ। अतः, भन्ते! आपका यह कथन आश्चर्यमय एवं अद्भुत है।

यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता–

''ये नं ददन्ति सद्धाय, विप्पसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिं लोके परम्हि च॥
''तस्मा विनेय्य मच्छेरं, दज्जा दानं मलाभिभू।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं'ति॥

2.3.4. घटीकारसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो घटीकारो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अविहं उपपन्नासे, विमुत्ता सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणा, तिण्णा लोके विसत्तिकं''ति॥
''के च ते अतरुं पङ्कं, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।
के हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) यावत् सुभाषितमिदम्, भदन्त! भगवता—

''येऽन्नं ददति श्रद्धया, विप्रसन्नेन चेतसा।
तमेव अन्नं भजति, अस्मिन् लोके परस्मिंश्च॥
''तस्मात् विनीय मत्सरिम्, दद्यात् दानं मलाभिभूः।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठा भवति प्राणिनाम्"इति॥

4. एकान्ते स्थितः खलु घटीकारः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"अविहेषु उत्पन्नाः आसन्, विमुक्ताः सप्त भिक्षवः।
रागद्वेषपरिक्षीणाः, तीर्णाः लोकं विसक्तिकम्"इति॥
''के च ते अतरन्, पंकं मृत्युध्येयं सुदुस्तरम्।
के हित्वा मानुषं देहम्, दिव्ययोगम् उपंगमाः?

(हिन्दी) ''जो अन्न को श्रद्धालु मन से दूसरों को देता है तो वही अन्न दूसरे समय इस लोक या परलोक में दाता के उपयोग में आता है।

''अतः कंजूसी का परित्याग कर, मुक्तहस्त से प्रभूत दान करना चाहिये, क्योंकि पुण्य ही परलोक में प्राणियों का आधार होता है''॥

4. एक ओर खड़े घटीकार ने भगवान् के समीप आकर यह गाथा कहीं-

''सात भिक्षु अपने राग द्वेष विकार क्षीण कर, संसार से वीततृष्ण हो कर, इस लोक को पारकर अविह देवों में उत्पन्न हुए।''

''वे कौन थे जो इस भवपङ्क को लाँघ गये, कठिनता से पार जाने योग्य मृत्युसागर को भी पार कर गये? कौन इस मानव देहपात के बाद दिव्य स्थान को प्राप्त हो गये? ''

''उपको पलगण्डो च, पुक्कुसाति च ते तयो।
भद्दियो खण्डदेवो च, बाहुरग्गि च सङ्गियो।
ते हित्वा मानुसं देहं, दिब्बयोगं उपच्चगुं''ति॥
''कुसली भाससी तेसं, मारपासप्पहायिनं।
कस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं''ति॥
''न अञ्ञत्र भगवता, नाञ्ञत्र तव सासना।
यस्स ते धम्ममञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं॥
''यत्थ नामञ्च रूपञ्च, असेसं उपरुज्झति।
तं ते धम्मं इधञ्ञाय, अच्छिदुं भवबन्धनं''ति॥
''गम्भीरं भाससी वाचं, दुब्बिजानं सुदुब्बुधं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, वाचं भाससि ईदिसं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''उपकः पलगण्डश्च, पुक्कुसाति च ते त्रयः।
भद्दियः खण्डदेवश्च, बहुरग्निः च सिङ्गियः।
ते हित्वा मानुषं देहम्, दिव्ययोगं उपंगमाः॥
"कुशलं भाषसे तेषाम्, मारपाशापहारिणाम्।
कस्य ते धर्ममाज्ञाय, अछिन्दन् भवबन्धनम्"इति॥
"न अन्यत्र भगवता, नान्यत्र तव शासनात्।
यस्य ते धर्ममाज्ञाय, अछिन्दन् भवबन्धनम्॥
"यत्र नाम च रूपञ्च, अशेषम् उपरुध्यते।
त्वं ते धर्म इह आज्ञाय, अछिन्दन् भवबन्धनम्"इति॥
"गम्भीरं भाषसे वाचम्, दुर्विज्ञेयं सुदुर्बुधम्।
कस्य त्वं धर्ममाज्ञाय, वाचं भाषसे ईदृशम्"इति॥

(हिन्दी) ''वे सात ये थे- 1. उपक, 2. पलगण्ड, 3. पुक्कुसाति, 4. भद्दिय, 5. खण्डदेव, 6. बाहुरग्गि एवं 7. पिङ्गिय। वे सात इस मानव देहपात के बाद दिव्य भाव को प्राप्त हुए।''

''उस मारपाश के बन्धन को काटने वालों के विषय में आप ठीक ही कह रहे हैं। परन्तु क्या आप लोग जानते हैं कि वे किसके द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन कर अपने इन बन्धनों को काटने में समर्थ हुए?''

''भगवान् को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं, आप के धर्म को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं। आपके द्वारा उपदिष्ट धर्म का अवलम्बन कर के ही वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हुए!''

''जहाँ नाम और रूप दोनों सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। आपके उस धर्म को जान कर वे अपने भवबन्धन काटने में समर्थ हो सके।''

(भगवान्-)''तुम तो बहुत गम्भीर बातें कर रहे हो! पहले इस को ठीक जानना ही कठिन है, फिर ठीक से

''कुम्भकारो पुरे आसिं, वेकळिङ्गे घटीकरो।
मातापेत्तिभरो आसिं, कस्सपस्स उपासको॥
''विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा ते सगामेय्यो, अहुवा ते पुरे सखा॥
''सोहमेते पजानामि, विमुत्ते सत्त भिक्खवो।
रागदोसपरिक्खीणे, तिण्णे लोके विसत्तिकं''ति॥
''एवमेतं तदा आसि, यथा भाससि भग्गव।
कुम्भकारो पुरे आसि, वेकळिङ्गे घटीकरो॥
''मातापेत्तिभरो आसि, कस्सपस्स उपासको।
विरतो मेथुना धम्मा, ब्रह्मचारी निरामिसो।
अहुवा मे सगामेय्यो, अहुवा मे पुरे सखा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "कुम्भकारः पुरा आसम्, वै कलिङ्गे घटकारः।
मातृपितृभरः आसम, काश्यपस्य उपासकः॥
"विरतो मैथुनात् धर्मात्, ब्रह्मचारी निरामिषः।
अभूव तस्य सग्राम्यौ, अभूव तस्य पुरा सखायौ॥
"सोऽहमेतान् प्रजानामि, विमुक्तान् सप्तभिक्षून्।
रागद्वेषपरिक्षीणान्, तीर्णान् लोके विसक्तिकम्"इति॥
"एवमेतत् तदा आसीत्, यथा भाषसे भार्गव!
कुम्भकारः पुरा आसीत्, वै कलिङ्गे घटकारः।
मातृपितृभरः आसीत्, काश्यपस्य उपासकः॥
''विरतो मैथुनात् धर्मात्, ब्रह्मचारी निरामिषः।
अभूव मे सग्राम्यौ, अभूव मे पुरा सखायौ"इति॥

(हिन्दी) समझना तो और भी कठिन! यह तो बताओ कि किस धर्म को जान कर ऐसी वाणी बोल रहे हो?''

(देवता-)''पहले मैं एक घटीकार (कुम्भकार) था, वेहलिङ्गनगर में एक घड़ा बनाने वाला, उसी आजीविका से मैं अपने माता पिता का पालन पोषण करता था, मैं भगवान् काश्यप बुद्ध का उपासक था।

''मैं मैथुन धर्म से विरत रहकर ब्रह्मचारी, पूर्ण त्यागी, अपरिग्रही था। हम दोनों (भगवान् काश्यप और मैं) एक ही ग्राम के वासी थे। वे पहले मेरे मित्र थे।

''अतः मैं इन सातों भिक्षुओं को जानता हूँ। वे सातों भिक्षु भवबन्धन से मुक्त होकर अपने राग द्वेष मोह क्षीण कर चुके थे, अतः वे भवसागर से मुक्त हो गये।''

(भगवान्-) ''आप उस समय ऐसे ही थे, जैसा भगवान कह रहे हैं। आप पहले वेहलिङ्ग ग्राम में घड़ा बनाने वाले घटीकार थे। इसी वृत्ति से आप अपने माता पिता का पालन पोषण करते थे।''

''एवमेतं पुराणानं, सहायानं अहु सङ्गमो।
उभिन्नं भावितत्तानं, सरीरन्तिमधारिनं''ति॥

2.3.5. जन्तुसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु विहरन्ति हिमवन्तपस्से अरञ्ञकुटिकाय उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता पाकतिन्द्रिया। अथ खो जन्तु देवपुत्तो तदहुपोसथे पन्नरसे येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू गाथाहि अज्झभासि–

''सुखजीविनो पुरे आसुं, भिक्खू गोतमसावका।
अनिच्छा पिण्डमेसना, अनिच्छा सयनासनं।
लोके अनिच्चतं ञत्वा, दुक्खस्सन्तं अकंसु ते॥

(संस्कृतच्छाया) "एवमेतत् पुराणयोः, सहाययोः अभूत् सङ्गमः।
उभौ भावितात्मानौ, शरीरान्तिमधारिण्यौ"इति॥

5. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये सम्बहुलाः भिक्षवः कोसलेषु विहरन्ति हिमवन्तप्रदेशे अरण्यकुटिकायाम् उद्धताः, उन्नद्धाः चपलाः मुखराः विकीर्णवाचः, मृष्टस्मृतिनः असम्प्रज्ञाः, असमाहिताः, विभ्रान्तचित्ताः प्रकृतेन्द्रियाः। अथ खलु जन्तुः देवपुत्रः तद् उपोसथे पञ्चदशे यत्र ते भिक्षवः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य तान् भिक्षून् गाथाभिः अध्यभाषिष्ट—

''सुखजीविनः पुरा आसन्, भिक्षवः गौतमश्रावकाः।
अनिच्छाः पिण्डेषणाः, अनिच्छाः शयनासनम्।
लोकस्य अनित्यतां ज्ञात्वा, दुःखस्यान्तम् अक्रमिषुः ते॥

(हिन्दी) ''आप मैथुन धर्म से विरत रह कर एकान्ततः धर्मोपासना करते हुए, पूर्णतः त्यागी एवं अपरिग्रही थे। आप और मैं एक ही ग्राम के वासी थे, आप और मैं दोनों पहले सखा थे।''

यों यह पुराने दो मित्रों का संलाप हुआ। दोनों ही भावितात्मा (आत्मज्ञानी) एवं अन्तिम देहधारी थे।

5. ऐसा मैने सुना है। एक समय बहुत से भिक्षु कौसल प्रदेश में हिमालय के पार्श्ववर्ती जंगलों में विहार कर रहे थे। वे उद्धत, उद्दण्ड, चपल, व्यर्थ बोलने वाले, परस्पर बहकी बातें करने वाले, मूढस्मृति, असम्प्रज्ञ, असमाहित, चंचलचित्त, तथा असंयतेन्द्रिय थे। तब जन्तु देवपुत्र पूर्णिमा के उपोसथ के दिन जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ आया। आकर उसने उन भिक्षुओं को इन गाथाओं में कहा-

''गौतमशिष्य भिक्षु पहले सुखपूर्वक रहते थे, निर्लोभ रहते हुए भिक्षा करते थे। उन्हें अपने शयनासन की भी कोई अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने इस लोक की अनित्यता को जानकर अपने सभी दुःखों का अन्त कर लिया था।

''दुप्पोसं कत्वा अत्तानं, गामे गामणिका विय।
भुत्वा भुत्वा निपज्जन्ति, परागारेसु मुच्छिता॥
''सङ्घस्स अञ्जलिं कत्वा, इधेकच्चे वदामहं।
अपविद्धा अनाथा ते, यथा पेता तथेव ते॥
''ये खो पमत्ता विहरन्ति, ते मे सन्धाय भासितं।
ये अप्पमत्ता विहरन्ति, नमो तेसं करोमहं''ति॥

2.3.6. रोहितस्ससुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं ठितो खो रोहितस्सो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच– ''यत्थ नु खो, भन्ते, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, सक्का नु खो सो, भन्ते, गमनेन लोकस्स अन्तो ञातुं वा दट्ठुं वा पापुणितुं वा''ति?

''यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं

(संस्कृतच्छाया) ''दुर्पोषणं कृत्वा आत्मानम्, ग्रामे ग्रामणिका इव।
भुक्त्वा भुक्त्वा निपद्यन्ते, परागारेषु मूर्छिताः॥
''सङ्घाय अञ्जलिं कृत्वा, इह किञ्चित् वदाम्यहम्।
अपविद्धाः अनाथाः ते, यथा प्रेताः तथैव ते॥
''ये खलु प्रमत्ताः विहरन्ति, तान् मया सन्धाय भाषितम्।
ये अप्रमत्ताः विहरन्ति, नमः तेभ्यः करोम्यहम्"इति॥

6. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते स्थितः खलु रोहिताश्वः देवपुत्रः भगवन्तम् एतदवोचत्— ''यत्र नु खलु, भदन्त! न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवति न उपपद्यते, शक्राः ननु खलु सः, भदन्त! गमनेन लोकस्य अन्तः ज्ञातुं वा द्रष्टुं वा प्राप्तुं वा" इति?

यत्र खलु, आयुष्मन्! न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवति न उपपद्यते, नाहं तां

(हिन्दी) अब तो गाव के जमीनदार जैसा अपने आप को मानते हुये दूसरों के सामानो को अपना मानकर खूब खा खा कर दूसरों के घर में पड़े रहते हैं।

अवशिष्ट सङ्घ को प्रणाम करता हुआ मैं उन कुछ प्रमत्त भिक्षुओं के लिये यही कहना चाहता हूँ कि उन का जीवन परित्यक्त, अनाथ एवं प्रेत के समान है, क्योंकि वे यथेच्छ अतिमात्रा में भोजन कर गृहस्थों के घरों में पड़े रहते हैं। ''इस तरह के भिक्षुओं को लक्ष्य करके ही मैने यह बात कही है। अन्यथा जो भिक्षु वस्तुतः अप्रमत्त होकर साधना में लीन है उन्हें मैं वस्तुतः प्रणाम करता हूँ।''

6. श्रावस्ती में। एक ओर खड़े रोहिताश्व देवपुत्र ने भगवान् से यों कहा- ''भन्ते! जहाँ न कोई जन्मता है, न वृद्ध होता है, न मरता है, न शरीर त्याग कर पुनः उत्पन्न होता है, ऐसे लोक के उस अन्त को चल चल कर जाना, देखा या पाया जा सकता है?" "आयुष्मान्! जहाँ न कोई जन्मता है.....पूर्ववत्....देखा या पाया जा

गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी''ति।

''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता– 'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यन्ति वदामी'ति। ''भूतपुब्बाहं, भन्ते, रोहितस्सो नाम इसि अहोसिं भोजपुत्तो इद्धिमा वेहासङ्गमो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो जवो अहोसि; सेय्यथापि नाम दळ्हधम्मा धनुग्गहो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो लहुकेन असनेन अप्पकसिरेनेव तिरियं तालच्छायं अतिपातेय्य। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो पदवीतिहारो अहोसि; सेय्यथापि नाम पुरत्थिमा समुद्दा पच्छिमो समुद्दो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि– 'अहं गमनेन लोकस्स अन्तं पापुणिस्सामी'ति। सो ख्वाहं, भन्ते, एवरूपेन जवेन समन्नागतो एवरूपेन च पदवीतिहारेन अञ्ञत्रेव असित-पीत-खायित-सायिता अञ्ञत्र उच्चार-पस्सावकम्मा अञ्ञत्र निद्दाकिलमथपटिविनोदना वस्ससतायुको वस्ससतजीवी वस्ससतं गन्त्वा अप्पत्वाव लोकस्स अन्तं

(संस्कृतच्छाया) गमनेन लोकस्य अन्तं ज्ञेयं दृश्यं प्राप्यमिति वदामिश्इति।

आश्चर्यम्, भदन्त! अद्भुतम्, भदन्त! यावत्सुभाषितमिदम्, भदन्त! भगवता— यत्र खलु, आयुष्मन्! न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवति न उपपद्यते नाहं तं गमनेन लोकस्य अन्तं ज्ञेयं दृश्यं प्राप्यमिति वदामि"इति। भूतपूर्वमहम्, भदन्त! रोहिताश्वः नाम ऋषिः अभूवं भोजपुत्रः ऋद्धिमान् विहङ्गमः। तस्य मह्यम्, भदन्त! एवं रूपः जवः अभूत् तद्यथापि नाम दृढ़धर्मः धनर्ग्रहः सुशिक्षितः कृतहस्तः कृतयोगः कृतोपासनः लघुकेन अशनेन अल्पायासे नैव तीर्थिकं तालच्छायं अतिपतीतेत्। तस्य मह्यम्, भदन्त! एवं रूपः पदवीतिहारः अभूत्; तद्यथापि नाम पूर्वस्मात् समुद्रात् पश्चिमं समुद्रं यावत्। तस्य मह्यम्, भदन्त! एवं रूपम् इच्छागतम् उदपद्यत अहं गमनेन लोकस्य अन्तं प्राप्स्यामि"इति। स खल्वहम्, भदन्त! एवं रूपेण जवेन समन्वागतः एवं रूपेण च पदवीतिहारेण अन्यत्रेव अशितपीतभक्षितशयिताः अन्यत्र उच्चार-प्रस्रावकर्मणः अन्यत्र निद्राक्लमथप्रतिविनोदनाः वर्षशतायुष्कः वर्षशतजीवी वर्षशतं गत्वा अपत्य एव लोकस्य अन्तम्

(हिन्दी) सकता है- ऐसा मैं नहीं बताता।"

"भन्ते! आश्चर्यमय है, यह अद्भुत बात है जो आपने कही कि जहाँ न कोई जहाँ न कोई जनमता है, न वृद्ध होता है, न मरता है, न शरीर....पूर्ववत्.....। ''भन्ते!बहुत पहले मैं रोहिताश्व नामक भोजपुत्र,बड़ा ऋद्धिमान एवं आकाशचारी ऋषि था। उस समय मेरी गति इतनी तीव्र थी जैसे किसी चतुर सुशिक्षित, दृढाभ्यासी धनुर्धर द्वारा सरलता से फेंका गया तीर भी दूरस्थ ताल की छाया तक चला जाय। ''भन्ते! उस समय मेरा पदक्रम ऐसा था कि मैं एक ही पदक्रम में पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक लाँघ सकता था। उस समय मेरी इच्छा हुई कि मैं चलकर इस लोक के अन्त तक पहुँचूँगा। भन्ते! वह मैं पदक्रम से, इस गति से खाना पीना त्यागकर, शौचादि क्रियाएँ छोड़कर, शयन एवं विश्राम को एकान्ततः त्याग कर सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहकर निरन्तर चलते रह कर भी इस लोक का अन्त प्राप्त किये विना ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।"

अन्तराव कालङ्कतो। ''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता– 'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यन्ति वदामी'''ति।

''न खो पनाहं, आवुसो, अप्पत्वा लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामि। अपि च ख्वाहं, आवुसो, इमस्मिंयेव ब्याममत्ते कळेवरे ससञ्ञिम्हि समणके लोकञ्च पञ्ञापेमि लोकसमुदयञ्च लोकनिरोधञ्च लोकनिरोधगामिनिञ्च पटिपदन्ति।

''गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।
न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं॥
''तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो, लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो।
लोकस्स अन्तं समितावि॰त्वा, नासीसति लोकमिमं परञ्चा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अन्तरा च कालङ्गतः। आश्चर्यम्, भदन्त! अद्भुतम्, भदन्त! यावत्सुभाषितमिदम्, भदन्त! भगवता— यत्र खलु, आयुष्मन्! न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवति न उपपद्यते नाहं तं गमनेन लोकस्य अन्तं ज्ञेयं दृश्यं प्राप्यं वदामि"इति।

न खलु पुनाहम् आयुष्मन्! अप्राप्य लोकस्य अन्तं दुःखस्य अन्तक्रियां वदामि। अपि च खल्वहम्, आयुष्मन्! अस्मिन् एव व्याममात्रे कलेवरे ससंज्ञि श्रमणस्य लोकस्य च प्रज्ञापयामि लोकस्य समुदयं च लोकस्यनिरोधं च लोकस्यनिरोधगामिनीं च प्रतिपदम् इति।

''गमनेन न प्राप्तव्यः, लोकस्यान्तः कदाचन।
न च अप्राप्य लोकान्तम्, दुःखात् अस्ति प्रमोचनम्॥
''तस्मात् हि वै लोकविद् सुमेधः, लोकान्तगः उषितब्रह्मचर्यः।
लोकस्यान्तं शमितं विज्ञाय, नाश्नाति लोकमिमं परम्"इति॥

(हिन्दी) "यह, भन्ते! आश्चर्य है, अद्भुत है कि आप ने जो कहाँ-"जहाँ न कोई जन्मता है....पूर्ववत्.....पाया जा सकता है-मैं नहीं बताता।"

"परन्तु आयुष्मन्! मेरा कहना यह है "लोक का अन्त पाये बिना दुखों का अन्त करना सम्भव नहीं है, तथा आयुष्मान्! मैं यह भी कहता हूँ-"इसी व्याम मात्र लम्बे 'शरीर' संज्ञा धारण करने वाले कलेवर में लोक, लोक की उत्पत्ति, लोक निरोध तथा इस निरोध का मार्ग सभी कुछ विद्यमान है।"

"गमन से इस लोक का अन्त प्राप्त नहीं किया जा सकता। लोक का अन्त जाने विना दुःख से मुक्ति भी नहीं मिल सकती।"

"अतः बुद्धिमान् मनुष्य लोक के अन्त को पहचाने। लोक के अन्त का साक्षात्कार करने वाला, धर्मसाधना करने वाला ही इस लोक के अन्त को भली भाँति जान कर न इस लोक का उपभोग करता है, न परलोक की।"

2.3.7. नन्दसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो नन्दो देवपुत्तो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, पुञ्ञानि कयिराथ सुखावहानी''ति॥
''अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो, वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति।
एतं भयं मरणे पेक्खमानो, लोकामिसं पजहे सन्तिपेक्खो''ति॥

2.3.8. नन्दिविसालसुत्तं

एकमन्तं ठितो खो नन्दिविसालो देवपुत्तो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''चतुचक्कं नवद्वारं, पुण्णं लोभेन संयुतं।
पङ्कजातं महावीर, कथं यात्रा भविस्सती''ति॥

---

7. (संस्कृतच्छाया) एकान्ते स्थितः खलु नन्दः देवपुत्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"अत्येन्ति कालाः तरन्ति रात्र्यः, वयोगुणाः आनुपूर्वं जहति।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, पुण्यानि कुर्वन्तु सुखावहानि"इति॥
"अत्येन्ति कालाः तरन्ति रात्र्यः, वयोगुणा आनुपूर्वं जहति।
एतद् भयं मरणात् प्रेक्षमाणः, लोकामिषं प्रजह्यात् शान्तिप्रेक्षः"इति॥

8. एकान्ते स्थितः खलु नन्दिविशालः देवपुत्रः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"चतुश्चक्रं नवद्वारम्, पूर्णलोभेन संयुतम्।
पंकजातं महावीर! कथं यात्रा भविष्यति"इति॥

(हिन्दी) 7. एक ओर खड़े हुए नन्द देवपुत्र ने भगवान् के पास जाकर ये गाथाएँ कहीं-

समय बीतता जा रहा है, रातें गुजरती जा रही हैं, जीवन-सूत्र धीरे धीरे ढीले होते जा रहे हैं, सामने यमराज खड़ा दिखायी दे रहा है, ऐसी स्थिति में यदि तुम पुण्यकर्म करते रहो तो वे तुम्हारे लिये सुखदायी ही होंगे।"

(भगवान्-) "समय बीतता जा रहा है, रातें गुजरती जा रही हैं, जीवन-सूत्र धीरे धीरे ढीले होते जा रहे हैं, सामने यमराज खड़ा दिखायी दे रहा है, ऐसी स्थिति में यदि तुम अब भी कामभोगों का परित्याग कर दो तो इसी में तुम्हें शान्ति मिलेगी।"

8. एक ओर खड़े हुए नन्दिविशाल देवपुत्र ने भगवान् को गाथा के माध्यम से बोला-

देवता- हे महावीर बुद्ध मेरा यह शरीररूप रथ चार चक्रों (चार इरियापथ- खड़ा होना, बैठना, सोना और चलना) वाला है, इसके नौ द्वार (नेत्र आदि इन्द्रियाँ) हैं, यह अशुचिपूर्ण एवं लोभ से भरा पड़ा है। मार्ग भी कीचड़(पङ्क) से भरा पड़ा है, ऐसे मे मेरी यह (निर्वाण) यात्रा कैसे सुगम होगी?

''छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च, इच्छालोभञ्च पापकं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, एवं यात्रा भविस्सती''ति॥

2.3.9. सुसिमसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच– ''तुय्हम्पि नो, आनन्द, सारिपुत्तो रुच्चती''ति?

''कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्य? पण्डितो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। महापञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पुथुपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। हासपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। जवनपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। तिक्खपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। निब्बेधिकपञ्ञो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। अप्पिच्छो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो।

(संस्कृतच्छाया) "छित्वा नद्धिं वरत्रं च, इच्छालोभं च पापकम्।
समूलं तृष्णाम् अपवाह्य, एवं यात्रा भविष्यति"इति॥

9. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु आयुष्मान् आनन्दः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु आयुष्मन्तम् आनन्दं भगवान् एतदवोचत्— "तुभ्यम् अपि नो, आनन्द! शारिपुत्रः रोचते"इति?

"कस्मै हि नाम भदन्त! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचिताय आयुष्मान् शारिपुत्रः न रोचेत? पण्डितः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। महाप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। पृथुप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। हासप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। जवनप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। तीक्ष्णप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। निर्वेधिकप्रज्ञः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। अल्पेच्छः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः।

(हिन्दी) (भगवान्-) वैरभाव (नद्धि- उपनाह बद्धवैर) तथा लोभरूप रस्सी को काटकर, मूल पापमय इच्छाओं तथा लोभ का परित्याग कर, तृष्णा को जड़ से उखाड़ कर, (निर्वाणनगर की) यात्रा करोगे तो यह अवश्य सरल होगी।''

9. श्रावस्ती में। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। और जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने कहा- क्या, आनन्द! तुम्हे भी हमारा सारिपुत्र अच्छा लगता है?

(आनन्द-) ''भन्ते! मूर्ख, दुष्ट तथा भ्रान्त पुरूष को छोड़कर आयुष्मान् सारिपुत्र किसे अच्छे नहीं लगते। क्योंकि आयुष्मान् सारिपुत्र तो, भन्ते! बुद्धिमान् है, महाप्रज्ञ हैं, बड़े पण्डित हैं। आयुष्मान् सारिपुत्र की प्रज्ञा अतिविस्तृत है, अत्यधिक प्रसन्न है, तीव्र है, तीक्ष्ण है, प्रज्ञा में किसी अन्य का प्रवेश सरल नहीं है। भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र सन्तोषी हैं। विवेकी है, अनासक्त हैं, उत्साही हैं, प्रखर वक्ता हैं, दूसरों को समझाने में

सन्तुट्ठो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पविवित्तो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। असंसट्ठो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। आरद्धवीरियो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। वत्ता, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। वचनक्खमो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। चोदको, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। पापगरही, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्या''ति?

''एवमेतं , आनन्द, एवमेतं, आनन्द! कस्स हि नाम, आनन्द, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स सारिपुत्तो न रुच्चेय्य? पण्डितो, आनन्द, सारिपुत्तो। महापञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। पुथुपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। हासपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। जवनपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। तिक्खपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। निब्बेधिकपञ्ञो, आनन्द, सारिपुत्तो। अप्पिच्छो, आनन्द, सारिपुत्तो। सन्तुट्ठो, आनन्द, सारिपुत्तो। पविवित्तो, आनन्द, सारिपुत्तो। असंसट्ठो, आनन्द, सारिपुत्तो। आरद्धवीरियो, आनन्द, सारिपुत्तो। वत्ता, आनन्द, सारिपुत्तो। वचनक्खमो, आनन्द, सारिपुत्तो। चोदको, आनन्द, सारिपुत्तो। पापगरही, आनन्द, सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, आनन्द, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स सारिपुत्तो न रुच्चेय्या''ति?

(संस्कृतच्छाया) सन्तुष्टः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। प्रविविक्तः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। असंसृष्टः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। आलब्धवीर्यः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। वक्ता, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। वचनक्षमः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। चोदकः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। पापगर्ही, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। कस्मै हि नाम भदन्त! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचित्ताय आयुष्मान् शारिपुत्रो न रोचेत"इति?

"एवमेतत् आनन्द! एवमेतत् आनन्द! कस्मै हि नाम, आनन्द! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचित्ताय शारिपुत्रो न रोचेत? पण्डितः, आनन्द! शारिपुत्रः। महाप्रज्ञः, आनन्द! शारिपुत्रः। पृथुप्रज्ञः आनन्द! शारिपुत्रः। हासप्रज्ञः, आनन्द! शारिपुत्रः। जवनप्रज्ञः, आनन्द! शारिपुत्रः। तीक्ष्णप्रज्ञः, आनन्द! शारिपुत्रः। निर्वेधिकप्रज्ञः, आनन्द! शारिपुत्रः। अल्पेच्छः, आनन्द! शारिपुत्रः। संतुष्टः, आनन्द! शारिपुत्रः। प्रविविक्तः, आनन्द! शारिपुत्रः। असंसृष्टः, आनन्द! शारिपुत्रः। आलब्धवीर्यः, आनन्द! शारिपुत्रः। वक्ता, आनन्द! शारिपुत्रः। वचनक्षमः, आनन्द! शारिपुत्रः।" चोदकः, आनन्द! शारिपुत्रः। पापगर्ही, आनन्द! शारिपुत्रः। कस्मै हि नाम आनन्द! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचित्ताय शारिपुत्रः न रोचेत"इति?

(हिन्दी) समर्थ है, वे कुशल कर्मों के प्रेरक हैं, आयुष्मान् सारिपुत्र पापकर्म के निन्दक हैं। ऐसे गुणों से सम्पन्न आयुष्मान् सारिपुत्र भला किस बुद्धिमान्, सज्जन या स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे। ऐसा ही है, आनन्द! आयुष्मान् सारिपुत्र.....पूर्ववत्.....किस को अच्छे नहीं लगेंगे।

अथ खो सुसिमो देवपुत्तो आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने महतिया देवपुत्तपरिसाय परिवुतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सुसिमो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच,– 'एवमेतं , भगवा, एवमेतं, सुगत। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्य? पण्डितो, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। महापञ्ञो, भन्ते, पुथुपञ्ञो, भन्ते, हासपञ्ञो, भन्ते, जवनपञ्ञो, भन्ते, तिक्खपञ्ञो, भन्ते, निब्बेधिकपञ्ञो, भन्ते, अप्पिच्छो, भन्ते, सन्तुट्ठो, भन्ते, पविवित्तो, भन्ते, असंसट्ठो, भन्ते, आरद्धवीरियो, भन्ते, वत्ता, भन्ते, वचनक्खमो, भन्ते, चोदको, भन्ते, पापगरही, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्य?

''अहं पि हि, भन्ते, अञ्ञदेव देवपुत्तपरिसं उपसङ्कमिं, एतदेव बहुलं सद्दं सुणामि– 'पण्डितो आयस्मा सारिपुत्तो; महापञ्ञो आयस्मा, पुथुपञ्ञो आयस्मा, हासपञ्ञो आयस्मा,

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सुसिमः देवपुत्रः आयुष्मतः शारिपुत्रस्य वर्णे भण्यमाने महत्या देवपुत्रपरिषदा परिवृतः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु सुसिमः देवपुत्रः भगवन्तम् एतदवोचत्,– एवमेतत्, भगवान्! एवमेतत् सुगतः। कस्मै हि नाम भदन्त! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचित्ताय आयुष्मान् शारिपुत्रः न रोचेत? पण्डितः, भदन्त! आयुष्मान् सारिपुत्रः। महापण्डितः, भदन्त! पृथुप्रज्ञः भदन्त! हासप्रज्ञः, भदन्त! जवनप्रज्ञः, भदन्त! तीक्ष्णप्रज्ञः, भदन्त! निर्वेधिकप्रज्ञः, भदन्त! अल्पेच्छः, भदन्त! संतुष्टः, भदन्त! प्रविविक्तः, भदन्त! असंसृष्टः, भदन्त! आलब्धवीर्यः, भदन्त! वक्ता, भदन्त! वचनक्षमः, भदन्त! चोदकः, भदन्त! पापगर्हः, भदन्त! आयुष्मान् शारिपुत्रः। कस्मै हि नाम भदन्त! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचिताय आयुष्मान् शारिपुत्रः न रोचेत?

"अहमपि हि, भदन्त! अन्यदेव देवपुत्रपरिषदम् उपसमक्रमम्, एतदेव बहुलं शब्दं श्रृणोमि— 'पण्डितः आयुष्मान् शारिपुत्रः, महाप्रज्ञः आयुष्मान्, पृथुप्रज्ञः आयुष्मान्, हासप्रज्ञः आयुष्मान्,

(हिन्दी) तब सुसीम देवपुत्र, आयुष्मान् सारिपुत्र के उपर्युक्त गुणवर्णन के व्याख्यानप्रसङ्ग में, देवों की एक विशाल मण्डली के साथ जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया, तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खडा हो गया एक ओर खड़े होकर सुसीम देवपुत्र ने भगवान् से कहा- भगवान्! ऐसी ही बात है, हाँ सुगत! ऐसी ही बात है। किसी मूर्ख, दुष्ट या भ्रान्तचित्त को छोड़कर किस सज्जन को आयुष्मान् सारिपुत्र अच्छे नहीं लगेंगे; क्योंकि भन्ते! आयुष्मान् सारिपुत्र बुद्धिमान् हैं, महाप्रज्ञ हैं.....पूर्ववत्.....स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे।

मैं भी, भन्ते! जिस किसी देवसभा में जाता हूँ ऊन सभी सभाओं में मैं यही शब्दावली सुनता हूँ कि- आयुष्मान् सारिपुत्र पण्डित हैं, महाप्रज्ञ हैं

जवनपञ्ञो आयस्मा, तिक्खपञ्ञो आयस्मा, निब्बेधिकपञ्ञो आयस्मा, अप्पिच्छो आयस्मा, सन्तुट्ठो आयस्मा, पविवित्तो आयस्मा, असंसट्ठो आयस्मा, आरद्धवीरियो आयस्मा, वत्ता आयस्मा, वचनक्खमो आयस्मा, चोदको आयस्मा, पापगरही आयस्मा सारिपुत्तो'ति। कस्स हि नाम, भन्ते, अबालस्स अदुट्ठस्स अमूळ्हस्स अविपल्लत्थचित्तस्स आयस्मा सारिपुत्तो न रुच्चेय्या''ति?

अथ खो सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

''सेय्यथापि नाम मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

(संस्कृतच्छाया) जवनपज्ञः आयुष्मान्, तीक्ष्णप्रज्ञः आयुष्मान्, निर्वेधिकप्रज्ञः आयुष्मान्, अल्पेच्छः आयुष्मान्, सन्तुष्टः आयुष्मान्, प्रविविक्तः आयुष्मान्, असंसृष्टः आयुष्मान्, आलब्धवीर्यः आयुष्मान्, वक्ता आयुष्मान्, वचनक्षमः आयुष्मान्, चोदकः आयुष्मान्, पापगर्ही आयुष्मान् शारिपुत्रः"इति। कस्मै हि नाम भदन्त! अबालाय अदुष्टाय अमूढाय अविपर्यस्तचित्ताय आयुष्मान् शारिपुत्रः न रोचेत"इति?

अथ खलु सुसिमस्य देवपुत्रस्य देवपुत्रपरिषदा आयुष्मतः शारिपुत्रस्य वर्णेन भण्यमाने आत्ममनाः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः उच्चावचा वर्णनिभाः उपादर्शयत्।

तद्यथापि नाम मणिः वैदूर्यः शुभः जातिमान् अष्टांशः सुपरिकर्मकृतः पाण्डुकम्बले निक्षिप्तः भासते च तपते च विरोचते च। एवमेवं सुसिमस्य देवपुत्रस्य देवपुत्रपरिषदा आयुष्मतः शारिपुत्रस्य वर्णेन भण्यमाने आत्ममनाः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः उच्चावचा वर्णनिभाः उपादर्शयत्।

(हिन्दी) .....पूर्ववत्.....आयुष्मान् सारिपुत्र किस.....स्थितप्रज्ञ को अच्छे नहीं लगेंगे!

तब सुसीम देवपुत्र के देवसमूह ने आयुष्मान् सारिपुत्र के इस गुणवर्णन को सुनकर सन्तुष्ट प्रमुदित एवं श्रद्धायुक्त होकर प्रसन्न (स्वच्छ) कान्ति उसी तरह धारण की जैसे कोई स्वच्छ सुघड़ तथा उच्च जाति की वैदूर्यमणि सुन्दर लगती है, चमकती है, देदीप्यमान होती है।

अथवा, जैसे कोई सुवर्णकार द्वारा बनाया गया, पीले वस्त्र से आवृत कोई सुवर्ण आभूषण सुन्दर लगता है, चमकता है, देदीप्यमान होता है, उसी तरह आयुष्मान् सारिपुत्र के गुणों का वर्णन सुनकर वह देवपुत्रों की परिषद् प्रसन्नमुख से शोभित हो रही थी।

''सेय्यथापि नाम निक्खं जम्बोनदं दक्खकम्मारपुत्तउक्कामुखसुकुसलसम्पहट्ठं पण्डुकम्बले निक्खित्तं भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

''सेय्यथापि नाम सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे रत्तिया पच्चूससमयं ओसधितारका भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

'सेय्यथापि नाम सरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवे आदिच्चो नभं अब्भुस्सक्कमानो सब्बं आकासगतं तमगतं अभिविहच्च भासते च तपते च विरोचति च; एवमेवं सुसिमस्स देवपुत्तस्स देवपुत्तपरिसा आयस्मतो सारिपुत्तस्स वण्णे भञ्ञमाने अत्तमना पमुदिता पीतिसोमनस्सजाता उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति।

(संस्कृतच्छाया) ''तद्यथापि नाम निष्कं जाम्बूनदं दक्षकर्मारपुत्रोल्कामुखसुकुशलसम्प्रदृष्टं पाण्डुकम्बले निक्षिप्तं भासते च तपते च विरोचते च; एवमेवं सुसिमस्य देवपुत्रस्य देवपुत्रपरिषदा आयुष्मतः सारिपुत्रस्य वर्णेने भण्यमाने आत्ममनाः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्य जाताः उच्चावचा वर्णनिभाः उपादर्शयत्।

''तद्यथापि नाम शरद्समये विद्धे विगतवलाहके देवरात्र्याः प्रत्यूषसमये ओषधितारका भासते च तपते च विरोचते च; एवमेवं सुसिमस्य देवपुत्रस्य देवपुत्रपरिषदा आयुष्मतः शारिपुत्रस्य वर्णने भण्यमाने आत्ममनाः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः उच्चावचा वर्णनिभाः उपादर्शयत्।

''तद्यथापि नाम शरदसमये विद्धे विगतवलाहके देवआदित्यः नभम् अभ्युद्गमन सर्वम् आकाशगतं तमोगतम् अभिविहत्य भासते तपते च विरोचते च; एवमेवं सुसिमस्य देवपुत्रस्य देवपुत्रपरिषदा आयुष्मतः सारिपुत्रस्य वर्णेन भण्यमाने आत्ममनाः प्रमुदिताः प्रीतिसोमनस्यजाताः उच्चावचा वर्णनिभाः उपादर्शयत्।

(हिन्दी) अथवा, जैसे अच्छे सोने का आभूषण दक्ष सुवर्णकार से बड़ी कारगरी के साथ गढ़ा गया, पीले ऊनी कपड़े में लपेट कर रक्खा भाषता है, तपता है और चमकता है- उसी तरह आयुष्मान् सारिपुत्र के गुणों का वर्णन सुनकर वह देवपुत्रों की परिषद् प्रसन्नमुख से शोभित हो रही थी।

जैसे रात्रि के अन्तिम प्रहर में शुक्र तारा शोभित होता है, वैसे ही उसी तरह आयुष्मान् सारिपुत्र के गुणों का वर्णन सुनकर वह देवपुत्रों की परिषद् प्रसन्नमुख से शोभित हो रही थी। जैसे शरत्काल में मेघों के हट जाने पर सूर्य आकाश में ऊपर आता हुआ, समस्त अन्धकार को नष्ट करता हुआ शोभित होता है उसी तरह आयुष्मान् सारिपुत्र के गुणों का वर्णन सुनकर वह देवपुत्रों की परिषद् प्रसन्नमुख से शोभित हो रही थी।

अथ खो सुसिमो देवपुत्तो आयस्मन्तं सारिपुत्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''पण्डितोति समञ्ञातो, सारिपुत्तो अकोधनो।
अप्पिच्छो सोरतो दन्तो, सत्थुवण्णाभतो इसी''ति॥

अथ खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आरब्भ सुसिमं देवपुत्तं गाथाय पच्चभासि–

''पण्डितोति समञ्ञातो, सारिपुत्तो अकोधनो।
अप्पिच्छो सोरतो दन्तो, कालं कङ्खति सुदन्तो''ति॥

2.3.10. नानातित्थियसावकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो सम्बहुला नानातित्थियसावका देवपुत्ता असमो च सहलि च नीको च आकोटको च वेगब्भरि च माणवगामियो च अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं वेळुवनं ओभासेत्वा

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सुसिमः देवपुत्रः आयुष्मन्तं शारिपुत्रम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट- ''पण्डितः इति समाज्ञातः, शारिपुत्रः अक्रोधनः।
अल्पेच्छः सौरत्योः दान्तः, शास्तृवर्णाभृतः ऋषिः"इति॥

अथ खलु भगवान् आयुष्मन्तं सारिपुत्रम् आरभ्य सुसिमं देवपुत्रं गाथया प्रत्यभाषिष्ट-

''पण्डितः इति समाज्ञातः, शारिपुत्रः अक्रोधनः।
अल्पेच्छः सौरत्यः दान्तः, कालं कांक्षति सुदान्तः"इति॥

10. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। अथ खलु सम्बहुलाः नानतैर्थिकश्रावकाः देवपुत्र असमः च सहलिः च नीकः च आकोटकः च वेगब्भरिः च माणवग्राम्यः च अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णाः केवलकल्पं वेणुवनम् अवभास्य

(हिन्दी) तब उस सुसीम देवपुत्र ने आयुष्मान् सारिपुत्र के विशेष गुणवर्णन में भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

पण्डित, महान् ज्ञानी, क्रोधरहित सारिपुत्र सन्तोषी, गुरुभक्त, संयमी एवं ऋषिसदृश हैं, जिन्होंने बुद्ध के उपदेश का लाभ प्राप्त किया है।

तदनन्तर, आयुष्मान् सारिपुत्र को लक्ष्य कर भगवान् ने सुसीम देवपुत्र को यह गाथा कही-

पण्डित, महान् ज्ञानी, अक्रोधी सारिपुत्र अत्यधिक सन्तोषी, गुरुभक्त, संयमी हैं। वे साधना करते हुए अपने श्रम का लाभ प्राप्त करने की आशा में हैं।

10. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। उस समय कुछ अपरमतानुयायी श्रावक देवपुत्र- असम, सहलि, नीक, आकोटक एवं वेगब्भरि तथा माणवगारिय। वे सब एक चाँदनी रात्रि में भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये।

येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठितो खो असमो देवपुत्तो पूरणं कस्सपं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''इध छिन्दितमारिते, हतजानीसु कस्सपो।
न पापं समनुपस्सति, पुञ्ञं वा पन अत्तनो।
स वे विस्सासमाचिक्खि, सत्था अरहति माननं''ति॥

अथ खो सहलि देवपुत्तो मक्खलिं गोसालं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''तपोजिगुच्छाय सुसंवुतत्तो, वाचं पहाय कलहं जनेन।
समोसवज्जा विरतो सच्चवादी, न हि नून तादिसं करोति पापं''ति॥

अथ खो नीको देवपुत्तो निगण्ठं नाटपुत्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

(संस्कृतच्छाया) यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु असमः देवपुत्रः पूरणं काश्यपम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"यदि छिन्नं मारितम्, हतं वा जानाति कश्यपः।
न पापं समनुपश्यति, पुण्यं वा पुनः आत्मनः।
सः वै विश्वासम् आचष्टे, शास्ता अर्हति माननम्"इति॥

अथ खलु सहलिः देवपुत्रः मक्खलिगोसालम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

"तपोजुगुप्साभ्यां सुसंवृतात्मः, वाचं प्रहाय कलहं जनेन।
शमः सावद्यत् विरतः सत्यवादी, न हि नूनं तादृशं करोति पापम्"इति॥

अथ खलु नीकः देवपुत्रः निगण्ठनाथपुत्रम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट -

---

(हिन्दी) एक ओर खड़े हुए उन में से असम देवपुत्र ने पूरणकाश्यप (तीर्थङ्कर) को लक्ष्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

यदि कोई पुरुष को मारे या काटे, या किसी को नष्ट कर दे, तो काश्यप तीर्थङ्कर उसमें अपना पाप या पुण्य नहीं मानते। उन्होंने यह बहुत विश्वस्त उपदेश किया है। वे गुरु सदृश सम्मान के पात्र हैं।

तब, सहलि देवपुत्र ने मक्खलिगोसाल को लक्ष्य कर यह गाथा भगवान् के सम्मुख कही-

कठिन तपश्चर्या तथा पापजुगुप्सा से संयत, मौनी, कलहत्यागी, शान्तचित्त, दोषों से विरत, सत्यवादी हैं। उन जैसा ज्ञानी कभी पापपङ्क में निमग्न नहीं हो सकता।

तब नीक देवपुत्र ने निगण्ठ नातपुत्र को लक्ष्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जेगुच्छी निपको भिक्खु, चातुयामसुसंवुतो।
दिट्ठं सुतं च आचिक्खं, न हि नून किब्बिसी सिया''ति॥

अथ खो आकोटको देवपुत्तो नानातित्थिये आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''पकुधको कातियानो निगण्ठो, ये चापिमे मक्खलिपूरणासे।
गणस्स सत्थारो सामञ्ञप्पत्ता, न हि नून ते सप्पुरिसेहि दूरे''ति॥

अथ खो वेगब्भरि देवपुत्तो आकोटकं देवपुत्तं गाथाय पच्चभासि–

''सहाचरितेन छवो सिगालो, न कोत्थुको सीहसमो कदाचि।
नग्गो मुसावादी गणस्स सत्था, सङ्कस्सराचारो न सतं सरिक्खो''ति॥

अथ खो मारो पापिमा बेगब्भरिं देवपुत्तं अन्वाविसित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

(संस्कृतच्छाया) "जिघृक्षुः निपुणः भिक्षुः, चतुर्यामसुसंवृत्तः।
दृष्टं श्रुतं च आख्यातम्, न हि नूनं किल्विशी स्यात्"इति॥

अथ खलु आकोटकः देवपुत्रः नानातैर्थिकम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''प्रकुधकः कात्यायनः निर्ग्रन्थः, ये चापीमे मक्खलिपूरणाः।
गणस्य शास्तारः श्रामण्यप्राप्ताः, न हि नूनं ते सत्पुरुषेभ्यः दूरम्"इति॥

अथ खलु वेगब्भरिः देवपुत्रः आकोटकं देवपुत्रं गाथया प्रत्यभाषिष्ट-

''सहचरितेन शवः श्रृगालः, न क्रोष्टा सिंहसमः कदाचित्।
नग्नो मृषावादी गणस्य शास्ता, शङ्कास्पदाचारः न सतां सदृशः"इति॥

अथ खलु मारः पापी बेगब्भरिं देवपुत्रम् अन्वाविश्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

---

(हिन्दी) पाप से घृणा करने वाले, चतुर, भिक्षु, चारों यामों में सुसंवृत रहने वाले, देखे सुने को ही कहने वाले हैं। अतः उनसे किसी पाप के होने की आशङ्का ही नहीं है।

तब आकोटक देवपुत्र भी अनेक तीर्थङ्करों के विषय में यह गाथा बोला-

प्रकुध, कात्यायन, निगण्ठ तथा मक्खलि गोसाल या पूरण काश्यप- ये सभी श्रामण्य को पाने वाले गणों के नायक हैं। अवश्य ही ये सत्पुरुषों से दूर नहीं हो सकते!

तब वेगब्भरि देवपुत्र ने आकोटक देवपुत्र को यह गाथा कही-

जैसे हुआँ हुआँ कर रोने वाले शव के समान साधारण शृगाल किसी सिंह की बराबरी नहीं कर सकता; उसी तरह यह नग्न, असत्यवादी, साधारण गण का शास्ता, शङ्कास्पद चरित्र वाला यह तीर्थङ्कर सज्जनतीर्थङ्करों की समानता क्या करेगा!

इसी समय पापी मार वेगब्भरि देवपुत्र के शरीर में प्रविष्ट होते हुए भगवान् के सम्मुख यों बोला-

''तपोजिगुच्छाय आयुत्ता, पालयं पविवेकियं।
रूपे च ये निविट्ठासे, देवलोकाभिनन्दिनो।
ते वे सम्मानुसासन्ति, परलोकाय मातिया''ति॥

अथ खो भगवा, 'मारो अयं पापि' इति विदित्वा, मारं पापिमन्तं गाथाय पच्चभासि–

''ये केचि रूपा इध वा हुरं वा, ये चन्तलिक्खस्मिं पभासवण्णा।
सब्बे व ते तेनमुचिप्पसत्था, आमिसंव मच्छानं वधाय खित्ता''ति॥

अथ खो माणवगामियो देवपुत्तो भगवन्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''विपुलो राजगहीयानं, गिरिसेट्ठो पवुच्चति।
सेतो हिमवतं सेट्ठो, आदिच्चो अघगामिनं॥

(संस्कृतच्छाया) "तपो जुगुप्साभ्याम् आयुक्ता, पालयन्तः प्रविवेकिनः।
रूपे च ये निविष्टाः, देवलोकाभिनन्दिनः।
ते वै सम्यगनुशासति, परलोकाय मर्त्यान्"इति॥

अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी" इति विदित्वा, मारं पापिमन्तं गाथया प्रत्यभाषिष्ट-

"यानि कानिचित् रूपाणि इह वा परत्र वा, ये च अन्तरिक्षे प्रभासवर्णाः।
सर्वे एव ते नमुचिप्रशस्ताः, आमिषम् इव मत्स्यानां वधाय क्षिप्ताः"इति॥

अथ खलु माणवगोमियः देवपुत्रः भगवन्तम् आरब्ध भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

"विपुलः राजगृहीणाम्, गिरिश्रेष्ठः प्रोच्यते।
श्वेतः हिमवतां श्रेष्ठः, आदित्यः नभोगामिनाम्॥

(हिन्दी) तप और दुष्कर क्रिया में जो संलग्न हैं, जो एकान्त में रहकर उनका दृढता से पालन करते हैं तथा जो सांसारिकता में आसक्त हैं, देवलोक में जाकर आनन्द लूटने वाले हैं, वे ही परलोक बनाने का सदुपदेश देते हैं।

तब भगवान् ने तत्काल समझ लिया- 'यह पापी मार बोल रहा है'। मार को लक्ष्य कर उन्होंने यह उत्तर गाथा के माध्यम से ही दिया-

जितने भी रूप इस लोक या परलोक में या आकाश में चमकदमक वाले दिखायी देते हैं, वे सभी नमुचि द्वारा प्रशस्त हैं। इन को उसी तरह समझना चाहिए जैसे किसी मछुआरे ने मछली पकड़ने के लिए उन्हें मुग्ध करने के लिए स्थान स्थान पर मांस के टुकड़े फेंक रखे हों।

तब माणवगोमिय देवपुत्र ने भगवान् को लक्ष्य कर ये गाथाएँ कहीं-

राजगृह प्रदेश के पर्वतों में विपुल पर्वत श्रेष्ठ कहा जाता है। श्वेत पर्वत (कैलाश) हिमालय पर्वतश्रृंखला में श्रेष्ठ कहलाता है। आकाशचारियों में सूर्य श्रेष्ठ कहलाता है।

''समुद्दो उदधीनं सेट्ठो, नक्खत्तानं च चन्दिमा।
सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्चती''ति॥

नानातित्थियवग्गो ततियो।

तस्सुद्दानं– सिवो खेमो च सेरी च, घटी जन्तु च रोहितो।
नन्दो नन्दिविसालो च, सुसिमो नानातित्थियेन ते दसाति॥

देवपुत्तसंयुत्तं समत्तं।

(संस्कृतच्छाया) "समुद्रः उदधीनां श्रेष्ठः, नक्षत्राणां च चन्द्रमाः।
सदेवकस्य लोकस्य, बुद्धः अग्रे प्रोच्यते"इति॥

तस्योद्दानम्– शिवः क्षेमः च श्वैरी च, घटीजन्तुः च रोहितः।
नन्दो नन्दविशालः च, सुसिमः नानातैर्थिकेन ते दश इति॥

(हिन्दी) जैसे जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है, नक्षत्रों में चन्द्रमा श्रेष्ठ है; वैसे ही देवताओं सहित समस्त लोक में बुद्ध ही प्रमुख कहलाते हैं।

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में शिवसुत्त, क्षेमसुत्त, स्वैरीसुत्त, घटीकारसुत्त, जन्तुसुत्त, रोहिताश्वसुत्त, नन्दसुत्त, नन्दिविशालसुत्त, सुसीमसुत्त एवं नानातीर्थिकश्रावकसुत्त है।

******

3. कोसलसंयुतं

1. पठमवग्गो

3.1.1. दहरसुतं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''भवं पि नो गोतमो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति पटिजानाती''ति?

''यं हि तं, महाराज, सम्मा वदमानो वदेय्य 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो'ति, ममेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य। अहं हि, महाराज, अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो''ति।''ये पि ते, भो गोतम, समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं–पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सञ्चयो बेलट्ठपुत्तो, पकुधो कच्चायनो, अजितो केसकम्बलो;

(संस्कृतच्छाया) 1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्यारामे। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्धं सममोदिष्ट। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- "भवान् अपि नो गौतमः अनुत्तरं सम्यक्संबोधिम् अभिसंबुद्धः'इति प्रतिजानाति"इति?

"यत् हि तत्, महाराज! सम्यक् वदन् वदेत्- 'अनुत्तरं सम्यक् सम्बोधिम् अभिसम्बुद्धः" इति, मामेवं तत् सम्यक् वदन् वदेत्। अहं हि, महाराज! अनुत्तरं सम्यक् संबोधिमभिसंबुद्धः"इति।

येऽपि ते, गौतम! श्रमणब्राह्मणाः सङ्घिनः गणिनः गणाचार्याः ज्ञातारः यशस्विनः तीर्थङ्कराः साधुसम्मताः बहुजनस्य, तद्यथेदम्– पूरणः कश्यपः, मस्खलिः गोशालः, निर्ग्रंथो नाथपुत्रः, सञ्जयः बेलट्ठपुत्रः, प्रक्रुद्धः कात्यायनः, अजितः केशकम्बलः,

(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय में भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक द्वारा बनवाए गए जेतवन में विहार करते थे। तब राजा प्रसेनजित् कौशल जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् से मिल कर आनन्दित हो कर कुशल-मङ्गल पूछते हुए एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे कौशलराज प्रसेनजित् ने भगवान् से यह कहा- ''आप गौतम भी क्या अद्वितीय पूर्ण बुद्धत्व प्राप्त कर लेने का दावा करते हैं?''

''महाराज! यदि कोई किसी को वस्तुतः सम्यक्सम्बुद्ध कहे तो वह मुझ को ही सम्बुद्ध कह सकता है; क्यों कि महाराज! मैंने ही वह अद्वितीय सम्बुद्धत्व प्राप्त किया है।''

राजा- ''हे गौतम! ये जो दूसरे श्रमण ब्राह्मण हैं, ये भी सङ्घ वाले, गणवाले, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थङ्कर, साधुजनों द्वारा सम्मानित हैं; जैसे- पूरण काश्यप, मक्खलि गोशाल, निर्ग्रन्थ नाथपुत्र, सञ्जय वेलट्ठिपुत्र, प्रकुध कात्यायन, एवं अजित केशकम्बली।

तेपि मया 'अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति पटिजानाथा'ति पुट्ठा समाना अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति न पटिजानन्ति। किं पन भवं गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पब्बज्जाया''ति?

''चत्तारो खो मे, महाराज, दहराति न उञ्ञातब्बा, दहराति न परिभोतब्बा। कतमे चत्तारो? खत्तियो खो, महाराज, दहरोति न उञ्ञातब्बो, दहरोति न परिभोतब्बो। उरगो खो, महाराज, दहरोति न उञ्ञातब्बो, दहरोति न परिभोतब्बो। अग्गि खो, महाराज, दहरोति न उञ्ञातब्बो, दहरोति न परिभोतब्बो। भिक्खु, खो, महाराज, दहरोति न उञ्ञातब्बो, दहरोति न परिभोतब्बो। इमे खो, महाराज, चत्तारो दहराति न उञ्ञातब्बा, दहराति न परिभोतब्बा''ति।

इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था–

(संस्कृतच्छाया) तेऽपि माम् 'अनुत्तरं सम्यक् सम्बोधिमभिसंबुद्धः'इति प्रतिजानीयात?'इति पृष्टाः समाना 'अनुत्तरं सम्यग्संबोधिमभिसंबुद्धः'इति प्रतिजानन्ति। किं पुनः भवान् गौतमः दहरश्चैव जात्या? नवश्च प्रव्रज्यया"इति?

"चत्वारः खलु मम महाराज! दहर इति न अवज्ञातव्याः दहर इति न परिबोधव्यं कतमे चत्वारः? क्षत्रियः खलु, महाराज! दहर इति न अवज्ञातव्यः, दहर इति न परिबोधव्यः। उरगः खलु, महाराज! दहर इति न अवज्ञातव्यः, दहर इति न परिबोधव्यः, अग्निः खलु, महाराज! दहर इति न अवज्ञातव्यः। दहर इति न परिबोधव्यः। भिक्षुः, खलु, महाराज, दहर इति न अवज्ञातव्यः दहर, इति न परिबोधव्यः। इमे खलु, महाराज! चत्वारो दहराः इति न अवज्ञातव्यः दहर इति न परिबोधव्यः"इति।

इदमवोचत् भगवान्। इदम् उक्त्वा सुगतः अथापरम् एतदवोचत् शास्ता-

(हिन्दी) वे भी पूछे जाने पर स्वयं के लिए यह नहीं कह पाते कि हमने ही सम्बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है; फिर आप तो अभी आयु में युवक ही हैं, प्रव्रज्या भी आपने अभी ही ली है?''

''महाराज! इन चार को छोटा न समझना चाहिये, न इनके साथ छोटा समझकर व्यवहार करना चाहिये। कौन-से चार? 1. किसी राजा को 'छोटा है' यह नहीं समझना चाहिये, न छोटा समझकर उसके साथ कोई व्यवहार करना चाहिये। 2. किसी विषैले साँप को न छोटा समझना चाहिये, न छोटा समझकर उसके साथ कोई व्यवहार करना चाहिये। 3. अग्नि को न छोटा समझना चाहिये, न छोटा समझकर उसके साथ कोई व्यवहार करना चाहिये। 4. किसी भिक्षु को न छोटा समझना चाहिये, न उसके साथ 'छोटा' समझकर व्यवहार करना चाहिये। महाराज! इन चार के साथ छोटा जानकर उसके साथ कोई व्यवहार नहीं करना चाहिये।''

भगवान् ने यह कहा। यह कह कर सुगत ने पुनः ये गाथाएँ कही-

''खत्तियं जातिसम्पन्नं, अभिजातं यसस्सिनं।
दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो॥
''ठानं हि सो मनुजिन्दो, रज्जं लद्धान खत्तियो।
सो कुद्धो राजदण्डेन, तस्मिं पक्कमते भुसं।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥
''गामे वा यदि वा रञ्ञे, यत्थ पस्से भुजङ्गमं।
दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो॥
''उच्चावचेहि वण्णेहि, उरगो चरति तेजसी।
सो आसज्ज डंसे बालं, नरं नारिं च एकदा।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥

(संस्कृतच्छाया) "क्षत्रियं जातिसंपन्नम्, अभिजातं यशस्विनम्।
दहर इति नावजानीयात्, न तं परिभवेत् नरः॥
"स्थाने हि स मनुजेन्द्रः, राज्यं लब्ध्वा क्षत्रियः।
स क्रुद्धो राजदण्डेन, तस्मिन् प्रक्राम्यति भृशम्।
तस्मात् तं परिवर्जयेत्, रक्षितुं जीवितमात्मनः॥
"ग्रामे वा यदि वा अरण्ये, यत्र पश्येत् भुजङ्गम्।
दहर इति नावजानीयात्, न तं परिभवेत् नरः।
"उच्चावचै वर्णैश्च, उरगश्चरति तेजसा।
स आसाद्य दशेत् बालं, नरं नारीं च एकदा।
तस्मात्तं परिवर्जयेत्, रक्षितुं जीवितमात्मनः॥

(हिन्दी) क्षत्रिय- उच्च कुलोत्पन्न, महान् यशस्वी क्षत्रिय को 'छोटा है' - यह जानकर कम न समझे, न इसका अपमान ही करे।

क्यों कि वह राजा का अधिकार पाकर प्रजा का अधिपति बनता है। वह क्रुद्ध होने पर पूर्ण राजशक्ति से अपना बदला लेता है। अतः आत्मरक्षा चाहने वाला पुरुष उसके क्रोध से दूर ही रहे। तथा उसके विरुद्ध कोई कार्य न करे।

विषैले साँप- गाँव या जंगल में, जहाँ भी कहीं किसी विषैले साँप को देखे तो उसको छोटा जानकर उसे कम न समझे, न उसका अनादर न करें। (जंगल में यहाँ वहाँ अनेक प्रकार के) रंग-बिरंगे साँप घूमते हैं, जो कि प्रभाव में बहुत प्रतापी होते हैं।

असावधान रहने वालों को वे डँस लेते हैं, फिर भले ही वह स्त्री हो या पुरुष। इसलिए अपनी जान बचाते हुए साँप से भी दूर ही रहना चाहिये, न उसका अनादर ही करना चाहिए।

''पहूतभक्खं जालिनं, पावकं कण्हवत्तनिं।
दहरो ति नावजानेय्य, न नं परिभवे नरो॥
''लद्धा हि सो उपादानं, महा हुत्वान पावको।
सो आसज्ज डहे बालं, नरं नारिञ्च एकदा।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, रक्खं जीवितमत्तनो॥
''वनं यदग्गि डहति, पावको कण्हवत्तनी।
जायन्ति तत्थ पारोहा, अहोरत्तानमच्चये॥
''यञ्च खो सीलसम्पन्नो, भिक्खु डहति तेजसा।
न तस्स पुत्ता पसवो, दायादा विन्दरे धनं।
अनपच्चा अदायादा, तालावत्थू भवन्ति ते॥
''तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।

(संस्कृतच्छाया) "प्रभूतभक्षं ज्वलिनम्, पावकं कृष्णवर्तनीम्।
दहर इति नावजानीयात्, न तं परिभवेत् नरः॥
"लब्ध्वा हि स उपादानम्, महाभूत्वा पावकः।
स आसाद्य दहेत् बालम्, नरं नारीं च एकदा।
तस्मात् तं परिवर्जयेत्, रक्षितुं जीवितमात्मनः॥
"वनं यदग्निः दहति, पावकः कृष्णवर्तनी।
जायन्ते तत्र प्ररोहात्, अहोरात्राणां समुच्चये॥
"यञ्च खलु शीलसंपन्नः, भिक्षुः दहति तेजसा॥
न तस्य पुत्राः पशवः, दायादाः विन्दन्ते धनम्।
अनपत्या अदायादाः, तालाविद्धाः (उच्छिन्न तृष्णामूलाः) भवन्ति ते॥
"तस्माद्धि पण्डितः पुरुषः, संपश्यन् अर्थमात्मनः।

(हिन्दी) अग्नि- सर्वभक्षी, लपलपाती लपटों वाली, काले धूँए वाली, काले मार्ग पर चलने वाली अग्नि को भी कम न समझे, न उसका अनादर ही करे। क्यों कि इन्धन पाकर बहुत विशाल रूप धारण करने वाली वह अग्नि किसी भी स्त्री या पुरुष को (निरपेक्ष भाव) से जला डालती है। अतः पुरुष अपनी जान बचाते हुए अग्नि को भी छोटा जानकर उसे कम न समझे, न उसका अनादर न करें। (यह तो उस अग्नि का उपकार ही समझिये कि) काले मार्ग पर चलने वाली अग्नि जिस वन को सर्वांशतः जला डालती है, वही वन पुनः कुछ काल बाद, नये पल्लवों, शाखाओं तथा फलों से लहलहा उठता है। भिक्षु- शीलसम्पन्न भिक्षु जिसको स्वतेज से भस्म कर डालता है, उसके न पुत्र बचते हैं, न पशु, न उसका धन ही अवशिष्ट रह पाता है; अपितु उसको शिर कटे ताड़ वृक्ष की तरह बिना फले फूले जीवन यापन करता है।

भुजङ्गमं पावकं च, खत्तियञ्च यसस्सिनं।
भिक्खुं च सीलसम्पन्नं, सम्मदेव समाचरे''ति॥

एवं वुत्ते, राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य– 'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती'ति; एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

3.1.2. पुरिससुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा

(संस्कृतच्छाया) भुजङ्गमं पावकञ्च, क्षत्रियं च यशस्विनम्।
भिक्षुञ्च शीलसंपन्नम्, सम्यगेव समाचरेत्''इति॥

एवमुक्ते, राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- ''अभिकान्तम्, भदन्त! अभिकान्तम्, भदन्त! तद्यथापि भदन्त! निकुञ्जितं वा उत्कुञ्जेत्, प्रतिच्छन्नं वा विवरेत्, मूढस्य वा मार्गम् आचिक्षेत्, अन्धकारे वा तैलप्रद्योतं संधारयेत्- 'चक्षुष्मतः रूपाणि दर्शयेत्' इति, एवमेवं भगवता अनेकपर्यायेण धर्मः प्रकाशितः। एषोऽहम्, भदन्त! भगवन्तं शरणं गच्छामि धर्मञ्च भिक्षुसंघञ्च। उपासकं माम्, भदन्त! भगवान् धारयेत् अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तं शरणं गतम्''इति।

2. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्, उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा

(हिन्दी) अतः बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह अपना हित देखता हुआ राजा, साँप, अग्नि एवं शीलसम्पन्न भिक्षु के साथ सदा ठीक से पेश आवे।

ऐसा कहे जाने पर, राजा प्रसेनजित् कौशल भगवान् से यह बोले- ''भन्ते! आपने बहुत उचित कहा, सर्वथा उचित कहा! भन्ते! जैसे कोई उलटे पात्र को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, भटके को राह बता दे, या कोई अन्धकार में तैल प्रदीप हाथ में लेकर खड़ा हो जाय कि देखने वाले रूप को भली भाँति मार्ग देख लें; इसी तरह आप ने धर्म (कर्तव्य) को अनेक प्रकार से समझा दिया। अतः मैं, भन्ते! स्वयं आप की शरण में जाता हूँ। (आपके द्वारा उपदिष्ट) धर्म तथा (आपके द्वारा अनुशासित) भिक्षुसङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से, भगवान् मुझ को मेरे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।

2. यह सुत्त भी श्रावस्ती में ही...। तब राजा प्रसेनजित् कौशल जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् का अभिवादन कर एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे राजा

पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''कति नु खो, भन्ते, पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारायाा''ति?

''तयो खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारााय। कतमे तयो? लोभो खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारााय। दोसो खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारााय। मोहो खो, महाराज, पुरिसस्स धम्मो अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारााय। इमे खो, महाराज, तयो पुरिसस्स धम्मा अज्झत्तं उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारायाा''ति। इदमवोच...पे॰...

''लोभो दोसो च मोहो च, पुरिसं पापचेतसं।
हिंसन्ति अत्तसम्भूता, तचसारंव सम्फलं''ति ॥

(संस्कृतच्छाया) प्रसेनजितः कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- ''कति नु खलु, भदन्त, पुरुषस्य धर्मा अध्यात्मम् उत्पद्यमाना उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारायाइति?

''त्रयः खलु, महाराज! पुरुषस्य धर्मा अध्यात्मम् उत्पद्यमाना उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारााय। कतमे त्रयः? लोभः खलु, महाराज! पुरुषस्य धर्मः अध्यात्ममुत्पद्यमान उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारााय। द्वेषः खलु, महाराज! पुरुषस्य धर्मः अध्यात्ममुत्पद्यमान उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारााय। मोहः खलु, महाराज! पुरुषस्य धर्मः अध्यात्ममुत्पद्यमान उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारााय। इमे खलु, महाराज! त्रयः पुरुषस्य धर्मा अध्यात्ममुत्पद्यमान उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारायाइति। इदमवोचत्.....पे.....

लोभो द्वेषश्च मोहश्च, पुरुषं पापचेतसाम्।
हिंसन्ति आत्मसम्भूताः, त्वक्सारञ्च सम्फलम्इति॥

(हिन्दी) प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह पूछा- ''भन्ते! पुरुष के मन (अध्यात्म) में कितने ऐसे धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित, दुःख एवं कष्ट के लिए होते हैं?''

भगवान्- ''महाराज! पुरुष के मन में तीन ऐसे धर्म उत्पन्न होते हैं जो उसके अहित दुःख एवं कष्ट के लिए होते हैं। कौन-से तीन? जैसे- पुरुष के मन में लोभ उत्पन्न होता है जो उसके अहित..। पुरुष के मन में द्वेष उत्पन्न होता है जो उसके अहित...। पुरुष के मन में मोह उत्पन्न होता है जो उसके अहित दुःख एवं कष्ट के लिए होता है। महाराज! पुरुष के मन में यही तीन धर्म उत्पन्न होते हैं। जो उसके अहित, दुःख एवं कष्ट के लिए होते हैं।'' भगवान् यह बोले। तथा अपने कथन से सम्बद्ध यह गाथा भी कही-

'' लोभ, द्वेष एवं मोह ये तीन धर्म पाप का चिन्तन करने वाले पुरुष के मन में उत्पन्न होते हैं, जैस- ये तीनों अपने अधिष्ठान मन में उत्पन्न होकर उसको उसी तरह अपने उत्पाद के बाद नष्ट कर देते हैं, जैसे- केले का फल केला वृक्ष को नष्ट कर देता है।''

3.1.3. जरामरणसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''अत्थि नु खो, भन्ते, जातस्स अञ्ञत्र जरामरणा''ति? ''नत्थि खो, महाराज, जातस्स अञ्ञत्र जरामरणा। ये पि ते, महाराज, खत्तियमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपरजता पहूतवित्तूपकरणा पहूतधनधञ्ञा, तेसं पि जातानं नत्थि अञ्ञत्र जरामरणा। ये पि ते, महाराज, ब्राह्मणमहासाला...पे॰... गहपतिमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपरजता पहूतवित्तूपकरणा पहूतधनधञ्ञा, तेसं पि जातानं नत्थि अञ्ञत्र जरामरणा। ये पि ते, महाराज, भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञाविमुत्ता, तेसं पायं कायो भेदनधम्मो निक्खेपनधम्मो''ति। इदमवोच...पे॰...

(संस्कृतच्छाया) 3. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- "अस्ति नु खलु, भदन्त! जातस्य अन्यत्र जरामरणम्"इति? नास्ति खलु, महाराज! जातस्य अन्यत्र जरामरणम्। येऽपि ते, महाराज! क्षत्रियमहाशाला आढ्याः, महाधनिकाः महाभोगिनः प्रभूतजातरूपरजताः प्रभूतवित्तोपकरणाः प्रभूतधनधान्याः तेषामपि जातानां नास्ति अन्यत्र जरामरणम्। येऽपि ते, महाराज! ब्राह्मणमहाशालाः.....पे.....गृहपतिमहाशाला आढ्याः महाधनिकाः महाभोगिनः प्रभूतजातरूपरजताः प्रभूतवित्तोपकरणाः प्रभूतधनधान्याः, तेषामपि जातानां नास्ति अन्यत्र जरामरणम्। येऽपि ते, महाराज! भिक्षवः अर्हन्तः क्षीणास्रवाः उषितवन्तः कृतकरणीयाः अवहितभाराः अनुप्राप्तसदर्थाः परिक्षीणभवसंयोजनाः सम्यगज्ञाविमुक्ताः, तेषां प्राप्तकायः भेदनधर्मः निक्षेपणधर्मः"इति। एतदवोचत्.....पे.....

(हिन्दी) 3. श्रावस्ती में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से पूछा-''क्या संसार में ऐसा भी कुछ है जो जन्म लेकर न पुराना होता हो, न मरता हो?''

भगवान्- ''महाराज! ऐसा कुछ नहीं है जो जन्म लेकर न पुराना होता हो, न मरता हो। महाराज! जो ऊँचे वैभवशाली क्षत्रियपरिवार के हैं, जिनके पास प्रचुर धनधान्य है, प्रचुर वैभव के साधन हैं, जिनके पास विपुल सोना चाँदी का भाण्डागार है, उन को भी जन्म लेने के बाद बुढापा एवं मृत्यु दयावश छोड़ दे- ऐसा नहीं होता। जो बड़े बड़े वैभवशाली ब्राह्मण परिवार हैं...पूर्ववत्...गृहपति परिवार एवं भिक्षु हैं, जो धर्म साधना पूर्ण कर चुके हैं....जिन्होंने अपने सभी कर्तव्य पूर्ण कर लिये हैं, जिनका सांसारिक भार उतर चुका है, जो परमार्थ को प्राप्त कर चुके हैं, जो परम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, जिनके भवबन्धन कट चुके हैं, जो परम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे उन भिक्षुओं का भी शरीर से साथ छूट जाता है तथा निरर्थक हो जाता है।''

भगवान् ने यह कहा। तथासाथ ही उन्होंने अपने इस मत के समर्थन में यह गाथा भी कही-

''जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरं पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ती''ति॥

3.1.4. पियसुतं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'केसं नु खो पियो अत्ता, केसं अप्पियो अत्ता'ति? तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'ये च खो केचि कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति; तेसं अप्पियो अत्ता'। किञ्चापि ते एवं वदेय्युं– 'पियो नो अत्ता'ति, अथ खो तेसं अप्पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यञ्हि अप्पियो अप्पियस्स करेय्य, तं ते अत्तनाव अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं अप्पियो अत्ता। ये च खो केचि कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति,

---

(संस्कृतच्छाया) ''जीर्यते वै राजरथाः सुचित्राः, अथ शरीरमपि जरामुपैति।
स्मृतं च धर्मश्च न जरामुपैति, सन्तः हवै सद्भिः प्रवेदयन्ति''इति॥

4. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- इह मह्यम्, भदन्त! रहोगतस्य प्रतिसंल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपादि। 'केषां नु खलु प्रियः आत्मा, केषाम् अप्रियः आत्मा'इति? तस्मै मह्यम्, भदन्त! एतदभूत्- 'ये च खलु केचित् कायेन दुश्चरितं चरन्ति, वाचा दुश्चरितं चरन्ति, मनसा दुश्चरितं चरन्ति, तेषाम् अप्रियः आत्मा'। किञ्चापि ते एवं वदेयुः- 'प्रियः नो आत्मा'इति, अथ खलु तेषाम् अप्रियः आत्मा। तत् कस्य हेतोः? यद्धि अप्रियम् अप्रियस्य कुर्यात्, तस्मात् ते आत्मना एव आत्मनः कुर्वन्ति तस्मात् तेषाम् अप्रियः आत्मा। ये च खलु केचित् कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचा सुचरितं चरन्ति,

---

(हिन्दी) ''अच्छे अच्छे वैभवशाली राजाओं के सुसज्जित रथ भी एक दिन जीर्ण हो जाते हैं, पुराने पड़ जाते हैं। एक दिन सभी का यह शरीर भी बुढापे को प्राप्त कर लेता है। हाँ, सन्तों का धर्म कभी पुराना नहीं होता। सन्त लोग सत्पुरुषों से यही कहते हैं।''

4. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही....। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह कहा- ''भन्ते! यहाँ अकेला बैठे ध्यान करते हुए मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा- 'अपने आप से किनको प्रेम है? किनको प्रेम नहीं है?' तब मुझे (इस के उत्तर में) ऐसा लगा- जो पुरुष अपनी काया से दुराचरण करते हैं, वाणी से दुराचरण करते हैं, मन से दुराचरण करते हैं। भले ही वे यह कहते रहें- मुझे अपने प्रति प्रेम है, परन्तु वस्तुतः उनको अपने प्रति कोई प्रेम नहीं है; क्यों कि वे वही दुराचरण कर रहे हैं, जो एक शत्रु शत्रु के प्रति किया करता है। (परिणाम में ये दुराचरण उनको कष्ट ही देंगे, अतः कैसे समझें कि उनको अपने प्रति कोई प्रेम है!) इसके विपरीत, जो पुरुष अपनी काया से, अपनी वाणी से,

मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं पियो अत्ता। किञ्चा पि ते एवं वदेय्युं– 'अप्पियो नो अत्ता'ति; अथ खो तेसं पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यञ्हि पियो पियस्स करेय्य, तं ते अत्तनाव अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं पियो अत्ता''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! ये हि केचि, महाराज, कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति; तेसं अप्पियो अत्ता। किञ्चा पि ते एवं वदेय्युं– 'पियो नो अत्ता'ति, अथ खो तेसं अप्पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यं हि, महाराज, अप्पियो अप्पियस्स करेय्य, तं ते अत्तनाव अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं अप्पियो अत्ता। ये च खो केचि, महाराज, कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं पियो अत्ता। किञ्चापि ते एवं वदेय्युं– 'अप्पियो नो अत्ता'ति; अथ खो तेसं पियो अत्ता। तं किस्स हेतु? यञ्हि महाराज, पियो पियस्स करेय्य, तं ते अत्तनाव अत्तनो करोन्ति; तस्मा तेसं पियो अत्ता''ति। इदमवोच...पे॰...

(संस्कृतच्छाया) मनसा सुचरितं चरन्ति, तेषां प्रियः आत्मा। किञ्चापि ते एवं वदेयुः- 'अप्रियः नो आत्मा'इति; अथ खलु तेषां प्रियः आत्मा। तत् कस्य हेतुः? यद्धि प्रियः प्रियस्य कुर्यात्; तत् ते आत्मना एव आत्मनः कुर्वन्ति, तस्मात् तेषां प्रियः आत्मा'इति।

एवमेतत्, महाराज! एवमेतत् महाराज! ये हि केचित् महाराज! कायेन दुश्चरितं चरन्ति, वाचा दुश्चरितं चरन्ति, मनसा दुश्चरितं चरन्ति, तेषाम् अप्रियः आत्मा। किञ्चापि ते एवं वदेयुः- 'प्रियः नो आत्मा'इति; अथ खलु तेषाम् अप्रियः आत्मा। तत् कस्य हेतोः? यद्धि, महाराज! अप्रियम् अप्रियस्य करोति, तत् कुर्वन्ति ते आत्मना एव आत्मनः, तस्मात् तेषाम् अप्रियः आत्मा। ये च खलु केचित्, महाराज! कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचा सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति, तेषां प्रियः आत्मा। किञ्चापि ते एवं वदेयुः- 'अप्रियः नो आत्मा'इति; अथ खलु तेषां प्रियः आत्मा। तत् कस्य हेतोः? यतो हि महाराज! प्रियं प्रियस्य करोति, तत् ते आत्मना एव आत्मनः कुर्वन्ति, तस्मात् तेषां प्रियः आत्मा'इति। इदमवोच.....पे.....

(हिन्दी) अपने मन से सदाचरण करता है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसे अपने प्रति प्रेम है। भले ही वह कहता रहे- 'मुझे अपनी काया आदि के प्रति कोई प्रेम नहीं है। परन्तु वस्तुतः उसको अपने प्रति प्रेम है। तभी तो वह अपनी काया वाणी तथा मन से ऐसा सदाचरण करता है जो एक मित्र अपने मित्र के प्रति किया करता है। अतः यही मानना पड़ता है कि उसको अपने प्रति प्रेम है।''

''यही बात है, महाराज! यही बात है! जो कोई पुरुष अपनी काया से, अपनी वाणी से, अपने मन से दुराचरण करते हैं, उनको अपने आप से कोई प्रेम नहीं है, भले ही वह कहता रहे..पूर्ववत्..उसको अपने प्रति प्रेम है।'' भगवान् ने यह कहा। साथ ही अपने उपदेश के संवर्धन में ये गाथाएँ भी कहीं-

''अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा, न नं पापेन संयुजे।
न हि तं सुलभं होति, सुखं दुक्कटकारिना॥
''अन्तकेनाधिपन्नस्स, जहतो मानुसं भवं।
किं हि तस्स सकं होति, किञ्च आदाय गच्छति।
किञ्चस्स अनुगं होति, छायाव अनपायिनी॥
''उभो पुञ्ञं च पापं च, यं मच्चो कुरुते इध।
तं हि तस्स सकं होति, तं च आदाय गच्छति।
तं वस्स अनुगं होति, छाया व अनपायिनी॥
''तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) आत्मानं चेत् प्रियम् जातम्, न तं पापेन संयोजयेत्।
न हि तं सुलभं भवति, सुखं दुष्कृतकारिणम्॥
अन्तकेन अधिपन्नस्य, जहतो मानुषं भवम्।
किं हि तस्य साकं भवति, किञ्च आदाय गच्छति।
किञ्चास्य अनुगमो भवति, छाया इव अनपायिनी॥
उभौ पुण्यञ्च पापञ्च, यन्मर्त्यः कुरुते इह।
तद्धि तस्य साकं भवति, तच्चादाय गच्छति।
तच्चास्य अनुगमः भवति, छाया इव अनपायिनी॥
तस्मात् कुर्यात् कल्याणम्, निचयं सम्परायिकम्।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठाः भवन्ति प्राणिनाम्''इति॥

(हिन्दी) ''जिसे अपने प्रति प्रेम है वह अपने को पाप में न लगावे; क्यों कि पापी को कभी सुख सुलभ नहीं होता।

''इस मानव देह के पात के बाद, मृत्यु के अधीन होने पर उसका अपना क्या रह जाता है, जिसे साथ ले कर वह जा सके? छाया की तरह उसका पीछा करने वाला उस समय कौन होगा?

''मनुष्य इस लोक में जो भी पुण्य या पाप करता है वही उसका अपना होता है तथा उसी को साथ लेकर वह जाता है। वही उसके साथ (पीछे-पीछे) जाता है, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया।

''अतः मनुष्य अपना यह लोक तथा परलोक कल्याणमय बनाने के लिए स्थायी कल्याणकर्मों का संग्रह करे; क्यों कि पुण्यकार्य ही प्राणियों का परलोक में आधार होता है।''

3.1.5. अत्तरक्खितसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'केसं नु खो रक्खितो अत्ता, केसं अरक्खितो अत्ता'ति? तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'ये खो केचि कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति; तेसं अरक्खितो अत्ता। किञ्चा पि ते हत्थिकायो वा रक्खेय्य, अस्सकायो वा रक्खेय्य, रथकायो वा रक्खेय्य, पत्तिकायो वा रक्खेय्य; अथ खो तेसं अरक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? बाहिरा हेसा रक्खा, नेसा रक्खा अज्झत्तिका; तस्मा तेसं अरक्खितो अत्ता। ये च खो केचि कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं रक्खितो अत्ता। किञ्चा पि ते नेव हत्थिकायो रक्खेय्य, न अस्सकायो रक्खेय्य, न रथकायो रक्खेय्य, न पत्तिकायो रक्खेय्य; अथ खो तेसं रक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? अज्झत्तिका हेसा रक्खा,

---

(संस्कृतच्छाया) 5. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- इह मम, भदन्त, रहोगतस्य प्रतिसंल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपादि- 'केषां नु खलु रक्षितः आत्मा, केषाम् अरक्षितः आत्मा'इति? तस्मै मह्यम्, भदन्त, एतदभूत- 'ये खलु केचित् कायेन दुश्चरितं चरन्ति, वाचा दुश्चरितं चरन्ति, मनसा दुश्चरितं चरन्ति, तेषाम् अरक्षितः आत्मा'। किञ्चापि तं हत्थिकायः वा रक्षेत्, अश्वकायः वा रक्षेत्, रथकायः वा रक्षेत्, पादकायः वा रक्षेत्; अथ खलु तेषाम् अरक्षितः आत्मा। तत् कस्य हेतोः? बाह्या ह्येषा रक्षा नैषा रक्षा आध्यात्मिका, तस्मात् तेषाम् अरक्षितः आत्मा। ये च खलु केचित् कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचा सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेषां रक्षितः आत्मा। किञ्चापि ते नैव हस्तिकायः रक्षेत्, न च अश्वकायः रक्षेत्, न च रथकायः रक्षेत्, न च पदातिकायः रक्षेत्। अथ खलु तेषां रक्षित आत्मा। तत् कस्य हेतोः? आध्यात्मिका ह्येषा रक्षा,

---

(हिन्दी) 5. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही....। एक ओर बैठे हुए राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह कहा- ''भन्ते! यहाँ अकेले बैठकर ध्यान करते हुए मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा- 'किनने आत्मरक्षा की है, तथा किनने आत्मरक्षा नहीं की?' तब, मेरे मन में इसका उत्तर आया- जो पुरुष शरीर से दुराचार करते हैं, वाणी से दुराचार करते हैं, मन से दुराचार करने की सोचते हैं, वे आत्मरक्षा नहीं करते; भले ही उनकी रक्षा के लिए हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना नियुक्त हो, फिर भी उनकी वास्तविक रक्षा नहीं होती; क्यों कि ऐसी रक्षा तो बाह्य रक्षा ही होगी, यह आध्यात्मिक रक्षा नहीं होगी। इसके विपरीत, जो काय से वाणी से तथा मन से सच्चरित्र रहते हैं, भले ही तब उनकी बाह्य रक्षा के लिए हाथी घोड़े या पैदल सैनिक नियुक्त न हों तो भी वे आध्यात्मिक रूप से तो सुरक्षित हैं ही;

नेसा रक्खा बाहिरा; तस्मा तेसं रक्खितो अत्ता'''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! ये हि केचि, महाराज, कायेन दुच्चरितं चरन्ति...पे॰... तेसं अरक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? बाहिरा हेसा, महाराज, रक्खा, नेसा रक्खा अज्झत्तिका; तस्मा तेसं अरक्खितो अत्ता। ये च खो केचि, महाराज, कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचाय सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेसं रक्खितो अत्ता।

किञ्चा पि ते नेव हत्थिकायो रक्खेय्य, न अस्सकायो रक्खेय्य, न रथकायो रक्खेय्य, न पत्तिकायो रक्खेय्य; अथ खो तेसं रक्खितो अत्ता। तं किस्स हेतु? अज्झत्तिका हेसा, महाराज, रक्खा, नेसा रक्खा बाहिरा; तस्मा तेसं रक्खितो अत्ता''ति। इदमवोच...पे॰...

''कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो लज्जी, रक्खितोति पवुच्चती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) नैषा रक्षा बाह्या, तस्मात् तेषां रक्षितः आत्मा"इति।

एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! ये हि केचित्, महाराज! कायेन दुश्चरितं चरन्ति.....पे.....तेषाम् अरक्षितः आत्म। तत् कस्य हेतोः? बाह्या ह्येषा, महाराज, रक्षा, नैषा रक्षा आध्यात्मिका, तस्मात् तेषाम् अरक्षितः आत्मा। ये च खलु केचित्, महाराज! कायेन सुचरितं चरन्ति, वाचा सुचरितं चरन्ति, मनसा सुचरितं चरन्ति; तेषां रक्षितः आत्मा। किञ्चापि ते नैव हस्तिकायः, न च अश्वकायः रक्षेत्, न च रथकायः रक्षेत् न च पदातिकायः रक्षेत्। अथ खलु तेषां रक्षितः आत्मा। तत् कस्य हेतोः? आध्यात्मिका ह्येषा महाराज, रक्षा, नैषा रक्षा बाह्या, तस्मात् तेषां रक्षितः आत्मा"इति। इदमवोचत्.....पे.....

कायेन संवरः साधु, साधु वाचा संवरः।
मनसा संवरः साधु, साधु सर्वार्थः संवरः।
सर्वार्थः संयतो लज्जी, रक्षित इति प्रोच्यते"इति॥

(हिन्दी) अतः उनको आध्यात्मिक रूप से सुरक्षित माना ही जाना चाहिये।''

''यही बात है, महाराज! यही बात है, महाराज! आपका कथन सर्वथा उचित है कि जो पुरुष शरीर से वाणी से, मन से..... पूर्ववत्....आध्यात्मिक रूप से सुरक्षित माना ही जाना चाहिये।'' वह किस कारण? महाराज! बाह्य रक्षा आध्यात्मिक रक्षा नही होती। महाराज! जो काया, वाचा एवं मन से सच्चरित्र होता है, वह सुरक्षित है। यद्यपि वे न हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना द्वारा रक्षित हो। वह क्यों? महाराज! आध्यात्मिक रक्षा बाह्य रक्षा नही होति,कि उससे आत्मरक्षा हो। भगवान् ने यों अनुमोदन किया तथा इस अनुमोदन से सम्बद्ध यह गाथा कही- ''शरीर से संयम रखना उचित होता है, वाणी का संयम भी उचित है। मन का संयम भी उचित है। इन सबका संयम हमारे मत में सर्वथा उचित है। ऐसा पूर्ण संयमी साधक लज्जावान् तथा अध्यात्मरक्षक कहलाता है''।

3.1.6. अप्पकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'अप्पका ते सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा न चेव मज्जन्ति, न च पमज्जन्ति, न च कामेसु गेधं आपज्जन्ति, न च सत्तेसु विप्पटिपज्जन्ति। अथ खो एतेव बहुतरा सत्ता लोकस्मिं ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा मज्जन्ति चेव पमज्जन्ति, च कामेसु च गेधं आपज्जन्ति, सत्तेसु च विप्पटिपज्जन्ती'''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! अप्पका ते, महाराज, सत्ता लोकस्मिं, ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा न चेव मज्जन्ति, न च पमज्जन्ति, न च कामेसु गेधं आपज्जन्ति, न च सत्तेसु विप्पटिपज्जन्ति। अथ खो एतेव बहुतरा सत्ता लोकस्मिं, ये उळारे उळारे भोगे लभित्वा मज्जन्ति चेव पमज्जन्ति च कामेसु च गेधं आपज्जन्ति, सत्तेसु च विप्पटिपज्जन्ती''ति। इदमवोच...पे॰...

(संस्कृतच्छाया) 6. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- इह मम, भदन्त! रहोगतस्य प्रतिसंल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपादि- 'अल्पकाः ते सत्त्वाः लोके ये प्रणीततरान् भोगान् लब्ध्वा न चैव माद्यन्ति, प्रमाद्यन्ति, न च कामेषु गृद्धम् आपद्यन्ते, न च सत्त्वेषु विप्रतिपद्यन्ते। अथ खलु एते एव बहुतराः सत्त्वाः लोके ये प्रणीततरान् भोगान् लब्ध्वा माद्यन्ति च प्रमाद्यान्ति च कामेषु गृद्धम् आपद्यन्ते, सत्त्वेषु च विप्रतिपद्यन्ते''इति।

एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! अल्पकाः ते, महाराज! सत्त्वाः लोके, ये प्रणीततरान् भोगं लब्ध्वा न चैव माद्यन्ति, न च प्रमाद्यन्ति, न च कामेषु गृद्धम् आपद्यन्ते, न च सत्त्वेषु विप्रतिपद्यन्ते। अथ खलु एतेषु बहुतराः सत्त्वाः लोके ये प्रणीततरान् भोगान् लब्ध्वा माद्यन्ति चैव प्रमाद्यन्ति च कामेषु च गृद्धम् आपद्यन्ते, च सत्त्वेषु विप्रतिपद्यन्ते''इति। इदमवोचत्.....पे.....

(हिन्दी) 6. श्रावस्ती में ही....। एक ओर बैठे हुए राजा प्रसेनजित् ने भगवान् से कहा- ''भन्ते! यहाँ अकेला बैठकर ध्यान करते हुए मेरे मन में ऐसा वितर्क उठा- ''संसार में ऐसे अल्प पुरुष ही हैं जो अत्यधिक वैभव का उपभोग करते हुए भी उसके कारण उन्मत्त न होते हों, अन्य पुरुषों के प्रति दुराचारी न बन जाते हों। अपितु ऐसे ही पुरुषों की यहाँ बहुलता मिलेगी जो साधारण वैभव भी प्राप्त करके उन्मत्त हो जाते हैं, अत्यधिक लोभी बन जाते हैं, तथा दूसरे साधारण लोगों के प्रति दुराचारी बन बैठते हैं।''

''यही बात है, महाराज! आप उचित ही कह रहे हैं कि संसार में ऐसे पुरुष अल्प ही हैं जो अत्यधिक वैभव का उपभोग करते हुए भी....पूर्ववत्....अन्य प्राणियों के प्रति दुराचार नहीं करते।'' भगवान् ने राजा की बात का यों

''सारत्ता कामभोगेसु, गिद्धा कामेसु मुच्छिता।
अतिसारं न बुज्झन्ति, मिगा कूटंव ओड्डितं।
पच्छासं कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको''ति॥

3.1.7. अत्थकरणसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इधाहं, भन्ते, अत्थकरणे निसिन्नो पस्सामि खत्तियमहासालेपि ब्राह्मणमहासालेपि गहपतिमहासालेपि अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे कामहेतु कामनिदानं कामाधिकरणं सम्पजानमुसा भासन्ते। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि– 'अलं दानि मे अत्थकरणेन, भद्रमुखो दानि अत्थकरणेन पञ्ञायिस्सती'''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं महाराज! येपि ते, महाराज, खत्तियमहासाला ब्राह्मणमहासाला गहपतिमहासाला अड्ढा महद्धना महाभोगा पहूतजातरूपरजता पहूतवित्तूपकरणा

(संस्कृतच्छाया) सारक्ताः कामभोगेषु, गृधाः कामेषु मूर्च्छिताः।
अतिसारं न बुध्यन्ते, मृगाः कूटम् इव उड्डिताः।
पश्चात् तत् कटुकं भवति, विपाको ह्यस्य पापकः"इति॥

7. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- इह अहम्, भदन्त! अर्थकरणे निषण्णः पश्यामि क्षत्रियमहाशालायाम् अपि ब्राह्मणमहाशालायाम् अपि गृहपतिमहाशालायाम् अपि आढ्ये महद्धने महाभोगे प्रभूतजातरूपरजते प्रभूतवित्तोपकरणे प्रभूतधनधान्ये कामहेतुः कामनिदानम् कामाधिकरणम् सम्प्रजानमृषां भाषन्ते। तदा मह्यम्, भदन्त! एतदभूत्- 'अलम् इदानीं मे अर्थकरणेन। भद्रमुख इदानीम् अर्थकरणेन प्रज्ञास्यते''इति। एवमेतत्, महाराज! एवमेतत् महाराज! येऽपि ते, महाराज! क्षत्रियमहाशाला ब्राह्मणमहाशाला गृहपतिमहाशाला आढ्याः महद्धनाः महाभोगाः प्रभूतजातरूपरजताः प्रभूतवित्तोपकरणाः

(हिन्दी) अनुमोदन किया, तथा अपने इस अनुमोदन के पक्ष में यह गाथा कही- ''कामभोगों में आसक्त, इन कामगुणों के उपभोग में अन्धे बने, किसी भी सीमा की परवाह नहीं करते। मृग जैसे व्याध के द्वारा फैलाए गये जाल की ।इसका परिणाम कटु ही होता है तथा फल भी दुःखदायी ही होता है।

7. श्रावस्ती में ही....। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह कहा-

''भन्ते! जब मैं न्यायालय में निर्णय करने बैठता हूँ तो देखता हूँ कि बड़े बड़े उच्च कुलोत्पन्न, वैभवशाली, महान् धनवान्, प्रभूत सोना चाँदी तथा अन्य उपकरणों से सम्पन्न एवं धन-धान्ययुक्त क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति भी अपने सांसारिक कामभोगों के कारण उन कामभोगों के लिए, कामभोगों के विषय में जानते बूझते हुए असत्यभाषण करते हैं। उस समय मुझ को ऐसा लगने लगता है कि मैं अब न्यायालय में न बैठूँ तभी उचित होगा। अब मेरे अमात्य भद्रमुख ही यह सब देखें तो ठीक रहेगा।'' ''यही बात है, महाराज! यही बात है, महाराज!। बड़े बड़े उच्च कुलोत्पन्न..... क्षत्रिय...भी अपने काम....जानते बूझते

पहूतधनधञ्ञा कामहेतु कामनिदानं कामाधिकरणं सम्पजानमुसा भासन्ति; तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया''ति। इदमवोच...पे॰...

''सारत्ता कामभोगेसु, गिद्धा कामेसु मुच्छिता।
अतिसारं न बुज्झन्ति, मच्छा खिप्पंव ओड्डितं।
पच्छासं कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको''ति॥

3.1.8. मल्लिकासुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरिपासादवरगतो होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो मल्लिकं देविं एतदवोच– ''अत्थि नु खो ते, मल्लिके, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो''ति?

''नत्थि खो मे, महाराज, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो। तुय्हं पन, महाराज, अत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो''ति?

(संस्कृतच्छाया) प्रभूतधनधान्याः कामहेतुकं कामनिदानं कामाधिकरणं सम्प्रजानमृषां भाषन्ते। तेषां तत् भविष्यति दीर्घतरम् अहिताय दुःखाय"इति। इदमवोचत्.....पे.....

''सारक्ताः कामभोगेषु, गृद्धाः कामेषु मूर्छिताः।
अतिसारं न बुध्यन्ते, मत्स्याः क्षिप्रमिव उड्डिताः।
पश्चात् कटुकम् भवति, विपाकः ह्यस्य पापकः"इति॥

8. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये राजा प्रसेनजित् कौशलः मल्लिकया देव्या सार्धम् उपरिप्रासादादवरगतः भवति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः मल्लिकां देवीम् एतदवोचत्- अस्ति नु खलु ते, मल्लिके! कश्चिदन्य आत्मनः प्रियतरः"इति?

नास्ति खलु मम, महाराज! कश्चिदन्यः, आत्मनः प्रियतरः। तव पुनः, महाराज! कश्चिदन्य आत्मनः प्रियतरः"इति?

(हिन्दी) असत्यभाषण करते हैं। यह उनके लिये चिरकाल तक अहितकर एवं दुःखप्रद होता है।''
भगवान् ने कहा। तथा अपने कथन के समर्थन में यह गाथा भी कहीं- ''कामभोगों में आसक्त कामभोगों के लोभ में अन्धे बने हुए इसमें किसी सीमा की अपेक्षा नहीं करते। जैसे कि मछलियाँ (मांसखण्ड के लोभ में पड़कर मछुआरे के द्वारा फेंके गये जाल) की अपेक्षा नहीं करतीं। परिणामस्वरूप, लोगों को इसके अत्यधिक कटु एवं दुःखद फल भोगने पड़ते हैं।''

8. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही.....। उस समय राजा प्रसेनजित् कौशल अपनी रानी मल्लिकादेवी के साथ अपने महल में ऊपरी महल में ऊपरी तल पर बैठे हुए थे। तब राजा ने मल्लिका देवी से पूछा- ''मल्लिके! क्या तुम्हें अपने से बढ़कर कोई दुसरा भी प्यारा है?'' ''नहीं, महाराज! मुझे तो अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा नहीं है। क्या आपको ऐसा (अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा) है?''

''मय्हम्पि खो, मल्लिके, नत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो''ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो पासादा ओरोहित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इधाहं, भन्ते, मल्लिकाय देविया सद्धिं उपरिपासादवरगतो मल्लिकं देविं एतदवोचं–'अत्थि नु खो ते, मल्लिके, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो'ति? एवं वुत्ते, भन्ते, मल्लिका देवी मं एतदवोच– 'नत्थि खो मे, महाराज, कोचञ्ञो अत्तना पियतरो। तुय्हं पन, महाराज, अत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो'ति? एवं वुत्ताहं, भन्ते, मल्लिकं देविं एतदवोचं– 'मय्हम्पि खो, मल्लिके, नत्थञ्ञो कोचि अत्तना पियतरो''ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''सब्बा दिसा अनुपरिगम्म चेतसा, नेवज्झगा पियतरमत्तना क्वचि।

(संस्कृतच्छाया) ''ममापि खलु, मल्लिके! नास्ति कश्चिदन्य आत्मनः प्रियतरः''इति।

अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः प्रासादमारूह्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्तम् अधिष्ठाने न्यसीदत्। एकान्तं निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तमेतदवोचत्- इह अहम्, भदन्त! मल्लिकया देव्या सार्धम् उपरिप्रासादादवरगतः मल्लिकां देवीम् एतदवोचम्- 'अस्ति नु खलु ते, मल्लिके! कश्चिदन्य आत्मनः प्रियतरः'इति? एवम् उक्ते, भदन्त! मल्लिका देवी माम् एतदवोचत्-'नास्ति खलु मम, महाराज! कश्चिदन्यः आत्मनः प्रियतरः। तुह्यम् पनः, महाराज! अत्र अन्यः कश्चिद् आत्मनः प्रियतरः'इति? एवम् उक्तोऽहं, भदन्त! मल्लिकां देवीम् एतदवोचम्- ममापि खलु, मल्लिके! नास्ति अन्यः कश्चिद् आत्मनः प्रियतरः''इति।

अथ खलु भगवान् एतदर्थं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

सर्वदिशाः अनुपरिगम्य चेतसाः, नैवाध्यगच्छं प्रियतरम् आत्मनः क्वचित्।

(हिन्दी) राजा- ''मल्लिके! मुझे भी अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा नहीं है।''

तब राजा प्रसेनजित्, महल से उतर कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठकर भगवान् से यह बोले-''भन्ते! मैं अभी रानी मल्लिका देवी के साथ अपने महल के ऊपरी तल पर बैठा था। उससे मैंने पूछा- 'मल्लिके! क्या तुम्हें अपने से बढ़कर कोई दुसरा भी प्यारा है?'' ''नहीं, महाराज! मुझे तो अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा नहीं है। क्या आपको ऐसा (अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा) है?'' ''मल्लिके! मुझे भी अपने से बढ़कर कोई दुसरा प्यारा नहीं है।''

भगवान् ने यह बात सुनकर इस गाथा के माध्यम से यह उत्तर दिया- ''जैसे तुमने सभी दिशाओं में अपने मन को दौड़ाया, परन्तु तुम्हें कहीं भी अपने से बढ़कर कोई प्रिय नहीं मिला।

एवं पियो पुथु अत्ता परेसं, तस्मा न हिंसे परमत्तकामो''ति॥

3.1.9. यञ्ञसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो होति, पञ्च च उसभसतानि पञ्च च वच्छतरसतानि पञ्च च वच्छतरिसतानि पञ्च च अजसतानि पञ्च च उरब्भसतानि थूणूपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा, ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं–

(संस्कृतच्छाया) एवं प्रियः पृथु आत्मा परेषाम्, तस्मात् न हिंसेत् परमाप्तकामः''इति॥

9. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये राजा प्रसेनजितः कौशलस्य महायज्ञः प्रतिपादितो भवति, पञ्च च वृषभशतानि च पञ्च च वत्सतरशतानि पञ्च च वत्सतरीशतानि च पञ्च च अजशतानि पञ्च च उरभ्रशतानि स्थूणोपनीतानि भवन्ति यज्ञार्थाय। येऽपि अस्य ते भवन्ति दासाः वा प्रैष्याः वा कर्मकराश्च तेऽपि दण्डतर्जिता भयतर्जिताः अश्रुमुखाः रूदन्तः परिकर्माणि कुर्वन्ति।

अथ खलु सम्बहुलाः भिक्षवः पूर्वाह्णसमयं वस्त्रं पिधाय निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्रविविशुः। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भक्तंपिण्डपातप्रतिक्रान्ताः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः, उपसङ्क्रम्य च भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदन्। एकान्ते निषण्णः खलु ते भिक्षवः भगवन्तम् एतदवोचन्-

(हिन्दी) वैसे ही दूसरों को भी स्व ही बड़ा प्यारा होता है। अतः अपनी भलाई चाहने वाला कभी दूसरे की हिंसा न करें(न सतावे)''।

9. श्रावस्ती में ही...। उस समय राजा प्रसेनजित् कौशल ने एक महान् यज्ञ का समारम्भ किया था। उसमें पाँच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछ़डियाँ, पाँच सौ बकरियाँ, पाँच सौ भेड़ें-ये सभी बलिकर्म हेतु खूँटों से बँधे हुए थे। वहाँ उसके जो दास दासी या कर्मकर थे वे दण्ड के भय से डर कर रोते हुए अपना अपना कार्य पूर्ण कर रहे थे।

तभी कुछ भिक्षु किसी दिन सुबह अपने वस्त्र ठीककर, पात्र चीवर लेकर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु पैठे । भिक्षाकर्म से लौटकर, भोजन कर जहा भगवान थे वहा आये और अभिवादन कर एक ओर बैठ गए। एक ओर बैठे, उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह कहा-

''इध, भन्ते, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो होति, पञ्च च उसभसतानि पञ्च च वच्छतरसतानि पञ्च च वच्छतरिसतानि पञ्च च अजसतानि पञ्च च उरब्भसतानि थूणूपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा, ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ती''ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेय्यं निरग्गळ्हं।
महायञ्ञा महारम्भा, न ते होन्ति महप्फला॥

''अजेळका च गावो च, विविधा यत्थ हञ्ञरे।
न तं सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥

''ये च यञ्ञा निरारम्भा, यजन्ति अनुकुलं सदा।

(संस्कृतच्छाया) इह, भदन्त! राजा प्रसेनजितः कौशलस्य महायज्ञः प्रत्युपस्थितो भवति, पञ्च च वृषभशतानि च पञ्च च वत्सतरशतानि पञ्च च वत्सतरीशतानि च पञ्च च अजशतानि पञ्च च उरभ्रशतानि स्थूणोपनीतानि भवन्ति यज्ञार्थाय। येऽपि अस्य ते भवन्ति दासाः वा प्रैष्याः वा कर्मकराः तेऽपि दण्डतर्जिताः भयतर्जिताः अश्रुमुखा रूदन्तः परिकर्माणि कुर्वन्ति।

अथ खलु भगवान् एतदर्थम् विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

"अश्वमेधं पुरुषमेधम्, सम्यक्पाशं वाजपेय्यं निरर्गलम्।
महायज्ञाः महारम्भाः, न ते भवन्ति महाफलाः॥

"अजैडकाश्च गावश्च, विविधाः यत्र हन्यन्ते।
न तत् सम्यग्गतं यज्ञम्, उपयान्ति महर्षिणः॥

"ये च यज्ञाः निरालम्भाः यजन्ति अनुकुलं सदा।

(हिन्दी) ''भन्ते! राजा प्रसेनजित् कौशल एक महायज्ञ कराने जा रहे हैं। उसमें पाँच सौ बैल, पाँच सौ बछड़े, पाँच सौ बछ़डियाँ, पाँच सौ बकरियाँ, पाँच सौ भेड़ें-ये सभी बलिकर्म हेतु खूँटों से बँधे हुए थे। वहाँ उसके जो दास दासी या कर्मकर थे वे दण्ड के भय से डर कर रोते हुए अपना अपना कार्य पूर्ण कर रहे थे।''

यह जान कर भगवान् के श्रीमुख से ये गाथाएँ निकलीं- ''अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्यक्पाश, वाजपेय-ऐसे महायज्ञ, जिनकी कोई सीमा नहीं है तथा जिनका आरम्भ बहुत-सी हिंसाओं से आरम्भ होता है, ये महायज्ञ बहुत फलदायक नहीं होते।

''जिनके सम्पादन में बहुत-सी भेड़ बकरियों तथा गौ बैलों की हत्या होती है, सम्यग्दृष्टि महर्षि ऐसे यज्ञों में सम्मिलित नहीं हुआ करते।

''परन्तु जो यज्ञ हिंसाविहीन हैं जिनका आरम्भ कुलपरम्परा से होता आया है;

अजेळका च गावो च, विविधा नेत्थ हञ्ञरे।
एतं सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥
''एतं यजेथ मेधावी, एसो यञ्ञो महप्फलो।
एतं हि यजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।
यञ्ञो च विपुलो होति, पसीदन्ति च देवता''ति॥

3.1.10. बन्धनसुत्तं

तेन खो पन समयेन रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन महाजनकायो बन्धापितो होति, अप्पेकच्चे रज्जूहि अप्पेकच्चे अन्दूहि अप्पेकच्चे सङ्खलिकाहि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

(संस्कृतच्छाया) अजैडकाश्च गावश्च, विविधाः न यत्र हन्यन्ते।
एतं सम्यग्गतं यज्ञम् , उपयान्ति महर्षिणः॥
"एतं यजेत मेधावी, एषः यज्ञः महाफलम्।
एतद्धि यजमानस्य, श्रेयो भवति न पापिकः।
यज्ञश्च विपुलो भवति, प्रसीदन्ति च देवताः"इति॥

10. तस्मिन् खलु पुनः समये राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन महाजनकायो बन्धापितो भवति, अप्येकः रज्जूभिः अप्येकः अन्दूभिः अप्येकः शृङ्खलिकाभिश्च।

अथ खलु सम्बहुलाः भिक्षवः पूर्वाह्णसमयं (वस्त्रं पिधाय) निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्रविविशुः। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चाद्भक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ताः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्तम् न्यसीदन्।

(हिन्दी) जिनमें भेड़ बकरी, गौ या बछड़े-बछड़ियों की हत्या नहीं होती ऐसे ही यज्ञों में वे सम्यग्दृष्टि महर्षि सम्मिलित हुआ करते हैं।

''बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे ही यज्ञों का आयोजन करना चाहिये। ऐसे ही विहित यज्ञ फलदायक होते हैं। इससे यजमान का हित ही होता है, अहित नहीं। तथा वह यज्ञ भी सुगमता से सम्पन्न हो जाता है, तथा इसके फलस्वरूप देवता भी प्रसन्न होते हैं।''

10. उस समय कौशल के राजा प्रसेनजित् ने बहुत-से नागरिकों को बन्दी बना लिया था, किसी को रस्सियों से बँधवा रखा था, किसी को बेड़ियाँ डलवा रखी थीं, किसी को लोहे की जञ्जीरों से बाँध रखा था।

तब बहुत-से भिक्षु सुबह अपने पहनने के वस्त्र ठीक कर पात्र चीवर लेकर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वे भोजन करने के बाद..... भगवान् से

एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं– ''इध, भन्ते, रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन महाजनकायो बन्धापितो, अप्पेकच्चे रज्जूहि अप्पेकच्चे अन्दूहि अप्पेकच्चे सङ्खलिकाही''ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, यदायसं दारुजं पब्बजं च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥
''एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतं पि छेत्वान परिब्बजन्ति, अनपेक्खिनो कामसुखं पहाया''ति॥

पठमो वग्गो।

तस्सुद्दानं– दहरो पुरिसो जरा, पियं अत्तानरक्खितो।
अप्पका अड्डकरणं, मल्लिका यञ्ञबन्धनन्ति॥

(संस्कृतच्छाया) एकान्ते निषण्णः खलु ते भिक्षवः भगवन्तम् एतदवोचन्- "इह, भदन्त! राज्ञा प्रसेनजिता कौशलेन महाजनकायः बन्धापितः, अल्पेकः रज्जूभिः अल्पेक अन्दूभिः अप्येकः श्रृङ्खलिकाभिश्च"इति।

अथ खलु भगवान् एतमर्थं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

"न तद् दृढं बन्धनमाह धीराः यदायसं दारूजं पर्वजं च।
सारतत्वरताः मणिकुण्डलेषु, पुत्रेषु दारेषु च या अपेक्षा॥
"एतद् दृढं बन्धनमाहु धीराः अपहारिणं शिथिलं दुष्प्रमोचनम्।
एतदपि छित्वा परिव्रजन्ति, अनपेक्षिणः कामसुखं प्रहाय"इति॥

तस्योद्दानम्– दहरः पुरुषः जरा, प्रियम् आत्मानरक्षितः।
अल्पका अर्थकरणम्, मल्लिका यज्ञबन्धनन्ति॥

(हिन्दी) यों निवेदन किया- ''भन्ते! राजा प्रसेनजित् कौशल ने बहुत-से नागरिकों को बाँध रखा है।''

भगवान् ने यह बात सुनकर उस समय ये गाथाएँ कहीं- धैर्यशील पुरुष उसको दृढ बन्धन नहीं कहते जो लौह, काष्ठ या तृण समूह से बना हुआ हो। वस्तुतः जो पुरुष मणि कुण्डल आदि में आसक्त हो जाता है, या स्त्री पुत्रादि में जो अपेक्षा रखता है इसी को पण्डितों ने 'दृढ बन्धन' कहा है।

ऐसा बन्धन पुरुष को अधःपतन की तरफ ले जाता है, यह सूक्ष्म है तथा कठिनता से खुल पाता है। ऐसे बन्धनों को भी काट कर, संसार के प्रति अपेक्षा (परवाह) न रखने वाले बुद्धिमान् लोग कामभोगों का त्याग कर प्रव्रजित हो जाते हैं।

इसमें व्याख्यात सूत्रों की सूची- इस वर्ग में 10 सूत्र व्याख्यात हैं- 1. दहर, 2. पुरुष, 3. जरामरण, 4. प्रिय, 5. आत्मरक्षित, 6. अल्पक, 7. अर्थकरण, 8. मल्लिकासूत्र, 9. यज्ञसूत्र एवं 10. बन्धनसूत्र।

2. दुतियवग्गो

3.2.1. सत्तजटिलसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो बहिद्वारकोट्ठके निसिन्नो होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

तेन खो पन समयेन सत्त च जटिला सत्त च निगण्ठा सत्त च अचेलका सत्त च एकसाटका सत्त च परिब्बाजका परूळ्हकच्छनखलोमा खारिविविधमादाय भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येन ते सत्त च जटिला सत्त च निगण्ठा सत्त च अचेलका सत्त च एकसाटका सत्त च परिब्बाजका तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं नामं सावेसि– ''राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोसलो...पे॰... राजाहं, भन्ते, पसेनदि कोसलो''ति।

(संस्कृतच्छाया) 1. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति पूर्वारामे मृगारमातुः प्रासादे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् सायाह्नसमये प्रतिसल्लायनात् व्युत्थितः बहिद्वारकोष्टके निषण्णः भवति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्।

तस्मिन् खलु पुनः समये सप्त च जटिलाः सप्त च निर्ग्रन्थाः सप्त च अचेलकाः सप्त च एकसाटकाः सप्त च परिव्राजकाः प्ररूढकक्षनखलोमाः क्षारिविविधमादाय भगवतोऽविदूरे अतिक्राम्यन्ति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशल उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणजानुमण्डलं पृथिव्यां निहत्य यत्र ते सप्त च जटिलाः सप्त च निर्ग्रन्थाः सप्त च अचेलकाः सप्त च एकसाटकाः सप्त च परिव्राजकाः तत्र अञ्जलिं प्रणम्य त्रिबारं नामम् अश्रावयत्– ''राजाहम्, भदन्त! प्रसेनजित् कौशलः...पे॰... राजाहम्, भदन्त! प्रसेनजित् कौशलः''इति।

(हिन्दी) 1. एक समय भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम स्थित मृगारमाता प्रासाद में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् सायङ्काल के समय ध्यान साधना से उठकर आराम के बाहर प्रकोष्ठ के द्वार पर बैठे थे। उसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल भगवान् की सेवा में पहुँचे तथा उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये।

उसी समय सात जटिल (तपस्वी), सात निगण्ठ, सात नग्न साधु, सात एकवस्त्रधारी तथा सात परिव्राजक, विविध वस्तुओं से भरे झोले कन्धों पर लटकाये हुए, काँखों के बाल तथा पैरों नख बढाये हुए, भगवान् के समीप से ही निकले। राजा प्रसेनजित् उन्हें देखकर आसन से उठकर, दुपट्टा एक कन्धे पर कर, दक्षिण जानु पृथ्वी पर टिकाकर, उन सात जटिल आदि साधु वेषधारियों को प्रणाम करते हुए तीन बार अपना नाम सुनाया- ''भन्ते! मैं, राजा प्रसेनजित् कौशल हूँ। मैं...कौशल हूँ। मैं...कौशल हूँ।''

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अचिरपक्कन्तेसु तेसु सत्तसु च जटिलेसु सत्तसु च निगण्ठेसु सत्तसु च अचेलकेसु सत्तसु च एकसाटकेसु सत्तसु च परिब्बाजकेसु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''ये ते, भन्ते, लोके अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना एते तेसं अञ्ञतरा''ति।

''दुज्जानं खो एतं, महाराज, तया गिहिना कामभोगिना पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तेन कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तेन मालागन्धविलेपनं धारयन्तेन जातरूपरजतं सादियन्तेन– 'इमे वा अरहन्तो, इमे वा अरहत्तमग्गं समापन्ना'''ति।

''संवासेन खो, महाराज, सीलं वेदितब्बं। तञ्च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। संवोहारेन खो, महाराज,

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलोऽचिरं प्रक्रमितेषु तेषु सप्तसु च जटिलेषु सप्तसु च निर्ग्रन्थेषु सप्तसु च अचेलकेषु सप्तसु च एकसाटकेषु सप्तसु च परिव्राजकेषु यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''ये ते, भदन्त! लोके अर्हन्तः वा अर्हत्वमार्गं वा समापन्नाः एते तेषाम् अन्यतराः''इति।

''दुर्ज्ञानं खलु एतत्, महाराज! त्वया गेहिना कामभोगिना पुत्रसम्बाधशयनम् अध्यावसता काशिचन्दनं प्रत्यनुभवता मालागन्धविलेपनम् धारयता जातरूपरजतं स्वीदियता– 'इमे वा अर्हन्तः, इमे वा अर्हत्वमार्गं समापन्नाः''इति।

''संवासेन खलु, महाराज! शीलं वेदितव्यम्। तच्च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, नहि अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन। सद्व्यवहारेण खलु, महाराज!

(हिन्दी) तब राजा प्रसेनजित् कौशल उन पैंतीस साधुवेषधारी पुरुषों के कुछ आगे चले जाने के बाद, पुनः लौटकर भगवान् के पास आये तथा उन साधुओं के विषय में बताया- ''भन्ते! ये जो अभी आप के सामने से 35 साधु गये हैं ये लोक में वर्तमान अर्हत् या अर्हन्मार्ग पर पहुँचे हुए साधुओं में से कुछ थे।''

''महाराज! आप जैसे कामभोगी, बाल बच्चों से घिरे रहने वाले, काशी का चन्दन लगाने वाले, माला गन्धद्रव्य एवं उबटन का प्रयोग करने वाले, सोना चाँदी एकत्र करने वाले गृहस्थों द्वारा यह जानना बहुत कठिन है कि कौन अर्हत् है? या कौन अर्हन्मार्गारूढ है?''

''महाराज! किसी के साथ रहने से ही उसके शील को जाना जा सकती है, वह भी बहुत काल तक साथ रहा जाय तभी जाना जा सकता है; ऐसे नहीं । वह भी पूर्ण ध्यान देने पर कोई बुद्धिमान् ही उसे भी जान सकता है, साधारण मूर्ख जन उसे क्या समझ पायेंगे! ''महाराज! व्यवहार करने पर ही

सोचेय्यं वेदितब्बं। तञ्च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। आपदासु खो, महाराज, थामो वेदितब्बो। सो च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। साकच्छाय , खो, महाराज, पञ्ञा वेदितब्बा। सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना''ति।

''अच्छरियं , भन्ते, अब्भुतं भन्ते! याव सुभासितमिदं, भन्ते, भगवता– 'दुज्जानं खो एतं, महाराज, तया गिहिना कामभोगिना पुत्तसम्बाधसयनं अज्झावसन्तेन कासिकचन्दनं पच्चनुभोन्तेन मालागन्धविलेपनं धारयन्तेन जातरूपरजतं सादियन्तेन– इमे वा अरहन्तो, इमे वा अरहत्तमग्गं समापन्ना'ति।

संवासेन खो, महाराज, सीलं वेदितब्बं। तञ्च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं;

(संस्कृतच्छाया) शौच्यं वेदितव्यम्। तच्च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न च अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन। आपदासु खलु, महाराज! स्थामो वेदितव्यः। सः च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न च अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन। संकथया, खलु, महाराज! प्रज्ञा वेदितव्या। सा च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न च अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन'इति।

''आश्चर्यम्, भदन्त! अद्भुतं भदन्त! यावत् सुभाषितमिदम्, भदन्त! भगवता– 'दुर्ज्ञानं खलु एतत्, महाराज! तया गेहिना कामभोगिना पुत्रसम्बाधशयनम् अध्यावसता काशिचन्दनं प्रत्यनुभवता मालागन्धविलेपनं धारयता जातरूपरजतम् आस्वादयता– इमे वा अर्हन्तः, इमे वा अर्हत्वमार्गं समापन्नाः'इति।

संवासेन खलु, महाराज! शीलं वेदितव्यम्। तच्च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्;

(हिन्दी) किसी की विश्वसनीयता (ईमानदारी) का पाता लगता है, वह भी बहुत समय तक उसके साथ रहने पर ही। सो भी, सदा ध्यान में रखने से, ऐसे नहीं। सो भी, प्रज्ञावान् व्यक्ति से हि, अप्रज्ञावान् से नहीं। ''महाराज! सङ्कटकाल में ही मनुष्य की स्थिरता का पाता लगता है; वह भी बहुत समय तक उसके सङ्कटकाल में रहने के बाद ही सच्चाई ज्ञात हो पाती है, ऐसे नहीं। सो भी, प्रज्ञा...., अप्रज्ञा.....। ''महाराज! किसी से साक्षात् बातचीत करने पर ही मनुष्य की प्रज्ञा का ज्ञान बुद्धिमान् पुरुष को हो पाता है वह भी बहुत काल तक बहुत तरह से संवाद हो तब। ऐसे नहीं। सो भी, प्रज्ञा...., अप्रज्ञा....., अन्यथा साधारणतः किसी की प्रज्ञासम्बन्धी वास्तविकता जानना मूर्ख मनुष्यों के वश की बात नहीं है।''

(राजा प्रसेनजित्-) ''भन्ते! आप का कहा हुआ यह सुभाषित कितना आश्चर्यमय एवं अद्भुत है- 'महाराज! आप जैसे कामभोगी....पूर्ववत्....यह गलत समझ लिया कि ये अर्हत मार्ग पर आरुढ़ हैं।

''महाराज! किसी के साथ रहने से ही उसके शील को जाना जा सकती है, वह भी बहुत काल तक

मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। संवोहारेन खो महाराज, सोचेय्यं वेदितब्बं। तञ्च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। आपदासु खो, महाराज, थामो वेदितब्बो। सो च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। साकच्छाय खो, महाराज, पञ्ञा वेदितब्बा। सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना''ति।

''एते, भन्ते, मम पुरिसा चरा ओचरका जनपदं ओचरित्वा आगच्छन्ति। तेहि पठमं ओचिण्णं अहं पच्छा ओसापयिस्सामि। इदानि ते, भन्ते, तं रजोजल्लं पवाहेत्वा सुन्हाता सुविलित्ता कप्पितकेसमस्सू ओदातवत्था पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेस्सन्ती''ति।

(संस्कृतच्छाया) मनसीकुर्वता, नहि अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन। सद्व्यवहारेण खलु, महाराज! शौच्यं वेदितव्यम्। तच्च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न च अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावताः, नो दुष्प्रज्ञेन। आपदासु खलु, महाराज! स्थामो वेदितव्यः। तच्च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न च अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, नहि दुष्प्रज्ञेन। संकथया, खलु, महाराज! प्रज्ञा वेदितव्या। सा च खलु दीर्घेण अध्वना, न इतरम्; मनसीकुर्वता, न अमनसीकुर्वता; प्रज्ञावता, न दुष्प्रज्ञेन''इति।

''एते, भदन्त! मम पुरुषचराः अवचरका जनपदम् अवचर्य आगच्छन्ति। तैर्हि प्रथमं अवचीर्णम् अहं पश्चात् अवसाययिष्यामि। इदानीं ते, भदन्त! तं रजोजल्यं प्रवाह्य सुस्नाताः सुविलिप्ताः कल्पितकेशश्मश्रवः अवदातवस्त्राः पञ्चभिः कामगुणैः समर्पिताः समङ्गीभूताः परिचारयिष्यन्ति''इति।

(हिन्दी) साथ रहा जाय तभी जाना जा सकता है; ऐसे नहीं । वह भी पूर्ण ध्यान देने पर कोई बुद्धिमान् ही उसे भी जान सकता है, साधारण मूर्ख जन उसे क्या समझ पायेंगे! ''महाराज! व्यवहार करने पर ही किसी की विश्वसनीयता का पाता लगता है, वह भी बहुत समय तक उसके साथ रहने पर ही। सो भी, सदा ध्यान में रखने से, ऐसे नहीं। सो भी, प्रज्ञावान् व्यक्ति से हि, अप्रज्ञावान् से नहीं । .....पूर्ववत..... ऐसे नहीं। सो भी, प्रज्ञा...., अप्रज्ञा....., अन्यथा साधारणतः किसी की प्रज्ञासम्बन्धी वास्तविकता जानना मूर्ख मनुष्यों के वश की बात नहीं है।''

''भन्ते! ये (साधुवेषधारी पैंतीस पुरुष जो अभी के सामने से गये हैं, वे) सब मेरे गुप्तचर हैं, भेदिया (भेद लेने वाले) हैं, जनपद में (शत्रुओं का) भेद लेते हुए आ रहे हैं। वे पहले अपने गुप्तचर रूप रह कर जैसा भेद लाते हैं तदनुसार मैं बाद में बात पर अन्तिम निर्णय करता हूँ। भन्ते! अब वे अपने इस भस्म-भभूत वाले वेष को उतार कर नहा धो कर उबटन लगा, बाल संवार कर, श्वेत वस्त्र धारण कर, गृहस्थों के पञ्चविध कामभोगों का उपभोग करेंगे।''

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''न वण्णरूपेन नरो सुजानो, न विस्ससे इत्तरदस्सनेन।
सुसञ्ञतानञ्हि वियञ्जनेन, असञ्ञता लोकमिमं चरन्ति॥
''पतिरूपको मत्तिकाकुण्डलो व, लोहड्ढमासो व सुवण्णछन्नो।
चरन्ति लोके परिवारछन्ना, अन्तो असुद्धा बहि सोभमाना''ति॥

3.2.2. पञ्चराजसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन पञ्चन्नं राजूनं पसेनदिपमुखानं पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितानं समङ्गीभूतानं परिचारयमानानं अयमन्तराकथा उदपादि–''किं नु खो कामानं अग्गं''ति? तत्रेकच्चे एवमाहंसु– ''रूपा कामानं अग्गं''ति। एकच्चे एवमाहंसु– ''सद्दा कामानं अग्गं''ति। एकच्चे एवमाहंसु– ''गन्धा कामानं अग्गं''ति। एकच्चे

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु भगवान् एतदर्थं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट–

''न वर्णरूपेण नरः सुज्ञातः, न विश्वसेत् इत्वरदर्शनेन (संक्षिप्तदर्शनेन)।
सुसंयतानां हि व्यंजनेन, असंयताः लोकमिमं चरन्ति॥
''प्रतिरूपकः मृत्तिकाकुण्डल इव, लौहार्धमार्श इव सुवर्णच्छन्नः।
चरन्ति लोके प्रवारकेण छन्नाः, अन्तोऽशुद्धाः बहिः शोभमानाः''इति॥

2. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये पञ्चानां राज्ञां प्रसेनजित्प्रमुखानां पंचभिः कामगुणैः समर्पितानां समाङ्गीभूतानां परिचार्यमाणानाम् इयमन्तरकथा उदपद्यत–''किं नु खलु कामानाम् अग्रम्''इति? तत्र केचित् एवमाहु– ''रूपं कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– ''शब्दाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– ''गन्धाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके

(हिन्दी) राजा से उन साधुवेषधारी पुरुषों की वास्तविकता जान कर भगवान् के श्रीमुख से उस समय ये गाथाएँ निकलीं-

''किसी मनुष्य के बाह्य रूप रंग से, हाव भाव से उसको नहीं पहचाना जा सकता। अतः केवल देखने मात्र से उस पर विश्वास न करें। अच्छे भले संयमी का अभिनय करते हुए बड़े बड़े धूर्त असंयमी भी इस लोक में विचरण किया करते हैं। ''जैस कोई कृत्रिम मिट्टी का बना, दूर से सुन्दर लगने वाला, कुण्डल के समान या लोहे का बना तथा उस पर सुवर्ण का पानी चढाया हुआ कोई आभूषण हो, इसी तरह कृत्रिम वेष बनाकर इस लोक में विचरण करते हैं। वे भीतर चित्त से मैले हैं; परन्तु बाहर वेशभूषा से वे चमकते रहते हैं।''

2. श्रावस्ती में ही.....। उस समय पाँचों कामगुणों को भोगते हुए, उन्हीं में लिप्त हुए, उन्हीं में एकाकार हुए प्रसेनजित् आदि पाँच राजा यह प्रसङ्ग उठा बैठे कि पाँचों कामभोगों में कौन सबसे बढ़िया है?'' उन राजाओं में से एक ने कहा- ''रूप इन कामगुणों में सबसे बढ़िया हैं।'' एक ने कहा- ''शब्द कामगुणों में श्रेष्ठ हैं।'' एक ने कहा- ''गन्ध कामगुणों में श्रेष्ठ है।'' एक ने

एवमाहंसु– ''रसा कामानं अग्गं''ति । एकच्चे एवमाहंसु– ''फोट्ठब्बा कामानं अग्गं''ति । यतो खो ते राजानो नासक्खिंसु अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापेतुं।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो ते राजानो एतदवोच– ''आयाम, मारिसा, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतमत्थं पटिपुच्छिस्साम। यथा नो भगवा ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा''ति। ''एवं, मारिसा''ति खो ते राजानो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पच्चस्सोसुं।

अथ खो ते पञ्च राजानो पसेनदिपमुखा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''इध, भन्ते, अम्हाकं पञ्चन्नं राजूनं पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितानं समङ्गीभूतानं परिचारयमानानं अयमन्तराकथा उदपादि– 'किं नु खो कामानं अग्गं'ति?

(संस्कृतच्छाया) एवमाहु– ''रसाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– ''स्प्रष्टव्याः कामानाम् अग्रम् इति। अतः खलु ते राजानो नाशक्नुवन् अन्योन्यं सम्यग्ज्ञापयितुम्।

अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः तान् राज्ञः एतदवोचत्– ''आयाम, मार्षाः! यत्र भगवान् तत्रोपसङ्क्रमिष्यामः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतमर्थं प्रतिप्रक्ष्यामः। यथा नो भगवान् व्याकरिष्यति तथा तं धारयिष्यामः''इति। ''एवम्, मार्ष!''इति खलु ते राजानः राज्ञं प्रसेनजित् कौशलं प्रत्यश्रौषुः।

अथ खलु ते पञ्च राजानः प्रसेनजित्प्रमुखा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यन्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदन्। एकान्तं निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''इह, भदन्त! अस्माकं पञ्चानां राजानां पञ्चभिः कामगुणैः समर्पितानांम् समङ्गीभूतानां परिचार्यमाणानाम् इयमन्तरकथा उदपद्यत– ''किं नु खलु कामानाम् अग्रम्''इति?

(हिन्दी) कहा- ''रस कामगुणों में श्रेष्ठ है।'' एक ने कहा- ''स्प्रष्टव्य कामगुणों में अग्र है।'' परन्तु वे राजा एक-दूसरे को समझा नहीं सके।

तब राजा प्रसेनजित् कौशल ने उन राजाओं से यह कहा- ''महाशयो! आओ, चलो हमलोग वहाँ चलें, जहाँ भगवान् विराजमान हैं। उनसे इस विषय में पूछेंगे। जैसा भगवान् बताएंगे वैसा हम सब स्वीकार कर लेंगे।'' ''यह तो उचित है'' कहकर वे सब राजा प्रसेनजित् से सहमत हो गये।

तब वे पाँचों राजा, प्रसेनजित् कौशल को आगे कर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे, तथा वहाँ उन्हें प्रणाम कर सब एक तरफ बैठ गये। तब राजा प्रसेनजित् ने भगवान् से यह कहा- ''भगवान् हम पाँच राजा यह प्रसङ्ग उठा बैठे कि पाँचों कामभोगों में कौन सबसे बढ़िया है?''

एकच्चे एवमाहंसु– 'रूपा कामानं अग्गं'ति। एकच्चे एवमाहंसु– 'सद्दा कामानं अग्गं'ति। एकच्चे एवमाहंसु– 'गन्धा कामानं अग्गं'ति। एकच्चे एवमाहंसु– 'रसा कामानं अग्गं'ति। एकच्चे एवमाहंसु– 'फोट्ठब्बा कामानं अग्गं'ति। किं नु खो, भन्ते, कामानं अग्गं'ति?

''मनापपरियन्तं ख्वाहं, महाराज, पञ्चसु कामगुणेसु अग्गन्ति वदामि। तेव, महाराज, रूपा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव रूपा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो रूपेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि रूपेहि अञ्ञं रूपं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स रूपा परमा होन्ति। ते तस्स रूपा अनुत्तरा होन्ति।

''तेव, महाराज, सद्दा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव सद्दा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो सद्देहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि सद्देहि अञ्ञं सद्दं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स सद्दा परमा होन्ति। ते तस्स सद्दा अनुत्तरा होन्ति।

(संस्कृतच्छाया) एके एवमाहु– ''रूपाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– ''शब्दाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– 'गन्धाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– 'रसाः कामानाम् अग्रम्''इति। एके एवमाहु– 'स्प्रष्टव्याः कामानाम् अग्रम्''इति। किं नु खलु, भदन्त! कामानाम् अग्रम्''इति?

''मनापपर्यन्तं खल्वहम्, महाराज! पञ्चसु कामगुणेषु अग्रम् इति वदामि। तानि एव महाराज! रूपाणि एकस्मै मनापानि भवन्ति, तानि एव रूपाणि एकस्मै अमनापानि भवति। यैः हि च यो रूपैः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, स तेभ्यः रूपेभ्यः अन्यत् रूपम् उच्चतरं वा प्रणीततरं वा न प्रार्थयति। तानि तस्मै रूपाणि परमानि भवन्ति। तानि तस्मै तत् रूपाणि अनुत्तराणि भवन्ति।

"त एव, महाराज! शब्दाः एकस्मै मनापाः भवन्ति, त एव शब्दाः एकस्मै अमनापाः भवन्ति। यो हि यैः च शब्दैः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, स तेभ्यः शब्देभ्यः अन्यं शब्दम् उत्तरतरं प्रणीतरं वा न प्रार्थयति। तस्मै ते शब्दाः परमाः भवन्ति। तस्मै ते शब्दाः अनुत्तराः भवन्ति।

(हिन्दी) .....पूर्ववत्.....'स्प्रष्टव्य कामगुणों में अग्र हैं। तो भन्ते! इन पाँचों कामभोगों में कौन श्रेष्ठ है?—

(भगवान्-) ''महाराज! मेरा तो मानना है कि इन पाँच गुणों में जिस को जो प्रिय लगता हो उसके लिए वही श्रेष्ठ है। महाराज! जो रूप एक के लिए अत्यधिक प्रिय होता है, वही रूप दूसरे के लिये अत्यधिक अप्रिय होता है। जिन रूपों से एक सन्तुष्ट हो जाता है, उसकी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं; तब उस रूप से श्रेष्ठ रूप भी उसे कुछ भी प्रिय नहीं लगता। अतः वही रूप उसके लिए सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होता है।

''महाराज! जो शब्द एक के लिए अत्यधिक प्रिय होता है, ...पूर्ववत्..... उसके लिए सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होता है।

''तेव, महाराज, गन्धा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव गन्धा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो गन्धेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि गन्धेहि अञ्ञं गन्धं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स गन्धा परमा होन्ति। ते तस्स गन्धा अनुत्तरा होन्ति।

''तेव, महाराज, रसा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव रसा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो रसेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि रसेहि अञ्ञं रसं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स रसा परमा होन्ति। ते तस्स रसा अनुत्तरा होन्ति।

''तेव, महाराज, फोट्ठब्बा एकच्चस्स मनापा होन्ति, तेव फोट्ठब्बा एकच्चस्स अमनापा होन्ति। येहि च यो फोट्ठब्बेहि अत्तमनो होति परिपुण्णसङ्कप्पो, सो तेहि फोट्ठब्बेहि अञ्ञं फोट्ठब्बं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। ते तस्स फोट्ठब्बा परमा होन्ति। ते तस्स फोट्ठब्बा अनुत्तरा होन्ती''ति।

(संस्कृतच्छाया) "त एव, महाराज, गन्धाः एकस्मै मनापाः भवन्ति, त एव गन्धाः एकस्मै अमनापाः भवन्ति। यो हि यैः गन्धैः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, स तेभ्यः शब्देभ्यः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, स तेभ्यः गन्धेभ्यः अन्यं गन्धम् उत्तरतरं प्रणीतरं वा न प्रार्थयति। तस्मै ते गन्धाः परमाः भवन्ति। तस्मै ते गन्धाः अनुत्तरा भवन्ति।

"त एव, महाराज! रसाः एकस्मै मनापाः भवन्ति, ते एव रसाः एकस्मै अमनापाः भवन्ति। यो हि यैः रसैः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, सः तैः रसैः अन्यं रसम् उत्ततरमपि प्रणीतरं वा न प्रार्थयति। तस्मै ते रसाः परमाः भवन्ति। तस्मै ते रसा अनुत्तराः भवन्ति।

"ते एव, महाराज! स्प्रष्टव्याः एकस्मै मनापाः भवन्ति, ते एव स्पर्शाः एकस्मै अमनापाः भवन्ति। यो हि यैः स्पर्शैः आत्मनः भवति परिपूर्णसंकल्पः, सः तेभ्यः स्पर्शेभ्यः अन्यं स्पर्शम् उच्चतरमपि प्रणीतरं वा न प्रार्थयति। ते तस्मै स्पर्शाः परमाः भवन्ति। तस्मै तत् स्पर्शः अनुत्तरः भवन्ति।

(हिन्दी) जो गन्ध एक के लिए अत्यधिक प्रिय होता है, वही गन्ध दूसरे के लिये अत्यधिक अप्रिय होता है। जिन गन्ध से एक सन्तुष्ट हो जाता है, उसकी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं; तब उस गन्ध से श्रेष्ठ गन्ध भी उसे कुछ भी प्रिय नहीं लगता। अतः वही गन्ध उसके लिए सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होता है।

जो रस एक के लिए अत्यधिक प्रिय होता है, वही रस दूसरे के लिये अत्यधिक अप्रिय होता है। ....पूर्ववत्.... अतः वही रस उसके लिए सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होता है।

जो स्पर्श एक के लिए अत्यधिक प्रिय....पूर्ववत्.... अतः वही शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श उसके लिए सर्वोत्तम अलौकिक एवं सर्वाधिक प्रिय होते हैं।''

तेन खो पन समयेन चन्दनङ्गलिको उपासको तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो चन्दनङ्गलिको उपासको उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता''ति। ''पटिभातु तं चन्दनङ्गलिका''ति भगवा अवोच।

अथ खो चन्दनङ्गलिको उपासको भगवतो सम्मुखा तदनुरूपाय गाथाय अभित्थवि–

''पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं, पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं।
अङ्गीरसं पस्स विरोचमानं, तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे''ति॥

अथ खो ते पञ्च राजानो चन्दनङ्गलिकं उपासकं पञ्चहि उत्तरासङ्गेहि अच्छादेसुं। अथ खो चन्दनङ्गलिको उपासको तेहि पञ्चहि उत्तरासङ्गेहि भगवन्तं अच्छादेसीति।

(संस्कृतच्छाया) तस्मिन् खलु पुनः समये चन्दनङ्गलिकः उपासकः तस्यां परिषदि निषण्णः भवति। अथ खलु चन्दनङ्गलिकः उपासकः उत्थाय आसनात् एकस्मिन् अंशे उत्तरासङ्गं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिना प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्- प्रतिभाति मां भगवन्! प्रतिभाति मां सुगत!"इति। प्रतिभातु त्वां चन्दनङ्गलिक"इति भगवान् अवोचत्।

अथ खलु चन्दनङ्गलिकः उपासकः भगवतः सम्मुखं तदनुरूपया गाथाय अभ्यर्थयत्।

"पद्मं यथा कोकनदं सुगन्धम्, प्रातः स्यात् फुल्लवीतगन्धम्।
आंगिरसं पश्य विरोचमानम्, तपन्तम् आदित्यम् इव अन्तरिक्षे"इति॥

अथ खलु ते पञ्च राजानः चन्दनंगलिकम् उपासकं पंचभिः उत्तरासङ्गैः आच्छादितवन्तः। अथ खलु चन्दनङ्गलिकः उपासकः तै पंचभिः उत्तरासङ्गैः भगवन्तम् आच्छादितवान्।

(हिन्दी) उस समय चन्दनङ्गलिक उपासक भी उस परिषद् में बैठा था। तब वह उपासक आसन से उठकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर प्रणाम कर यों निवेदन करने लगा- ''इस विषय पर मुझे कहने की इच्छा हो रही है।''

''तो वह कुछ कह कर अपनी इच्छा पूर्ण कर लो।''

तब चन्दनङ्गलिक उपासक ने भगवान् के सम्मुख उस प्रसङ्ग के अनुरूप गाथा कह कर भगवान् की यों स्तुति की- ''जैसे सुन्दर कोकनद (पद्म) प्रातःकाल विकसित होकर सुगन्ध से भरा रहता है, वैसे ही इन शोभायमान अङ्गिरस् (भगवान् बुद्ध) को देखो जो आकाश में देदीप्यमान सूर्य की तरह प्रकाशित हो रहे हैं।''

तब उन पाँचों राजाओं ने (सत्कारस्वरूप) पाँच वस्त्र उस चन्दनङ्गलिक उपासक को भेंट किये। परन्तु चन्दनङ्गलिक उपासक ने वे पाँचों ही वस्त्र भगवान् को समर्पित कर दिये।

3.2.3. दोणपाकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन राजा पसेनदि कोसलो दोणपाककुरं भुञ्जति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो भुत्तावी महस्सासी येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं भुत्ताविं महस्सासिं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''मनुजस्स सदा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
तनुकस्स भवन्ति वेदना, सणिकं जीरति आयुपालयं''ति॥

तेन खो पन समयेन सुदस्सनो माणवो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पिट्ठितो ठितो होति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो सुदस्सनं माणवं आमन्तेसि– ''एहि त्वं, तात सुदस्सन, भगवतो सन्तिके इमं गाथं परियापुणित्वा मम भत्ताभिहारे (भत्ताभिहारे) भास।

(संस्कृतच्छाया) 3. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये प्रसेनजित् कौशलः द्रोणपाकं अन्नं भुङ्कते। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भोक्ता महाश्वासी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसंक्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। अथ खलु भगवान् राजानं प्रसेनजितं कौशलं भोक्तारं महाश्वासिं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमां गाथामभाषिष्ट-

"मनुजस्य सदा स्मृतिमतः, मात्रां जानतः लब्धभोजने।
तनुका अस्य भवति वेदनाः, शनैः जीर्यते आयुः पालयन्"इति॥

तस्मिन् खलु पुनः समये सुदर्शनः माणवः राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य पृष्ठतः स्थितः भवति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः सुदर्शनं माणवम् आमन्त्रयत्। "एहि त्वम्, तात सुदर्शन! भगवतः अन्तिके इमां गाथां परिपूर्य मम भक्ताभिहारे भाषस्व।

(हिन्दी) 3. श्रावस्ती में ही.....। उस समय राजा प्रसेनजित् कौशल द्रोण भर भोजन किया करता था। तब कौशलराज प्रसेनजित् भोजन कर, लम्बी-लम्बी साँस लेते, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आये। आ कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। तब भगवान् ने राजा प्रसेनजित को, जो कि लम्बे श्वास ले रहा था, देखकर यह गाथा कही-

''सदा स्मृतिमान् रहने वाले तथा सामने आये भोजन की मात्रा जानने वाले पुरुष की वेदनाएँ कम हो जाती हैं। तथा वह भोजन भी उसकी आयु की रक्षा करता हुआ धीरे-धीरे हजम हो जाता है''।

उस समय सुदर्शन माणवक राजा के पीछे खड़ा था। राजा ने सुदर्शन माणव (राजा का रसोइया) से कहा- ''तात सुदर्शन! तुम भगवान् द्वारा कथित यह गाथा सीख लो तथा तुम प्रतिदिन मेरे भोजन करते समय यह गाथा मुझे सुना दिया करो।

अहञ्च ते देवसिकं कहापणसतं (कहापणसतं) निच्चं भिक्खं पवत्तयिस्सामी''ति। ''एवं देवा''ति खो सुदस्सनो माणवो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स पटिस्सुत्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं परियापुणित्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स भत्ताभिहारे सुदं भासति–

''मनुजस्स सदा सतीमतो, मत्तं जानतो लद्धभोजने।
तनुकस्स भवन्ति वेदना, सणिकं जीरति आयुपालयं'ति॥

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अनुपुब्बेन नाळिकोदनपरमताय सण्ठासि। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो अपरेन समयेन सुसल्लिखितगत्तो पाणिना गत्तानि अनुमज्जन्तो तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि– ''उभयेन वत मं सो भगवा अत्थेन अनुकम्पि– दिट्ठधम्मिकेन चेव अत्थेन सम्परायिकेन चा''ति।

3.2.4. पठमसङ्गामसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं

(संस्कृतच्छाया) अहञ्च तुभ्यं दास्यामि कार्षापणशतं नित्यं भिक्षां प्रवर्तिष्ये"इति। "एवं देव!"इति खलु सुदर्शनः माणवः राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य प्रतिश्रुत्य भगवतः अन्तिके इमां गाथां परिपूर्य राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य भक्ताभिहारे स्विद् भाषते-

"मनुजस्य सदा स्मृतिमतो, मात्रां जानतः लब्धभोजने।
तनुका अस्य भवन्ति वेदनाः, शनैः जीर्यते आयुः पालयन्"इति॥

अथ राजा प्रसेनजित् कौशलः आनुपूर्वेण नाडीकोदनपरिमितं समस्थात्। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः अपरेण समयेन सुसल्लिखितगात्रः पाणिना गात्राणि अनुमार्जयन् तस्यां वेलायाम् इदमुदानम् उदानीत्- "उभयाभ्याम् वतः मां स भगवान् अर्थाभ्याम् अनुकम्पिदृष्टधार्मिकेन चैव अर्थेन साम्परायकेन च"इति।

4. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहिपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां

(हिन्दी) इसके बदले में मैं तुम्हें एक सौ कार्षापण प्रतिदिन दिया करूँगा।'' ''ठीक है महाराज'' कहकर उस सुदर्शन माणव ने भगवान् की कही वह गाथा कण्ठस्थ कर, राजा द्वारा भोजन किये जाते समय उनको प्रतिदिन सुनाना आरम्भ किया- ....पूर्ववत्.....।

तब राजा शनैः-शनैः क्रमशः नाड़ी परिमाण भोजन पर आ गया। उस समय राजा ने अपने शरीर के अङ्गों को हाथ से स्पर्श करते हुए अपने शरीर को सुगठित देखा तो प्रसन्न मुद्रा में यह हर्षोद्गार प्रकट किया- ''भगवान् ने

दोनों तरह से मुझ पर अनुकंपा की है- ऐहलौकिक बातों में तथा पारलौकिक बातों में भी।''

4. श्रावस्ती में ही.....। उस समय मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना

सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो राजा पसेनदि कोसलो– ''राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी''ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन सङ्गामे राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजानं पसेनदिं कोसलं पराजेसि। पराजितो च राजा पसेनदि कोसलो सकमेव राजधानिं सावत्थिं पच्चुय्यासि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं–

(संस्कृतच्छाया) सन्नह्य राजानं प्रसेनजितं कौशलम् अभिययौ यत्र काशी। अश्रौषीत् खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः– ''राजा किल मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य माम् अभ्युयातः यत्र काशीम्''इति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं मागधम् अजातशत्रुम् वैदेहीपुत्रम् प्रत्युययौ यत्र काशी। अथ खलु राजा च मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजा च प्रसेनजित् कौशलः संग्रामं कृतवन्तौ। तस्मिन् खलु पुनः सङ्ग्रामे राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजानं प्रसेनजितम् कौशलं पराजयत्। पराजितश्च राजा प्रसेनजित् कौशलः स्वकामेव राजधानीं श्रावस्तीं प्रतिययौ।

अथ खलु सम्बहुलाः भिक्षवः पूर्वाह्णसमयं निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविविशुः। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चाद् भक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ताः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदन्। एकान्तं निषण्णाः खलु ते भिक्षवः भगवन्तमेतदवोचन्–

(हिन्दी) युद्ध के लिए तैयार कर काशी जनपद पर, जो कि राजा प्रसेनजित् कौशल के आधीन था, आक्रमण कर दिया। राजा प्रसेनजित् ने जब अपने काशी जनपद पर राजा अजातशत्रु द्वारा कृत आक्रमण का समाचार सुना तो वह भी, अपनी चतुरङ्गिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर काशी की ओर चला। तदनन्तर राजा अजातशत्रु एवं राजा प्रसेनजित् कौसल की सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में राजा अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् कौसल को हरा दिया। पराजित राजा प्रसेनजित् पुनः अपनी राजधानी लौट आया।

तब बहुत-से भिक्षु.....पूर्ववत्.... भगवान् से यों निवेदन करने लगे-

''इध, भन्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो– 'राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी'ति। अथ खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि।अथ खो, भन्ते, राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन, भन्ते, सङ्गामे राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजानं पसेनदिं कोसलं पराजेसि। पराजितो च, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो सकमेव राजधानिं सावत्थिं पच्चुय्यासी''ति।

''राजा, भिक्खवे, मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो पापमित्तो पापसहायो पापसम्पवङ्को; राजा च खो, भिक्खवे, पसेनदि कोसलो कल्याणमित्तो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को। अज्जेव, भिक्खवे, राजा पसेनदि कोसलो इमं रत्तिं दुक्खं सेति

(संस्कृतच्छाया) ''इह, भदन्त! राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं प्रसेनजित् कौशलम् अभ्युययौ, यत्र काशी। अश्रौषीत् खलु, भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः– 'राजा किल मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य माम् अभ्यययौ यत्र काशी'इति। अथ खलु, भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं मागधम् अजातशत्रुं वैदेहीपुत्रम् प्रत्युययौ यत्र काशी। अथ खलु, भदन्त! राजा च मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजा च प्रसेनजित् कौशलः सङ्ग्रामं कृतवन्तौ। तस्मिन् खलु पुनः भदन्त! सङ्ग्रामे राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजानं प्रसेनजितं कौशलं पराजयत्। पराजितः च भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः स्वकामेव राजधानीं श्रावस्तीं प्रत्युययौ''इति।

''राजा, भिक्षवः! मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः पापमित्रः पापसहायः पापसमपर्यकः राजा च खलु, भिक्षवः! प्रसेनजित् कौशलः कल्याणमित्रं कल्याणसहायः कल्याणसमपर्यकः। अद्यैव भिक्षवः! राजा प्रसेनजित् कौशलः अस्यां रात्रौ दुःखेन शेते

(हिन्दी) ''भन्ते! राजा मागध अजातशत्रु ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर काशी जनपद पर, जो कि राजा प्रसेनजित् कौशल के आधीन था, आक्रमण कर दिया। राजा प्रसेनजित् ने जब अपने काशी जनपद पर राजा अजातशत्रु द्वारा कृत आक्रमण का समाचार सुना तो वह भी, अपनी चतुरङ्गिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर काशी की ओर चला। तदनन्तर राजा अजातशत्रु एवं राजा प्रसेनजित् कौसल की सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में राजा अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् कौसल को हरा दिया। पराजित राजा प्रसेनजित् अपनी राजधानी पुनः लौट आया।'' (यह सुनकर भगवान् ने कहा-) ''भिक्षुओ! यह राजा मागध अजातशत्रु पापी लोगों की संगति करने वाला तथा स्वयं भी पाप करने वाला है। (इसके विपरीत) राजा प्रसेनजित् कौशल सज्जनों की सङ्गति करने वाला तथा स्वयं सत्कर्म करने वाला है। भिक्षुओ! परन्तु हारा हुआ राजा प्रसेनजित् कौशल आज की रात कष्ट में ही बिताएगा।''

पराजितो''ति। इदमवोच...पे॰...

''जयं वेरं पसवति, दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति, हित्वा जयपराजयं''ति॥

3.2.5. दुतियसङ्गामसुत्तं

अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो राजा पसेनदि कोसलो– ''राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी''ति। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन सङ्गामे राजा पसेनदि कोसलो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पराजेसि, जीवग्गाहञ्च नं अग्गहेसि। अथ खो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स एतदहोसि–''किञ्चापि खो म्यायं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो

(संस्कृतच्छाया) पराजितः''इति। इदमवोचत्...पे॰...

''जयं वैरं प्रसवति, दुःखं शेते पराजितः।
उपशान्तः सुखं शेते, हित्वा जयपराजयौ''इति॥

5. अथ खलु राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं प्रसेनजित् कौशलम् अभ्ययुययौ यत्र काशी। अश्रौषीत् खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः– ''राजा किल मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य माम् अभ्ययुयातः यत्र काशी''इति। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं मागधम् अजातशत्रुं वैदेहीपुत्रं प्रत्ययययौ यत्र काशी। अथ खलु राजा च मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजा च प्रसेनजित् कौशलः सङ्ग्रामं कृतवन्तौ। तस्मिन् खलु पुनः सङ्ग्रामे राजा प्रसेनजित् कौशलः राजानं मागधम् अजातशत्रुं वैदेहीपुत्रं पराजयत्, जीवग्राहञ्च तम् अगृह्णात्। अथ खलु राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य एतदभूत्– ''किञ्चापि खलु मह्यम् अयं राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः

(हिन्दी) भगवान् ने यह कहा।....पूर्ववत्.....।''विजय वैर की वृद्धि करता है तथा हारा हुआ अपनी रात्रि कष्ट में ही बिताता है। हार-जीत की चिन्ता छोड़कर शान्तचित्त पुरुष ही 'सुख की नींद' सो पाता है।''

5. कभी मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर काशी जनपद पर, जो कि राजा प्रसेनजित् कौशल के आधीन था, आक्रमण कर दिया।....पूर्ववत्.... सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौशल ने मगधराज अजातशत्रु में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौशल ने मगधराज अजातशत्रु को पराजित कर दिया। परन्तु सम्बन्धी होने के कारण उसको जीवनदान दे दिया। उसने

अदुब्भन्तस्स दुब्भति, अथ च पन मे भागिनेय्यो होति। यंनूनाहं रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदेहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जेय्यं''ति।

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदेहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पविसिंसु। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं–''इध, भन्ते, राजा मागधो अजातसत्तु

(संस्कृतच्छाया) अद्रुह्यन्ताय द्रुह्यति, अथ च पुनः मम भागिनेयो भवति। यत् नूनमहं राज्ञः मागधस्य अजातशत्रोः वैदेहीपुत्रस्य सर्वं हस्तिकायं पर्यादाय सर्वम् अश्वकायं पर्यादाय सर्वं रथकायं पर्यादाय सर्वं पदातिकायं पर्यादाय जीवन्तमेव तम् उत्सृजेयम्''इति।

अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः राज्ञः मागधस्य अजातशत्रोः वैदेहीपुत्रस्य सर्वं हस्तिकायं पर्यादाय सर्वं अश्वकायं पर्यादाय सर्वं रथकायं पर्यादाय सर्वम् पदातिकायं पर्यादाय जीवन्तमेव तम् अवासृजत्''इति।

अथ खलु सम्बहुलाः भिक्षवः पूर्वाह्णसमयं निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यीं पिण्डाय प्राविविशुः। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ताः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदन्। एकान्तं निषण्णाः खलु ते भिक्षवः भगवन्तमेतदवोचन्–''इह, भदन्त! राजा मागधः अजातशत्रुः

(हिन्दी) विचार किया-''यद्यपि यह वैदेहिपुत्र मगधराज अजातशत्रु मेरा विश्वासघाती शत्रु बना हुआ है, परन्तु है तो मेरा भानजा ही। अतः क्यों न मैं इसकी सारी हस्तिसेना, अश्वसेना एवं पैदलसेना छीनकर इसे जीवित ही छोड़ दूँ।'' तब उस राजा प्रसेनजित् कौशल ने उस राजा अजातशत्रु की सारी हस्तिसेना, अश्वसेना एवं पैदलसेना छीनकर जीवित ही छोड़ दिया।

उसी समय बहुत-से भिक्षु प्रातःकाल अपने पहनने के वस्त्र सुव्यवस्थित कर पात्र चीवर ले कर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वे श्रावस्ती में भिक्षाचार्या कर भोजनकर्म से निवृत्त होकर भगवान् के पास गये। पास जाकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर, उन्होंने भगवान् से यह कहा-''यहाँ, भन्ते! मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु

वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं अब्भुय्यासि येन कासि। अस्सोसि खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो– 'राजा किर मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा ममं अब्भुय्यातो येन कासी'ति। अथ खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो चतुरङ्गिनिं सेनं सन्नय्हित्वा राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पच्चुय्यासि येन कासि। अथ खो, भन्ते, राजा च मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजा च पसेनदि कोसलो सङ्गामेसुं। तस्मिं खो पन, भन्ते, सङ्गामे राजा पसेनदि कोसलो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं पराजेसि, जीवग्गाहञ्च नं अग्गहेसि। अथ खो, भन्ते, रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स एतदहोसि–'किञ्चापि खो म्यायं राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो अदुब्भन्तस्स दुब्भति, अथ च पन मे भागिनेय्यो होति। यंनूनाहं रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदेहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं सब्बं रथकायं सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जेय्यं'''ति।

(संस्कृतच्छाया) वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं प्रसेनजितं कौशलम् अभ्ययायौ यत्र काशी। अश्रौषीत् खलु, भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः– ''राजा किल मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य माम् अभ्ययातः यत्र काशी''इति। अथ खलु, भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः चतुरङ्गिणीं सेनां सन्नह्य राजानं मागधम् अजातशत्रुं वैदेहीपुत्रं प्रत्ययायौ यत्र काशी। अथ खलु, भदन्त! राजा च मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः राजा च प्रसेनजित् कौशलः सङ्ग्रामं कृतवन्तौ (समगमतसम्)। तस्मिन् खलु पुनः, भदन्त! सङ्ग्रामे राजा प्रसेनजित् कौशलः राजानं मागधम् अजातशत्रुं वैदेहीपुत्रं पराजयत्, जीवग्राहञ्च तम् अगृह्णात्। अथ खलु राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य एतदभूत्–''किञ्चापि खलु मह्यम् अयं राजा मागधः अजातशत्रुः वैदेहीपुत्रः अद्रुह्यन्ताय द्रुह्यति, अथ च पुनः मे भागिनेयो भवति। यत् नूनमहं राज्ञः मागधस्य अजातशत्रोः वैदेहीपुत्रस्य सर्वं हस्तिकायं पर्यादाय सर्वम् अश्वकायं पर्यादाय सर्वं रथकायं पर्यादाय सर्वं पदातिकायं पर्यादाय जीवन्तमेव तं उत्सृजेयम्''इति।

(हिन्दी) ने युद्ध के लिए तैयार कर कभी मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने चतुरङ्गिणी सेना युद्ध के लिए तैयार कर काशी जनपद पर, जो कि राजा प्रसेनजित् कौशल के आधीन था, आक्रमण कर दिया।....पूर्ववत्.... सेनाओं में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौशल ने मगधराज अजातशत्रु में युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा प्रसेनजित् कौशल ने मगधराज अजातशत्रु को पराजित कर दिया। परन्तु सम्बन्धी होने के कारण उसको जीवनदान दे दिया। उसने.....पूर्ववत्..... ''यद्यपि यह वैदेहिपुत्र मगधराज अजातशत्रु मेरा विश्वासघाती शत्रु बना हुआ है, परन्तु है तो मेरा भानजा ही। अतः क्यों न मैं इसकी सारी हस्तिसेना, अश्वसेना एवं पैदलसेना छीन कर इसे जीवित ही छोड़ दूँ।''

''अथ खो, भन्ते, राजा पसेनदि कोसलो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुनो वेदेहिपुत्तस्स सब्बं हत्थिकायं परियादियित्वा सब्बं अस्सकायं परियादियित्वा सब्बं रथकायं परियादियित्वा सब्बं पत्तिकायं परियादियित्वा जीवन्तमेव नं ओसज्जी''ति।

अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''विलुम्पतेव पुरिसो, यावस्स उपकप्पति।
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति, सो विलुत्तो विलुप्पति॥
''ठानञ्हि मञ्ञति बालो, याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पापं, अथ दुक्खं निगच्छति॥
''हन्ता लभति हन्तारं, जेतारं लभते जयं।
अक्कोसको च अक्कोसं, रोसेतारञ्च रोसको।
अथ कम्मविवट्टेन, सो विलुत्तो विलुप्पती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अथ खलु, भदन्त! राजा प्रसेनजित् कौशलः राज्ञः मागधस्य अजातशत्रोः वैदेहीपुत्रस्य सर्वं हस्तिकायं पर्यादाय सर्वम् अश्वकायं पर्यादाय सर्वं रथकायं पर्यादाय सर्वं पदातिकायं पर्यादाय जीवन्तमेव तं अवासृजत्''इति।

अथ खलु भगवान् एतदर्थं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट-

''विलुम्पति एव पुरुषः, यावदस्य उपकल्पते।
यदा चान्ये विलुम्पन्ति, स विलुप्तः विलुप्यते॥
''स्थानं हि मन्यते बालः, यावत् पापं न पच्यते।
यदा च पच्यते पापम्, अथ दुःखं निगच्छति॥
''हन्ता लभते हन्तारम्, जेतारं लभते जयम्।
आक्रोशकश्च आक्रोशकम्, रोषितारं च रोषकः।
अथ कर्मविवर्तेन, स विलुप्तः विलुप्यते''इति॥

(हिन्दी) तब उस राजा प्रसेनजित् कौशल ने उस राजा अजातशत्रु की उपर्युक्त समस्त सेनाएँ छीनकर जीवित ही छोड़ दिया।'' तब भगवान् ने यह घटना सुनकर, उस समय ये गाथाएँ कहीं-

''पहले तो कोई पुरुष दूसरों से अपने लिये उपयोगी वस्तुएँ लूटता है; परन्तु जब दूसरा कोई उसे लूटने लगता है तो वह ठगा-सा रह जाता है। ''पहले तो वह मूर्ख जब तक कि उसके पाप का घड़ा भर नहीं जाता; समझता है कि मैं बहुत उचित कर रहा हूँ, परन्तु जब उसके पाप का फल सम्मुख आने लगता है तब उस को दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है।''मारने वाले को मारने वाला भी मिल ही जाता है, तथा विजयी को भी हराने वाला। अपशब्द बोलने वाले को अपशब्द बोलने वाला मिल जाता है, तथा क्रोध करने वाले को उस पर अन्य क्रोध करने वाला मिल जाता है। इस तरह वह कर्मबन्धन में बद्ध पुरुष दूसरों को लूटता हुआ स्वयं भी कभी न कभी लूटा ही जाता है''।

3.2.6. मल्लिकासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो अञ्ञतरो पुरिसो येन राजा पसेनदि कोसलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स उपकण्णके आरोचेसि– ''मल्लिका, देव, देवी धीतरं विजाता''ति। एवं वुत्ते, राजा पसेनदि कोसलो अनत्तमनो अहोसि।

अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं अनत्तमनतं विदित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''इत्थीपि हि एकच्चिया, सेय्या पोस जनाधिप।
मेधाविनी सीलवती, सस्सुदेवा पतिब्बता॥
''तस्सा यो जायति पोसो, सूरो होति दिसम्पति।
तादिसा सुभगिया पुत्तो, रज्जं पि अनुसासती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) 6. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तमभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। अथ खलु अन्यतरः पुरुषः यत्र राजा प्रसेनजित् कौशलः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य राज्ञः प्रसेनजितः कौशलस्य उपकर्णकान् आरोचिष्ट– ''मल्लिका, देव! देवी दुहितारं व्यजनिष्ट''इति। एवम् उक्ते, राजा प्रसेनजित् कौशलः अनात्मनः अभूत्।

अथ खलु भगवान् राजानं प्रसेनजितं कौशलम् अनात्मनः विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट–

''स्त्री अपि हि एकाचित्, श्रेया पोषय जनाधिप!
मेधाविनी शीलवती, श्वश्रूदेवा पतिव्रता॥
''तस्याः यो जायते पुरुषः, शूरः भवति दिशाम्पतिः।
तादृश्याः सुभगायाः [सुभार्यायाः] पुत्रः, राज्यमपि अनुशास्ति''इति॥

(हिन्दी) 6. श्रावस्ती में ही.....। किसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल भगवान् के समीप जाकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। उसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल का एक अनुचर उसके कान में फुसफुसाकर बोला-''देव! मल्लिका देवी ने एक कन्या को जन्म दिया है।'' यह सूचना पाकर राजा उदास हो गया। भगवान् ने राजा..को इस तरह उदास देखकर यह गाथा कही- ''हे प्रजापालक! कोई कोई स्त्रियाँ भी पुरुषों से उत्कृष्ट, बुद्धिमती, शीलवती, सास ससुर की सेवा करने वाली तथा पतिव्रता होती हैं। (यह भी ऐसी ही बने,) अतः इसका पालन कर। ''उस सौभाग्यशालिनी से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह भी महान् शूर वीर, चारों दिशाओं (के राजाओं) को जीतने वाला तथा प्रजा का सुदृढ़ अनुशासक होता है।

3.2.7. अप्पमादसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''अत्थि नु खो, भन्ते, एको धम्मो यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति– दिट्ठधम्मिकञ्चेव अत्थं सम्परायिकञ्चा''ति?

''अत्थि खो, महाराज, एको धम्मो यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति– दिट्ठधम्मिकञ्चेव अत्थं सम्परायिकञ्चा''ति।

''कतमो पन, भन्ते, एको धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति– दिट्ठधम्मिकञ्चेव अत्थं सम्परायिकञ्चा''ति?

''अप्पमादो खो, महाराज, एको धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति– दिट्ठधम्मिकञ्चेव अत्थं सम्परायिकञ्चाति। सेय्यथापि, महाराज, यानि कानिचि जङ्गलानं पाणानं पदजातानि, सब्बानि तानि हत्थिपदे समोधानं गच्छन्ति, हत्थिपदं तेसं

(संस्कृतच्छाया) 7. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्तम् न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अस्ति नु खलु, भदन्त! एको धर्मः यः उभयार्थौ समधिगृह्य तिष्ठति– दृष्टधार्मिकञ्चैव अर्थं साम्परायिकञ्च''इति?

''अस्ति खलु, महाराज! एको धर्मः य उभयार्थौ समधिगृह्य तिष्ठति– दृष्टधार्मिकञ्चैव अर्थं साम्परायिकञ्च''इति।

''कतमः पुनः, भदन्त! एको धर्मः, य उभयार्थौ समधिगृह्य तिष्ठति– दृष्टधार्मिकञ्चैव अर्थं साम्परायिकञ्च''इति?

''अप्रमादः खलु, महाराज! एको धर्मः, य उभयार्थौ समधिगृह्य तिष्ठति– दृष्टधार्मिकञ्चैव अर्थं साम्परायिकञ्च''इति। तद्यथापि, महाराज! यानि कानिचित् जङ्गलानां प्राणिनाम् पादजातानि, सर्वाणि तानि हस्तिपादे समवधानं गच्छन्ति, हस्तिपादं तेषां

(हिन्दी) 7. श्रावस्ती में ही....। .....एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह प्रश्न किया- ''क्या, भन्ते! ऐसा कोई एक धर्म है, जो दोनों स्थानों पर समान रूप से आवश्यक ठहरता हो, इस लोक में भी तथा परलोक में भी?''

''हाँ, महाराज! ऐसा एक धर्म है, जो दोनों ही स्थानों पर.....परलोक में भी?''

''भन्ते! वह कौन सा धर्म है जो दोनों ही स्थानों पर....परलोक में भी?''

''महाराज! अप्रमाद (सावधानता) जो दोनों ही स्थानों पर समान रूप से आवश्यक है- इस लोक में भी तथा परलोक में भी। जैसे, महाराज! सभी जङ्गली प्राणियों के पदचिह्न हाथी पदचिह्न में अन्तर्भूत हो जाते हैं, अर्थात् हाथी का

अग्गमक्खायति– यदिदं महन्तत्तेन; एवमेव खो, महाराज, अप्पमादो एको धम्मो, यो उभो अत्थे समधिग्गय्ह तिट्ठति– दिट्ठधम्मिकञ्चेव अत्थं सम्परायिकञ्चा''ति। इदमवोच...पे॰...

''आयुं अरोगियं वण्णं, सग्गं उच्चाकुलीनतं।
रतियो पत्थयन्तेन, उळारा अपरापरा॥
''अप्पमादं पसंसन्ति, पुञ्ञकिरियासु पण्डिता।
अप्पमत्तो उभो अत्थे, अधिग्गण्हाति पण्डितो॥
''दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितोति पवुच्चती''ति॥

3.2.8. कल्याणमित्तसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच–

(संस्कृतच्छाया) अंगम् आच्छादयति– यदिदं महतार्थेन। एवमेव खलु, महाराज! अप्रमादः एकः धर्मः, यः उभयार्थौ समधिगृह्यः तिष्ठति– दृष्टधार्मिकञ्चैव अर्थं साम्परायिकञ्च''इति। इदम् अवोचत्...पे॰...

''आयुः आरोग्यं वर्णम्, स्वर्गम् उच्चकुलीनताम्।
रतिं प्रार्थयता, उदारा अपरापराः॥
''अप्रमादं प्रशंसन्ति, पुण्यक्रियासु पण्डिताः।
अप्रमत्त उभयार्थौ, अधिगृह्णाति पण्डितः॥
''दृष्टे धर्मे च योऽर्थः, यश्चार्थः साम्परायिकः।
अर्थाभिसमयात् धीरः, पण्डित इति प्रोच्यते''इति॥

8. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्–

(हिन्दी) पदचिह्न सभी जङ्गली प्राणियों के पदचिह्नों से बड़ा होता है; वैसे ही, महाराज, यह अप्रमाद एक ऐसा धर्म है जो दोनों ही स्थानों इस लोक में तथा परलोक में भी समान रूप से आवश्यक ठहरता है। भगवान् ने यह कहा.....पूर्ववत्....।

''आयु, आरोग्य, वर्ण, स्वर्ग, उच्च कुल तथा अधिक से अधिक उदार सुख पाने की इच्छा रखने वालों के लिए पण्डितजन पुण्य कर्मों में अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष अप्रमत्त (सावधान) रहता हुआ ही इस लोक तथा परलोक में अधिकतम सुख प्राप्त कर सकता है।

''इस लोक या परलोक में जो कर्तव्य कर्म हैं उनकी वास्तविकता ज्ञात कर लेना ही बुद्धिमान् पुरुष का प्रथम कर्तव्य होता है। इस कर्तव्य का ज्ञाता ही 'धीर' एवं 'पण्डित' कहलाता है''।

8. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही....। ....एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यों निवेदन किया

''इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'स्वाक्खातो भगवता धम्मो, सो च खो कल्याणमित्तस्स कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स, नो पापमित्तस्स नो पापसहायस्स नो पापसम्पवङ्कस्सा'''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! स्वाक्खातो, महाराज, मया धम्मो। सो च खो कल्याणमित्तस्स कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स, नो पापमित्तस्स नो पापसहायस्स नो पापसम्पवङ्कस्साति।

''एकमिदाहं, महाराज, समयं सक्केसु विहरामि नगरकं नाम सक्यानं निगमो। अथ खो, महाराज, आनन्दो भिक्खु येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, महाराज, आनन्दो भिक्खु मं एतदवोच– 'उपड्ढमिदं, भन्ते, ब्रह्मचरियस्स– यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता

(संस्कृतच्छाया) ''इह मह्यम्, भदन्त! रहसि प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपादि– 'स्वाख्यातः भगवता धर्मः, सः च खलु कल्याणमित्रस्य कल्याणसहायस्य कल्याणसमपर्यंकस्य, न पापमित्रस्य न पापसहायस्य न पापसमपर्यंकस्य'''इति।

''एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! स्वाख्यातः, महाराज! मया धर्मः। सः च खलु कल्याणमित्रस्य कल्याणसहायस्य कल्याणसमपर्यंकस्य, नः पापमित्रस्य नः पापसहायस्य नः पापसमपर्यंकस्य''इति।

''एकस्मिन अहम्, महाराज! समये शाक्येषु विहरामि नगरकं नाम शाक्यानम् निगमे। अथ खलु, महाराज! आनन्दः भिक्षुः यत्राहं तत्रोपसमक्रमीत्; उपड्क्रम्य माम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु, महाराज! आनन्दः भिक्षु माम् एतदवोचत्– 'उपार्धमिदम्, भदन्त! ब्रह्मचर्यस्य यदिदं कल्याणमित्रता कल्याणसहायता

(हिन्दी)- ''भन्ते! एकान्त में ध्यान करते हुए मेरे मन में यह वितर्क आया-''भगवान् ने अपना धर्म जिज्ञासुओं को बड़े अच्छे रीति से समझाया है। किन्तु वह सज्जनों तथा मिलने जुलने वालों के लिए ही उपयोगी है; दुर्जनों तथा उनसे मिलने जुलने वालों के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है।''

''यही बात है, महाराज! यही बात है! मैंने अपना साक्षात्कृत धर्म जिज्ञासुओं को बड़े अच्छे रीति से समझाया है। किन्तु वह सज्जनों तथा मिलने जुलने वालों के लिए ही उपयोगी है; दुर्जनों तथा उनसे मिलने जुलने वालों के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है।

''महाराज! एक समय मैं शाक्य जनपद के नगरक नामक ग्राम में साधनारत था। महाराज! उस समय आनन्द भिक्षु मेरे पास आया.....पूर्ववत्.... उस ने मुझसे कहा- ''ब्रह्मचर्य का करीब आधा अंश तो सज्जनों के साथ मिलने जुलने

कल्याणसम्पवङ्कता''ति।''एवं वुत्ताहं, महाराज, आनन्दं भिक्खुं एतदवोचं– 'मा हेवं, आनन्द, मा हेवं, आनन्द! सकलमेव हिदं, आनन्द, ब्रह्मचरियं– यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कता। कल्याणमित्तस्सेतं, आनन्द, भिक्खुनो पाटिकङ्खं कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेस्सति अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरिस्सति'''।

''कथं च, आनन्द, भिक्खु कल्याणमित्तो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेति, अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरोति? इधानन्द, भिक्खु सम्मादिट्ठिं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं, सम्मासङ्कप्पं भावेति...पे॰... सम्मावाचं भावेति...पे॰... सम्माकम्मन्तं भावेति...पे॰... सम्माआजीवं भावेति...पे॰... सम्मावायामं भावेति...पे॰... सम्मासतिं भावेति...पे॰... सम्मासमाधिं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं।

(संस्कृतच्छाया) कल्याणसमपर्यंकता''इति।''एवम् उक्तोऽहम्, महाराज! आनन्दं भिक्षुम् एतदवोचत्– 'मा ह्येवम्, आनन्द! मा ह्येवम्, आनन्द! सकलमेव हीदम्, आनन्द! ब्रह्मचर्यम्– यदिदं कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसमपर्यंकता। कल्याणमित्रस्येतत्, आनन्द! भिक्षोः प्रतिकांक्षं कल्याणसहायस्य कल्याणसमपर्यंकस्य आर्यमष्टाङ्गिकं मार्गं भावयिष्यति आर्यमष्टाङ्गिकं मार्गं बहुलीकरिष्यति'''।

''कथं च, आनन्द! भिक्षुः कल्याणमित्रं कल्याणसहायः कल्याणसमपर्यंकः आर्यम् अष्टाङ्गिकं मार्गं भावयति, आर्यम् अष्टाङ्गिकं मार्गं बहुलीकरोति? इह आनन्द! भिक्षुः सम्यग्दृष्टिम् भावयति विवेकनिःश्रितं विरागनिःश्रितं निरोधनिःश्रितं व्यवसर्गपरिणामम्, सम्यक्सङ्कल्पं भावयति...पे॰... सम्यग्वाचं भावयति...पे॰... सम्यककर्मान्तं भावयति...पे॰... सम्यगाजीवं भावयति...पे॰... सम्यग्व्यायामं भावयति...पे॰... सम्यक्स्मृतिं भावयति...पे॰... सम्यक्समाधिं भावयति विवेकनिःश्रितं विरागनिःश्रितं निरोधनिःश्रितं व्यवसर्गपरिणामम्।

(हिन्दी) पर ही टिका हुआ है।'' ''उसके द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैंने उसको बताया- 'ऐसा न कहो, आनन्द! ऐसा न कहो; क्यों कि ब्रह्मचर्य तो पूर्णतः सज्जनों के साथ मिलने जुलने पर ही टिका हुआ है। आनन्द! सज्जनों के साथ मिलने जुड़ने वाले भिक्षु से ही आशा की जा सकती है कि वह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के अभ्यास में निरन्तर दत्तचित्त रहेगा और उसमें पूर्णता प्राप्त करेगा।

''कैसे, आनन्द! उस सज्जनों से मिलने जुलने वाले भिक्षु से यह आशा.....उसमें पूर्णता प्राप्त करेगा? आनन्द वह भिक्षु विवेक, वैराग्य, निरोध तथा त्याग वाली सम्यग्दृष्टि की भावना करता है.....सम्यक्सङ्कल्प की.... सम्यग्वाणी की...सम्यक्कर्मान्त की.....सम्यगाजीव की....सम्यग्व्यायाम की.....सम्यग्स्मृति की एवं.....सम्यक्समाधि की भावना करता है।

एवं खो, आनन्द, भिक्खु कल्याणमित्तो कल्याणसहायो कल्याणसम्पवङ्को अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावेति, अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं बहुलीकरोति। तदमिनापेतं, आनन्द, परियायेन वेदितब्बं यथा सकलमेविदं ब्रह्मचरियं– यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कता''ति।

''ममञ्हि, आनन्द, कल्याणमित्तं आगम्म जातिधम्मा सत्ता जातिया परिमुच्चन्ति, जराधम्मा सत्ता जराय परिमुच्चन्ति, ब्याधिधम्मा सत्ता ब्याधितो परिमुच्चन्ति, मरणधम्मा सत्ता मरणेन परिमुच्चन्ति, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मा सत्ता सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासेहि परिमुच्चन्ति। इमिना खो एतं, आनन्द, परियायेन वेदितब्बं यथा सकलमेविदं ब्रह्मचरियं– यदिदं कल्याणमित्तता कल्याणसहायता कल्याणसम्पवङ्कता''ति।

''तस्मातिह ते, महाराज, एवं सिक्खितब्बं– 'कल्याणमित्तो भविस्सामि कल्याणसहायो

(संस्कृतच्छाया) एवम् खलु, आनन्द! भिक्षुः कल्याणमित्रं कल्याणसहायः कल्याणसमपर्यकः आर्यम् अष्टाङ्गिकं मार्गं भावयति, आर्यम् अष्टाङ्गिकं मार्गं बहुलीकरोति। तद् अमुना उपेतम्, आनन्द! पर्यायेन वेदितव्यं यथा सकल एवमिदं ब्रह्मचर्यम्– यदिदं कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसमपर्यङ्कता''ति।

''मम हि, आनन्द! कल्याणमित्रम् आगत्य जातिधर्माः सत्त्वाः जात्याः परिमुञ्चन्ते, जराधर्माः सत्त्वाः जरायाः परिमुञ्चन्ते, व्याधिधर्माः सत्त्वाः व्याधितः परिमुञ्चन्ते, मरणधर्माः सत्त्वाः मरणेन परिमुञ्चन्ते, शोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासधर्माः सत्त्वाः शोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायाभ्यः परिमुञ्चन्ते। अनेन खलु एतत्, आनन्द! पर्यायेन वेदितव्यं यथा सकलमेवेदं ब्रह्मचर्यम्– यदिदं कल्याणमित्रता कल्याणसहायता कल्याणसमपर्यङ्कताः''इति।

''तस्मादिह ते, महाराज! एवं शिक्षितव्यम्– 'कल्याणमित्रं भविष्यामि कल्याणसहायः

(हिन्दी) इस तरह, आनन्द! वह भिक्षु सज्जनों के साथ मिल जुलकर रहता हुआ आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करता है। आनन्द! इस प्रकार यह समझना चाहिये कि मेरा यह धर्म पूर्णतः सज्जनों के साथ मिलने जुलने पर ही आधृत है।

''आनन्द! मुझ कल्याणमित्र का आश्रय लेकर इस संसार में जन्म लेने वाले प्राणी जन्म परम्परा (बार बार जन्म लेना) से मुक्त हो जाते हैं बार बार वृद्ध होने से...बार बार रोगी होने से....बार बार मृत्यु को प्राप्त होने से मुक्त हो जाते हैं। तथा बार बार शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य, चिन्ता करने से मुक्त हो जाते हैं। आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये कि यह मेरा धर्म एकान्ततः कल्याणमित्रों के आश्रय पर ही टिका हुआ है।''

''अतः महाराज! यहाँ यह सीखना चाहिये- 'कल्याणमित्रों (भले लोगों) के साथ ही मिलूँगा,

कल्याणसम्पवङ्को'ति। एवञ्हि ते , महाराज, सिक्खितब्बं।

''कल्याणमित्तस्स ते, महाराज, कल्याणसहायस्स कल्याणसम्पवङ्कस्स अयं एको धम्मो उपनिस्साय विहातब्बो– अप्पमादो कुसलेसु धम्मेसु।

''अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, इत्थागारस्स अनुयन्तस्स एवं भविस्सति– 'राजा खो अप्पमत्तो विहरति, अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द, मयम्पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया'''ति।

''अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, खत्तियानम्पि अनुयन्तानं एवं भविस्सति– 'राजा खो अप्पमत्तो विहरति अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द, मयम्पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया'''ति।

''अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, बलकायस्सपि एवं भविस्सति– 'राजा खो अप्पमत्तो विहरति अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द, मयम्पि अप्पमत्ता

(संस्कृतच्छाया) कल्याणसमपर्यंकः'इति। एवं हि ते, महाराज! शिक्षितव्यम्।

''कल्याणमित्रस्य ते, महाराज! कल्याणसहायस्य कल्याणसमपर्यंकस्य अयम् एकः धर्मः उपनिःश्राय विहातव्यः– अप्रमादः कुसलेसु धर्मेषु।

''अप्रमत्तस्य ते, महाराज! विहरतः अप्रमादम् उपनिःश्राय, स्त्यागारस्य अनुयातस्य एवं भविष्यति– 'राजा खलु अप्रमत्तो विहरति, अप्रमादम् उपनिःश्राय। हन्त, वयमपि अप्रमत्ताः विहामः, अप्रमादम् उपनिःश्राय'''इति।

''अप्रमत्तस्य ते, महाराज! विहरतः अप्रमादम् उपनिःश्राय, क्षत्रियानामपि अनुयाताम् एवं भविष्यति– 'राजा खलु अप्रमत्तः विहरति अप्रमादम् उपनिःश्राय। हन्त, वयमपि अप्रमत्ताः विहामः, अप्रमादम् उपनिःश्राय'''इति।

''अप्रमत्तस्य ते, महाराज! विहरतोऽप्रमादम् उपनिःश्राय, बालकायस्यापि एवं भविष्यति– 'राजा खलु अप्रमत्तो विहरति अप्रमादम् उपनिःश्राय। हन्त, वयमपि अप्रमत्ताः

(हिन्दी) जुड़ूँगा तथा उन्हीं के साथ रहूँगा।' आपको भी यही सीखना चाहिये''।

''महाराज! ऐसे कल्याणमित्रों के साथ मिलने जुलने वाले तथा रहने वाले के लिए यही एक धर्म साधनाहेतु रह जाता है कि वह अप्रमाद के साथ कुशल धर्मों के अभ्यास करे।

''महाराज! इस तरह आपके द्वारा अप्रमाद के साथ कुशल धर्मों का अभ्यास करने से आपके अधीनस्थ अन्तःपुर की रानियों के मन में भी यह धारणा बनेगी कि हमारे राजा जब अप्रमत्त होकर विहार करते हैं तो हम भी अप्रमत्त होकर ऐसा ही क्यों न करें।

''महाराज! इस तरह आप के द्वारा अप्रमाद के साथ विहार करने से आप के अधीनस्थ क्षत्रियों के मन में भी.....पूर्ववत्.....क्यों न करें। ''महाराज! इस तरह.....अभ्यास करने से आपके अधीनस्थ सेना के अधिकारियों के मन में भी यह होगा कि .....पूर्ववत्.....क्यों न करें।

विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया''ति।

''अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, नेगमजानपदस्सपि एवं भविस्सति– 'राजा खो अप्पमत्तो विहरति, अप्पमादं उपनिस्साय। हन्द, मयम्पि अप्पमत्ता विहराम, अप्पमादं उपनिस्साया''ति?

''अप्पमत्तस्स ते, महाराज, विहरतो अप्पमादं उपनिस्साय, अत्तापि गुत्तो रक्खितो भविस्सति– इत्थागारम्पि गुत्तं रक्खितं भविस्सति, कोसकोट्ठागारम्पि गुत्तं रक्खितं भविस्सती''ति। इदमवोच...पे॰...

''भोगे पत्थयमानेन, उळारे अपरापरे।
अप्पमादं पसंसन्ति, पुञ्ञकिरियासु पण्डिता॥
''अप्पमत्तो उभो अत्थे, अधिग्गण्हाति पण्डितो।

(संस्कृतच्छाया) विहरेम, अप्रमादम् उपनि:श्राय''इति।

''अप्रमत्तस्य ते, महाराज! विहरतो अप्रमादम् उपनि:श्राय, निगमजनपदस्यापि एवं भविष्यति– 'राजा खलु अप्रमत्तो विहरति, अप्रमादम् उपनि:श्राय। हन्त, वयमपि अप्रमत्ता: विहरेम, अप्रमादम् उपनि:श्राय''इति?

''अप्रमत्तस्य ते, महाराज! विहरतो अप्रमादम् उपनि:श्राय, आत्मापि गुप्त: रक्षित: भविष्यति– स्त्रयागारमपि गुप्तं रक्षितं भविष्यति, कोषकोष्ठागारम् अपि गुप्तं रक्षितं भविष्यति''इति। एतदवोचत्...पे॰...

''भोगान् प्रार्थयमाणेन, उदारान् अपरापरान्।
अप्रमादं प्रशंसन्ति, पुण्यक्रियासु पण्डिता:॥
''अप्रमत्त: उभावर्थौ, अधिगृह्णाति पण्डित:।

(हिन्दी) ''महाराज! इस तरह अप्रमत्त होकर साधना करने से आपके अधीन निगमवासी सुरक्षित एवं संयत रहेगा।''

''महाराज! इस तरह अप्रमत्त होकर साधना करने से आप स्वयं संयमी बनेंगे, आप की रानियाँ भी, आपके अधीनस्थ क्षत्रिय, अधीनस्थ सेनाधिकारी एवं आपके वित्तकोष तथा धान्यागार आदि सभी कुछ संयत एवं सुरक्षित एवं संयत रहेगा।'' भगवान्.....पूर्ववत्....।

''अधिक से अधिक भोगों की कामना करने वाले के लिए अप्रमादपूर्वक आचरण करना ही विद्वानों ने श्रेष्ठ बताया है। ''इस तरह अप्रमादपूर्वक आचरण करने वाला साधक दोनों ही लोकों के समस्त अभीष्ट भोगों को अनायास ही प्राप्त कर सकता है।

दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितोति पवुच्चती''ति॥

3.2.9. पठमअपुत्तकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दिवा दिवस्स येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच– ''हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवा दिवस्सा''ति?

''इध, भन्ते, सावत्थियं सेट्ठि गहपति कालङ्कतो। तमहं अपुत्तकं सापतेय्यं राजन्तेपुरं अतिहरित्वा आगच्छामि। असीति, भन्ते, सतसहस्सानि हिरञ्ञस्सेव, को पन वादो रूपियस्स! तस्स खो पन, भन्ते, सेट्ठिस्स गहपतिस्स एवरूपो भत्तभोगो अहोसि– कणाजकं भुञ्जति बिलङ्गदुतियं। एवरूपो वत्थभोगो अहोसि– साणं धारेति तिपक्खवसनं।

(संस्कृतच्छाया) दृष्टे धर्मे च योऽर्थ, यश्चार्थः साम्परायिकः।
अर्थाभिसमयाद् धीरः, पण्डित इति प्रोच्यते''इति॥

9. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः दिवा(मध्याह्ने) दिवसे यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णं खलु राजानं प्रसेनजितं कौशलं भगवान् एतदवोचत्– ''हन्त, कुतः नु त्वम्, महाराज! आगच्छसि दिवा(मध्याह्ने) दिवसे''इति?

''इह, भदन्त! श्रावस्त्यां श्रेष्ठी गृहपतिः कालकवलितः। अहं तस्य अपुत्रकस्य संपत्तिं राज्ञः अन्तः पुरम् अतिहृत्य आगच्छामि। अशीतिः, भदन्त! शतसहस्राणि हिरण्यस्यैव, कः पुनः वादो रौप्यस्य! तस्य खलु पुनः, भदन्त! श्रेष्ठिनः गृहपतेः एवंरूपः भक्तभोगोऽभूत् कणार्जकं भुञ्जानः विलग्नद्वितीयम्। एवंरूपः वस्त्रभोगोऽभूत्– साणं धारयति त्रिपक्षवसनम्।

(हिन्दी) ''इस लोक या परलोक में जो कर्तव्य कर्म है उनकी वास्तविकता का ज्ञान कर लेना ही बुद्धिमान् का प्रथम कर्तव्य होता है। इस का ज्ञाता ही 'धीर' एवं 'पण्डित' कहलाता है''।

9. श्रावस्ती में ही....। तब एक दिन राजा प्रसेनजित् कौशल भरी दोपहर में जहाँ भगवान् थे वहाँ आये, और भगवान् के सम्मुख पहुँचे। वहाँ पहुँचकर प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा से भगवान् ने पूछा- ''राजन्! आज इस भरी दुपहरी में कहाँ से आ रहे हैं?''

''भन्ते! यहाँ श्रावस्ती में सेठ गृहपति मर गया है। वह सन्तानहीन था, अतः उसकी समस्त सम्पत्ति राजकोष में भिजवा कर आ रहा हूँ। भन्ते! उसके पास अस्सी लाख केवल सोने की मुद्राएँ थीं, चाँदी की तो बात ही क्या कही जाय! परन्तु आप उस कञ्जूस का भोजन सुनेंगे तो आश्चर्य करेंगे। वह खट्टी छाछ (मट्ठा) के साथ खुद्दी भात खाता था। कपड़े भी वह ऐसे पहनता था जो टाट के बने हुए तथा स्थान स्थान पर सिले हुए होते थे।

एवरूपो यानभोगो अहोसि– जज्जररथकेन याति पण्णछत्तकेन धारियमानेना''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! असप्पुरिसो खो, महाराज, उळारे भोगे लभित्वा नेवत्तानं सुखेति पीणेति, न मातापितरो सुखेति पीणेति, न पुत्तदारं सुखेति पीणेति, न दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, न मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, न समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं।तस्स ते भोगे एवं सम्मा अपरिभुञ्जियमाने राजानो वा हरन्ति चोरा वा हरन्ति अग्गि वा डहति उदकं वा वहति अप्पिया वा दायादा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा अपरिभुञ्जियमाना परिक्खयं गच्छन्ति, नो परिभोगं।

''सेय्यथापि, महाराज, अमनुस्सट्ठाने पोक्खरणी अच्छोदका सीतोदका सातोदका

(संस्कृतच्छाया) एवंरूपः यानभोगो अभूत्– जर्जररथकेन याति पर्णछत्रकेण धार्यमाणेन'' इति।

''एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! असत्पुरुषः खलु, महाराज! उदारान् भोगान् लब्ध्वा नैवात्मानं सुखयति प्रीणयति, न मातापितरौ सुखयति प्रीणयति, न पुत्रदारान् सुखयति प्रीणयति, न दासकर्मकरपुरुषान् सुखयति प्रीणयति, न मित्रामात्यान् सुखयति प्रीणयति, न श्रमणब्राह्मणेषु ऊर्ध्वाग्रिकं दक्षिणाम् प्रतिष्ठापयति स्वर्गिकं सुखविपाकं स्वर्गसंवर्तनिकम्। तस्य ते भोगान् एवं सम्यग् अपरिभुञ्जाणे राजानः वा हरन्ति चौराः वा हरन्ति अग्निः वा दहति उदकं वा वहति अप्रियाः वा दायादाः हरन्ति। एवं सति, महाराज! भोगाः सम्यक् अपरिभुञ्जाणः परिक्षयं गच्छन्ति, न परिभोगम्। ''तद्यथापि, महाराज! अमनुष्यस्थाने पुष्करिणी स्वच्छोदकाः शीतोदका शातोदका

(हिन्दी) तथा ऐसी सवारी पर चलता था कि या तो कोई पुराना जीर्ण शीर्ण रथ होता था जिस के ऊपर पत्तों की छत रहती थी, या फिर कोई टूटी पुरानी पालकी।''

''ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है! ऐसे असत् पुरुष अतुल भोग्य सामग्री पाकर भी न तो स्वयं उसका सुखपूर्वक उपभोग कर पाते हैं, न उससे अपने माता-पिता को ही कोई सुख पहुँचा सकते हैं। न अपने पुत्र या स्त्री को...., न अपने नौकर चाकरों को....., न अपने मित्रों या साथियों को कोई सुख पहुँचा पाते हैं। न उस में से किसी श्रमण ब्राह्मण को ही ऐसा कुछ दान कर पाते हैं कि जो आगे जन्म में उस के लिए पुण्य का आलम्बन बने, या इससे स्वर्गप्राप्ति हो सके। इस तरह उनकी इस अतुल सम्पत्ति को, स्वयं न उपभोग करने के कारण, या तो राजा लोग छीन लेते हैं, या चोर चुरा ले जाते हैं, या अग्नि जला देती है, या वह बाढ़ में बह जाती है, या फिर अन्त में वह सम्पत्ति अप्रिय लोगों के हाथ लगा जाती है जिन्हें वह कभी फूटी आँखों से भी न देखना चाहता हो। इस तरह, महाराज, उस असत् पुरुष का वह अतुल धन उसके उपभोग के बिना ही नष्ट हो जाती है।

''जैसे, महाराज! किसी निर्जन स्थान में एक जलाशय हो जिसका जल स्वच्छ, शीतल,

सेतोदका सुपतित्था रमणीया। तं जनो नेव हरेय्य न पिवेय्य न नहायेय्य न यथापच्चयं वा करेय्य। एवञ्हि तं, महाराज, उदकं सम्मा अपरिभुञ्जियमानं परिक्खयं गच्छेय्य , नो परिभोगं। एवमेव खो, महाराज, असप्पुरिसो उळारे भोगे लभित्वा नेवत्तानं सुखेति पीणेति, न मातापितरो सुखेति पीणेति, न पुत्तदारं सुखेति पीणेति, न दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, न मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, न समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा अपरिभुञ्जियमाने राजानो वा हरन्ति चोरा वा हरन्ति अग्गि वा डहति उदकं वा वहति अप्पिया वा दायादा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा अपरिभुञ्जियमाना परिक्खयं गच्छन्ति, नो परिभोगं।

''सप्पुरिसो च खो, महाराज, उळारे भोगे लभित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति, मातापितरो सुखेति पीणेति, पुत्तदारं सुखेति पीणेति, दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं

(संस्कृतच्छाया) श्वेतोदका सुप्रतीर्था रमणीया। तज्जनः नैव हरेत् न पिवेत् न स्नायात् न यथाप्रत्ययं वा कुर्यात्। एवं हि तत्, महाराज! उदकम् सम्यक् अपरिभुञ्जाणं परिक्षयं गच्छेत्, न परिभोगम्। एवमेव खलु, महाराज! असत्पुरुषः उदारान् भोगान् लब्ध्वा नैवात्मानं सुखयति प्रीणयति, न मातापितरौ सुखयति प्रीणयति, न पुत्रदारान् सुखयति प्रीणयति, न दासकर्मकरपुरुषान् सुखयति प्रीणयति, न मित्रामात्यान् सुखयति प्रीणयति, न श्रमणब्राह्मणेषु ऊर्ध्वाग्रिकं दक्षिणां प्रतिष्ठापयति स्वर्गिकं सुखविपाकं स्वर्गसंवर्तनिकम्। तस्य तान् भोगान् एवं सम्यक् अपरिभुञ्जामानाः राजानः वा हरन्ति चौराः वा हरन्ति अग्निः वा दहति उदकं वा वहति अप्रियाः वा दायादाः हरन्ति। एवं ते, महाराज! भोगाः सम्यक् अपरिभुञ्जानाः परिक्षयं गच्छन्ति, न परिभोगम्।

''सत्पुरुषः च खलु, महाराज! उदारान् भोगान् लब्ध्वा आत्मानं सुखयति प्रीणयति, मातापितरौः सुखयति प्रीणयति, पुत्रदारान् सुखयति प्रीणयति, दासकर्मकरपुरुषान् सुखयति प्रीणयति, मित्रामात्यान् सुखयति प्रीणयति, श्रमणब्राह्मणेषु ऊर्ध्वाग्रिकं दक्षिणां प्रतिष्ठापयति स्वर्गिकं

(हिन्दी) स्वास्थ्यप्रद हो तथा जिस की सीढ़ियाँ या घाट मनोरम हो। उसके इस जल को न तो कोई आदमी अपने उपयोग के लिए ले जाय, न पीये, न उससे स्नान करे या कुछ भी न करे। महाराज! इस तरह उसका जल उपयोग में लाये विना निरर्थक हो जाय; इसी तरह, महाराज! असत् पुरुष भोग्य सामग्री पाकर उसका कोई सुखप्रद उपयोग नहीं कर पाते हैं.....पूर्ववत्....उसके उपभोग के विना ही नष्ट हो जाती है।''इसके विपरीत, महाराज! सत् पुरुष अतुल भोग्य सामग्री पाकर स्वयं तो उसका सुख उठाते ही हैं; साथ ही वे उसके माध्यम से अपने माता-पिता को भी प्रसन्न तथा सुखी रखते हैं; मित्रों को, साथियों को, अपने नौकर चाकरों को भी उसका कुछ अंश प्रदान कर सुखी एवं प्रसन्न रखते हैं। यथासमय श्रमण एवं ब्राह्मणों को भी यज्ञादि की समाप्ति पर अधिक से अधिक

सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा परिभुञ्जियमाने नेव राजानो हरन्ति, न चोरा हरन्ति, न अग्गि डहति, न उदकं वहति, न अप्पिया दायादा हरन्ति। एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा परिभुञ्जियमाना परिभोगं गच्छन्ति, नो परिक्खयं।

''सेय्यथापि, महाराज, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे पोक्खरणी अच्छोदका सीतोदका सातोदका सेतोदका सुपतित्था रमणीया। तञ्च उदकं जनो हरेय्यपि पिवेय्यपि नहायेय्यपि यथापच्चयम्पि करेय्य। एवञ्हि तं, महाराज, उदकं सम्मा परिभुञ्जियमानं परिभोगं गच्छेय्य, नो परिक्खयं। एवमेव खो, महाराज, सप्पुरिसो उळारे भोगे लभित्वा अत्तानं सुखेति पीणेति, मातापितरो सुखेति पीणेति, पुत्तदारं सुखेति पीणेति, दासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति, मित्तामच्चे सुखेति पीणेति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। तस्स ते भोगे एवं सम्मा

(संस्कृतच्छाया) सुखविपाकं स्वर्गसंवर्तनिकम्। तस्य तान् भोगान् एवम् सम्यक् परिभुञ्जानान् नैव राजानः हरन्ति, चौराः न हरन्ति न अग्निः दहति न उदकं वहति न अप्रियाः दायादाः हरन्ति। एवं ते, महाराज! भोगाः सम्यक् परिभुञ्जानाः परिभोगं गच्छन्ति, न परिक्षयम्।

''तद्यथापि, महाराज! ग्रामस्य वा निगमस्य वा अविदूरे पुष्करिणी स्वच्छोदका शीतोदका शातोदका श्वेतोदका सुप्रतीर्था रमणीया। तच्च उदकम् जनः हरेदपि पिवेदपि स्नायादपि यथाप्रत्ययमपि कुर्यात्। एवं हि तत्, महाराज! उदकम् सम्यक् परिभुञ्जानं परिभोगम् गच्छेत्, न परिक्षयम्। एवमेव खलु, महाराज! सत्पुरुषः उदारान् भोगान् लब्ध्वा आत्मानं सुखयति प्रीणयति, मातापितरौ सुखयति प्रीणयति, पुत्रदारान् सुखयति प्रीणयति, दासकर्मकरपुरुषान् सुखयति प्रीणयति, मित्रामात्यान् सुखयति प्रीणयति, श्रमणब्राह्मणेषु ऊर्ध्वाग्रिकं दक्षिणां प्रतिष्ठापयति स्वर्गिकं सुखविपाकं स्वर्गसंवर्तनिकम्। तस्य ते भोगान् एवं सम्यक्

(हिन्दी) दान दक्षिणा देते रहते हैं। इस तरह, वे अपने उस अतुल धन का उचित उपयोग करते रहते हैं। इसी लिये उनकी सम्पत्ति को न राजा लोग छीन सकते हैं, न चोर चुरा सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न उसे जल की बाढ बहा सकती है। इस तरह, महाराज, सत्पुरुषों का वह धन उचित उपभोग के कारण कभी बेकार नहीं जाती।

''जैसे, महाराज! किसी गाँव के या कस्बे के पास कोई जलाशय बना हुआ हो। उसका जल स्वच्छ शीतल तथा स्वास्थ्यकर हो; उसके घाट तथा सीढियाँ भी मनोरम हों। उस जल को गाँव वाले अपने किसी उपयोग के लिये ले भी जायँ, स्वयं उसे पीयें भी, उससे स्नान भी करें या उसका यथोचित कोई अन्य उपयोग भी करें। यों महाराज! उस जलाशय का वह जल निरन्तर जनता के किसी न किसी उपयोग में ही आता रहता है, कभी बेकार नहीं जाता। इसी तरह, महाराज! जो सत्पुरुष अतुल भोग्य सामग्री पाकर उसका सतत सुखप्रद उपयोग, उपभोग करते रहते हैं..

परिभुञ्जियमाने नेव राजानो हरन्ति, न चोरा हरन्ति, न अग्गि डहति, न उदकं वहति, न अप्पिया दायादा हरन्ति।

एवंस ते, महाराज, भोगा सम्मा परिभुञ्जियमाना परिभोगं गच्छन्ति, नो परिक्खयं''ति।

''अमनुस्सट्ठाने उदकंव सीतं, तदपेय्यमानं परिसोसमेति।
एवं धनं कापुरिसो लभित्वा, नेवत्तना भुञ्जति नो ददाति॥
धीरो च विञ्ञू अधिगम्म भोगे, सो भुञ्जति किच्चकरो च होति।
सो ञातिसङ्घं निसभो भरित्वा, अनिन्दितो सग्गमुपेति ठानं''ति॥

3.2.10. दुतियअपुत्तकसुत्तं

अथ खो राजा पसेनदि कोसलो दिवा दिवस्स येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच– ''हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवा दिवस्सा''ति?

(संस्कृतच्छाया) परिभुञ्जानान् नैव राजानः हरन्ति, न चौराः हरन्ति, न अग्निः दहति, न उदकं वहति, न अप्रियाः दायादाः हरन्ति।

एवं हि ते, महाराज! भोगाः सम्यक् परिभुञ्जानाः परिभोगं गच्छन्ति, न परिक्षयम्''इति।

''अमनुष्यस्थाने उदकमिव शीतम्, तदपेयमानं परिशोषम् एति।
एवं धनं कापुरुषः लब्ध्वा, नैवात्मना भुङ्क्ते न ददाति॥
धीरश्च विज्ञश्च अधिगम्य भोगान्, स भुङ्क्ते कृत्यकरश्च भवति।
स ज्ञातिसंघं नृषभो भरित्वा, अनिन्दितः स्वर्गमुपैति स्थानम्''इति॥

10. अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः दिवा(मध्याह्न) दिवसे यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य एकान्ते निषण्णः खलु राजानं प्रसेनजितं कौशलं भगवान् एतदवोचत्– ''हन्त! कुतः नु त्वम्, महाराज! आगच्छसि दिवा(मध्याह्न) दिवसे''इति?

(हिन्दी).....पूर्ववत्....कभी व्यर्थ नहीं जाती।'' भगवान् यह बोले....पूर्ववत्....''जैसे निर्जन स्थान में शीतल जल, किसी के द्वारा बिना पिये ही सूख जाता है; ऐसे ही बुरे लोग गहुत धन पा कर भी उसका न स्वयं उपभोग कर पाता है, न अन्य किसी को दान में ही देता है।''परन्तु धीर एवं विज्ञ पुरूष उक्त भोगों को पाकर उसका स्वयं भी यथेष्ट उपभोग करता है, तथा साथ ही अपने अन्य कार्यों में भी लगाता है। तथा वह उससे अपने माता-पिता एवं अन्य सम्बन्धीजनों का भी पालन-पोषण करता हुआ इस लोक में निंदा रहित हो तथा दान आदि द्वारा स्वर्ग में भी अपना सुखमय स्थान बना लेता है''।

10. किसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल पूर्ण मध्याह्न में भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँचकर.... एक ओर बैठे हुए राजा से भगवान् ने पूछा- ''महाराज! आज इस भरी दोपहर में आपका कहाँ से आना हो रहा है?''

''इध, भन्ते, सावत्थियं सेट्ठि गहपति कालङ्कतो। तमहं अपुत्तकं सापतेय्यं राजन्तेपुरं अतिहरित्वा आगच्छामि। सतं, भन्ते, सतसहस्सानि हिरञ्ञस्सेव, को पन वादो रूपियस्स! तस्स खो पन, भन्ते, सेट्ठिस्स गहपतिस्स एवरूपो भत्तभोगो अहोसि– कणाजकं भुञ्जति बिलङ्गदुतियं। एवरूपो वत्थभोगो अहोसि– साणं धारेति तिपक्खवसनं। एवरूपो यानभोगो अहोसि– जज्जररथकेन याति पण्णछत्तकेन धारियमानेना''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! भूतपुब्बं सो, महाराज, सेट्ठि गहपति तग्गरसिखिं नाम पच्चेकसम्बुद्धं पिण्डपातेन पटिपादेसि। 'देथ समणस्स पिण्डं'ति वत्वा उट्ठायासना पक्कामि। दत्वा च पन पच्छा विप्पटिसारी अहोसि– 'वरमेतं पिण्डपातं दासा वा कम्मकरा वा भुञ्जेय्युं'ति। भातु च पन एकपुत्तकं सापतेय्यस्स कारणा जीविता वोरोपेसि।

(संस्कृतच्छाया) ''इह, भदन्त! श्रावस्त्यां श्रेष्ठी गृहपतिः कालङ्गतः। तमहम् अपुत्रकं सम्पत्तिजातं राज्ञः अन्तःपुरमतिहृत्य आगच्छामि। भदन्त! अशीति शतसहस्राणि हिरण्यस्यैव, का पुनः वार्ता रौप्यस्य! तस्य खलु पुनः, भदन्त! श्रेष्ठिनः गृहपतेः एवंरूपः भक्तभोगः अभूत् कणार्जकं भुनक्ति विलग्नद्वितीयम्। एवंरूपः वस्त्रभोगः अभूत्- शाणं धारयति त्रिपक्षवसनम्। एवंरूपो यानभोगोऽभूत्– जर्जररथकेन याति पर्णछत्रकेण धारयता''इति।

''एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! भूतपूर्वं सः, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः तगरशिखीं नामकं प्रत्येकसम्बुद्धं पिण्डपातेन प्रत्यपद्यत। 'देहि श्रमणाय पिण्डम्'इति उक्त्वा उत्थाय आसनात् प्रक्रान्तः। दत्वा च पुनः पश्चात् विप्रतिसारी अभूत्– 'वरमेतं पिण्डपातं दासाः वा कर्मकराः वा भुञ्ज्युः'इति। भ्रातुश्च पुनः एकपुत्रं सम्पत्तेः कारणात् जीवितमवारोपयत्।

(हिन्दी) ''यहाँ, भन्ते! श्रावस्ती में एक सेठ गृहपति मर गया, वह सन्तानहीन था, अतः उसकी समस्त सम्पत्ति राजकोष में भिजवा कर आ रहा हूँ। सम्पत्ति के नाम पर उसके पास अस्सी लाख सुवर्ण मुद्राएँ ही थीं चाँदी की तो बात ही क्या। वह खट्टी छाछ (मट्ठा) के साथ खुद्दी भात खाता था। कपड़े भी वह ऐसे पहनता था जो टाट के बने हुए तथा स्थान स्थान पर सिले हुए होते थे।... पूर्ववत्... या फिर कोई टूटी पुरानी पालकी।''

''ऐसा ही होता है, महाराज! ऐसा ही होता है। महाराज! पहले जन्म में इस सेठ ने तगरशिखी नामक प्रत्येकबुद्ध को भिक्षा का निमन्त्रण दिया था। यह उस समय ''श्रमण को भिक्षा दो' कह कर आसन से उठकर चल दिया था। भिक्षा देने के बाद इसने पश्चाताप भी किया- 'अच्छा होता कि भिक्षा में दिया हुआ यह अन्न किसी नौकर चाकर को ही दिया जाता तो वह इसे खा कर अपना कार्य अधिक बलपूर्वक करता।' तथा इसने अपने भाई के एक पुत्र को भी धन के लोभ में मार डाला था।

''यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति तग्गरसिखिं पच्चेकसम्बुद्धं पिण्डपातेन पटिपादेसि, तस्स कम्मस्स विपाकेन सत्तक्खत्तुं सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जि। तस्सेव कम्मस्स विपाकावसेसेन इमिस्सायेव सावत्थिया सत्तक्खत्तुं सेट्ठित्तं कारेसि। यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति दत्वा पच्छा विप्पटिसारी अहोसि– 'वरमेतं पिण्डपातं दासा वा कम्मकरा वा भुञ्जेय्युं'ति, तस्स कम्मस्स विपाकेन नास्सुळाराय भत्तभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळाराय वत्थभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळाराय यानभोगाय चित्तं नमति, नास्सुळारानं पञ्चन्नं कामगुणानं भोगाय चित्तं नमति। यं खो सो, महाराज, सेट्ठि गहपति भातु च पन एकपुत्तकं सापतेय्यस्स कारणा जीविता वोरोपेसि, तस्स कम्मस्स विपाकेन बहूनि वस्सानि बहूनि वस्ससतानि बहूनि वस्ससहस्सानि बहूनि वस्ससतसहस्सानि निरये पच्चित्थ। तस्सेव कम्मस्स विपाकावसेसेन इदं सत्तमं अपुत्तकं सापतेय्यं राजकोसं पवेसेति। तस्स खो,

(संस्कृतच्छाया) ''यत् खलु सः, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः तगरशिखीं नामकं प्रत्येकसम्बुद्धं पिण्डपातेन प्रत्यपद्यत, तस्य कर्मणः विपाकेन सप्तकृत्वः सुगतिं स्वर्गं लोकम् उपापद्यत। तस्यैव कर्मणः विपाकावशेषेण अस्यामेव श्रावस्त्यां सप्तकृत्वः श्रेष्ठिनम् अकरोत्। यत् खलु सः, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः दत्वा पश्चात् विप्रतिसारी अभूत्– 'वरमेतत् पिण्डपातं दासाः वा कर्मकराः वा भुञ्ज्युः'इति, तस्य कर्मणः विपाकेन न अस्योदाराय भक्तभोगाय चित्तं नमति, नास्योदाराय वस्त्रभोगाय चित्तं नमति, नास्योदाराय यानभोगाय चित्तं नमति, नास्योदाराणां पञ्चानां कामगुणानां भोगाय चित्तं नमति। ''यत् खलु सः, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः भ्रातुः च पुनः एकपुत्रं सम्पत्तेः कारणात् जीवितमवरोपयत्, तस्य कर्मणः विपाकेन बहूनि वर्षाणि बहूनि वर्षशतानि बहूनि वर्षसहस्राणि बहूनि वर्षशतसहस्राणि निरयेऽपप्तत्। तस्यैव कर्मणः विपाकावशेषेण इदं सप्तमम् अपुत्रकं सम्पत्तिं राजकोषे प्राविक्षत। तस्य खलु,

(हिन्दी) ''महाराज! उस सेठ ने तरगशिखी नामक प्रत्येकबुद्ध को जो भिक्षादान किया उस पुण्य के फलस्वरूप उसको सात बार सुगतिमय स्वर्गलोक में वास मिला। इसी कर्म के अवशिष्ट फल से वह सात बार श्रावस्ती नगर का सेठ भी बना। परन्तु उस दान के बाद इसने जो पश्चाताप किया, कि वह अन्न किसी नौकर चाकर को ही दे दिया जाता तो वह इसे खा कर अपना कार्य अधिक बलपूर्वक करता- इस पाप के फलस्वरूप, अतुल सम्पत्ति प्राप्त करके भी न तो उसके उचित उपभोग हेतु इसका मन करता था, न इसका मन अच्छे वस्त्र पहनने या अच्छे यान का उपयोग करने का या पाँचों कामभोगों को भोगने का होता था। और फिर महाराज! इस सेठ ने सम्पत्ति के लोभ में अपने भाई के पुत्र की अकारण हत्या कर दी थी, उस पाप के फलस्वरूप यह बहुत वर्षों तक, सैकड़ो, हजारों वर्षों तक नरक में गिर कर अनेकविध कष्ट भोगता रहा। उसी कर्म के अवशिष्ट फल के कारण सह इस जन्म में सन्तानविहीन रहा। इसीलिये इसके जन्मभर की अर्जित सम्पत्ति राजकोष में चली गयी। महाराज! उस सेठ

महाराज, सेट्ठिस्स गहपतिस्स पुराणञ्च पुञ्ञं परिक्खीणं, नवञ्च पुञ्ञं अनुपचितं। अज्ज पन, महाराज, सेट्ठि गहपति महारोरुवे निरये पच्चती''ति।

''एवं, भन्ते, सेट्ठि गहपति महारोरुवं निरयं उपपन्नो''ति।

''एवं, महाराज, सेट्ठि गहपति महारोरुवं निरयं उपपन्नो''ति। इदमवोच...पे॰...।

''धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं, परिग्गहं वापि यदत्थि किञ्चि।
दासा कम्मकरा पेस्सा, ये चस्स अनुजीविनो।
''सब्बं नादाय गन्तब्बं, सब्बं निक्खिप्पगामिनं।
यञ्च करोति कायेन, वाचाय उद चेतसा॥
''तञ्हि तस्स सकं होति, तञ्च आदाय गच्छति।
तं वस्स अनुगं होति, छायाव अनपायिनी॥

(संस्कृतच्छाया) महाराज! श्रेष्ठिनः गृहपतेः पुराणञ्च पुण्यं परिक्षीणम्, नवञ्च पुण्यम् अनुपचितम्। अद्य पुनः, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः महारौरवं निरयम् उपपन्नः''इति।

''एवम्, भदन्त! श्रेष्ठी गृहपतिः महारौरवं निरयम् उपपन्नः''इति।

''एवम्, महाराज! श्रेष्ठी गृहपतिः महारौरवं निरयम् उपपन्नः''इति। इदम् उच्यते...पे॰...।

''धान्यं धनं रजतं जातरूपम्, परिग्रहं वापि यदस्ति किञ्चित्।
दासाः कर्मकराः प्रैष्याः, ये चास्य अनुजीविनः।
''सर्वं नादाय गन्तव्यम्, सर्वं निक्षिप्य गम्यते।
यच्च करोति कायेन, वाचसा उत् चेतसा॥
''तद्धि तस्य स्वकं भवति, तच्च आदाय गच्छति।
तच्चास्य अनुगं भवति, छायेव अनुपायिनी॥

(हिन्दी) का पुराना पुण्य क्षीण हो चुका था, नया उसने कुछ संग्रह नहीं किया। उसका फल यह है कि आज वह महारौरव नरक में गिर कर दण्ड भोग रहा है।''

'तो क्या, भन्ते! उस सेठ का इन्ही कारणों से महारौरव नरक में पात हुआ?''

''हाँ, महाराज! इन्हीं कारणों से.... पात हुआ।''

''धन, धान्य सोना, चाँदी, तथा अन्य जो कुछ भी सामान है, नौकर चाकर तथा अन्य आश्रित रहने वाले जन, इन सब में से किसी को भी साथ लेकर नहीं जाया जाता। भगवान् यह बोलें... पूर्ववत्....। सबको यहीं छोड़कर चले जाना होता है।

''मनुष्य जो कुछ अपने शरीर, वाणी या मन से कुशल या अकुशल करता है वही उसका अपना धन होता है। उसे ही साथ ले कर वह जाता है, छाया की तरह एकमात्र वही उसके पीछे पीछे जाने वाला होता है।

''तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं''ति॥ **दुतियो वग्गो।**

तस्सुद्दानं– जटिला पञ्च राजानो, दोणपाककुरेन च।
सङ्गामेन द्वे वुत्तानि, मल्लिका द्वे अप्पमादेन च।
अपुत्तकेन द्वे वुत्ता, वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

3. ततियवग्गो

3.3.1. पुग्गलसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच– ''चत्तारोमे, महाराज, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? तमोतमपरायनो, तमोजोतिपरायनो, जोतितमपरायनो, जोतिजोतिपरायनो''।

(संस्कृतच्छाया) ''तस्मात् कुर्यात् कल्याणम्, निचयं सम्परायिकम्।
पुण्यानि परलोके, प्रतिष्ठिताः भवन्ति प्राणिनः''इति॥

तस्योद्दानम्– जटिलः पञ्चराजानः, द्रोणपाककुरेन च।
संग्रामेन द्वे उक्ते, मल्लिका द्वेऽपि च अप्रमादेन।
अपुत्रकेन द्वे उक्ते, वर्गः तेन प्रोच्यते इति॥

1.श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्तं न्यसीदत्। एकान्तं निषण्णः खलु राजानं प्रसेनजितं कौशलं भगवान् एतदवोचत्– ''चत्वार इमे, महाराज! पुद्गलाः सन्ति संविद्यमानाः लोके। कतमे चत्वारः? तमस्तमःपरायणः, तमोज्योतिःपरायणः, ज्योतिस्तमःपरायणः, ज्योतिर्ज्योतिःपरायणः''।

(हिन्दी) ''अतः कुशल कर्म करने चाहिये, जिनसे अपना परलोक सुधरे, क्योंकि पुण्यमय कर्म ही प्राणियों के लिये परलोक में आधार बनते है।

इसमें व्याख्यात सूत्रों की सूची- इस वर्ग में 10 सूत्र व्याख्यात हैं- सप्तजटिलसूत्र, पञ्चराजसूत्र, द्रोणसूत्र, प्रथमसंग्रामसूत्र, द्वितीयसंग्रामसूत्र, मल्लिकासूत्र, अप्रमादसूत्र, कल्याणमित्रसूत्र, प्रथमअपुत्रकसूत्र, द्वितीयपुत्रकसूत्र।

1. श्रावस्ती में ही.....। किसी समय राजा प्रसेनजित् कौशल भगवान् के सम्मुख....एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजा को भगवान् यह उपदेश करने लगे- ''महाराज! इस संसार में चार प्रकारके लोग पाये जाते हैं। कौन से चार प्रकार के? तमस्तमःपरायण, तमो ज्योति परायण, ज्योतिस्तमःपरामयण, ज्योतिर्ज्योतिःपरायण।

''कथं च, महाराज पुग्गलो तमोतमपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। 'सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो अन्धकारा वा अन्धकारं गच्छेय्य, तमा वा तमं गच्छेय्य, लोहितमला वा लोहितमलं गच्छेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो तमोतमपरायनो होति।

(संस्कृतच्छाया) ''कथञ्च, महाराज पुद्गलः तमस्तमःपरायणो भवति? इह, महाराज! एकश्च पुद्गलः नीचेः कुले प्रतिजातो भवति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा निषादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुस वा दरिद्रे अल्पान्नपानभोजने कृच्छ्रवृत्तिके, यत्र कृच्छ्रेण घासच्छादो लभ्यते। सः च भवति दुर्वर्णः दुदर्शिकः अवकूटरः (वामनः) बह्वाबाधः काणः वा कुणी वा खञ्जो वा पक्षहतः वा, न लाभी अन्नस्य पानस्य वस्त्रस्य यानस्य मालागन्धविलेपनस्य शैय्यावसथप्रदीपस्य (च भवति)। सः कायेन दुश्चरितं चरति, वाचा दुश्चरितं चरति, मनसा दुश्चरितं चरति। सः कायेन दुश्चरितं चरित्वा वाचा दुश्चरितं चरित्वा मनसा दुश्चरितं चरित्वा, कायस्य भेदात् परं मरणात् अपायं दुर्गतिं विनिपातं निरयम् उपपद्यते। ''तद्यथापि, महाराज! पुरुषोऽन्धकाराद् वा अन्धकारं गच्छेत्, तमसो वा तमसं गच्छेत्, लोहितमलाद् वा लोहितमलं गच्छेत्। तथोपमाहम्, महाराज! इमं पुद्गलं वदामि। एवं खलु, महाराज! पुद्गलः तमस्तमपरायणो भवति।

(हिन्दी) ''महाराज! उनमें कोई तमस्तमः परायण पुद्गल कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुरुष नीचकुल में, या चाण्डालकुल में, वेनकुल में, निषादकुल पुक्कुसकुल में, या रथकारकुल में उत्पन्न होता है। ये सब ऐसे दरिद्र कुल हैं, जहाँ जीवनयापन के लिये दैनिक भोजन भी बहुत कठिनता से अर्जित हो पाता है। वहाँ उत्पन्न पुरुष प्रायः दुर्वर्ण, कुरूप, लम्बाई में ठिंगना एवं रोगी होता है, जैसे- काणा, कुबड़ा, लगड़ा या लकवे से ग्रस्त विकलाङ्ग। उसको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्धविलेपन, खाट एवं प्रकाशमय आवास मिलना अतिदुर्लभ होता है। वह शरीर से, वाणी से, मन से दुराचरण करता है। ऐसा दुराचरण करते करते एक दिन यहाँ से देहच्युति पा कर मरणानन्तर दुर्गतिमय अपाय (नरक) योनि में जा गिरता है।''जैसे, महाराज! कोई पुरुष एक अन्धकारमय स्थान से निकल कर दूसरे अन्धकारमय स्थान में पहुँच जाता है, एक तमोमय स्थान से निकलकर दूसरे तमोमय स्थान में, या एक रक्तमिश्रित मल से निकल कर दूसरे रक्तमिश्रित मलयुक्त स्थान में चला जाता है, वैसी ही गति इस तमस्तमः परायण पुरुष की होती है।

''कथञ्च, महाराज, पुग्गलो तमोजोतिपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च खो होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो, काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति।

सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पथविया वा पल्लङ्कं आरोहेय्य, पल्लङ्का वा अस्सपिट्ठिं आरोहेय्य, अस्सपिट्ठिया वा हत्थिक्खन्धं आरोहेय्य, हत्थिक्खन्धा वा पासादं

(संस्कृतच्छाया) ''कथञ्च, महाराज! पुद्गलः तमोज्योतिःपरायणो भवति? इह, महाराज! एकश्च पुद्गलः नीचेः कुले प्रतिजातो भवति, चण्डालकुले वा वेनकुले वा निषादकुले वा रथकारकुले वा *पुक्कुसकुले* वा दरिद्रे अल्पान्नपानभोजने कृच्छ्रवृत्तौ, यत्र कृच्छ्रेण घासच्छादो लभ्यते। सः च भवति दुर्वर्णः दुदर्शिकः अवकूटरः बह्वाबाधः काणः वा कुणी वा खञ्जो वा पक्षहतो वा, न लाभी अन्नस्य पानस्य वस्त्रस्य यानस्य मालागन्धविलेपनस्य शैय्यावसथप्रदीपस्य (च भवति)। सः कायेन सुचरितं चरति, वाचा सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सः कायेन सुचरितं चरित्वा वाचा सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्य भेदात् परं मरणात् सुगतिं स्वर्गं लोकम् उपपद्यते। 'तद्यथापि, महाराज! पुरुषः पृथिव्यां वा पर्यङ्के आरोहेत्, पर्यङ्कम् वा अश्वपृष्ठं व आरोहेत्, अश्वपृष्ठाद् वा हस्तिस्कन्धम् आरोहेत्, हस्तिस्कन्धाद् वा प्रासादम्

(हिन्दी) ''फिर, महाराज! उनमें कोई तमोज्योतिःपरायण पुद्गल कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुरुष नीच कुल में, या चाण्डालकुल में, वेनकुल में, निषादकुल पुक्कुसकुल में, या रथकारकुल में उत्पन्न होता है। ये सब ऐसे दरिद्र कुल हैं, जहाँ जीवनयापन के लिये दैनिक भोजन भी बहुत कठिनता से अर्जित हो पाता है। वहाँ उत्पन्न पुरुष प्रायः दुर्वर्ण, कुरूप, लम्बाई में ठिंगना एवं रोगी होता है, जैसे- काणा, कुबड़ा, लगड़ा या लकवे से ग्रस्त विकलाङ्ग। उसको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्धविलेपन, खाट एवं प्रकाशमय आवास मिलना अतिदुर्लभ होता है। वह शरीर से, वाणी से तथा मन से सदाचारी होता है। ऐसा सदाचरण करते करते यहाँ से देहच्युति के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में पहुँच जाता है।

''महाराज! जैसे कोई पुरुष भूमि से उठ कर किसी खाट पर चढ जाय, खाट से घोड़े की पीठ पर, घोड़े की पीठ से हाथी के कन्धे पर तथा हाथी के कन्धे से किसी ऊँचे महल पर

आरोहेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो तमोजोतिपरायनो होति।

''कथं च, महाराज, पुग्गलो जोतितमपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति, खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा, अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको, परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति।

(संस्कृतच्छाया) आरोहेत्। तथोपमाहम्, महाराज! इदं पुद्गलं वदामि। एवं खलु, महाराज! पुद्गलः तमोज्योतिःपरायणो भवति।

'कथञ्च, महाराज! पुद्गलः ज्योतिस्तमःपरायणो भवति? इह, महाराज! कश्चित् पुद्गलः उच्चेः कुले प्रतिजातो भवति, क्षत्रियमहाशालकुले वा ब्राह्मणमहाशालकुले वा गृहपतिमहाशालकुले वा, आढ्ये महद्धने महाभोगे प्रभूतजातरूपरजते प्रभूतवित्तोपकरणे प्रभूतधनधान्ये। सः च भवति अभिरूपः दर्शनीयः प्रासादिकः, परमया वर्णपुष्कलतया समन्वागतः, लाभी अन्नस्य पानस्य वस्त्रस्य यानस्य मालागन्धविलेपनस्य शैय्यावसथप्रदीपस्य च। सः कायेन दुश्चरितं चरति, वाचा दुश्चरितं चरति, मनसा दुश्चरितं चरति। सः कायेन दुश्चरितं चरित्वा वाचा दुश्चरितं चरित्वा मनसा दुश्चरितं चरित्वा, कायस्य भेदात् परं मरणाद् अपायम् दुर्गतिं विनिपातं निरयम् उपपद्यते।

(हिन्दी) चढ जाय, उसी तरह की समानता मैं इस पुद्गल की मानता हूँ। महाराज! ऐसा पुरुष ही तमोज्योतिःपरायण कहलाता है।

''महाराज! यहाँ कोई ज्योतिस्तमः परायण पुद्गल कैसे होता है? यहाँ महाराज! कोई पुद्गल उच्च कुल में उत्पन्न होता है, जैसे- वैभवशाली क्षत्रिय कुल में, वैभवशाली ब्राह्मणकुल में या वैभवशाली गृहपतिकुल में। जहाँ प्रभूत धन सम्पत्ति हो, अपरिमित भोगसाधन हों, अत्यधिक सुवर्ण एवं रजत की राशि हो, कोशागार एवं धान्यागार धन-धान्य से परिपूर्ण हों। वह देखने में सुंदर, मनोहर, दर्शनीय हो, वर्णपुष्कलता से सम्पन्न हो, अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्धविलेपन, खाट,प्रदीपमय आवास जिसको अनायास सुलभ हों। वह काया, वाणी एवं मन से दुश्चरित करता है। यों वह असत्कर्म करता हुआ एक दिन इस देहपात के बाद मरणानन्तर दुर्गतिमय अपाय योनि में चिर काल तक दुःख भोगेने के लिये जन्म लेता है।

''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पासादा वा हत्थिक्खन्धं ओरोहेय्य, हत्थिक्खन्धा वा अस्सपिट्ठिं ओरोहेय्य, अस्सपिट्ठिया वा पल्लङ्कं ओरोहेय्य, पल्लङ्का वा पथविं ओरोहेय्य, पथविया वा अन्धकारं पविसेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो जोतितमपरायनो होति।

''कथं च, महाराज, पुग्गलो जोतिजोतिपरायनो होति? इध, महाराज, एकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति, खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा, अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको, परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय सुचरितं चरित्वा

(संस्कृतच्छाया) 'तद्यथापि, महाराज! पुरुषः प्रासादात् वा हस्तिस्कन्धम् आरुह्य, हस्तिस्कन्धाद् वा अश्वपृष्ठम् आरुह्य, अश्वपृष्ठाद् वा पर्यङ्कम् आरुह्य, पर्यङ्काद् वा पृथ्वीम् आरुह्य, पृथ्व्याः वा अन्धकारं प्रविशेत्। तथोपमाहम्, महाराज! इदं पुद्गलं वदामि। एवं खलु, महाराज! पुद्गलः ज्योतिस्तमःपरायणो भवति।

''कथञ्च, महाराज! पुद्गलः ज्योतिर्ज्योतिपरायणो भवति? इह, महाराज! एकश्च पुद्गलः उच्चेः कुले प्रतिजातो भवति, क्षत्रियमहाशालकुले वा ब्राह्मणमहाशालकुले वा गृहपतिमहाशालकुले वा, आढ्ये महद्धने महाभोग्ये प्रभूतजातरूपरजते प्रभूतवित्तोपकरणे प्रभूतधनधान्ये। सः च भवति अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः, परमया वर्णपौष्कलतया समन्वागतः, लाभी अन्नस्य पानस्य वस्त्रस्य यानस्य मालागन्धविलेपनस्स शैयावसथप्रदीपस्य च। सः कायेन सुचरितं चरति, वाचा सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सः कायेन सुचरितं चरित्वा वाचा सुचरितं चरित्वा

(हिन्दी) ''जैसे, महाराज! कोई पुरुष ऊँचे प्रसाद से उतर कर हाथी के कन्धे पर आ जाय, हाथी के कन्धे से भी घोड़े की पीठ पर उतर जाय, घोड़े की पीछ से खाट पर उतर आये, तथा खाट से भी उतर कर भूमि पर आ जाय- वही स्थिति मैं इस पुद्गल की मानता हूँ। महाराज! ऐसा का पुद्गल 'ज्योतिस्तमःपरायण' कहलाता है।

''महाराज! यहाँ कोई पुद्गल ज्योतिर्ज्योतिःपरायण कैसे होता है? यहाँ, महाराज! कोई पुद्गल उच्चकुल में उत्पन्न होता है जैसे- वैभवशाली क्षत्रिय कुल में, वैभवशाली ब्राह्मणकुल में या वैभवशाली गृहपतिकुल में। जहाँ प्रभूत धन सम्पत्ति हो, अपरिमित भोगसाधन हों, अत्यधिक सुवर्ण एवं रजत की राशि हो, कोशागार एवं धान्यागार धन-धान्य से परिपूर्ण हों। वह देखने में सुंदर, मनोहर, दर्शनीय हो, वर्णपुष्कलता से सम्पन्न हो, अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गन्धविलेपन, खाट,प्रदीपमय आवास जिसको अनायास सुलभ हों। वह काया, वाणी एवं मन से सत्कर्म करता है। यों निरन्तर सत्कर्म करता हुआ

मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति।

''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो पल्लङ्का वा पल्लङ्कं सङ्कमेय्य, अस्सपिट्ठिया वा अस्सपिट्ठिं सङ्कमेय्य, हत्थिक्खन्धा वा हत्थिक्खन्धं सङ्कमेय्य, पासादा वा पासादं सङ्कमेय्य। तथूपमाहं, महाराज, इमं पुग्गलं वदामि। एवं खो, महाराज, पुग्गलो जोतिजोतिपरायनो होति। इमे खो, महाराज, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'ति इदमवोच...पे॰...

''दलिद्दो पुरिसो राज, अस्सद्धो होति मच्छरी।
कदरियो पापसङ्कप्पो, मिच्छादिट्ठि अनादरो॥
''समणे ब्राह्मणे वापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
अक्कोसति परिभासति, नत्थिको होति रोसको॥
''ददमानं निवारेति, याचमानान भोजनं।

(संस्कृतच्छाया) मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्य भेदात् परं मरणात् सुगतिं स्वर्गं लोकम् उपपद्यते।

''तद्यथापि, महाराज! पुरुषः पर्यङ्कात् वा पर्यङ्कं वा सङ्क्रामेत्, अश्वपृष्ठाद् वा अश्वपृष्ठं सङ्क्रामेत्, हस्तिस्कन्धाद् वा हस्तिस्कन्धं सङ्क्रामेत्, प्रासादात् वा प्रासादं सङ्क्रामेत्। तथोपमाहम्, महाराज! इमं पुद्गलं वदामि। एवं खलु, महाराज! पुद्गलः ज्योतिर्ज्योतिपरायणो भवति। इमे खलु, महाराज! चत्वारः पुद्गलाः सन्ति संविद्यमानाः लोके''इति। इदमवोचत्...पे॰...

''दरिद्रः पुरुषः राजन्! अश्रद्धो भवति मत्सरी।
कदर्यः पापसंकल्पः, मिथ्यादृष्टिः अनादरः॥
''श्रमणे ब्राह्मणे वापि, अन्यस्मिन् वापि वनिपके।
आक्रोशति परिभाषते, नास्तिको भवति रोषकः॥
''ददमानान् निवारयति, याचमानान् भोजनम्।

(हिन्दी) एक दिन देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में जाकर उत्पन्न होता है।

''महाराज! जैसे कोई पुरुष एक खाट से दूसरी खाट पर, या एक घोड़े की पीठ से दूसरे घोड़े की पीठ पर या एक हाथी के कन्धे से दूसरे हाथी के कन्धे पर, या एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद पर चला जाय, इसी पुरुष के समान मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। यों, महाराज! यह पुद्गल 'ज्योतिर्ज्योतिःपरायण' कहलाता है। अतः महाराज ये चार पुद्गल लोक में देखे जाते हैं''।

भगवान् यह बोले... पूर्ववत्...''महाराज! संसार में चार प्रकार के पुरुष होते हैं,

जैसे- हे राजन्! कोई दरिद्र पुरुष श्रद्धारहित, अतिलोभी, कंजूस, पाप सङ्कल्प वाला, मिथ्यादृष्टि तथा पुण्यकर्मों में आदर न रखने वाला होता है। वह श्रमण ब्राह्मण तथा अन्य माँगने वालों की निन्दा करने वाला उनको अपशब्द बोलने वाला, नास्तिक एवं क्रोधी होता है। वह माँगने वालों के लिये दान करने वाले पुरुष को रोकता है।

तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।
उपेति निरयं घोरं, तमोतमपरायनो॥
''दलिद्दो पुरिसो राज, सद्धो होति अमच्छरी।
ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अव्यग्गमनसो नरो॥
''समणे ब्राह्मणे वापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
उट्ठाय अभिवादेति, समचरियाय सिक्खति॥
''ददमानं न वारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।
उपेति तिदिवं ठानं, तमोजोतिपरायनो॥
'अड्ढो चे पुरिसो राज, अस्सद्धो होति मच्छरी।
कदरियो पापसङ्कप्पो, मिच्छादिट्ठि अनादरो॥

(संस्कृतच्छाया) तादृशः पुरुषः राजन्! म्रियमाणो जनाधिप!।
उपैति नरकं घोरम्, तमस्तमपरायणः॥
''दरिद्रः पुरुषः राजन्! श्रद्धो भवति अमत्सरी।
ददाति श्रेष्ठसङ्कल्पः, अव्यग्रमानसो नरः॥
''श्रमणे ब्राह्मणे वापि, अन्यस्मिन् वापि वनिपके।
उत्थाय अभिवादयति, समचर्यया शिक्षते॥
''ददमानान् न वारयति, याचमानान भोजनम्।
तादृशः पुरुषः राजन्! म्रियमाणो जनाधिप!।
उपैति त्रिदिवं स्थानम्, तमोज्योतिपरायणः॥
''आढ्यश्चेत् पुरुषः राजन्! अश्रद्धो भवति मत्सरी।
कदर्यः पापसंकल्पः, मिथ्यादृष्टिः अनादरः॥

(हिन्दी) ''हे राजन् जनाधिप! वैसा पुरुष मरने पर घोर नरक में उत्पन्न होता है। वह तमस्तमःपरायण कहलाता है।

''हे राजन्! कोई दरिद्र पुरुष श्रद्धालु, निर्लोभी, कंजूसीरहित, श्रेष्ठसङ्कल्प वाला, मिथ्यादृष्टिरहित तथा पुण्यकर्मों में आदर रखने वाला होता है। वह श्रमण ब्राह्मण तथा अन्य भोजन माँगने वालों के दाता को वह दान से रोकता नहीं है। हे राजन्! हे जनाधिप! वैसा पुरुष तमोज्योतिःपरायण कहलाता है। वह यहाँ से देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग में पहुँचता है।

''हे राजन्! कोई पुरुष वैभवशाली होता हुआ भी श्रद्धारहित अतिलोभी, कंजूस, पापसङ्कल्प वाला, मिथ्यादृष्टि,

''समणे ब्राह्मणे वापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
अक्कोसति परिभासति, नत्थिको होति रोसको॥
''ददमानं निवारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।
उपेति निरयं घोरं, जोतितमपरायनो॥
''अड्ढो चे पुरिसो राज, सद्धो होति अमच्छरी।
ददाति सेट्ठसङ्कप्पो, अव्यग्गमनसो नरो॥
''समणे ब्राह्मणे वापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
उट्ठाय अभिवादेति, समचरियाय सिक्खति॥
''ददमानं न वारेति, याचमानान भोजनं।
तादिसो पुरिसो राज, मीयमानो जनाधिप।

(संस्कृतच्छाया) ''श्रमणे ब्राह्मणे वापि, अन्यस्मिन् वापि वनिपके।
आक्रोशति परिभाषते, नास्तिको भवति रोषकः॥
''ददमानं निवारयति, याचमानान् भोजनम्।
तादृशः पुरुषः राजन्, म्रियमाणो जनाधिप!
उपैति नरकं घोरम्, ज्योतिस्तमपरायणः॥
''आढ्यश्चेत् पुरुषः राजन्! श्रद्धो भवति अमत्सरी।
ददाति श्रेष्ठसङ्कल्पः, अव्यग्रमानसो नरः॥
''श्रमणे ब्राह्मणे वापि, अन्यस्मिन् वापि वनिपके।
उत्थाय अभिवादयति, समचर्यया शिक्षते॥
''ददमानं न वारयति, याचमानान् भोजनम्।
तादृशः पुरुषः राजन्! म्रियमाणो जनाधिप!

(हिन्दी) पुण्यकर्मों में आदर न रखने वाला होता है। वह श्रमण ब्राह्मण एवं दूसरे माँगने वालों की निन्दा करने वाला, उनको अपशब्द बोलने वाला, नास्तिक एवं क्रोधी होता है। वह माँगने वालों के लिये दाता को दान करने से रोकता रहता है। यह ज्योतिस्तमःपरायण कहलाता है।

तथा, हे राजन्! कोई पुरुष वैभवशाली होता हुआ भी श्रद्धालु, निर्लोभ, उदार, दानी, शुभसङ्कल्प तथा शान्तचित्त होता है। श्रमण ब्राह्मण तथा अन्य माँगने वालों के आने पर उनका उठकर अभिवादन करता है तथा संयम का अभ्यास करता है। माँगने वालों के लिये भिक्षा देने वाले को रोकता नहीं है। हे राजन्! हे जनाधिप! ऐसा पुरुष

उपेति तिदिवं ठानं, जोतिजोतिपरायनो''ति॥

3.3.2. अय्यिकासुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच–

''हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवादिवस्सा''ति?

''अय्यिका मे, भन्ते, कालङ्कता जिण्णा वुड्ढा महल्लिका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता वीसवस्ससतिका जातिया। अय्यिका खो पन मे, भन्ते, पिया होति मनापा। हत्थिरतनेन चेपाहं, भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति, हत्थिरतनम्पाहं ददेय्यं– 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति। अस्सरतनेन चेपाहं, भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति, अस्सरतनम्पाहं ददेय्यं– 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति। गामवरेन चेपाहं भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति, गामवरम्पाहं ददेय्यं– 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति। जनपदपदेसेन चेपाहं, भन्ते, लभेय्यं 'मा मे अय्यिका

(संस्कृतच्छाया) उपैति त्रिदिवं स्थानम्, ज्योर्तिज्योर्तिपरायणः॥

2. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णं खलु राजानं प्रसेनजित् कौशलं भगवान् एतदवोचत्–

''हन्त, कुतो नु त्वम्, महाराज! आगच्छसि दिवा(मध्याह्न) दिवसे''इति?

''आर्यिका मम, भदन्त! कालंकृता जीर्णा वृद्धा महल्लिका अधोगताः वयोऽनुप्राप्ताः विंशतिवर्षशतिका जातीया। आर्यिका खलु पुनः मम, भदन्त! प्रिया भवति मनापा। हस्तिरत्नेन चापि प्राप्नुयाम् अहम्, भदन्त! लभेयम्,'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्'इति, हस्तिरत्नमपि मया देयम्– 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्'इति। अश्वरत्नेन चापि प्राप्नुयाम् अहम्, भदन्त! लभेत 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्' इति, अश्वरत्नमप्यहं दद्याम्– 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्'इति। ग्रामवरेण चापि प्राप्नुयाम् अहं भदन्त! लभेय 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्' इति, ग्रामवरप्यहं दद्याम्– 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्' इति। जनपदप्रदेशेन चापि प्राप्नुयाम् अहम्, भदन्त! लभेय 'मा मे आर्यिका

(हिन्दी) ज्योतिर्ज्योतिःपरायण कहलाता है। तथा यह देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग का वाही होता है।''

2. यह सूत्र भी श्रावस्ती में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल को भगवान् ने यह पूछा- 'महाराज! इस मध्याह्न में कहाँ से चले आ रहे हैं?''

(राजा बोले-) ''भन्ते! मेरी दादी की मृत्यु हो गयी है। यह बहुत बूढी, जीर्ण वृद्धा, पुरानी, आयुकी पूर्णता प्राप्त की हुई, तथा जन्म से एक सौ बीस वर्ष की थी। भन्ते! मुझ को मेरी दादी बहुत प्यारी थी, मैं उसको हृदय से चाहता था। हस्ति-रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करुँ यदि मेरी दादी न मेरे। भन्ते! हस्ति- रत्न को भी मैं दे डालूँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते! अश्व–रत्न को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करुँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते! अश्व–रत्न को भी मैं दे डालूँ यदी मेरी दादी न मरे । भन्ते! अच्छे-अच्छे गाँव को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करुँ यदि मेरी दादी न मरे । भन्ते! अच्छे-अच्छे गाँव को भी मैं दे डालूँ यदी मेरी दादी न मरे। भन्ते! जनपद को भी पाना मैं स्वीकार नहीं करुँ यदि मेरी दादी न मरे।

कालमकासी'ति, जनपदपदेसम्पाहं ददेय्यं– 'मा मे अय्यिका कालमकासी'ति।

'सब्बे सत्ता, महाराज, मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता'ति।

'अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभासितमिदं, भन्ते, भगवता– सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता'''ति।

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता। सेय्यथापि, महाराज, यानि कानिचि कुम्भकारभाजनानि आमकानि चेव पक्कानि च सब्बानि तानि भेदनधम्मानि भेदनपरियोसानानि भेदनं अनतीतानि; एवमेव खो, महाराज, सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणपरियोसाना मरणं अनतीता''ति। इदमवोच...पे॰...

''सब्बे सत्ता मरिस्सन्ति, मरणन्तञ्हि जीवितं।
यथाकम्मं गमिस्सन्ति, पुञ्ञपापफलूपगा॥

(संस्कृतच्छाया) कालमकार्षीत्' इति, जनपदप्रदेशमप्यहं दद्याम्– 'मा मे आर्यिका कालमकार्षीत्'इति।

'सर्वे सत्त्वाः, महाराज! मरणधर्माः मरणपर्यावसानाः मरणमनतीताः'इति।

'आश्चर्यम्, भदन्त! अद्भुतम्, भदन्त! यावत् सुभाषितमिदम्, भदन्त! भगवता– सर्वे सत्त्वाः मरणधर्माः मरणपर्यवसानाः मरणमनतीताः'''इति।

''एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! सर्वे सत्त्वाः मरणधर्माः मरणपर्यवसानाः मरणमनतीताः। तद्यथापि, महाराज! यानि कानिचित् कुम्भकारभाजनानि आमकानि चैव पक्वानि च सर्वाणि तानि भेदनधर्माणि भेदनपर्यवसानानि भेदनमनतीतानि; एवमेव खलु, महाराज! सर्वे सत्त्वाः मरणधर्माः मरणपर्यवसानाः मरणमनतीताः''ति। इदमवोचत्...पे॰...

''सर्वे सत्त्वाः मरिष्यन्ति, मरणान्तं जीवितम्।
यथाकर्म गमिष्यन्ति, पुण्यपापफलोपगाः॥

(हिन्दी) भन्ते! जनपद को भी मैं दे डालूँ यदी मेरी दादी न मरे।

(भगवान्-) ''महाराज! सभी जीव मरणशील हैं। एक न एक दिन सभी की मृत्यु होनी है। मृत्युमुख में जाने से वे किसी भी दशा में बच नहीं सकते, क्यों कि मरण ही उनका स्वभाव है।''

''आश्चर्यमय वचन कहा, भन्ते! आपने। आप का वचन अद्भुत है कि सभी जीव मरणस्वभाव है, मरण ही इन का अन्त है।'' (भगवान्-) ''हाँ महाराज! यही बात है। सभी जीव मरणशील हैं, मरण ही इनका अन्त है। जैसे, महाराज! कुम्हार द्वारा बनाये मिट्टी के सभी घड़े, फिर भले ही वे कच्चे हो या पकाये जा चुके हों, उनको एक न एक दिन फूटना ही है, क्यों कि फूटना उनका स्वभाव है, धर्म है, प्रकृति है तथा यों फूटना ही इनका अन्त है। इसी तरह सभी प्राणी मरणधर्मा हैं, मरणप्रकृतिक हैं तथा मरण ही उनका अन्त है।'' भगवान् यह बोले। साथ ही...पूर्ववत्...''जन्मे हुए सभी जीव मरेंगे, क्यों कि जीवन का अन्त मरण में ही होता है। वे जैसा कर्म करेंगे उनके फलस्वरूप पाप पुण्य उनके पीछे लग जायँगे।

"निरयं पापकम्मन्ता, पुञ्ञकम्मा च सुग्गतिं।
तस्मा करेय्य कल्याणं, निचयं सम्परायिकं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं"ति॥

3.3.3. लोकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ''कति नु खो, भन्ते, लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराया''ति?

''तयो खो, महाराज, लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। कतमे तयो? लोभो खो, महाराज, लोकस्स धम्मो, उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। दोसो खो, महाराज, लोकस्स धम्मो, उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। मोहो खो, महाराज, लोकस्स

(संस्कृतच्छाया) "निरयं पापकर्मान्ताः, पुण्यकर्माणि च सुगतिम्।
तस्मात् कुर्यात् कल्याणम्, निचयं सम्परायिकम्।
पुण्यैः परलोके, प्रतिष्ठिताः भवन्ति प्राणिनाम्" इति॥

3. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''कति नु खलु, भदन्त! लोके धर्मा उत्पद्यमाना उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहाराय''इति?

''त्रयः खलु, महाराज! लोके धर्मा उत्पद्यमान उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहाराय। कतमे त्रयः? लोभः खलु, महाराज! लोके धर्मः, उत्पद्यमान उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहाराय। द्वेषः खलु, महाराज!, लोके धर्मः, उत्पद्यमाना उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहाराय। मोहः खलु, महाराज!, लोके

(हिन्दी) तदनुसार ही उनकी गति होगी। ''उसके पापकर्म नरक की ओर ले जाते है, तो पुण्य कर्म सुगतिमय स्वर्ग की ओर। अतः कल्याणकर्मों में ही प्रवृत्त रहना चाहिये। इनसे परलोक का संग्रह होता है। प्राणियों का परलोक (स्वर्ग) में वास एकन्ततः पुण्यकर्मों पर ही आधारित है''।

3. श्रावस्ती में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से पूछा- "भन्ते! लोक में उत्पन्न होते हुए कितने धर्म प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये होते हैं?"

"महाराज! ये तीन धर्म लोक में उत्पन्न होते हुए प्राणियों के अहित, कष्ट तथा दुःख के लिये होते हैं। कौन से तीन? महाराज! लोभ धर्म लोक में प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है। महाराज! द्वेष धर्म लोक में प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता ह। महाराज! मोह धर्म लोक में प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है।

धम्मो, उप्पज्जमानो उप्पज्जति अहिताय दुक्खाय अफासुविहाराय। इमे खो, महाराज, तयो लोकस्स धम्मा उप्पज्जमाना उप्पज्जन्ति अहिताय दुक्खाय अफासुविहारायाॱॱति। इदमवोच...पे॰...

ॱॱलोभो दोसो च मोहो च, पुरिसं पापचेतसं।
हिंसन्ति अत्तसम्भूता, तचसारंव सम्फलंॱॱति॥

3.3.4. इस्सत्तसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा पसेनदि कोसलो भगवन्तं एतदवोच– ॱॱकत्थ नु खो, भन्ते, दानं दातब्बंॱॱति?

ॱॱयत्थ खो, महाराज, चित्तं पसीदतीॱॱति।

ॱॱकत्थ पन, भन्ते, दिन्नं महप्फलंॱॱति?

ॱॱअञ्ञं खो एतं, महाराज, कत्थ दानं दातब्बं, अञ्ञं पनेतं कत्थ दिन्नं

(संस्कृतच्छाया) धर्मः, उत्पद्यमान उत्पद्यते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहाराय। इमे खलु, महाराज! लोके धर्माः, उत्पद्यमाना उत्पद्यन्ते अहिताय दुःखाय अस्फास्नुविहारायॱॱइति। इदमवोचत्...पे॰...

ॱॱलोभो द्वेषश्च मोहश्च, पुरुषाणां पापचेतसाम्।
हिंसन्ति आत्मसम्भूताः, त्वक्सारमिव सम्फलम्ॱॱइति॥

4. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजा प्रसेनजित् कौशलः भगवन्तम् एतदवोचत्– ॱॱकति नु खलु, भदन्त! दानं दातव्यम्ॱॱइति?

ॱॱयत्र खलु, महाराज! चित्तं प्रसीदतिॱॱइति।

ॱॱकुत्र पुनः, भदन्त! दत्तं महत्फलम्ॱॱइति?

ॱॱअन्यत् खलु एतत्, महाराज!, कस्मै दानं दातव्यम्, अन्यत् पुनरेतत् कस्मै दत्तं

(हिन्दी) प्राणियों के अहित, दुःख तथा कष्ट के लिये उत्पन्न होता है। महाराज! ये तीन धर्म... उत्पन्न होते हैं।" भगवान् यह बोले... पूर्ववत्...

"पापमय चिन्तन करने वाले पुरुष को लोभ, द्वेष एवं मोह ये तीन धर्म अपने अन्दर ही उत्पन्न होकर, नष्ट कर देते हैं, जैसे केलेके वृक्ष का फल ही उस को नष्ट कर देता है।

4. श्रावस्ती में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल ने भगवान् से यह प्रश्न किया- ॱॱभन्ते! कहाँ दान देना चाहिये?ॱॱ

ॱॱमहाराज! आपके मन में जिसके प्रति श्रद्धा हो।ॱॱ

ॱॱभन्ते! कहाँ दिया हुआ दान महाफलदायी होता है?ॱॱ

ॱॱमहाराज! यह बात दूसरी है कि किसको दान देना चाहिए और यह दूसरी कि किसको दान देने से

महप्फलन्ति? सीलवतो खो, महाराज, दिन्नं महप्फलं, नो तथा दुस्सीले। तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा, ते खमेय्य, तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध त्यस्स युद्धं पच्चुपट्ठितं सङ्गामो समुपब्यूळ्हो। अथ आगच्छेय्य खत्तियकुमारो असिक्खितो अकतहत्थो अकतयोग्गो अकतूपासनो भीरु छम्भी उत्रासी पलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना''ति?

''नाहं, भन्ते, भरेय्यं तं पुरिसं, न च मे अत्थो तादिसेन पुरिसेना''ति। ''अथ आगच्छेय्य ब्राह्मणकुमारो असिक्खितो...पे॰... अथ आगच्छेय्य वेस्सकुमारो असिक्खितो...पे॰... अथ आगच्छेय्य सुद्दकुमारो असिक्खितो...पे॰... न च मे अत्थो तादिसेन पुरिसेना''ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध त्यस्स युद्धं पच्चुपट्ठितं सङ्गामो समुपब्यूळ्हो।

(संस्कृतच्छाया) महत्फलम्''इति? शीलव्रताय खलु, महाराज! दत्तं महत्फलम्, नो तथा दुःशीलाय। तत्र हि, महाराज! त्वामेवात्र प्रतिप्रक्ष्यामि। यथा, त्वं क्षाम्येः, तथा मां व्याकुर्याः। तत् किं मन्यसे, महाराज! इहत्वस्य युद्धं प्रत्युपस्थितं संग्रामः समुपब्यूढः। अथ आगच्छेत् क्षत्रियकुमारः अशिक्षितः अकृतहस्तः अकृतयोग्यः अकृतोपासनः भीरुस्तम्भी उत्त्रासी पलायी। भरेः तं पुरुषम्, अर्थश्च ते तादृशेन पुरुषेण''इति?

''नाहम्, भदन्त! भरेयं तं पुरुषम्, न च मे अर्थः तादृशेन पुरुषेण'' इति। ''अथ आगच्छेत् ब्राह्मणकुमारः अशिक्षितः...पे॰... अथ आगच्छेत् वैश्यकुमारः अशिक्षितः ...पे॰... अथ आगच्छेत् शूद्रकुमारः अशिक्षितः ...पे॰... न च मे अर्थः तादृशेन पुरुषेण''इति।

''तत् किम् मन्यसे, महाराज! इहत्वस्य युद्धं प्रत्युपस्थितं संग्रामः समुपब्यूढः।

(हिन्दी) महाफल होता है। महाराज! शीलवान् को दिया हुआ दान फलदायी होता है दुःशील को दिया दान फलदायी नहीं होता। महाराज! मैं आप से ही पूछता हूँ, आप जैसा उचित समझें उत्तर दें। तो क्या मानते हो, महाराज! यहाँ किसी विरोधी राजा से युद्ध ठन जाय, (दोनों ओर से सेना) युद्ध (हेतु तैयार) हों। तब कोई क्षत्रिय कुमार आ जाय वह धनुर्विद्या में अशिक्षित हो, अकुशल हो, अयोग्य हो, अनभ्यस्त हो, युद्ध देखकर काँप जाने वाला हो, भय खाने वाला हो, भाग खड़ा होने वाला हो। तो क्या आप उसे अपनी सेवा में किसी पद पर रखेंगे? वैसे पुरुष से आपका कुछ प्रयोजन निकलेगा?''

''नहीं, भन्ते! मैं ऐसे पुरुष को किसी पद पर नियुक्त नहीं करूँगा, क्योंकि उससे मेरा कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।'' ''तो उसी समय कोई ब्राह्मणकुमार आ जाय वह धनुर्विद्या में अशिक्षित हो...वैश्यकुमार आ जाय वह धनुर्विद्या में अशिक्षित हो...शूद्रकुमार आ जाय वह धनुर्विद्या में अशिक्षित हो... मेरा प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

(इसके विपरीत) ''मैं आप से यह पूछता हूँ, महाराज! आपका किसी विरोधी राजा से युद्ध छिड़ जाय,

अथ आगच्छेय्य खत्तियकुमारो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी अपलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना''ति?

''भरेय्याहं, भन्ते, तं पुरिसं, अत्थो च मे तादिसेन पुरिसेना''ति।

अथ आगच्छेय्य ब्राह्मणकुमारो...पे॰... अथ आगच्छेय्य वेस्सकुमारो...पे॰... अथ आगच्छेय्य सुद्दकुमारो सुसिक्खितो कतहत्थो कतयोग्गो कतूपासनो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी अपलायी। भरेय्यासि तं पुरिसं, अत्थो च ते तादिसेन पुरिसेना''ति?

''भरेय्याहं, भन्ते, तं पुरिसं, अत्थो च मे तादिसेन पुरिसेना''ति।

''एवमेव खो, महाराज, यस्मा कस्मा चेपि कुला अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, सो च होति पञ्चङ्गविप्पहीनो पञ्चङ्गसमन्नागतो, तस्मिं दिन्नं महप्फलं होति। कतमानि पञ्चङ्गानि पहीनानि होन्ति? कामच्छन्दो पहीनो होति, ब्यापादो पहीनो होति, थिनमिद्धं पहीनं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पहीनं होति, विचिकिच्छा पहीना होति। इमानि

(संस्कृतच्छाया) अथ आगच्छेत् क्षत्रियकुमारः सुशिक्षितः कृतहस्तः कृतयोग्यः कृतोपासनः अभीरुः अस्तम्भितः अनुत्त्रासी अपलायी। भरेः तं पुरुषम्, अर्थश्च ते तादृशेन पुरुषेण''इति?

''भरेयमहम्, भदन्त! तं पुरुषम्, अर्थश्च मे तादृशेन पुरुषेण''इति।

''अथ आगच्छेत् ब्राह्मणकुमारः ...पे॰... अथ आगच्छेत् वैश्यकुमारः ...पे॰... अथ आगच्छेत् शूद्रकुमारः सुशिक्षितः कृतहस्तः कृतयोग्यः कृतोपासनः अभीरुः अस्तम्भी अनुत्त्रासी अपलायी। भरेः तं पुरुषम्, अर्थश्च ते तादृशेन पुरुषेण''इति? ''भरेयमहम्, भदन्त! तं पुरुषम्, अर्थश्च मे तादृशेन पुरुषेण''इति।

''एवमेव खलु, महाराज! यस्मात् कस्मात् चापि कुलागारस्मात् अनागार्यं प्रव्रजितो भवति, सः च भवति पञ्चाङ्गविप्रहीणः पञ्चाङ्गसमन्वागतः, तस्मै दत्तं महत्फलं भवति। कतमानि पञ्चाङ्गानि प्रहीणानि भवन्ति? कामच्छन्दः प्रहीणो भवति, व्यापादः प्रहीणो भवति, स्त्यानमिद्धं प्रहीणं भवति, औद्धत्यकौकृत्यं च प्रहीणं भवति, विचिकित्सा प्रहीणा भवति। इमानि

(हिन्दी) दोनों ओर से सेनाएँ युद्ध के लिये तत्पर हों, उसी समय कोई क्षत्रियकुमार आ जाय जो धनुर्विदया में शस्त्रविद्या में शिक्षित हो, कुशल हो, योग्य हो, अभ्यस्त हो, युद्ध से भागने वाला न हो, तो क्या आप उसे अपनी सेना में किसी पद पर रखेंगे? वैसे पुरुष से आपका कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?''

''हाँ, भन्ते! ऐसे पुरुष को मैं किसी पर पर नियुक्त कर लूँगा, क्योंकि मेरा उससे कोई न कोई प्रयोजन सिद्ध हो ही जायगा। उसी समय कोई ब्राह्मणकुमार... वैश्यकुमार.....शूद्रकुमार.... मेरा प्रयोजन सिद्ध होने वाला है।

(भगवान्-) ''इसी तरह, महाराज! जिस किसी कुल के घर से बेघर होकर कोई प्रव्रजित हो, तथा वह पाँच अङ्गों (दोषों) से रहित एवं पाँच अङ्गों (गुणों) से युक्त हो उसको दिया हुआ दान महाफलप्रद होता है।''वह किन पाँच अङ्गों (दोषों) से रहित होना चाहिये? वह कामच्छन्द (कामभोगों में स्वेच्छाचार) मुक्त हो, व्यापाद (क्रोध या द्वेष) से, स्त्यानमृद्ध (आलस्य) से, औद्धत्य कौकृत्य (धृष्टता एवं पश्चात्ताप) से, विचिकित्सा (सन्देह) से मुक्त हो। तथा वह

पञ्चङ्गानि पहीनानि होन्ति। कतमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो होति? असेक्खेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन पञ्ञाक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेक्खेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो होति। इति पञ्चङ्गविप्पहीने पञ्चङ्गसमन्नागते दिन्नं महप्फल''न्ति। इदमवोच भगवा...पे॰... सत्था–

''इस्सत्तं बलवीरियं च, यस्मिं विज्जेथ माणवे।
तं युद्धत्थो भरे राजा, नासूरं जातिपच्चया॥
''तथेव खन्तिसोरच्चं, धम्मा यस्मिं पतिट्ठिता।
अरियवुत्तिं मेधाविं, हीनजच्चम्पि पूजये॥
''कारये अस्समे रम्मे, वासयेत्थ बहुस्सुते।

(संस्कृतच्छाया) पञ्चाङ्गानि प्रहीणानि भवन्ति। कतमैः पञ्चाङ्गैः समन्वागतो भवति? अशैक्ष्येन शीलस्कन्धेन समन्वागतो भवति, अशैक्ष्येन समाधिस्कन्धेन समन्वागतो भवति, अशैक्ष्येन प्रज्ञास्कन्धेन समन्वागतो भवति, अशैक्ष्येन विमुक्तिस्कन्धेन समन्वागतो भवति, अशेषेण विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धेन समन्वागतो भवति। इमैः पञ्चाङ्गैः समन्वागतो भवति। इति पञ्चाङ्गविप्रहीणे पञ्चाङ्गसमन्वागते दत्तं महत्फलम्''इति। इदमवोचत् भगवान्...पे॰... शास्ता–

''इषु शक्तं बलवीर्यञ्च, यस्मिन् विद्येत माणवे।
तं युद्धार्थं भरेत् राजा, नाशूरं जातिप्रत्ययात्॥
''तत्रैव क्षान्तिसौरत्यम्, धर्माः यस्मिन् प्रतिष्ठिताः।
आर्यवृत्तिं मेधाविनम्, हीनजातिमपि पूजयेत्॥
''कारयेत् आश्रमान् रम्यमान्, वासयेत् बहुश्रुतान्।

(हिन्दी) किन पाँच अङ्गों से युक्त (समन्वागत) होना चाहिये? वह अशैक्ष्य (अर्हत्सम्बद्ध) शीलस्कन्ध से अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से, अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शन से युक्त होना चाहिये। यों वह दानपात्र साधक इन पाँच अङ्गों से युक्त होना चाहिये। ऐसे उक्त पाँच अङ्गों से रहित तथा पाँच अङ्गों से युक्त साधक को दिया हुआ दान महाफलदायक होता है।'' भगवान् यह बोले.... पूर्ववत्....

''जो युवक धनुर्विद्या में निपुण हो, बलवान् एवं शक्तिसम्पन्न हो उसी को राजा लोग अपनी सेना में नियुक्त करते हैं, बलवान् एवं शक्तिसम्पन्न हो उसी को राजा लोग अपनी सेना में नियुक्त करते हैं, (केवल) जाति के कारण, कायर को अपनी सेना में नियुक्त नहीं करते।

''इसी तरह, जो क्षमाशील तथा नम्र हो, ऐसे गुणवान् को भले ही फिर वह हीन जाति का ही क्यों न हो, पूजा करनी चाहिये, यदि वह आर्य वृत्ति से रहने वाला हो तथा मेधावी भी हो। सद्गृहस्थ के दानविषयक कुछ पवित्र कर्तव्य- ''साधनायोग्य आश्रमों का निर्माण करना चाहिये। उनमें बहुश्रुत विद्वानों बसावे।

पपञ्च विवने कयिरा, दुग्गे सङ्कमनानि च॥
''अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च।
ददेय्य उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥
''यथा हि मेघो थनयं, विज्जुमाली सतक्ककु।
थलं निन्नञ्च पूरेति, अभिवस्सं वसुन्धरं॥
''तथेव सद्धो सुतवा, अभिसङ्खच्च भोजनं।
वनिब्बके तप्पयति, अन्नपानेन पण्डितो॥
''आमोदमानो पकिरेति, देथ देथाति भासति।
तं हिस्स गज्जितं होति, देवस्सेव पवस्सतो।
सा पुञ्ञधारा विपुला, दातारं अभिवस्सती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) पपाञ्च विवने कुर्यात्, दुर्गमे सङ्क्रमणानि च॥
''अन्नं पानं खादनीयम्, वस्त्रशयनासनानि च।
दद्यात् ऋजुभूतेषु, विप्रसन्नेन चेतसा॥
''यथा हि मेघः स्तनन्, विद्युन्माली शतशिखरः।
स्थलं निम्नञ्च पूरयति, अभिवर्षन् वसुन्धराम्॥
''तथैव श्रद्धः श्रुतवान्, अभिसंस्कृत्य भोजनम्।
वनीपकान् तर्पयति, अन्नपानेन पण्डितः॥
''आमोदमानः प्रकीर्यते, दद्यात् दद्यादिति भाषते।
तत् ह्यस्य गर्जनं भवति, देवस्यैव प्रवर्षतः।
सा पुण्यधारा विपुला, दातारम् अभिवर्षति''इति॥

(हिन्दी) निर्जन स्थानों में प्याऊ या कूप आदि खुदवावे। दुर्गम जंगलों में सुगम मार्ग बनवावे। सीधी सरल वृत्ति वाले लोगों को अन्न, पान, भोजन, वस्त्र, शयनासन आदि का श्रद्धापूर्वक दान करना चाहिये।

''जैसे मेघ गड़गड़ाते तथा बिजली चमकाते हुए सैकड़ों शिखरों पर बरस कर नीचे स्थानों वाली भूमि को जल से भर देता है।

''वैसे ही बुद्धिमान् एवं श्रद्धालु पुरुष को चाहिये कि वह सभी याचकों को भोजन का दान कर उन्हें खाने पीने के पदार्थों से तृप्त कर दे।

''इस तरह प्रसन्न (श्रद्धापूर्वक) चित्त से स्वयं याचकों को बाँटता हुआ अपने अधीनस्थ अनुचरों को भी 'दो' 'और दो' ऐसी गर्जना भी करता रहे, जैसे बरसता हुआ मेघ गर्जना करता है।

अन्त में, परिणामस्वरूप, यह पुण्यधारा दाता पर ही चारों ओर से बरसने लगती है''।

3.3.5. पब्बतूपमसुत्तं

सावत्थिनिदानं। एकमन्तं निसिन्नं खो राजानं पसेनदिं कोसलं भगवा एतदवोच– ''हन्द, कुतो नु त्वं, महाराज, आगच्छसि दिवा दिवस्सा''ति?

''यानि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं इस्सरियमदमत्तानं कामगेधपरियुट्ठितानं जनपदत्थावरियप्पत्तानं महन्तं पथविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसन्तानं राजकरणीयानि भवन्ति, तेसु ख्वाहं, एतरहि उस्सुक्कमापन्नो''ति।

''तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ते पुरिसो आगच्छेय्य पुरत्थिमाय दिसाय सद्धायिको पच्चयिको। सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य– 'यग्घे, महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि पुरत्थिमाय दिसाय। तत्थद्दसं महन्तं पब्बतं अब्भसमं सब्बे पाणे निप्पोथेन्तो आगच्छति। यं ते, महाराज, करणीयं, तं करोही'ति। अथ दुतियो पुरिसो आगच्छेय्य पच्छिमाय दिसाय...पे.... अथ ततियो पुरिसो आगच्छेय्य उत्तराय दिसाय...पे....अथ

(संस्कृतच्छाया) 5. श्रावस्तीनिदानम्। एकान्ते निषण्णः खलु राजानं प्रसेनजितं कौशलं भगवान् एतदवोचत्– ''हन्त, कुतो नु त्वम्, महाराज! आगच्छसि दिवा(मध्याह्न) दिवसे''इति?

''यानि तानि, भदन्त! राज्ञां क्षत्रियाणां मूर्द्धावषिक्तानाम् ऐश्वर्यमदमत्तानाम् कामगृहपर्युपस्थितानां जनपदे स्थिरभावप्राप्तानां महान्तं पृथ्वीमण्डलम् अभिविजित्य अध्यवसानां राजकरणीयानि भवन्ति, तेषु खल्वहम्, एतर्हि औत्सुक्यमापन्नः''इति।

''तत् किं मन्यसे, महाराज! इह ते पुरुष आगच्छेत् पूर्वस्याः दिशायाः श्रद्धायिकः प्रत्यायकः। सः त्वाम् उपसंक्रम्य एवं वदेत्– 'अर्घ्यः, महाराज! जानीयाः, अहम् आगच्छामि पूर्वस्याः दिशायाः। तत्रापश्यं महान्तं पर्वतम् अभ्रसमं सर्वान् प्राणिनः निष्पीडयन्तम् आगच्छति। यत् त्वया, महाराज! करणीयम्, तत् कुरु' इति। अथ द्वितीयः पुरुष आगच्छेत् पश्चिमायाः दिशायाः...पे.... अथ तृतीयः पुरुषः आगच्छेत् उत्तरस्याः दिशायाः...पे....अथ

(हिन्दी) 5. श्रावस्ती में ही...। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कौशल से भगवान् ने पूछा- ''महाराज! इस प्रचण्ड मध्याह्न में आप कहाँ से चले आ रहे हैं?'' ''भन्ते! मैं राज्यसम्बन्धी कार्यों में अत्यधिक व्यस्त था। क्षत्रिय, अभिषेकप्राप्त, ऐश्वर्यमदोन्मत्त, सांसारिक कामभोगों की प्राप्ति के अत्यधिक इच्छुक, अन्य राज्यों के प्रदेशों पर विजयाभिलाषुक, अनेक राजाओं के विशाल भूप्रदेश को जीत कर उन पर शासन करने वाले राजा लोग व्यस्त ही रहा करते हैं। इन कार्यों में मेरा भी उत्साह आज कल बढ़ा हुआ है।''

''तो क्या मानते हो? महाराज! पूर्व दिशा से आपका कोई श्रद्धालु एवं विश्वस्त पुरुष आवे, तथा वह आप से यों कहे- 'माननीय! आप यह जान लें कि मैं अभी अब पूर्व दिशा से आ रहा हूँ। वहाँ मैंने देखा कि एक मेघ के समान विशाल पर्वत सभी प्राणियों को पीसता दबाता हुआ आगे बढ़ा चला आ रहा है। इसके निराकरण हेतु आप जो उचित समझें करें'। इसी तरह दूसरा पुरुष पश्चिम दिशा से...पूर्ववत्...। फिर तीसरा पुरुष उत्तर दिशा से..... पूर्ववत्...।

चतुत्थो पुरिसो आगच्छेय्य दक्खिणाय दिसाय सद्धायिको पच्चयिको। सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य– 'यग्घे महाराज, जानेय्यासि, अहं आगच्छामि दक्खिणाय दिसाय। तत्थद्दसं महन्तं पब्बतं अब्भसमं सब्बे पाणे निप्पोथेन्तो आगच्छति। यं ते, महाराज, करणीयं तं करोही'ति। एवरूपे ते, महाराज, महति महब्भये समुप्पन्ने दारुणे मनुस्सक्खये दुल्लभे मनुस्सत्ते किमस्स करणीयं''ति?

''एवरूपे मे, भन्ते, महति महब्भये समुप्पन्ने दारुणे मनुस्सक्खये दुल्लभे मनुस्सत्ते किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय अञ्ञत्र समचरियाय अञ्ञत्र कुसलकिरियाय अञ्ञत्र पुञ्ञकिरियाया''ति?

''आरोचेमि खो ते, महाराज, पटिवेदेमि खो ते, महाराज, अधिवत्तति खो तं, महाराज, जरामरणं। अधिवत्तमाने चे ते, महाराज, जरामरणे किमस्स करणीयं''ति?

''अधिवत्तमाने च मे, भन्ते, जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय

(संस्कृतच्छाया) चतुर्थः पुरुषः आगच्छेत् दक्षिणायाः दिशायाः श्रद्धायिकः प्रत्यायकः। सः त्वाम् उपसंक्रम्य एवं वदेत्– 'अर्घ्यः महाराज! जानीयाः, अहम् आगच्छामि दक्षिणायाः दिशायाः। तत्रापश्यं महान्तं पर्वतम् अभ्रसमं सर्वान् प्राणिनः निष्पीडयन्तः आगच्छति। यत् त्वया, महाराज! करणीयम्, तत् कुरु' इति। एवंरूपे ते, महाराज! महति महाभये समुत्पन्ने दारुणे मनुष्यक्षये दुर्लभे मनुष्यत्वे किमस्य करणीयम्''इति?

''एवरूपे मे, भदन्त! महति महाभये समुत्पन्ने दारुणे मनुष्यक्षये दुर्लभे मनुष्यत्वे किमस्य करणीयम् अन्यदत्र धर्मचर्यायाः अन्यदत्र समचर्याया अन्यदत्र कुशलक्रियायाः अन्यदत्र पुण्यक्रियायाः''इति?

''आरोचयामि खलु ते, महाराज! प्रतिवेदयामि खलु ते, महाराज! अधिवर्तते खलु तत्, महाराज! जरामरणम्। अधिवर्तमाने चेत् ते, महाराज! जरामरणे किमनयोः करणीयम्''इति?

''अधिवर्तमाने च मे, भदन्त! जरामरणे किमनयोः करणीयम् अन्यत्र धर्मचर्यायाः

(हिन्दी) फिर चौथा पुरुष दक्षिण दिशा से..... पूर्ववत्....। महाराज! इस महान् संकट के समय समस्त मानव जाति के नष्ट होने का भय उपस्थित होने पर मानवता की रक्षा के लिये आप क्या करना चाहेंगे?''

''भन्ते! ऐसा महान् भय उपस्थित होने पर इस सङ्कटापन्न स्थिति में मानवता की रक्षा के लिये इसके अतिरिक्त अन्य क्या कर्म किया जा सकता है कि हम निष्ठापूर्वक धर्माचरण करें, काय वाक् एवं मन से संयत रहें, तथा निरन्तर पुण्यात्मक कुशल कर्म करते रहें।''

''महाराज! मैं भी आपको बताता हूँ, कहता हूँ कि महाराज! जरा एवं मरण (रूपी मेघतुल्य पर्वत) सभी प्राणियों को पीसता दबाता हुआ आगे बढ़ा चला आ रहा है। इस सङ्कट के समय आप क्या करना चाहेंगे?''

''भन्ते! आपके द्वारा बताये गये जरा मरण सङ्कट के उपस्थित होने पर भी अन्य क्या कुछ किया जा सकता है, अतिरिक्त इसके कि हम धर्माचरण करें,

समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाय? यानि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं इस्सरियमदमत्तानं कामगेधपरियुट्ठितानं जनपदत्थावरियप्पत्तानं महन्तं पथविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसन्तानं हत्थियुद्धानि भवन्ति; तेसम्पि, भन्ते, हत्थियुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। यानिपि तानि, भन्ते, रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं...पे॰... अज्झावसन्तानं अस्सयुद्धानि भवन्ति...पे॰... रथयुद्धानि भवन्ति ...पे॰... पत्तियुद्धानि भवन्ति; तेसम्पि , भन्ते, पत्तियुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। सन्ति खो पन, भन्ते, इमस्मिं राजकुले मन्तिनो महामत्ता, ये पहोन्ति आगते पच्चत्थिके मन्तेहि भेदयितुं। तेसम्पि, भन्ते, मन्तयुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे।संविज्जति खो पन, भन्ते, इमस्मिं राजकुले पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं भूमिगतञ्चेव वेहासट्ठञ्च, येन मयं पहोम आगते पच्चत्थिके धनेन

(संस्कृतच्छाया) समचर्यायाः कुशलक्रियायाः पुण्यक्रियायाः? यानि तानि, भदन्त! राज्ञां क्षत्रियाणां मूर्द्धावषिक्तानाम् ऐश्वर्यमदमत्तानां कामगंधपर्युपस्थितानां जनपदे स्थिरभावप्राप्तानां महान्तं पृथ्वीमण्डलम् अभिविजित्य अध्यवसानानां हस्तियुद्धानि भवन्ति; तेषामपि, भदन्त! हस्तियुद्धानां नास्ति गतिः नास्ति विषय अधिवर्तमानयोः जरामरणयोः। यद्यपि तेषाम्, भदन्त! राज्ञां क्षत्रियाणां मूर्द्धावषिक्तानाम् ...पे॰... अध्यावसानानां अश्वयुद्धानि भवन्ति...पे॰... रथयुद्धानि भवन्ति ...पे॰... पदातियुद्धानि भवन्ति; तेषामपि, भदन्त! पदातियुद्धानां नास्ति गतिः नास्ति विषयः अधिवर्तमानयोः जरामरणयोः। सन्ति खलु पुनः, भदन्त! अस्मिन् राजकुले मंत्रिणः महामात्याः, यान् प्रभवन्ति आगतान् प्रत्यर्थिकान् मन्त्रिभिः भेदयितुम्। तेषामपि, भदन्त! मंत्रयुद्धानां नास्ति गतिः नास्ति विषयः अधिवर्तमानयोः जरामरणयोः। संविद्यते खलु पुनः, भदन्त! अस्मिन् राजकुले प्रभूतं हिरण्यसुवर्णं भूमिगतञ्चैव विहायसस्थञ्च, येन वयं प्रभवामः आगतान् प्रत्यर्थिकान् धनेन

(हिन्दी) ... पुण्यमय कुशल कर्म करें। भन्ते! यहाँ बड़े बड़े क्षत्रिय, अभिषेकप्राप्त, ऐश्वर्यमदोन्मत्त, सांसारिक कामभोगों की प्राप्ति के अत्यधिक इच्छुक, अन्य राज्यों के प्रदेशों पर विजय का इच्छुक, अनेक राजाओं के विशाल भूप्रदेशों को जीतकर उन पर शासन करने वाले राजाओं के परस्पर हस्तियुद्ध होते हैं, वे हस्तियुद्ध भी इस जरामरण भय के सम्मुख तुच्छ ही हैं। वे इसकी समता नहीं कर सकते। इसी तहर उन... राजाओं के परस्पर अश्वयुद्ध होते हैं....पूर्ववत्..... रथयुद्ध होते हैं...पैदल सेना युद्ध होते हैं वे भी इस जरामरण भय की समता नहीं कर सकते। वे युद्ध इस भय के सम्मुख तुच्छ ही हैं। ''भन्ते! इन्हीं राजाओं के ऐसे अनेक गुणवान् तथा बुद्धिमान् मन्त्री भी हैं, जो अपने बुद्धि वैभव से बड़े बड़े शत्रुओं को पीछे हटा देते हैं, पराजित कर देते हैं, परन्तु उनका यह अनुपम बुद्धिवैभव भी इस जरामरणभय के सम्मुख परास्त हो जाता है, वे इसके सामने पूर्णतः विवश हो जाते हैं। ''भन्ते! इन राजकुलों में असीम चल अचल सम्पत्ति है, राजकोषागार सोना चान्दी से भरे पड़े हैं, जिनके सहारे वे बड़े बड़े विरोधी को भी अपने अनुकूल बना सकते हैं,

उपलापेतुं। तेसम्पि, भन्ते, धनयुद्धानं नत्थि गति नत्थि विसयो अधिवत्तमाने जरामरणे। अधिवत्तमाने च मे, भन्ते, जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाया''ति?

''एवमेतं, महाराज, एवमेतं, महाराज! अधिवत्तमाने जरामरणे किमस्स करणीयं अञ्ञत्र धम्मचरियाय समचरियाय कुसलकिरियाय पुञ्ञकिरियाया''ति? इदमवोच भगवा...पे॰... सत्था–

''यथापि सेला विपुला, नभं आहच्च पब्बता।
समन्तानुपरियायेय्युं, निप्पोथेन्तो चतुद्दिसा॥
''एवं जरा च मच्चु च, अधिवत्तन्ति पाणिनो।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे।
न किञ्चि परिवज्जेति, सब्बमेवाभिमद्दति॥

(संस्कृतच्छाया) उपलापयितुम्। तेषामपि, भदन्त! धनयुद्धानां नास्ति गतिः नास्ति विषयः अधिवर्तमानयोः जरामरणयोः। अधिवर्तमानयोः च मे, भदन्त! जरामरणयोः किमस्य करणीयम् अन्यदत्र धर्मचर्याय अन्यत्र समचर्याया कुशलक्रियाया पुण्यक्रियायाश्च''इति?

''एवमेतत्, महाराज! एवमेतत्, महाराज! अधिवर्तमानयोः जरामरणयोः किमस्य करणीयम् अन्यदत्र धर्मचर्यायाः समचर्यायाः कुशलक्रियायाः पुण्यक्रियायाश्च''इति? इदमवोचत् भगवान्...पे॰... शास्ता–

''यथापि शैलाः विपुलाः, नभः आहत्य पर्वताः।
समन्तादनुपर्येयुः, निष्पीडयन्तः चतुर्दिशम्॥
''एवं जरा च मृत्युश्च, अधिवर्तन्ते प्राणिनः।
क्षत्रिये ब्राह्मणे वैश्ये, शूद्रे चण्डालपुक्कुसे।
न कमपि परिवर्जयति, सर्वमेवाभिमर्दते॥

(हिन्दी) परन्तु यह जरामरणभय उस साने चान्दी के युद्ध से भी नहीं जीता जा सकता। अब तो इस जरामरणभय के उपस्थित होने पर इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है कि हम धर्माचरण करें, अपने पर संयम रखें, कुशल कर्म करें, पुण्य क्रियाओं का सम्पादन करें।''

''ऐसी ही बात है, महाराज! ऐसी ही बात है। इस जरामरणभय के उपस्थित होने पर...पूर्ववत्....पुण्य क्रियाओं का सम्पादन करें। भगवान् ने यह कहा। साथ ही....पूर्ववत्....''जैसे बड़े बड़े विशाल शिलाखण्ड, गगनचुम्बी पर्वत चारों दिशाओं (के प्राणियों) को पीसते, दबाते हुए सभी ओर से आते हों।

''इसी तरह जरा एवं मृत्यु का प्राणियों पर चढते आना समझना चाहिये। इन दोनों से क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस-आदि कोई भी जाति में जन्म लिया हुआ प्राणी नहीं बचता।

''न तत्थ हत्थीनं भूमि, न रथानं न पत्तिया।
न चापि मन्तयुद्धेन, सक्का जेतुं धनेन वा॥
''तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
बुद्धे धम्मे च सङ्घे च, धीरो सद्धं निवेसये॥
''यो धम्मं चरि कायेन, वाचाय उद चेतसा।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती''ति॥ **ततियो वग्गो।**

तस्सुद्दानं– पुग्गलो अय्यिका लोको, इस्सत्तं पब्बतूपमा।
देसितं बुद्धसेट्ठेन, इमं कोसलपञ्चकं ति॥

कोसलसंयुत्तं समत्तं।

(संस्कृतच्छाया) ''न तत्र हस्तीनां भूमिः, न रथानां न पदातिनाम्।
न चापि मंत्रयुद्धेन, शक्या जेतुं धनेन वा॥
''तस्माद्धि पण्डितः पुरुषः, सम्पश्यन् अर्थमात्मनः।
बुद्धे धर्मे च सङ्घे च, धीरः श्रद्धां निवेशयेत्॥
''यो धर्मं चरति कायेन, वचसा उत् चेतसा।
इहैव तं प्रशंसन्ति, प्रेत्य स्वर्गे प्रमोदते''इति॥

तस्योद्दानम्– पुद्गलः आर्यिका लोकः, ईष्वर्थं पर्वतोपमान्।
देशितं बुद्धश्रेष्ठेन, इमं कौशलपञ्चकम् इति॥

(हिन्दी) ''ये दोनों किसी भी प्राणी को नहीं छोड़ते। सभी को पीसते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। न वे दोनों हस्तिसेना से पीछे हटाये जा सकते है, न अश्वसेना या पदातिसेना द्वारा पीछे हटाये जा सकते हैं।

''न कोई अतिचतुर बुद्धिमान मन्त्री अपने मन्त्र (बुद्धि) वैभव से इन्हें परास्त कर सकता है, न इन्हें धन का प्रलोभन दिया जा सकता है। अतः बुद्धिमान् पुरुष को अपना हितचिन्तन करते हुए।

''स्वचित्त को बुद्ध धर्म एवं सङ्घ की सेवा में धैर्य एवं श्रद्धा पूर्वक लगाते हुए, शरीर वाणी एवं मन से निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये।

''जो मन वचन एवं काया से धर्माचरण करता है, उसकी इस लोक में तो प्रशंसा होती ही है। वह देहपात के बाद स्वर्ग में भी असीम काल तक आनन्दोपभोग करता है''।

इस कौशल संयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची- इस संयुक्त का तीन वर्गों में विभाजन कर पच्चीस सूत्रों का व्याख्यान पञ्चकरूप से किया गया है। (पहले दो वर्गों की सूची पीछे यथास्थान दी जा चुकी है, जिसमें चार पञ्चकों का परिगणन किया जा चुका है। अब) अन्तिम सूत्र-पञ्चक की सूची यह है- 1. पुद्गलसूत्र, 2. आर्यिकासूत्र, 3. लोकसूत्र, 4. इष्वर्थसूत्र एवं 5. पर्वतोपम सूत्र। (इस कौशलसंयुक्त में भगवान् का राजा प्रसेनजित कौशल से संवाद हुआ है, अतः कौशल से सम्बद्ध होने के कारण इस संयुक्त का नाम 'कौशलसंयुक्त' उचित ही रखा गया है।)

******

4. मारसंयुत्तं

1. पठमवग्गो

4.1.1. तपोकम्मसुतं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजापालन्यग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– ''मुत्तो वतम्हि ताय दुक्करकारिकाय। साधु मुत्तो वतम्हि ताय अनत्थसंहिताय दुक्करकारिकाय। साधु वतम्हि मुत्तो बोधिं समज्झगं''ति।

अथ खो मारो पापिमा भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि –

''तपोकम्मा अपक्कम्म, येन न सुज्झन्ति माणवा।
असुद्धो मञ्ञसि सुद्धो, सुद्धिमग्गा अपरद्धो''ति॥

अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि–

1.(संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् उरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनायाः तीरे अजापालन्यग्रोधमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। अथ खलु भगवतः रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत– "मुक्तः वतास्मि तस्याः दुष्करकारिकायाः। साधु मुक्तः वतास्मि तस्याः अनर्थसंहितायाः दुष्करकारिकायाः। साधु वतास्मि मुक्तः बोधिं समध्यगम्"इति।

अथ खलु मारः पापी भगवतः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"तपोकर्मणः अपक्रम्य, यत्र न शुध्यन्ति माणवाः।
अशुद्धं मन्यसे शुद्धः, शुद्धिमार्गात् अपराद्धः"इति॥

अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी" इति विदित्वा मारं पापिनं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट-

---

1.(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् प्रथम सम्बोधि प्राप्त कर उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के मन में यह विचार उठा - ''अब मैं दुष्कर क्रियाओं से मुक्त हो चुका हूँ। यह अच्छा ही हुआ कि मैं अनर्थ करने वाली इन दुष्कर क्रियाओं से मुक्त हो गया। यह भी अच्छा ही हुआ कि स्थिर एवं स्मृतवान् रहकर मैंने उससे मुक्त होकर सम्बोधि प्राप्त कर ली।''

तब, उसी समय पापी मार भगवान् का यह मनोविचार अपने मन से जानकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया और आकर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जिस तप कर्म से मनुष्य शुद्ध होता है उस तप कर्म से तुम दूर हो। चित्तशुद्धि का यह सरल मार्ग छोड़ कर तुम अशुद्ध अपने आप को शुद्ध समझते हो।

तब भगवान् ने ''यह पापी मार है''- ऐसा जानकर उस पापी मार को गाथा के द्वारा उत्तर दिया-

''अनत्थसंहितं ञत्वा, यं किञ्चि अमरं तपं।
सब्बं नत्थावहं होति, पियारित्तं व धम्मनि॥
''सीलं समाधिपञ्ञं च, मग्गं बोधाय भावयं।
पत्तोस्मि परमं सुद्धिं, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति, दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.2. हत्थिराजवण्णसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजापालन्यग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो भयं सम्भितत्वं लोमहंसं उप्पादेतुकामो महन्तं हत्थिराजवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा

(संस्कृतच्छाया) "अनर्थसंहितं ज्ञात्वा, यत् किञ्चित् अमरं तपः।
सर्वं नास्ति अर्थावहं भवति, कर्णारित्रमिव धर्मे॥
"शीलं समाधिप्रज्ञाञ्च, मार्गं बोधाय भावयन्।
प्राप्तोऽस्मि परमां शुद्धिम्, निहतः त्वमसि अन्तक!"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति, दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।।

2. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् उरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनायाः तीरे अजापालन्यग्रोधमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्र्यन्धकारतमिस्रायाम् अभ्यवकाशे निषण्णो भवति, देवः च एकमेकं स्पर्शायते। अथ खलु मारः पापी भगवतो भयं स्तम्भितत्वं लोमहर्षम् उत्पादयितुकामः, महान्तं हस्तिराजवर्णम् अभिनिर्माय यत्र भगवान्

(हिन्दी) ''मुक्तिलाभहेतु सभी प्रकार की तपश्चर्याओं को व्यर्थ निष्प्रयोजन समझ कर मैनें इनको उसी प्रकार त्याग दिया है, जैसे कोई बुद्धिमान् पुरुष भूमि पर पड़ी, डाँड-पतवार रहित नाव को त्याग दिया करता है।

''मैंने तो शील, समाधि एवं प्रज्ञा द्वारा बुद्धत्वप्राप्ति का अभ्यास कर परम चित्तशुद्धि प्राप्त कर ली है। हे अन्तक! मैंने तुम पर विजय प्राप्त कर ली।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'मुझको भगवान् ने पहचान लिया,सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

2. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् प्रथम सम्बोधि प्राप्त कर उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् काली अन्धकारमयी रात्रि में खुले आकाश के नीचे बैठे थे। रिमझिम बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय पापी मार, भगवान् को डरा तथा कँपा और रोंगटे खड़ा कर देने की इच्छा से एक विशाल विकराल हाथी का रूप धरकर जहाँ भगवान् थे वहाँ

तेनुपसङ्कमि। सेय्यथापि नाम महाअरिट्ठको मणि, एवमस्स सीसं होति। सेय्यथापि नाम सुद्धं रूपियं, एवमस्स दन्ता होन्ति। सेय्यथापि नाम महती नङ्गलीसा, एवमस्स सोण्डो होति। अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि''इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि–

''संसरं दीघमद्धानं, वण्णं कत्वा सुभासुभं।
अलं ते तेन पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.3. सुभसुतं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजापालन्यग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापि, भगवतो भयं

(संस्कृतच्छाया) तत्रोपसमक्रमीत्। तद्यथापि नाम महाअरिष्टकः मणिः एवमस्य शिरो भवति। तद्यथापि नाम शुद्धं रूप्यम्, एवमस्य दन्ता भवन्ति। तद्यथापि नाम महती लाङ्गलीषा, एवमस्य शुण्डो भवति। अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी"इति विदित्वा मारं पापिनं गाथया अध्यभाषिष्ट-

संसरणं दीर्घमध्वानम्, वर्णं कृत्वा शुभाशुभम्।
अलं ते तेन पापिन्, निहतः त्वमसि अन्तक!"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् उरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनायाः तीरे अजापालन्यग्रोधमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्र्यन्धकारतमिस्रायाम् अभ्यवकाशे निषण्णो भवति, देवश्च एकमेकं स्पर्शायते। अथ खलु मारः पापी, भगवतः भयं

(हिन्दी) पहुँचा। उसका शिर इतना लम्बा चौड़ा था मानों कोई काले पर्वत की चट्टान हो। उसके दाँत शुद्ध रजत के समान चमक रहे थे। उसकी सूँड ऐसी दिखायी दे रही थी मानो कोई लम्बा चौड़ा हल हो। तब भगवान् ने ''यह पापी मार है''- ऐसा जानकर उस पापी मार को गाथा के द्वारा कहा -

''अरे पापी! तूँ इस विशाल संसार में नानाविध भले बुरे रुप धरकर फिरता रहता है। अब तूँ अपने इस दुष्कर्म को समाप्त कर दे। अन्तक! अब तेरे दुर्दिन आ चुके हैं।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

3. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् प्रथम सम्बोधि को प्राप्तकर उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् काली अन्धकारमयी रात्रि में खुले

सम्भितत्वं लोमहंसं उप्पादेतुकामो, येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे उच्चावचा वण्णनिभा उपदंसेति, सुभा चेव असुभा च। अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि–

''संसरं दीघमद्धानं, वण्णं कत्वा सुभासुभं।
अलं ते तेन पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक॥
''ये च कायेन वाचाय, मनसा च सुसंवुता।
न ते मारवसानुगा, न ते मारस्स बद्धगू''ति॥

अथ खो मारो...पे.... तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.4 पठममारपाससुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

(संस्कृतच्छाया) स्तम्भितत्वं रोमहर्षम्, उत्पादयितुकामः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः अविदूरे उच्चावचं वर्णनिभम् उपदर्शयति, शुभं चैव अशुभं च। अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी" इति विदित्वा पापिनं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट-

"संसरणं दीर्घमध्वानम्, वर्ण कृत्वा शुभाशुभम्।
अलं ते तेन पापिन्, निहतः त्वमसि अन्तक!॥
"ये च कायेन वाचा, मनसा च सुसंवृता।
न ते मारवशानुगाः, न ते मारस्य बन्धगाः"इति॥

अथ खलु मारः....पे.... तत्रैवान्तर्दधौ"इति।

4. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् वाराणस्यां विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत— "भिक्षवः!"इति। "भदन्त!"इति ते भिक्षवः भगवन्तं प्रत्यश्रौषुः।

(हिन्दी) आकाश के नीचे बैठे थे। रिमझिम बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय पापी मार, भगवान् को डरा तथा कँपा और रोंगटे खड़ा कर देने की इच्छा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, तथा भगवान् को डराने तथा उद्विग्न करने के लिये उनके सम्मुख छोटे बड़े, अच्छे बुरे रूपों में, आकृतियों में प्रकट होने लगा। तब भगवान् ने ''यह पापी मार है''- ऐसा जानकर उस पापी मार को गाथा के द्वारा कहा-

''अरे पापी! तूँ इस विशाल संसार में नानाविध भले बुरे रुप धरकर फिरता रहता है। अब तूँ अपने इस दुष्कर्म को समाप्त कर दे। अन्तक! अब तेरे दुर्दिन आ चुके हैं।''

''जो साधक शरीर, वाणी एवं मन से संयत रहते हैं, वे मार के वश में नहीं होते, वे मार के बन्धन में नहीं पड़ते।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

भगवा एतदवोच– ''मय्हं खो, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरा विमुत्ति अनुप्पत्ता, अनुत्तरा विमुत्ति सच्छिकता। तुम्हे पि, भिक्खवे, योनिसो मनसिकारा योनिसो सम्मप्पधाना अनुत्तरं विमुत्तिं अनुपापुणाथ, अनुत्तरं विमुत्तिं सच्छिकरोथा''ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''बद्धोसि मारपासेन, ये दिब्बा ये च मानुसा।
मारबन्धनबद्धोसि, न मे समण मोक्खसी''ति॥
''मुत्तोहं मारपासेन, ये दिब्बा ये च मानुसा।
मारबन्धनमुत्तोम्हि, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायी ति।

(संस्कृतच्छाया) भगवान् एतदवोचत्— मह्यं खलु भिक्षवः! योनिशो मनसिकाराद् योनिशः समप्रधाना अनुत्तरा विमुक्तिरनुप्राप्ता, अनुत्तरा विमुक्तिः साक्षात्कृता। यूयमपि, भिक्षवः! योनिशो मनसिकारात् समप्रधानाम् अनुत्तरां विमुक्तिम् अनुप्राप्नुत, अनुत्तरां विमुक्तिं साक्षात्कुरुत"इति। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"बद्धोऽसि मारपाशेन, ये दिव्या ये च मानुषाः।
मारबन्धनबद्धोऽसि, न वै श्रमण! मोक्षयसे"इति॥
"मुक्तोऽहं मारपाशेन, ये दिव्याः ये च मानुषाः।
महाबन्धनमुक्तोऽहम्, निहतः त्वमसि अन्तक!"इति॥

अथ खलु मारः.....पे..... तत्रैवान्तर्दधौ इति।

4.(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ!''। "भदन्त"! कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। तब भगवान् बोले-

''भिक्षुओ! अपने मन को उचित मार्ग में लगाकर तथा उचित उत्साह के साथ साधना कर मैने यह अलौकिक विमुक्ति पायी है, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार किया है। तुम भी, भिक्षुओ! अपने मन को उचित मार्ग पर लगाकर उचित उत्साह के साथ साधना करते हुए इस अलौकिक विमुक्ति को प्राप्त करो, अलौकिक विमुक्ति का साक्षात्कार करो।'' तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर यों बोला-

'तुम मेरे जाल में बँध गये हो, ये जाल दिव्य और मनुष्य दोनों लोकों में फैले हुए हैं। क्योंकि तुम मार के बन्धन में बंध चुके हो, अतः हे श्रमण! तुम्हारी किसी भी दशा में मुक्ति नहीं हो सकती।''

''दिव्य एवं मनुष्य लोकों में फैले हुए सभी प्रकार के मार के जाल से मैं मुक्त हो चुका हूँ। क्योंकि मार के बन्धन से मैं मुक्त हो चुका हूँ, अतः हे अन्तक! तुम जीत लिये गये।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि.... पूर्ववत्..... उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

4.1.5. दुतियमारपाससुत्तं

एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''मुत्ताहं, भिक्खवे, सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा। तुम्हेपि, भिक्खवे, मुत्ता सब्बपासेहि ये दिब्बा ये च मानुसा। चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो। अहं पि, भिक्खवे, येन उरुवेला सेनानिगमो तेनुपसङ्कमिस्सामि धम्मदेसनाया''ति।

5.(संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् वाराणस्यां विहरति ऋषिपतने मृगदावे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत— "भिक्षवः!"इति। "भदन्त!"इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

मुक्तोऽहम्, भिक्षवः! सर्वपाशेभ्यः ये दिव्याः ये च मानुषाः। यूयमपि भिक्षवः, मुक्ताः सर्वपाशेभ्यः ये दिव्या ये च मानुषाः। चरथ भिक्षवः! चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकाऽनुकम्पायै अर्थाय हिताय सुखाय देवमनुष्याणाम्। मा एकेन द्वौ गच्छताम्। देशयेत् भिक्षवः, धर्मम् आदिकल्याणं मध्येकल्याणं पर्यवसानकल्याणं सार्थं सब्यञ्जनं केवलंपूरिपूर्णं परिशुद्धं ब्रह्मचर्यं प्रकाशयेत। सन्ति सत्वा अल्परजस्कजातीयाः अश्रवणतो धर्मस्य परिहीयन्ते। भविष्यन्ति धर्मस्य अज्ञातारः। अहमपि, भिक्षवः, यत्र ऊरुवेला सेनानिग्रामः तत्रोपसंक्रमिष्यामि धर्मदेशनायै"इति।

5.(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ!'' "भदन्त"! कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। तब भगवान् बोले-

''भिक्षुओं! मैं मनुष्य तथा स्वर्ग लोक के जितने भी जाल हैं उन सभी से मैं मुक्त हो चुका हूँ। ''भिक्षुओं! तुम भी मनुष्य तथा स्वर्ग लोक के जितने भी जाल हैं उन सभी से तुम भी मुक्त हो चुके हो। भिक्षुओं! बहुजनों के हित के लिये, बहुजनों के सुख के लिये, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं तथा मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये लोक में विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओं! तुम आदि में कल्याणकारक मध्य में कल्याणकारक तथा अन्त में कल्याणकारक मेरे द्वारा उपदिष्ट धर्म का प्रचार करो। अर्थ एवं व्यंजन सहित, एकान्ततः पूर्ण, परिशुद्ध इस धर्मसाधना का प्रकाश करो। संसार में अल्प दोष वाले भी प्राणी हैं। तुम्हारे द्वारा ऐसा उत्साह न करने से उनकी, धर्मश्रवण न करने से, हानि ही होगी। तुमसे सुनकर वे धर्मज्ञ बन पायेंगे। भिक्षुओं! मैं भी जहाँ ऊरूवेला के निकट सेनानी ग्राम है वहाँ धर्म-

अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''बद्धोसि सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनबद्धोसि, न मे समण मोक्खसी''ति॥
''मुत्ताहं सब्बपासेहि, ये दिब्बा ये च मानुसा।
महाबन्धनमुत्तोम्हि, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.6. सप्पसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो भयं सम्भितत्वं लोमहंसं उप्पादेतुकामो महन्तं सप्पराजवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। सेय्यथापि नाम महती

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"बद्धोऽसि सर्वपाशेभ्यः, ये दिव्या ये च मानुषाः।
मारबन्धनबद्धोऽसि, न वै श्रमण मोक्षयसे"इति॥
"मुक्तोऽहं सर्वपाशेभ्यः, ये दिव्याः ये च मानुषाः।
महाबन्धनमुक्तोऽहम्, निहतः त्वमसि अन्तक"इति॥

अथ खलु मारः.....पे॰..... तत्रैवान्तर्दधौ इति।

6. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्र्यन्धकारतमिस्रायाम् अभ्यवकाशे निषण्णः भवति, देवः च एकमेकं स्पर्शायते। अथ खलु मारः पापी, भगवतः भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षम् उत्पादयितुकामः महान्तं सर्पराजवर्णम् अभिनिर्माय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्। तद्यथापि नाम महती

(हिन्दी) देशना हेतु जाऊँग।'' तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर गाथा में बोला-

''तुम सभी बन्धनों में बँध गये हो, ये जाल दिव्य और मनुष्य दोनों लोकों में फैले हुए हैं। क्योंकि तुम मारके बन्धन में बंध चुके हो, अतः हे श्रमण! तुम्हारी किसी भी दशा में मुक्ति नहीं हो सकती।''

''दिव्य एवं मनुष्य लोकों में फैले हुए सभी बन्धनों से मैं मुक्त हो चुका हूँ। क्योंकि मार के बन्धन से मैं मुक्त हो चुका हूँ, अतः हे अन्तक! तुम जीत लिये गये।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि .... पूर्ववत्..... हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

6. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् काली अन्धकारमयी रात्रि में खुले आकाश के नीचे बैठे थे। रिमझिम बूँदाबाँदी भी हो रही थी। तब पापी मार ने भगवान् को भयभीत करने के लिये, रोमांचित करने के लिये, उद्विग्न करने के लिये

एकरुक्खिका नावा, एवमस्स कायो होति। सेय्यथापि नाम महन्तं सोण्डिकाकिळञ्जं, एवमस्स फणो होति। सेय्यथापि नाम महती कोसलिका कंसपाति, एवमस्स अक्खीनि भवन्ति। सेय्यथापि नाम देवे गळगळायन्ते विज्जुल्लता निच्छरन्ति, एवमस्स मुखतो जिव्हा निच्छरति। सेय्यथापि नाम कम्मारगग्गरिया धममानाय सद्दो होति, एवमस्स अस्सासपस्सासानं सद्दो होति।

अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि अज्झभासि–

''यो सुञ्ञगेहानि सेवति, सेय्यो सो मुनि अत्तसञ्ञतो।
वोस्सज्ज चरेय्य तत्थ सो, पतिरूपञ्हि तथाविधस्स तं॥
चरका बहू भेरवा बहू, अथो डंससरीसपा बहू।
लोमम्पि न तत्थ इञ्जये, सुञ्ञागारगतो महामुनि॥

(संस्कृतच्छाया) एकवृक्षिका नौका एवमस्य कायो भवति। तद्यथापि नाम महती शुण्डाकृतिः एवमस्य फणो भवति। तद्यथापि नाम महती कौशलिका कंसपात्री, एवमस्य अक्षिणी भवतः। तद्यथापि नाम देवाः गर्जन्ति विद्युल्लता निस्सरन्ति, एवमस्य मुखतः जिह्वा निस्सरति। तद्यथापि नाम कर्मारभस्त्राया धमनेन शब्दो भवति, एवमस्य आश्वासप्रश्वासानां शब्दो भवति।

अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी" इति विदित्वा मारं पापिनं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट-

"यः शून्यगेहानि सेवते, श्रेष्ठः स मुनि आत्मसंयतः।
व्यवसृष्ट चरेत् तत्र सः, प्रतिरूपं हि तथाविधस्य तत्॥
चरका बहवो भैरवा बहवः, अथ दंशसरीसृपा बहवः।
लोमापि न तत्र एजयति, शून्यागारगतो महामुनिः॥

(हिन्दी) एक भयङ्कर विशाल सर्प का रूप धारण कर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। जैसे किसी एक ही बड़े वृक्ष के तख्ते से बनी कोई विशाल नौका हो ऐसा उसका शरीर था। तथा पर्वतों के बीच बने प्राकृतिक जलाशय की भाँति उसका विस्तृत फन था। जैसे कोशल की बनी थाली हो वैसा उसकी आखे थी। जैसे गड़गड़ाते मेघ से बिजली कड़कती हो वैसा ही उसके मुँह से जीभ लपलपाती थी। जैसे लौहकार की भाथी तीव्र वेग से वायु फेंकती है वैसी ही उसके साँस लेने और छोड़ने से शब्द होता था।

तब भगवान् ने ''यह पापी मार है''- ऐसा जानकर उस पापी मार को गाथा के द्वारा कहा-

''जो आत्मसंयत मुनि एकान्तवास करता है, वही श्रेष्ठ कहलाता है। सभी सांसारिक वस्तुओं का मोह त्याग कर वहाँ विचरण करे, वैसे पुरुष के लिये ऐसा आचरण सर्वथा अनुकूल है।

''वहाँ तरह तरह के जीव मच्छर, डाँस, साँप, बिच्छू आदि विचरण करते हैं, उन्हें देखकर उनके भय से वह एकान्तवास करने वाला मुनि अपना एक रोम भी नहीं हिलाता डुलाता।''

''नभं फलेय्य पथवी चलेय्य, सब्बेपि पाणा उद सन्तसेय्युं।
सल्लम्पि चे उरसि पकप्पयेय्युं, उपधीसु ताणं न करोन्ति बुद्धा''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.7. सुपतिसुतं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो भगवा बहुदेवरतिं अब्भोकासे चङ्कमित्वा रत्तिया पच्चूससमयं पादे पक्खालेत्वा विहारं पविसित्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किं सोप्पसि किं नु सोप्पसि, किमिदं सोप्पसि दुब्भगो विय।
सुञ्ञमगारं ति सोप्पसि, किमिदं सोप्पसि सूरिये उग्गते''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "नभः स्फुटेत् पृथवी चलेत्, सर्वे अपि प्राणिनः उत सन्त्रसेयुः।
शल्यमपि चेद् उरसि प्रक्षिप्तम्, उपधिषु त्राणं न कुर्वन्ति बुद्धाः"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

7. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खलु भगवान् बहव्यामेवरात्रौ अभ्यवकाशे चङ्क्रम्य रात्रौ प्रत्यूषसमये पादौ प्रक्षाल्य विहारं प्रविश्य दक्षिणेन पार्श्वेन सिंहशय्याम् अकल्पयत् पादे पादम् अत्याधाय स्मृतिमान् सम्प्रज्ञानः उत्थानसज्ञां मनसि कुर्वन्। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"किं स्वपिषि किं न स्वपिषि, किमिदं स्वपिषि दुर्भग इव।
शून्यमगारम् इति स्वपिषि, किमिदं स्वपिषि सूर्ये उद्गते"इति॥

(हिन्दी) ''भले ही आकाश फट जाय, पृथ्वी काँपने लगे, सभी प्राणी किसी कारण भयभीत होने लगें। यदि उसकी छाती में भाले से भी आघात किया जाय तो भी बुद्ध सांसारिक वस्तुओं में अपना आश्रय नहीं करते।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

7. एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। तब, भगवान् बहुत प्रहर तक खुले आकाश के नीचे चंक्रमण करते रहे। रात के अन्तिम प्रहर में चरण धोकर विहार में प्रविष्ट होकर दक्षिण से सिंहशय्या लगा कुछ हटाते हुये पैर पर पैर रखकर स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होकर मन में उत्थानसंज्ञा की भावना करते हुए लेट गये। तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर यह गाथा बोला- श्रमण! तुम सो रहे हो या जाग रहे हो? यदि सो रहे हो तो ऐसे संज्ञाहीन के समान क्या सो रहे हो? क्या शून्य गृह पाकर सो रहे हो! अरे, सूर्योदय के बाद भी, तुम सो ही रहे हो!

''यस्स जालिनी विसत्तिका, तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
सब्बूपधिपरिक्खया बुद्धो, सोप्पति किं तवेत्थ मारा''ति॥

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.8. नन्दतिसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोभि तथेव नन्दति।
उपधीहि नरस्स नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधी''ति॥
''सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, गोमा गोभि तथेव सोचति।
उपधीहि नरस्स सोचना, न हि सो सोचति यो निरूपधी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''यस्य जालिनी विषाक्तिका, तृष्णा नास्ति कुहचित् नेतुम्।
सर्वोपाधिपरीक्षयात् बुद्धः, स्वपिति किं तवात्र मार"इति॥

अथ खलु मारः....पे॰..... तत्रैवान्तर्दधौ इति।

8. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''नन्दति पुत्रैः पुत्रवान्, गोमान् गोभिः तथैव नन्दति।
उपधिभ्यः नरस्य नन्दना, न हि सः नन्दति यः निरुपधिः"इति॥
''शोचति पुत्रैः पुत्रवान, गोमान् गोभिः तथैव शोचति।
उपधिभ्यः नरस्य सोचना, न हि सः शोचति यः निरुपधिः"इति॥

(हिन्दी) ''जिनको बहकाने के लिये सांसारिक बन्धनों में बाँधने वाली तथा विषसम्पृक्त तृष्णा कहीं आस पास भी नहीं है, जो सभी सांसारिक उपाधियो की प्राप्ति की आशा से वितृष्ण होकर बुद्ध हो चुके हैं, वे लेटे हैं! रे मार! इसमें तुम्हारा क्या?

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि "भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया" दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

8. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर यों गाथा बोला-

''पुत्रों वाला पुत्रों से आनन्द मानता है, तथा वैसे ही गौओं वाला गौओं से आनन्द मानता है। संसार में आसक्त पुरुष सांसारिक वस्तुओं से आनन्द मानता है। परन्तु वह अकिंचन क्या आनन्द मनायेगा जिसके पास अपना कहने को कुछ है ही नहीं!''

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.9. पठमआयुसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''अप्पमिदं, भिक्खवे, मनुस्सानं आयु। गमनीयो सम्परायो, कत्तब्बं कुसलं, चरितब्बं ब्रह्मचरियं। नत्थि जातस्स अमरणं। यो, भिक्खवे, चिरं जीवति, सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो''ति।

अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

9. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति बेलुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत– "भिक्षवः!"इति। "भदन्त!"इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

अल्पमिदम्, भिक्षवः!, मनुष्याणाम् आयुः। गमनीयः सम्परायः, कर्त्तव्यं कुशलम्, चरितव्यं ब्रह्मचर्यम्। नास्ति जातस्य अमरणम्। यो भिक्षवः! चिरं जीवति स वर्षशतम् अल्पं वा भूयात्"इति।

अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट–

(हिन्दी) ''पुत्रों वाला पुत्रों की चिन्ता में रहता है तथा गौओं वाला गौओं की चिन्ता में। संसार में आसक्त पुरुष भी सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की चिन्ता में रहता है। परन्तु जिसकी किसी सांसारिक वस्तु में आसक्ति ही नहीं है वह किसकी चिन्ता करेगा।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि "भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया" दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

9. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ!'' "भदन्त"! कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। तब भगवान् बोले- ''भिक्षुओं! मनुष्यों की आयु अल्प ही है। शीघ्र ही परलोक जाना है। अतः पुण्य का अर्जन करना चाहिये। धर्मसाधना करनी चाहिये। जो यहाँ जन्म लेता है वह मृत्यु से बच नहीं सकता। भिक्षुओं! यहाँ जो बहुत जीता है सौ वर्ष जीता है, उससे कुछ कम या कुछ अधिक।''

तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर भगवान् को यों गाथा बोला-

''दीघमायु मनुस्सानं, न नं हीळे सुपोरिसो।
चरेय्य खीरमत्तो व, नत्थि मच्चुस्स आगमो''ति॥
''अप्पमायु मनुस्सानं, हीळेय्य नं सुपोरिसो।
चरेय्यादित्तसीसोव, नत्थि मच्चुस्स नागमो''ति॥

अथ खो मारो...पे॰... तत्थेवन्तरधायी ति।

4.1.10. दुतियआयुसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा...पे॰...एतदवोच– ''अप्पमिदं, भिक्खवे, मनुस्सानं आयु। गमनीयो सम्परायो, कत्तब्बं कुसलं, चरितब्बं ब्रह्मचरियं। नत्थि जातस्स अमरणं। यो, भिक्खवे, चिरं जीवति, सो वस्ससतं अप्पं वा भिय्यो''ति।

अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) "दीर्घमायुः मनुष्याणाम्, न तत् हिलेत् सत्पुरुषः।
चरेत् क्षीरमात्रम् इव, नास्ति मृत्योः आगमः"इति॥
"अल्पमायुः मनुष्याणाम्, हिलेत् तत् सत्पुरुषः।
चरेदादित्यशीर्ष इव, नास्ति मृत्योः नागमः"इति॥

अथ खलु मारः.....पे॰..... तत्रैवान्तर्दधौ इति।

10. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खलु भगवान् .....पे॰..... एतदवोचत्— अल्पमिदम्, भिक्षवः! मनुष्याणाम् आयुः। गमनीयः साम्परायः, कर्त्तव्यं कुशलम्, चरितव्यं ब्रह्मचर्यम्। नास्ति जातस्य अमरणम्। यो, भिक्षवः! चिरं जीवति, स वर्षशतम् अल्पं वा भूयात्"इति।

अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

(हिन्दी) ''मनुष्यों की आयु बहुत लम्बी है, सत्पुरुष इस की चिन्ता न करें। दूध पीते बच्चे की तरह रहें; क्यों कि मृत्यु अभी नहीं आ रही है।''

''मनुष्यों की आयु बहुत अल्प है, अतः सत्पुरुष इस में सचेत रहें। वे यही समझें कि शिर पर अग्नि प्रज्वलित है। मृत्यु के आगमन की कोई समयसीमा नहीं है कि वह अमुक समय ही आयेगी।'' तब, वह पापी मार, यह समझकर .... पूर्ववत्..... हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

10. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया- ''भिक्षुओ!'' "भदन्त"! कह कर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। तब भगवान् बोले- भगवान् बोले-''भिक्षुओं! मनुष्यों की आयु अल्प ही है। शीघ्र ही परलोक जाना है। अतः पुण्य का अर्जन करना चाहिये। धर्मसाधना करनी चाहिये। जो यहाँ जन्म लेता है वह मृत्यु से बच

''नाच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं नूपरुज्झति।
आयु अनुपरियायति मच्चानं, नेमीव रथकुब्बरं''ति॥
''अच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं उपरुज्झति।
आयु खीयति मच्चानं, कुन्नदीनंव ओदकं''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

पठमो वग्गो।

तस्सुद्दानं–

तपोकम्ममञ्च नागो च, सुभं पासेन ते दुवे।
सप्पो सुपति नन्दनं, आयुना अपरे दुवेति॥

(संस्कृतच्छाया) ''नातियन्ति अहोरात्राः, जीवितं नोपरुध्यति।
आयुरनुपरियाति मर्त्यानाम्, नेमिरिव रथाक्षधुरम्"इति॥
''अतियन्ति अहोरात्राः, जीवितम् उपरुध्यति।
आयुः क्षीयते मर्त्यानाम्, कुनदीनाम् इवोदकम्"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

प्रथमः वर्गः।

तस्योद्दानम्–

तपोकर्म च नागश्च, शुभः पाशेन ते द्वे।
सर्पः स्वपिति नन्दनः, आयुषा अपरे द्वे इति॥

(हिन्दी) नहीं सकता। भिक्षुओं! यहाँ जो बहुत जीता है सौ वर्ष जीता है, उससे कुछ कम या कुछ अधिक।'' तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर यों बोला-

''दिन एवं राति चले नहीं जा रहे हैं, जीवन का प्रवाह कभी रुकता नहीं है। मनुष्यों की आयु उनके चारों ओर उसी तरह घूमती रहती है जैसे गाड़ी का पहिया धुरे पर घूमता है।''

''दिन एवं राति व्यतीत होते जा रहे हैं। जीवन का प्रवाह निर्वाण में जा कर रुक जाता है। मनुष्यों की आयु उसी तरह क्षीण होती जा रही है जैसे छोटी-छोटी नदियों का बाढ़ में चढ़ा हुआ जल क्षीण हो जाया करता है।'' सुत्त

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में तपःकर्मसुत्त, हस्तिराजवर्णसुत्त, शुभसुत्त, प्रथम मारपाशसुत्त, द्वितीय मारपाशसुत्त, सर्पसुत्त, स्वपितिसुत्त, नन्दतिसुत्त, प्रथम आयुःसुत्त एवं द्वितीय आयुःसुत्त है।

2. दुतियवग्गो

4.2.1. पासाणसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो भयं सम्भितत्वं लोमहंसं उप्पादेतुकामो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे महन्ते पासाणे पदालेसि।

अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि–

''सचेपि केवलं सब्बं, गिज्झकूटं चलेस्ससि।
नेव सम्माविमुत्तानं, बुद्धानं अत्थि इञ्जितं''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

1.(संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति गृध्रकूटे पर्वते। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्र्यन्धकारतमिस्रायाम् अभ्यवकाशे निषण्णो भवति, देवः च एकमेकं स्पर्शायते। अथ खलु मार पापीः भगवतो भयं स्तम्भितत्वं लोमहर्षम् उत्पादयितुकामः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः अविदूरं महत् पाषाणं पपदालि।

अथ खलु भगवान् "मारः अयं पापी" इति विदित्वा मारं पापिनं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"सचेत् अपि केवलं सर्वम्, गृध्रकूटं चालयिष्यति।
नैव सम्यग्विमुक्तानाम्, बुद्धानाम् अस्ति इङ्गनम्"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

1.(हिन्दी) एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् काली अन्धकारमयी रात्रि में खुले आकाश के नीचे बैठे थे, रिमझिम बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय पापी मार, भगवान् को डरा तथा कँपा और रोंगटे खड़ा कर देने की इच्छा से जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, आकर पर्वत से बड़े बड़े विशालखण्ड लुढकाने लगा।

तब भगवान् ने ''यह पापी मार है''- ऐसा जानकर उस पापी मार को गाथा के द्वारा कहा-

चाहे सारे गृधकूट पर्वत को मुझ पर ढकेल दे तो भी मेरा मन विचलित नहीं होगा; क्योंकि सम्यग्विमुक्त बुद्धों का चित्त किसी बड़े से बड़े कारण से भी विचलित नहीं हुआ करता''।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

4.2.2. किन्नुसीहसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि– ''अयं खो समणो गोतमो महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया''ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किन्नु सीहोव नदसि, परिसायं विसारदो।
पटिमल्लो हि ते अत्थि, विजितावी नु मञ्ञसी''ति॥
''नदन्ति वे महावीरा, परिसासु विसारदा।
तथागता बलप्पत्ता, तिण्णा लोके विसत्तिकं''ति॥

2.(संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् महत्या परिषदा परिवृतः धर्मम् अदिशत्।

अथ खलु मारस्य पापिनः एतदभूत्- "अयं खलु श्रमणः गौतमः महत्या परिषदा परिवृतः धर्मम् अदिशत्। यन्नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्राम्येयं विचक्षुकर्मणे"इति। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

"किन्नु सिंहः इव नदसि, परिषदि विशारदः।
प्रतिमल्लः हि ते अस्ति, विजितः नु मन्यसे"इति॥
"नदन्ति वै महावीराः, परिषत्सु विशारदाः।
तथागताः बलप्राप्ताः, तीर्णाः लोकान् विशक्तिकाः"इति॥

2.(हिन्दी) एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय वे भगवान् विशाल धर्मपरिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

तब पापी मार को यह विचार हुआ- "यह श्रमण गौतम इस विशाल धर्मपरिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहा हैं। तो क्यों न मैं इस समय इन श्रमण गौतम के पास चलकर लोगों के मत को फेर दूँ!" यह सोचकर उस पापी मार ने भगवान् के सम्मुख जा कर यह गाथा कही-

"इस सभा में बैठकर तू क्यो सिंह के समान गरज रहा है। क्या तू समझता है कि तेरा यहाँ कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है!"

"जो महावीर होते हैं वे ऐसी धर्मसभाओं में इसी तरह निर्भय होकर सिंह के समान गर्जन किया करते हैं; क्यों कि बलशाली बुद्ध विगततृष्ण होकर इस भवसागर को पार कर चुके हैं।"

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.2.3. सकलिकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति मद्दकुच्छिस्मिं मिगदाये। तेन खो पन समयेन भगवतो पादो सकलिकाय खतो होति, भुसा सुदं भगवतो वेदना वत्तन्ति सारीरिका दुक्खा तिब्बा खरा कटुका असाता अमनापा। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेति अविहञ्ञमानो। अथ खो भगवा चतुग्गुणं सङ्घाटिं पञ्ञापेत्वा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''मन्दिया नु खो सेसि उदाहु कावेय्यमत्तो, अत्था नु ते सम्पचुरा न सन्ति।
एको विवित्ते सयनासनम्हि, निद्दामुखो किमिदं सोप्पसे वा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः" इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति मद्रकुक्षौ मृगदावे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवतः पादौ शकलिकया क्षतः भवति। भृशं स्वित् भगवतः वेदना वर्तते शारीरिकाः दुःखाः तीव्राः खराः कटुकाः असहायाः अमनापाः। ता स्वित् भगवतः स्मृतिः संप्रजन्यः अधिवासयति अविहन्यमानः। अथ खलु भगवान् चतुर्गुणं सङ्घाटिं प्रसारयित्वा दक्षिणेन पार्श्वेन सिंहशय्याम् अकल्पयत् पादे पादम् अत्याधाय स्मृतिः सम्प्रजन्यः। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

मन्दिमता नु खलु असि उताहो काव्यमतः, अर्थाः नु ते संप्रचुराः न सन्ति।
एकः विविक्ते शयनासने, निद्रामुखः किमिदं स्वपिसि वा"इति॥

(हिन्दी) तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

3. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के मद्रकुक्षि मृगदाव में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् के पैर पर एक पाषाण के टुकड़े से आघात लग गया। उससे भगवान् के शरीर में दुःखद, तीव्र, कठोर एवं कष्टप्रद पीड़ा होने लगी। परन्तु भगवान् ने उस पीड़ा को स्थिरता से स्मृतिमान् एवं सम्प्रज्ञ होते हुए सहन कर लिया। तब भगवान् अपनी चतुर्गुण सङ्घाटि बिछा कर सिंहशय्या से पैर पर पैर रखकर विश्राम करने लगे। तब, पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ आया तथा आकर यों गाथा बोला-

''श्रमण! इतने मन्द क्यों पड़े हो? क्या कुछ विचार कर रहे हो! क्या तुम्हारी कोई आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई! एकाकी होकर इस निर्जन स्थान में निद्रामग्न समान होकर क्यों लेटे हुए हो?''

''न मन्दिया सयामि नापि कावेय्यमत्तो, अत्थं समेच्चाहमपेतसोको।
एको विवित्ते सयनासनम्हि, सयामहं सब्बभूतानुकम्पी॥
''येसम्पि सल्लं उरसि पविट्ठं, मुहुं मुहुं हृदयं वेधमानं।
तेपीध सोप्पं लभरे ससल्ला, तस्मा अहं न सुपे वीतसल्लो॥
''जग्गं न सङ्के नपि भेमि सोत्तुं, रत्तिन्दिवा नानुतपन्ति मामं।
हानिं न पस्सामि कुहिञ्चि लोके, तस्मा सुपे सब्बभूतानुकम्पी''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

4.2.4. पतिरूपसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति एकसालायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं देसेति।

(संस्कृतच्छाया) "न मन्दिमता शये नापि काव्यमतः, अर्थं समेत्याहमपेतशोकः।
एकः विविक्ते शयनासने, शयितोऽहं सर्वभूतानुकम्पी॥
"येषामपि शल्यम् उरसि प्रविष्टम्, मुहुर् मुहुर् हृदयं वेधमानम्।
तेऽपीह स्वापं लभन्ते सशल्याः, तस्मात् अहं नु स्वापे वीतशल्यः॥
"जागृते न शंके नापि विभेमि स्वपितुम्, रात्रिःदिवा नानुतप्यति माम्।
हानिं न पश्यामि कुत्रचिद् लोके, तस्मात् शये सर्वभूतानुकम्पी"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

4. एकस्मिन् समये भगवान् कोसलेषु विहरति एकशालायां ब्राह्मणग्रामे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् महत्या गृहिपरिषदा परिवृतः धर्मम् अदिशत्।

(हिन्दी) ''मैं मन्द होकर नहीं पड़ा हूँ, न कोई विचार कर रहा हूँ। मैं परमार्थ को प्राप्तकर वीतशोक हो चुका हूँ। मेरी कोई आवश्यकता अपूर्ण नहीं रह गयी है। मैं तो एकाकी होकर इस निर्जन स्थान में सभी जीवों पर अनुकम्पा करने वाला सो रहा हूँ। ''जिनके छाती में बाण लगा हो, जिसकी पीड़ा रह रह कर हृदय को फाड़ती रहती है, वैसे बाणों से आहत पुरुष भी निद्रामग्न हो जाते हैं, तो सारे वेदनाओ से रहित फिर मैं क्यों न सोऊँ!

''जागने में मुझे कोई शङ्का नहीं है, न निद्रा लेने से भयभीत ही हूँ। रात या दिन का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं है। संसार में मैं कहीं भी अपनी हानि नहीं देखता; अतः मैं अपने हृदय में सब जीवों के प्रति अनुकम्पा की भावना रखता हुआ सुखपूर्वक सो रहा हूँ''।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

4. एक समय भगवान् कोसल प्रदेश के एकशाला नामक ब्राह्मणों के ग्राम में विहार कर रहे थे। उस समय

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि– ''अयं खो समणो गोतमो महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया''ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''नेतं तव पतिरूपं, यदञ्ञमनुसाससि।
अनुरोधविरोधेसु, मा सज्जित्थो तदाचरं''ति॥
''हितानुकम्पी सम्बुद्धो, यदञ्ञमनुसासति।
अनुरोधविरोधेहि, विप्पमुत्तो तथागतो''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.5. मानससुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु मारस्य पापिनः एतदभूत्— "अयं खलु श्रमणः गौतमः महत्या गृहिपरिषदा परिवृतः धर्मम् अदिशत्। यन्नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्राम्येयं विचक्षुकर्मणे"इति। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट— "नैतदा तव प्रतिरूपम्, यदन्यमनुशासति।
अनुरोधविरोधेषु, मा सञ्जयति तदाचरम्"इति॥
"हितानुकम्पी सम्बुद्धः, यदन्यमनुशासति।
अनुरोधविरोधेभिः, विप्रमुक्तः तथागतः"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः" इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

5. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य

(हिन्दी) भगवान् गृहस्थो की एक बड़ी परिषद् के बीच धर्मोपदेश कर रहे थे।

उस समय पापी मार को यह विचार उत्पन्न हुआ-''यह श्रमण गौतम इस समय गृहस्थ जिज्ञासुओं से घिरा हुआ उन्हें धर्मोपदेश कर रहा है। तो क्यों न मैं अभी इसके श्रोताओं की मति को भ्रान्त करने हेतु वहाँ पहुँचूँ!'' तब वह पापी मार भगवान् के सम्मुख जाकर उनसे गाथा के माध्यम से यों बोला-

जो तुम दूसरों को यह उपदेश कर रहे हो- ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं, क्यों निरर्थक ही इस अनुरोध-विरोध के जाल में स्वयं भी फँस रहे हो तथा दूसरों को भी फँसा रहे हो! हित और अनुकम्पा करने वाले बुद्ध, दूसरे को अनुशासन कर रहे हैं। बुद्ध अनुरोध और विरोध से मुक्त हैं।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

आरामे। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''अन्तलिक्खचरो पासो, य्वायं चरति मानसो।
तेन तं बाधयिस्सामि, न मे समण मोक्खसी''ति॥
''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
एत्थ मे विगतो छन्दो, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.6. पत्तसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू

(संस्कृतच्छाया) आरामे। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"अन्तरिक्षचरः पाशः, यो अयं चरति मानसः।
तस्मिन् त्वां वाधयिष्यामि, न मे श्रमण! मोक्ष्यसे"इति॥
"रूपाः शब्दाः रसाः गन्धाः, स्पर्शः चैव मनोरमाः।
अत्र मे विगतः छन्दः, निहतः त्वमसि अन्तक!"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

6. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् पञ्च उपादानस्कन्धान् उपादाय भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहर्षयति। ते च भिक्षवः

5. (हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब पापी मार जहाँ भगवान् थे वहा गया, वहा जाकर भगवान् के सम्मुख यह गाथा बोला-
''मन की उड़ान रूप आकाश में उड़ने वाला यह जाल है। इससे मैं तुम्हें बाधूँगा। श्रमण! इस से तुम छुटकारा नहीं पा सकते!''
(भगवान्-)''रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्पर्श-इन्द्रियों के इन प्रिय विषयों में मेरा अब कोई राग नहीं रह गया है। अन्तक! तुम मेरे द्वारा जीत लिये गये हो।''
तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

6. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे थे। तथा भिक्षु जन भी बहुत ध्यानपूर्वक मन की एकाग्रता से यह उपदेश सुन रहे थे।

अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि– ''अयं खो समणो गोतमो पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया''ति।

तेन खो पन समयेन सम्बहुला पत्ता अब्भोकासे निक्खित्ता होन्ति। अथ खो मारो पापिमा बलीबद्दवण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन ते पत्ता तेनुपसङ्कमि। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु अञ्ञतरं भिक्खुं एतदवोच– ''भिक्खु, भिक्खु, एसो बलीबद्दो पत्ते भिन्देय्या''ति। एवं वुत्ते भगवा तं भिक्खुं एतदवोच– ''न सो, भिक्खु, बलीबद्दो। मारो एसो पापिमा तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो''ति। अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितश्रोतारः धर्मं श्रृण्वन्ति।

अथ खलु मारस्य पापिनः एतदभूत्— "अयं खलु श्रमणः गौतमः पञ्च उपादानस्कन्धान् उपादाय भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहर्षयति। ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितश्रोतारः धर्मं श्रृण्वन्ति। यन्नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्राम्येयं विचक्षुकर्मणे"इति।

तस्मिन् खलु पुनः समये सम्बहुलानि पात्राणि अभ्यवकाशे निक्षिप्तानि भवन्ति। अथ खलु मारः पापी बलीवर्दवर्णः अभीनिर्माय यत्र तानि पात्राणि तत्रोपसमक्रमीत्। अथ खलु अन्यतरो भिक्षुरन्यतरं भिक्षुम् एतदवोचत्— "भिक्षो! भिक्षो! एष बलीवर्दः पात्राणि भिनत्ति"इति। एवम् उक्ते, भगवान् तं भिक्षुम् एतदवोचत्– न सः भिक्षु बलीवर्दः। मारः एष पापी युष्माकं विचक्षुकर्मणे आगतः"इति। अथ खलु भगवान् ''मारोऽयं पापी'' इति विदित्वा मारं पापिनं गाथया अध्यभाषिष्ट—

(हिन्दी) तब पापी मार के मन में यह हुआ- ''यह श्रमण गौतम पाँच उपादान स्कन्धों के विषय में धर्मोपदेश कर....पूर्ववत्.... तो क्यों न मैं जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ चलकर उनके मत को फेर दूँ। उस समय, कुछ पात्र खुले मैदान में पड़े थे। तब पापी मार एक बैल का रूप धरकर जहा वे पात्र पड़े थे वहा आया। तब एक भिक्षु ने दूसरे भिक्षु से कहा-

भिक्षु भिक्षु कही यह बैल पात्रो को तोड़ न दे। उसके ऐसा कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को कहा— भिक्षु! वह बैल नहीं है। यह पापी मार तुम लागों के मत को फेरने आया है। तब भगवान् ने 'यह पापी मार है' जान गाथा में कहा—

''रूपं वेदयितं सञ्ञा, विञ्ञाणं यञ्च सङ्खतं।
नेसोहमस्मि नेतं मे, एवं तत्थ विरज्जति॥
''एवं विरत्तं खेमत्तं, सब्बसंयोजनातिगं।
अन्वेसं सब्बट्ठानेसु, मारसेनापि नाज्झगा''ति॥

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.7. छफस्सायतनसुतं

एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन भगवा छन्नं फस्सायतनानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि– ''अयं खो समणो गोतमो छन्नं फस्सायतनानं उपादाय भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सप्पहंसेति।

(संस्कृतच्छाया) "रूपं वेदनां संज्ञाम्, विज्ञानं यच्च संस्कृतम्।
नैषोऽहमस्मिन् नैते मे, एवं तत्र विरज्यते॥
एवं विरक्तं क्षान्तम्, सर्वसंयोजनातिगम्।
अन्वेषकं सर्वस्थानेषु, मारसेनापि नाधिगच्छति"इति॥

अथ खलु मारः पापी... पे॰...तत्रैवान्तर्दधौ इति।

7. एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्यां विहरति महावने कूटागारशालायाम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् षट् स्पर्शायतनान्युपादाय भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहर्षयति। ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितश्रोतारो धर्मं श्रृण्वन्ति। अथ खलु मारं पाप्मतः एतदभूत्- ''अयं खलु श्रमणः गौतमः षण्णां स्पर्शायतनान्युपादाय भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहर्षयति।

(हिन्दी) रूप, वेदना, संज्ञा, विज्ञान और संस्कार को, 'न यह मैं हूँ, और न यह मेरा है' ऐसा जान, उनके प्रति विरक्त रहता है; ऐसे विरक्त, शान्त, सभी बन्धनों से छूटे पुरुष को, सभी जगह खोजते रहकर भी, मार-सेना नहीं पा सकती।

तब पापी मार मुझे भगवान् ने पहचान लिया समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

7. एक समय भगवान् वैशाली के महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् छह स्पर्शायतनों को आधार बनाकर भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर समझाया, उत्साहित किया, उपर उठाया, प्रसन्न किया। भिक्षुजन भी वह धर्मोपदेश बहुत ध्यानपूर्वक एकाग्र मन से श्रवण कर रहे थे। तब पापी मार को यह विचार आया- यह श्रमण गौतम छह स्पर्शायतनों के आधार पर भिक्षुओं को उपदेश कर रहे हैं।

ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया''ति। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो अविदूरे महन्तं भयभेरवं सद्दमकासि, अपिस्सुदं पथवी मञ्ञे उन्द्रीयति। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु अञ्ञतरं भिक्खुं एतदवोच– ''भिक्खु, भिक्खु, एसा पथवी मञ्ञे उन्द्रीयती''ति। एवं वुत्ते, भगवा तं भिक्खुं एतदवोच– ''नेसा भिक्खु पथवी उन्द्रीयति। मारो एसो पापि तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो''ति। अथ खो भगवा ''मारो अयं पापि'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि– ''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला।
एतं लोकामिसं घोरं, एत्थ लोको विमुच्छितो॥
''एतञ्च समतिक्कम्म, सतो बुद्धस्स सावको।
मारधेय्यं अतिक्कम्म, आदिच्चोव विरोचती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितश्रोतारो धर्मं श्रृण्वन्ति। यन्नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्राम्येयं विचक्षुकर्मणे इति। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः अविदूरे महत भयभैरवं शब्दमकार्षीत्, अपि स्वित् पृथवी मन्ये उद्दृणाति। अथ खलु अन्यतरो भिक्षुरन्यतरं भिक्षुम् एतदवोचत्— "भिक्षो! भिक्षो! एषा पृथवी मन्ये उद्दृणाति"इति। एवम् उक्ते, भगवान् तत् भिक्षुम् एतदवोचत्— "नैषा भिक्षो! पृथवी उद्दृणाति। मारः एष पापी युष्माकं विचक्षुकर्मणे आगतः"इति। अथ खलु भगवान् ''मारोऽयं पापी'' इति विदित्वा मारं पापिनं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"रूपाः शब्दा रसा गन्धाः, स्पर्शा धर्माश्चः केवलाः।
एतस्मिन् लोके घोराः, अत्र लोको विमूर्च्छितः॥
"एतच्च समतिक्रम्य, श्रुतो बुद्धस्य श्रावकः।
मारध्येयम् अतिक्रम्य, आदित्यम् इव विरोचते"इति॥

(हिन्दी) वे भिक्षु भी उसे ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। तो क्यो न मैं इस समय इनमें मतिभ्रम उत्पन्न करने के लिये श्रमण गौतम के पास पहुँचूँ।" तब वह पापी मार भगवान् के पास पहुँचा। पहुँच कर ऐसा भीषण शब्द करने लगा मानो पृथ्वी फट चली। उसे सुनकर एक भिक्षु ने किसी दूसरे भिक्षु से कहाँ- भिक्षु देखों, भूकम्प हो रहा हैं। यह सुन कर भगवान् ने कहा- नहीं, भिक्षुओं यह भुकम्प नहीं, हो रहा, यह पापी मार तुम लोगों का मन विचलित करने के लिये यहाँ आ पहुँचा है। फिर भगवान् ने उस पापी मार को लक्ष्य कर ये गाथाए कहीं-

रूप, शब्द, रस, स्पर्श एवं गन्ध जो भी संसार में धर्म हैं वे सभी परिणाम में भयोत्पादक हैं। इनके कारण समस्त संसार मूर्च्छित हो गया हैं। परन्तु बुद्ध का शिष्य स्मृतिमान् हो इन सबको अतिक्रान्त कर, मृत्यु को भी पार कर सूर्य के समान इस लोक में अवभासित होता है।"

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.8. पिण्डसुत्तं

एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति पञ्चसालायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन पञ्चसालायं ब्राह्मणगामे कुमारिकानं पाहुनकानि भवन्ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन पञ्चसालेय्यका ब्राह्मणगहपतिका मारेन पापिमता अन्वाविट्ठा भवन्ति– मा समणो गोतमो पिण्डमलत्थाति। अथ खो भगवा यथाधोतेन पत्तेन पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पाविसि तथाधोतेन पत्तेन पटिक्कमि। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''अपि त्वं, समण, पिण्डमलत्था''ति? ''तथा नु त्वं, पापिम, अकासि यथाहं पिण्डं न लभेय्यं''ति। ''तेन हि, भन्ते, भगवा दुतियम्पि पञ्चसालं ब्राह्मणगामं पिण्डाय पविसतु। तथाहं करिस्सामि यथा भगवा पिण्डं लच्छती''ति।

(संस्कृतच्छाया)- अथ खलु मारः पापी.....पे॰.....तत्रैवान्तर्दधौ इति।

8. एकस्मिन् समये भगवान् मगधेषु विहरति पञ्चशालायां ब्राह्मणग्रामे। तस्मिन् खलु पुनः समये पञ्चशालायां ब्राह्मणग्रामे कुमारिकाणां प्राह्नक भवन्ति। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्नसमयं निवस्य पात्रचीवरमादाय पञ्चशालं ब्राह्मणग्रामं पिण्डाय प्राविशत्। तस्मिन् खलु पुनः समये पञ्चशालीयाः ब्राह्मणगृहपतिकाः मारेण पापिना अन्वाविष्टाः भवन्ति— मा श्रमणः गौतमः पिण्डमलब्ध"इति। अथ खलु भगवान् यथाधौतेन पात्रेण पञ्चशालं ब्राह्मणग्रामं पिण्डाय प्राविशत् तथा धौतेन पात्रेण प्रतिक्रमति। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "अपि त्वं श्रमण! पिण्डमलब्ध"इति? तथा नु त्वम्, पापिन्! अकार्षीत् यथाहं पिण्डं न लभेय"इति। तेन हि, भदन्त! भगवान् द्वितीयमपि पञ्चशालं ब्राह्मणग्रामं पिण्डाय प्राविशत्। तथाहं करिष्यामि यथा भगवान् पिण्डं लक्ष्यति"इति।

(हिन्दी)- तब पापी मार.....पूर्ववत्.....वहीं अन्तर्हित हो गया।

8. एक समय भगवान् मगध देश के पंचशाल नामक ब्राह्मण ग्राम में विहार कर रहे थे। उस समय उस पंचशाल नामक ब्राह्मण ग्राम में कुमारियों को भेंट देने का उत्सव हो रहा था। उस अवसर पर भगवान् प्रातः काल वस्त्रों को व्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर ग्राम में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा न मिली; क्यों कि पापी मार ने वहाँ के निवासियों का चित्त भ्रान्त कर दिया था कि श्रमण गौतम को भिक्षा न दी जाय। तब भगवान् जैसा धोया पात्र लेकर पंचशाल ग्राम में प्रविष्ट हुए थे वैसा ही पात्र लेकर पुनः लौट आये। उसी समय पापी मार भगवान् के सम्मुख पहुँचा और पूछने लगा- ''क्या श्रमण! तुम्हें कहीं भिक्षा मिली?'' भगवान् ने उसको उत्तर दिया- ''पापिन्! तूँ ने ही तो ऐसा कर दिया था कि मुझे भिक्षा न मिले।''''तो भन्ते, आप पुनः ग्राम में जायँ; मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि इस बार आपको भिक्षा मिल जायगी!''

''अपुञ्ञं पसवि मारो, आसज्ज नं तथागतं।
किं नु मञ्ञसि पापिम, न मे पापं विपच्चति॥
''सुसुखं वत जीवाम, येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम, देवा आभस्सरा यथा''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.9. कस्सकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा भिक्खूनं निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति।

अथ खो मारस्स पापिमतो एतदहोसि– ''अयं खो समणो गोतमो भिक्खूनं

(संस्कृतच्छाया) "अपुण्यं प्रसवि मारः, आसाद्य नं तथागतम्।
किं नु मन्यसे पापिन्, न मे पापं विपद्यते॥
"सुसुखं वत जीवामः, येषां नो नास्ति किंचन।
प्रीतिभक्ष्या भविष्यामः, देवा आभास्वराः यथा"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

9. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् भिक्षून् निर्वाणप्रतिसंयुक्ताय धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहर्षयति। ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितश्रोतारो धर्मं श्रृण्वन्ति।

अथ खलु मारस्य पापिनः एतदभूत्— "अयं खलु श्रमणः गौतमः भिक्षून्

(हिन्दी) ''मार! तूँने बहुत अपुण्य कमाया कि तथागत के साथ ऐसा विश्वासघात किया। पापिन्! तूँ क्या समझता है कि तेरे पाप का फल तुझे नहीं मिलेगा!

''हम अकिंचन तो सुखपूर्वक जीवित रह लेंगे। हम तो भूखे रह कर भी आभास्वर देवों के समान समाधिजन्य प्रीतिसुख से सन्तुष्ट रह लेंगे''।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

9. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण से सम्बद्ध धर्मोपदेश कर उन्हें साधना का मार्ग दिखा रहे थे, सम्प्रहृष्ट एवं धर्म के प्रति समुत्तेजित कर रहे थे। भिक्षु भी ध्यान दे कर मन को एकाग्र कर उक्त धर्म का सावधानतया श्रमण कर रहे थे।

उसी समय पापी मार को यह हुआ- "यह श्रमण गौतम भिक्षुओं को

निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय...पे॰...यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं विचक्खुकम्माया''ति। अथ खो मारो पापिमा कस्सकवण्णं अभिनिम्मिनित्वा महन्तं नङ्गलं खन्धे करित्वा दीघपाचनयट्ठिं गहेत्वा हटहटकेसो साणसाटिनिवत्थो कद्दममक्खितेहि पादेहि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''अपि, समण, बलीबद्दे अद्दसा''ति? ''किं पन, पापिम, ते बलीबद्देही''ति? ''ममेव, समण, चक्खु, मम रूपा, मम चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं।

कुहिं मे, समण, गन्त्वा मोक्खसि? ममेव, समण, सोतं, मम सद्दा...पे॰... ममेव, समण, घानं, मम गन्धा; ममेव, समण, जिव्हा, मम रसा; ममेव, समण, कायो, मम फोट्ठब्बा; ममेव, समण, मनो, मम धम्मा, मम मनोसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। कुहिं मे, समण, गन्त्वा मोक्खसी''ति?

''तवेव, पापिम, चक्खु, तव रूपा, तव चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ च खो,

(संस्कृतच्छाया) निर्वाणप्रतिसंयुक्ताय. धार्मिकया कथया...पे॰...यन्नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्राम्येयं विचक्षुकर्मणे"इति। अथ खलु मारः पापी कृषकवर्णम् अभिनिर्माय महन्तं लाङ्गलम् स्कन्धं कृत्वा दीर्घप्राचनयष्टिं गृहीत्वा हटहटकेशः शाटशटिनिवीतः कर्दममक्षितैः पादैः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "अपि, श्रमण! बलीवर्दम् अपश्य"इति? "किं पुनः, पापिन्, ते बलीवर्दभिः"इति? ममैव, श्रमण! चक्षुः, मम रूपाः, मम चक्षुस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। कुत्र मे, श्रमण! गत्वा मोक्ष्यसे? ममैव, श्रमण, श्रोतम्, मम शब्द....पे॰....ममैव, श्रमण, घ्राणम्, मम गन्धाः, ममैव, श्रमण, जिह्वा, मम रसाः; ममैव श्रमण, कायः, मम स्पष्टव्याः; ममैव, श्रमण, मनः मम धर्माः, मम मनस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। कुत्र मे, श्रमण! गत्वा मोक्ष्यसे"इति? तवैव, पापिन्! चक्षु, तव रूपः, तव चक्षुस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। यत्र

(हिन्दी) निर्वाण से सम्बद्ध धर्मोपदेश कर उन्हें साधना का मार्ग दिखा रहे थे, सम्प्रहृष्ट एवं धर्म के प्रति समुत्तेजित कर रहे..पूर्ववत्...तो क्यों न मैं वहाँ जाकर उनमें मतिभ्रम उत्पन्न कर दूँ!" तब वह पापी मार एक निर्धन किसान का रुप धारण कर, कन्धे पर एक बड़ा हल रखे हुए, हाथ में बैल हाँकने की लम्बी छड़ी लिये हुए, बालों को बिखर कर, जीर्ण शीर्ण धोती पहने हुए, कीचड़ में सने हुए पैरों से भगवान् के समीप पहुँचा। वहाँ पहुँच कर भगवान् से यों बोला- "क्या श्रमण! आपने मेरे बैलों को देखा है? पापिन्! तुझे बैलों से क्या प्रयोजन है! श्रवण! ये आँखें ये रूप तथा इनके विज्ञानायतन सब कुछ मेरे वश में हैं। मुझसे बचकर कहाँ जाओगे? इसी तरह, ये श्रोत्र, ये शब्द तथा इनके विज्ञानायतन...ये घ्राण, ये गन्ध तथा इनके विज्ञानायतन...ये जिह्वा, ये रस तथा इनके विज्ञानायतन...ये काय, ये स्प्रष्टव्य तथा इनके विज्ञानायतन...ये मन, ये मन द्वारा चिन्तनीय धर्म तथा इनके विज्ञानायतन- सब कुछ मेरे वश में हैं, श्रमण! मुझसे बचकर कहाँ जाओगे? ''पापी! ठीक है ये आँखें, ये रूप, आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन तेरे ही अधीन है; परन्तु जहाँ न आँखें, न रूप, न आँख से जाने जाये वाले विज्ञानायतन है वहाँ

पापिम, नत्थि चक्खु, नत्थि रूपा, नत्थि चक्खुसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव, पापिम , सोतं, तव सद्दा, तव सोतसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ च खो, पापिम, नत्थि सोतं, नत्थि सद्दा, नत्थि सोतसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव , पापिम, घानं, तव गन्धा, तव घानसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ च खो, पापिम, नत्थि घानं, नत्थि गन्धा, नत्थि घानसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापिम। तवेव, पापिम, जिव्हा, तव रसा, तव जिव्हासम्फस्सविञ्ञाणायतनं...पे॰... तवेव, पापिम, कायो, तव फोट्ठब्बा, तव कायसम्फस्सविञ्ञाणायतनं...पे॰... तवेव, पापिम, मनो, तव धम्मा, तव मनोसम्फस्सविञ्ञाणायतनं। यत्थ च खो, पापिम, नत्थि मनो, नत्थि धम्मा, नत्थि मनोसम्फस्सविञ्ञाणायतनं, अगति तव तत्थ, पापि''ति।

''यं वदन्ति मम यिदन्ति, ये वदन्ति ममन्ति च।
एत्थ चे ते मनो अत्थि, न मे समण मोक्खसी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) च खलु, पापिन्! नास्ति चक्षुः, नास्ति रूपाः, नास्ति चक्षुस्संस्पर्शविज्ञानायतनम् अगतिः तव तत्र, पापिन्। तवैव, पापिन्! श्रोतम्, तव शब्दा, तव श्रोतस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। यत्र च खलु, पापिन्, नास्ति श्रोतम्, नास्ति शब्दः नास्ति श्रोतस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्, अगतिः तव तत्र, पापिन्। तवैव, पापिन्! घ्राणम्, तव गन्धः, तव घ्राणस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। यत्र च खलु, पापिन्! नास्ति घ्राणम्, नास्ति गन्धः, नास्ति घ्राणस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्, अगतिः तव तत्र पापिन्। तवैव, पापिन्! जिह्वा, तव रसः, तव जिह्वास्संस्पर्शविज्ञानायतनम्,...पे॰...तवैव, पापिन्! कायः तव स्प्रष्टव्य, तव कायस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्...पे॰...तवैव, पापिन्! मनः, तव धर्माः, तव मनस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्। यत्र च खलु, पापिन्! नास्ति मनः, नास्ति धर्मः, नास्ति मनस्संस्पर्शविज्ञानायतनम्, अगतिः तव तत्र, पापी''इति।

"यं वदन्ति मम इदमिति, ये वदन्ति मम इति च।
अत्र चेत् ते मनः अस्ति, न मे श्रमण मोक्ष्यसे"इति॥

(हिन्दी) तुम्हारी गति नहीं है।''पापी! ये श्रोत्र, ये शब्द तथा श्रोत्र से जाने जाये वाले विज्ञानायतन तेरे ही अधीन है; परन्तु जहाँ न श्रोत्र, न शब्द, न श्रोत्र से जाने जाये वाले विज्ञानायतन है वहाँ तुम्हारी गति नहीं है।''पापी! ये घ्राण, ये गन्ध तथा इनके विज्ञानायतन तेरे ही अधीन है;. परन्तु जहाँ न घ्राण, न गन्ध, न घ्राण से जाने जाये वाले विज्ञानायतन है वहाँ तुम्हारी गति नहीं है। ये जिह्वा, ये रस...ये काय, ये स्प्रष्टव्य...,पापी! वहाँ तेरी गति नहीं है। पापी! ! ठीक है ये मन, ये धर्म, मन से जाने जाये वाले विज्ञानायतन तेरे ही अधीन है; परन्तु जहाँ न मन, न धर्म, न मन से जाने जाये वाले विज्ञानायतन है वहाँ तुम्हारी गति नहीं है।

''जो लोग कहते हैं- 'यह मेरा है'; या जिसे लोग कहते हैं- 'यह मेरा है' उन दोनों में से किसी में भी यदि तुम हो तो मुझ से बचकर कहाँ जाओगे?''

''यं वदन्ति न तं मय्हं, ये वदन्ति न ते अहं।
एवं पापिम जानाहि, न मे मग्गम्पि दक्खसी''ति॥

अथ खो मारो पापि...पे॰... तत्थेवन्तरधायीति।

4.2.10. रज्जसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति हिमवन्तपदेसे अरञ्ञकुटिकायं। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– ''सक्का नु खो रज्जं कारेतुं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं असोचं असोचापयं धम्मेना''ति?

अथ खो मारो पापिमा भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''कारेतु, भन्ते, भगवा रज्जं, कारेतु, सुगतो, रज्जं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं असोचं असोचापयं धम्मेना''ति। ''किं पन मे त्वं, पापिम, पस्ससि यं मं त्वं एवं वदेसि– 'कारेतु, भन्ते, भगवा रज्जं, कारेतु सुगतो,

(संस्कृतच्छाया) "यं वदन्ति न तत् मह्यं, ये वदन्ति न ते अहम्।
एवं पापिनं जानाहि, न मे मार्गमपि द्रक्ष्यसि"इति॥

अथ खलु मारः पापी.....पे॰..... तत्रैवान्तर्दधौ इति।

10. एकस्मिन् समये भगवान् कोशलेषु विहरति हिमवत्प्रदेशे अरण्यकुट्याम्। अथ खलु भगवतो रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत— "शक्यं नु खलु राज्यं कर्तुम् अघ्नन् अघातयन् अजयन् अजापयन् अशोचयन् अशोचापयन् धर्मेण"इति।

अथ खलु मारः पापी भगवतो चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "कुर्यात्, भदन्त! भगवान्, राज्यम्, कुर्यात्, सुगतः! राज्यम् अघ्नन् अघातयन् अजयन् अजापयन् अशोचयन् अशोचापयन् धर्मेण"इति। "किं पुनः मे त्वम्, पापिन्, पश्यसि येन मां त्वम् एवं वदसि— "कुर्यात्, भदन्त! भगवान् राज्यम्, कुर्यात् सुगतः!

(हिन्दी) ''जो लोग कहते हैं यह मेरा नहीं है; या जिसे लोग कहते हैं- 'यह मेरा नहीं है,' रे पापी उसे भी जान ले। मेरे मार्ग को तूँ कभी नहीं जान पायेगा।''

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

10. एक समय भगवान् कोसल राज्य के हिमालय प्रदेश की अरण्यकुटी में विहार कर रहे थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के मन में यह वितर्क उत्पन्न हुआ-''किसी को बिना मारे, या किसी को मारने की प्रेरणा दिये बिना; किसी को बिना जीते या किसी को जीतने की प्रेरणा दिये बिना; किसी को बिना कष्ट दिये बिना या किसी को कष्ट देने की प्रेरणा दिये बिना धर्मपूर्वक राज्य किया जा सकता है?''

तब पापी मार भगवान् के इस वितर्क को अपने मन से जान कर भगवान् के समीप आया और यों बोले- ''भन्ते! भगवान् राज्य करें, किसी को बिना मारे...पूर्ववत्...कष्ट देने की प्रेरणा दिये बिना धर्मपूर्वक

रज्जं अहनं अघातयं अजिनं अजापयं असोचं असोचापयं धम्मेना''ति? ''भगवता खो, भन्ते, चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा। आकङ्खमानो च, भन्ते, भगवा हिमवन्तं पब्बतराजं सुवण्णं त्वेव अधिमुच्चेय्य सुवण्णञ्च पनस्सा''ति।

''पब्बतस्स सुवण्णस्स, जातरूपस्स केवलो।
द्वित्ताव नालमेकस्स, इति विद्वा समञ्चरे॥
''यो दुक्खमद्दक्खि यतोनिदानं, कामेसु सो जन्तु कथं नमेय्य।
उपधिं विदित्वा सङ्गोति लोके, तस्सेव जन्तु विनयाय सिक्खे''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं भगवा, जानाति मं सुगतो''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति। दुतियो वग्गो।

(संस्कृतच्छाया)- राज्यम् अहनन् अघातयन् अजयन् अजापयन् अशोचयन् अशोचापयन् धर्मेण"इति? भगवता खलु, भदन्त! चत्वारः ऋद्धिपादाः भाविताः बहुलीकृताः यानीकृताः वस्तुकृता अनुष्ठिताः परिचिताः सुसमृद्धाः। आकांक्षमाणः च, भदन्त! भगवान् हिमवन्तं पर्वतराजं सुवर्णं त्वमेव अधिमुञ्चेत् सुवर्णञ्च पुन अस्य"इति।

''पर्वतस्य सुवर्णस्य, जातरूपस्य केवलम्।
द्विन्ना इव नालमेकस्य, इति विदुषा समं चरेत्॥
''यः दुःखमद्राक्षीत् यतोनिदानम्, कामेषु सः जन्तुः कथं नमेत्।
उपधि विदित्वा सङ्गः इति लोके, तस्यैव जन्तुः विनयाय शिक्षेत"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां भगवान्, जानाति मां सुगतः"इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

(हिन्दी)- राज्य करें।'' अरे पापी! तूँ ने ऐसी क्या विशेषता देख ली जिसके कारण तूँ मुझसे कह रहा है- ''भन्ते! भगवान् राज्य करें...पूर्ववत्...धर्मपूर्वक?''

''भन्ते! आप भगवान् ने चारों ऋद्धिपादों की भावना कर ली है, उनका अभ्यास कर लिया है, उन पर पूर्ण अधिकार कर लिया है, उनको सफल बना लिया है, उनका अनुष्ठान कर लिया है, उनका परिचय कर लिया है, उनका पूर्ण प्रयोग कर लिया है। भन्ते! यदि आप चाहें कि यह हिमालय पर्वत सुवर्णमय हो जाय तो आपके द्वारा ऐसा अधिष्ठान करने मात्र से ही समस्त पर्वत सुवर्णपर्वत हो जायगा।''

(भगवान्-) सर्वथा वास्तविक सोने के पर्वत का द्विगुण भाग भी एक सांसारिक कामनाधीन पुरुष के लिये पर्याप्त नहीं है। विद्वान् को ऐसा समझते हुए लोक में आचरण करना चाहिये।

जिसने जिसके कारण लोक में दुःख भोग लिया है, वही मनुष्य उन कामभोगों की ओर पुनः कैसे झुक सकता है। वह तो सांसारिक लाभों को बन्धन जानकर उन पर विजय पाना ही सीखना चाहेगा।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि 'भगवान् ने मुझको पहचान लिया, सुगत ने मुझको पहचान

तस्सुद्दानं–

पासाणो सीहो सकलिकं, पतिरूपञ्च मानसं।
पत्तं आयतनं पिण्डं, कस्सकं रज्जेन ते दसाति॥

३. ततियवग्गो

4.3.1. सम्बहुलसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति सिलावतियं। तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू भगवतो अविदूरे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ति। अथ खो मारो पापिमा ब्राह्मणवण्णं अभिनिम्मिनित्वा महन्तेन जटण्डुवेन अजिनक्खिपनिवत्थो जिण्णो गोपानसिवङ्को घुरुघुरुपस्सासी उदुम्बरदण्डं गहेत्वा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच – ''दहरा भवन्तो पब्बजिता सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिक्कीळितावितो कामेसु। भुञ्जन्तु भवन्तो

(संस्कृतच्छाया)- तस्योद्दानम्–

पाषाणः सिंहः शकलिकम्, प्रतिरूपं च मानसम्।
पात्रं स्पर्शायतनं पिण्डम्, कृषकं राज्येन ते दशा इति॥

1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन समये भगवान् शाक्येषु विहरति शिलावत्याम्। तस्मिन् खलु पुनः समये सम्बहुला भिक्षवः भगवतः अविदूरे अप्रमत्ताः आतापिनः प्रहितात्मानः विहरन्ति। अथ खलु मारः पापी ब्राह्मणवर्णम् अभिनिर्माय महता जटाजूटेन अजिनक्षिप्रनिवस्त्रो जीर्णः गोपानसंज्ञिकः घुरुघुरुप्रश्वासी उदुम्बरदण्डं गृहीत्वा यत्र ते भिक्षवः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य ते भिक्षवः एतदवोचत्— ''दहराः भवन्तः प्रव्रजिताः शिशवः कालकेशाः भद्रेन यौवनेन समन्वागताः प्रथमेन वयसि अनिक्रीडिताविनः कामेषु। भुञ्जेयुः भवन्तः

(हिन्दी)- लिया' दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में पाषाणसुत्त, किनुसिंहसुत्त, शकलिकसुत्त, प्रतिरूपसुत्त, मानससुत्त, पात्रसुत्त, षट्स्पर्शायतनसुत्त, पिण्डसुत्त, कृषकसुत्त एवं राज्यसुत्त हैं।

1. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् शाक्यदेश की शिलावती नगरी में विहार कर रहे थे। उस समय बहुत से भिक्षु भगवान् के समीप ही सावधान हो कर उद्योगपूर्वक इन्द्रियसंयम के साथ साधनारत थे। उसी समय पापी मार ब्राह्मण का रूप धारण कर, सिर पर बहुत बड़े जटा बढाये तथा शरीर पर मृगचर्म डाले हुए, बूढा, पुरानी धरन की तरह झुका हुआ, घुर्र घुर्र श्वास लेता हुआ तथा गूलर का दण्ड लिये भिक्षुओं के पास आया। तथा उनसे यों बोला- ''आप लोग बहुत अल्प अवस्था में ही प्रव्रज्या ले बैठे हो! अभी तो आप कुमार ही दिखायी दे रहे हैं, आपके केश भी अभी काले हैं, आपका पूर्ण यौवन है, अभी आप लोगों ने सांसारिक

मानुसके कामे। मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावित्था''ति। ''न खो मयं, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावाम। कालिकञ्च खो मयं, ब्राह्मण, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावाम। कालिका हि, ब्राह्मण, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही''ति। एवं वुत्ते, मारो पापिमा सीसं ओकम्पेत्वा जिव्हं निल्लालेत्वा तिविसाखं नलाटे नलाटिकं वुट्ठापेत्वा दण्डमोलुब्भ पक्कामि।

अथ खो ते भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं– ''इध मयं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहराम। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरो ब्राह्मणो महन्तेन जटण्डुवेन अजिनक्खिपनिवत्थो जिण्णो गोपानसिवङ्को घुरुघुरुपस्सासी

(संस्कृतच्छाया)- मनुष्यकं कामम्। मा सान्दृष्टिकं हित्वा कालिकायाम् अनुधावतु"इति। "न खलु अहम्, ब्राह्मण! सान्दृष्टिकं हित्वा कालिकायाम् अनुधावामि। कालिकायां च खलु अहम्, ब्राह्मण! हित्वा सान्दृष्टिकम् अनुधावामि। कालिकायां हि, ब्राह्मण! कामा उक्ता भगवताः बहुदुःखाः बहुप्रायासा, आदीनवः अत्र भयः। सान्दृष्टिकः अयं धर्मः अकालिकः एहिपश्यकः ओपनैयिकः प्रत्यक्षम् वेदितव्यः विद्वभिः"इति। एवम् उक्ते, मारः पापी शीसम् अवकम्प्य जिह्वां लिहित्वा त्रिविसाखं ललाटे लालाटिकम् उत्थाय दण्डमालभ्य प्राकाशीत्।

अथ खलु ते भिक्षवः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसदन्। एकान्ते निषण्णाः खलु ते भिक्षवः भगवन्तम् एतदवोचन्- ''इह वयम्, भदन्त! भगवतः अविदूरे अप्रमत्ताः आतापिनः प्रहितात्मानः विहरामः। अथ खलु, भदन्त! अन्यतरः ब्राह्मणः महता जटाजूटेन अजिनक्षिप्रनिवस्त्रो जीर्णः गोपानसंज्ञिकः घुरुघुरुप्रश्वासी

(हिन्दी)- कामभोगों का स्वाद भी नहीं लिया है, अतः आप पहले कामभोगों को आनन्द लें। वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य की ओर न दौड़ें?'' ''नहीं, ब्राह्मण! हम वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य की ओर नहीं दौड़ रहे हैं। अपितु भविष्यत् की झूठी आशा छोड़कर अपने वर्तमान को सुधारने में लगे हुए हैं। ब्राह्मण! भगवान् ने संसार के कामभोगों को परिणाम में दुःखद एवं पश्चात्तापमय बताया है। ये दोष से परिपूर्ण हैं। तथा यह भगवदुपदिष्ट धर्म तो प्रत्यक्ष फलप्रद, शीघ्रपरिणामी, हस्तामलकवत् साक्षात् फल देने वाला, निर्वाण की ओर ले जाने वाला तथा विज्ञ पुरुषों द्वारा अध्यात्म रूप से ज्ञेय है। भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह पापी उपेक्षापूर्वक सिर हिलाया हुआ; जिभ निकाल, ललाट पर तीन सिकुड़न डालता हुआ, लाठी का सहारा लेकर वहाँ से चल दिया।

तब, वे भिक्षु जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये। वहाँ जाकर, उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे भिक्षु भगवान् से यों बोले- ''यहाँ, भन्ते! हम लोग आपके समीप ही सावधान होकर विहार कर रहे थे। भन्ते! तब दूसरा ब्राह्मण सिर पर बहुत बड़े जटा बढाये तथा शरीर पर मृगचर्म डाले हुए, बूढा,

उदुम्बरदण्डं गहेत्वा येन मयं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अम्हे एतदवोच– 'दहरा भवन्तो पब्बजिता सुसू काळकेसा भद्रेन योब्बनेन समन्नागता पठमेन वयसा अनिक्कीळितावितो कामेसु। भुञ्जन्तु भवन्तो मानुसके कामे। मा सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावित्था'ति। एवं वुत्ते, मयं, भन्ते, तं ब्राह्मणं एतदवोचुम्ह– 'न खो मयं, ब्राह्मण, सन्दिट्ठिकं हित्वा कालिकं अनुधावाम। कालिकञ्च खो मयं, ब्राह्मण, हित्वा सन्दिट्ठिकं अनुधावाम। कालिका हि, ब्राह्मण, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सन्दिट्ठिको अयं धम्मो अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'ति। एवं वुत्ते, भन्ते, सो ब्राह्मणो सीसं ओकम्पेत्वा जिव्हं निल्लालेत्वा तिविसाखं नलाटे नलाटिकं वुट्ठापेत्वा दण्डमोलुब्भ पक्कन्तो''ति।

''नेसो, भिक्खवे, ब्राह्मणो। मारो एसो पापिमा तुम्हाकं विचक्खुकम्माय आगतो''ति। अथ खो भगवा एतमत्थं विदित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

(संस्कृतच्छाया)- उदुम्बरदण्डं गृहीत्वा यत्र वयं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य अस्मान् एतदवोचत्- दहराः भवन्तः प्रव्रजिताः शिशवः कालकेशाः भद्रेण यौवनेन समन्वागताः प्रथमेन वयसि अनिक्रीडिताविनः कामेषु। भुञ्जेयुः भवन्तः मनुष्यकं कामम्। मा सान्दृष्टिकं हित्वा कालिकायाम् अनुधावतु' इति। एवमुक्त, वयम्, भदन्त! तं ब्राह्मणम् एतदवोचाम— न खलु वयम्, ब्राह्मण! सान्दृष्टिकं हित्वा कालिकाम् अनुधावति। कालिकां च खलु वयम् ब्राह्मण! हित्वा सान्दृष्टिकमनुधावामि। कालिकां हि, ब्राह्मण! कामा उक्ता भगवता बहुदुःखाः बहुप्रयासाः, आदीनवः अत्र भियः। सन्दृष्टिकः अयं धर्मः अकालिकः एहिपश्यकः ओपनैयिकः प्रत्यक्षं वेदितव्यः विद्वभिः"इति। एवमुक्ते, भदन्त! सः ब्राह्मणः शीसम् अवकम्प्य जिह्वां लिहित्वा त्रिविसाखं ललाटे ललाटिकम् उत्थाय दण्डमालभ्य प्राकाशीत"इति।

"न एषः भिक्षवः, ब्राह्मणः। मारः एषः पापी युष्माकं विचक्षुकर्मणे आगतः"इति। अथ खलु भगवान् इदमर्थं विदित्वा तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

(हिन्दी)- पुरानी धरन की तरह झुका हुआ, घुर्र घुर्र श्वास लेता हुआ तथा गूलर का दण्ड लिये भिक्षुओं के पास आया। तथा उनसे यों बोला- "आप लोग बहुत अल्प अवस्था में ही प्रव्रज्या ले बैठे हो! अभी तो आप कुमार ही दिखायी दे रहे हैं, आपके केश भी अभी काले हैं, आपका पूर्ण यौवन है, अभी आप लोगों ने सांसारिककामभोगों का स्वाद भी नहीं लिया है, अतः आप पहले कामभोगों को आनन्द लें।..... पूर्ववत्.... ओर नहीं दौड़ रहे हैं। अपितु भविष्यत् की झूठी आशा छोड़कर अपने वर्तमान को सुधारने में लगे हुए हैं। भिक्षुओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह पापी उपेक्षापूर्वक सिर हिलाया हुआ; जिभ निकाल, ललाट पर तीन सिकुड़न डालता हुआ, लाठी का सहारा लेकर वहाँ से चल दिया।

भिक्षुओं यह ब्राह्मण नहीं है। यह पापी मार तुम लोगों को साधना से विचलित करने हेतु तुम लोगों में मतिभ्रम पैदा करने आया था। तब भगवान् ने उस समय यह गाथा भी कही-

''यो दुक्खमद्दक्खि यतोनिदानं, कामेसु सो जन्तु कथं नमेय्य।
उपधिं विदित्वा सङ्गोति लोके,तस्सेव जन्तु विनयाय सिक्खे''ति॥

4.3.2. समिद्धिसुत्तं

एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति सिलावतियं। तेन खो पन समयेन आयस्मा समिद्धि भगवतो अविदूरे अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरति। अथ खो आयस्मतो समिद्धिस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– ''लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सत्था अरहं सम्मासम्बुद्धो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, य्वाहं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजितो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सब्रह्मचारिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा''ति। अथ खो मारो पापिमा आयस्मतो समिद्धिस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येनायस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मतो समिद्धिस्स अविदूरे महन्तं भयभेरवं सद्दमकासि, अपिस्सुदं पथवी मञ्ञे उन्द्रीयति।

2.(संस्कृतच्छाया)- "यः दुःखमद्राक्षीत् यतोनिदानम्, कामेषु सः जन्तुः कथं नमेत्।
उपधिं विदित्वा सङ्गः इति लोके, तस्यैव जन्तुः विनयाय शिक्षेत"इति॥

एकस्मिन् समये भगवान् शाक्येषु विहरति शिलावतीषु। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् समृद्धिः भगवतः अविदूरे अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति। अथ खलु आयुष्मतः समृद्धे रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत— "लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे," यस्य मम शास्ता अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः। "लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे", योऽहम् एवं स्वाख्यात धर्मविनये प्रव्रजितः। "लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे", यस्य मम सब्रह्मचारिणः शीलवन्तः कल्याणधर्माः"इति। अथ खलु मारः पापी आयुष्मतः समृद्धेः चेतसा चितःपरिवितर्कमाज्ञाय यत्रायुष्मान् समृद्धिः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मतः समृद्धेः अविदूरे महत् भयभैरवं शब्दमकार्षीत्, अपि स्वित् पृथवी मन्ये उद्दृणाति।

(हिन्दी)- जिसने जिसके कारण लोक में दुःख देख लिया है, वही मनुष्य उन कामभोगों की ओर पुनः कैसे झुक सकता है! वह तो सांसारिक लाभों को बन्धन जान कर उन पर विजय पाना ही सीखना चाहेगा।

2. एक समय भगवान् शाक्य प्रदेश की शिलावती नगरी में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् समिद्धि भगवान् के समीप ही सावधानीपूर्वक उद्योगरत होकर इन्द्रियसंयम के साथ साधनारत थे। तब कभी एकान्त में ध्यान करते समय आयुष्मान् समृद्धि के मन में यह विचार उठा- "मेरा यह बहुत अधिक लाभ हुआ, मेरा बड़ा भाग्य हुआ कि मेरे शास्ता अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हुए, यह भी मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनका धर्मोपदेश सुनने को मिला, तथा यह भी मेरा लाभ ही है कि मेरे सभी गुरुभाई शीलवान् एवं पुण्यात्मा हैं।" तब पापी मार आयुष्मान् समृद्धि के इस चित्तवितर्क को अपने मन से जान कर आयुष्मान समृद्धि के पास आय। आकर आयुष्मान् समृद्धि के सम्मुख महाभयानक शब्द करने लगा जैसे पृथ्वी फट चली।

अथ खो आयस्मा समिद्धि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समिद्धि भगवन्तं एतदवोच– ''इधाहं, भन्ते, भगवतो अविदूरे अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरामि। तस्स मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सत्था अरहं सम्मासम्बुद्धो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, य्वाहं एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजितो। लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे, यस्स मे सब्रह्मचारिनो सीलवन्तो कल्याणधम्मा'ति। तस्स मय्हं, भन्ते, अविदूरे महाभयभेरवसद्दो अहोसि, अपिस्सुदं पठवी मञ्ञे उन्द्रीयती''ति।

''नेसा, समिद्धि, पथवी उन्द्रीयति। मारो एसो पापिमा तुय्हं विचक्खुकम्माय आगतो। गच्छ त्वं, समिद्धि, तत्थेव अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहराही''ति। ''एवं, भन्ते''ति खो आयस्मा समिद्धि भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। दुतियं पि खो आयस्मा समिद्धि तत्थेव अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहासि।

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु आयुष्मान् समृद्धि यत्र भगवान्, तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः आयुष्मान् समृद्धिः भगवन्तम् एतदवोचत्— "इहाहम्, भदन्त! भगवतः अविदूरे अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहारामि। तस्य मह्यम्, भदन्त! रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्क उदपद्यत— "लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे, यस्य मम शास्ता अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः। लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे, योऽहम् एवं स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजितः। "लाभा वत मे, सुलब्द्धं वत मे, यस्य मम सब्रह्मचारिणः शीलवतः कल्याणधर्माः"इति। तस्मै मह्यम्, भदन्त! अविदूरे महद्भयभैरवं शब्दमकार्षीत्, अपि स्वित् पृथवी मन्ये उद्दृणाति"इति।

"नैषाम्, समृद्धे! पृथवी उद्दृणाति। मारः एषः पापी युष्माकं विचक्षुकर्मणे आगतः। गच्छ त्वम्, समृद्धे! तत्रैव अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरेः"इति। "एवम्, भदन्त" इति खलु आयुष्मान् समृद्धिः भगवतः प्रतिश्रुत्य उतिष्ठासनात् भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा प्राक्रमीत्। द्वितीयमपि खलु आयुष्मान् समृद्धिः तत्रैव अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः व्यहार्षीत्।

(हिन्दी) उस समय आयुष्मान् समृद्धि भगवान् के सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए समृद्धि ने भगवान् से यों निवेदन किया- ''भन्ते! मैं भगवान् के समीप ही अप्रमत्त, आतापी और प्रहितात्म हो विहार कर रहा हूँ। भन्ते! तब, एकान्त में ध्यान करते समय ..पूर्ववत्.... मनो पृथ्वी फट चली। यह सब सुनकर भगवान् ने समृद्धि को बताया- ''यह पृथ्वी नहीं फटी थी, अपितु तुम्हें भयभीत तथा भ्रान्त करने के लिये पापी मार का किया हुआ महागर्जन था। समृद्धि जाओ, वही अप्रमत्त आतापी और प्रहितात्म होकर विहार करो।'' भन्ते! बहुत अच्छा कह आयुष्मान् समृद्धि भगवान् को उत्तर दे, आसान से उठ, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर चले गये।

दुतियं पि खो आयस्मतो समिद्धिस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स...पे॰... दुतियं पि खो मारो पापिमा आयस्मतो समिद्धिस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय...पे॰... अपिस्सुदं पठवी मञ्ञे उन्द्रीयति। अथ खो आयस्मा समिद्धि मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि–

''सद्धायाहं पब्बजितो, अगारस्मा अनगारियं।
सति पञ्ञा च मे बुद्धा, चित्तं च सुसमाहितं।
कामं करस्सु रूपानि, नेव मं ब्याधयिस्ससी''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं समिद्धि भिक्खू''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायीति।

4.3.3. गोधिकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा गोधिको इसिगिलिपस्से विहरति काळसिलायं। अथ खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। अथ खो

(संस्कृतच्छाया) द्वितीयमपि खलु आयुष्मतः समृद्धेः! रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य....पे॰.... द्वितीयमपि खलु मारः पापी आयुष्मतः समृद्धेः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय....पे॰... अपि स्वित् पृथवी मन्ये उद्दृणाति। अथ खलु आयुष्मान् समृद्धिः मारं पापिनं गाथया अध्यभाषिष्ट–

श्रद्धयाहं प्रव्रजितः, अगारात् अनगारिकम्।
स्मृतिः प्रज्ञा च मे बुद्धे, चित्तं च सुसमाहितम्।
कामं करिष्येत् रूपाणि, नैव मां व्याधयिष्यसि"इति॥

अथ खलु मारः पापी "जानाति मां समृद्धिः भिक्षुः" इति दुःखी दुर्मनाः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् गोधिकः ऋषिगिरिपार्श्वे विहरति कालशिलायाम्। अथ खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति सामयिकं चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। अथ खलु

(हिन्दी)- दूसरी बार भी, आयुष्मान् समृद्धि वहीं समीप ही..... विहार करने लगे। दूसरी बार भी,..... मनो पृथ्वी फट चली। एकान्त में ध्यान करते समय ..पूर्ववत्.... मानो पृथ्वी फट चली।

तब आयुष्मान् समृद्धि जान गये कि यह पापी मार है। इसका उत्तर देते हुए वे गाथा में यों बोले- ''मैं घर से बेघर हो कर श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ हूँ। स्मृति और प्रज्ञा को मैंने जान लिया है। अब मेरा चित्त सुष्ठुतया समाहित है। तुमको जैसी इच्छा हो, अपने रूप दिखाते रहो उससे मेरा कोई हानि होने वाली नहीं है।

तब, वह पापी मार, यह समझकर कि समृद्धि मुझको पहचान लिया 'दुःखी एवं उद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

3. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् गोधिक ऋषिगिरि के पास कालशिला पर साधना कर रहे थे। यों क्रमशः आयुष्मान् गोधिक ने अप्रमत्त एवं उद्योगरत रहते हुए समाधि से होने वाली चित्त विमुक्ति को स्पर्श कर लिया। परन्तु आयुष्मान्

आयस्मा गोधिको तम्हा सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहायि। दुतियं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। दुतियं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहायि। ततियं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। ततियं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा...पे॰...परिहायि। चतुत्थं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो...पे॰... विमुत्तिं फुसि। चतुत्थं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा...पे॰...परिहायि। पञ्चमं पि खो आयस्मा गोधिको...पे॰...चेतोविमुत्तिं फुसि। पञ्चमं पि खो आयस्मा...पे॰...विमुत्तिया परिहायि। छट्ठं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि। छट्ठं पि खो आयस्मा गोधिको तम्हा सामयिकाय चेतोविमुत्तिया परिहायि। सत्तमं पि खो आयस्मा गोधिको अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो सामयिकं चेतोविमुत्तिं फुसि।

अथ खो आयस्मतो गोधिकस्स एतदहोसि– ''याव छट्ठं ख्वाहं सामयिकाय

(संस्कृतच्छाया) आयुष्मान् गोधिकः तस्मात् सामयिकायां चेतोविमुक्तिं परिहाय। द्वितीयमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति सामयिकं चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। द्वितीयमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः तस्मात् सामयिकायां चेतोविमुक्तियां परिहाय। तृतीयमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति सामयिकं चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। तृतीयमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः तस्मात्....पे॰...परिहाय। चतुर्थमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः...पे॰.....विमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। चतुर्थमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः तस्मात्....पे॰.....परिहाय। पञ्चमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः....पे॰.....चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। पञ्चमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः....पे॰.....विमुक्तियां परिहाय। षष्ठमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति सामयिकं चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्। षष्ठमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः तस्मात् सामयिकायां चेतोविमुक्तियां परिहाय। सप्तमपि खलु आयुष्मान् गोधिकः अप्रमत्तः आतापीः प्रहितात्मः विहरति सामयिकं चेतोविमुक्तिम् अस्प्राक्षीत्।

अथ खलु आयुष्मतः गोधिकस्य एतदभूत्— यावत् षष्ठं "खल्वहं सामयिकं

(हिन्दी) गोधिक की वह सामयिक चेतोविमुक्ति कुछ ही समय बाद नष्ट हो गयी। दूसरी बार भी आयुष्मान् गोधिक ने अप्रमत्त एवं उद्योगरत रहते हुए समाधि से होने वाली चित्त विमुक्ति को स्पर्श कर लिया....नष्ट हो गयी। तीसरी बार भी.. चैथी बार भी... पाँचवीं बार भी ... वह सामयिक चेतोविमुक्ति कुछ ही समय बाद क्षीण हो गयी। छठीं बार भी...। सातवीं बार भी चेतोविमुक्ति का स्पर्श किया।

तब आयुष्मान् गोधिक के मन में यह विचार हुआ- छह बार मैंने इस चेताविमुक्ति का स्पर्श किया, तब

चेतोविमुत्तिया परिहीनो। यंनूनाहं सत्थं आहरेय्यं''ति। अथ खो मारो पापिमा आयस्मतो गोधिकस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि–

''महावीर महापञ्ञ, इद्धिया यससा जल।
सब्बवेरभयातीत, पादे वन्दामि चक्खुम॥
''सावको ते महावीर, मरणं मरणाभिभू।
आकङ्खति चेतयति, तं निसेध जुतिन्धर॥
''कथं हि भगवा तुय्हं, सावको सासने रतो।
अप्पत्तमानसो सेक्खो, कालं कयिरा जनेसुता''ति॥

तेन खो पन समयेन आयस्मतो गोधिकेन सत्थं आहरितं होति। अथ खो भगवा

(संस्कृतच्छाया) चेतोविमुक्तियां परिहीनः। यन्नूनमहं सत्त्वम् आहरेम"इति। अथ खलु मारः पापी आयुष्मान् गोधिकस्य चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट—

"महावीर महाप्रज्ञ, ऋद्धियां यशसा ज्वल।
सर्ववैरभयातीत, पादौ वन्दामि चक्षुष्मन्॥
श्रावकः ते महावीर, मरणं मरणाभिभूः।
आकांक्षते चेतयते, तं निषेध ज्योतिन्धर॥
"कथं हि भगवन् युष्माकम्, श्रावकः शासने रतः।
अप्राप्तमानसः शैक्ष्यः, कालं कुर्यात् जनेश्रुत"इति॥

तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मतः गोधिकेन सत्त्वम् आहृत भवति। अथ खलु भगवान्

(हिन्दी) वह चेताविमुक्ति आगे चलकर कुछ समय बाद नष्ट हो गयी। तो क्यों न मैं आत्महत्या कर लूँ। तब पापी मार, आयुष्मान् गोधिक के इस विचार को अपने चित्त से जानकर, वह तत्काल भगवान् के पास पहुँचा पहुँचकर गाथाओं के माध्यम से भगवान् से यों बोला-

"हे महावीर! हे महाप्रज्ञ! आप अपनी ऋद्धि से दीप्त हो रहे हैं। हे सभी वैर एवं भय से मुक्त! हे सर्वज्ञ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

"हे महावीर! आपका शिष्य गोधिक आपके उपदिष्ट धर्म का अभ्यास करता हुआ अब मरने की इच्छा कर रहा है, हे मृत्युंजय! हे तेजस्विन्! उसे रोकें।"

"हे लोकविख्यात्! आपके शासन में रत कोई आप का शिष्य निर्वाण प्राप्त किये विना शैक्ष्य ही रहते हुए कैसे मृत्यु को प्राप्त हो जायगा?"

उस समय तक आयुष्मान् गोधिक आत्महत्या कर चुका था। तब भगवान् ने यह पापी मार है, यह जान उसको यह गाथा कही-

''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासि –

''एवं हि धीरा कुब्बन्ति, नावकङ्खन्ति जीवितं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, गोधिको परिनिब्बुतो''ति॥

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''आयाम, भिक्खवे, येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमिस्साम यत्थ गोधिकेन कुलपुत्तेन सत्थं आहरितं''ति। ''एवं, भन्ते''ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

अथ खो भगवा सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं येन इसिगिलिपस्सं काळसिला तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा आयस्मन्तं गोधिकं दूरतो व मञ्चके वित्तक्खन्धं सेमानं। तेन खो पन समयेन धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव पुरिमं दिसं, गच्छति पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति उद्धं, गच्छति अधो, गच्छति अनुदिसं।

(संस्कृतच्छाया) "मारः अयं पापी" इति विदित्वा मारं पापमन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"एवं हि धीराः कुर्वन्ति, नावकाक्षन्ति जीवितम्।
समूलां तृष्णामुद्धृण्य, गोधिकः परिनिर्वृतः"इति॥

अथ खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत- आयान्तु, भिक्षवः! यत्र ऋषिगिरिपार्श्वे कालशिलायां तत्रोपसङ्क्रमिष्यामः यत्र गोधिकेन कुलपुत्रेण शास्त्रेण आत्मानं प्रहृतम्" इति। "एवम्, भदन्त" इति खलु ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः।

अथ खलु भगवान् सम्बहुलै भिक्षुभिः सार्धं यत्र ऋषिगिरिपार्श्वे कालशिलायां तत्रोपसमक्रमीत्। अदर्शत् खलु भगवान् आयुष्मन्तं गोधिकं दूरत एव मंचके विवृतस्कन्धं शयानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये धूमायितत्वं तिमिरायितत्वं गच्छन्तमिव पूर्वां दिशा, गच्छन्तमिव पश्चिमां दिशाम्, गच्छन्तमिव उत्तरां दिशाम्, गच्छन्तमिव दक्षिणां दिशाम्, गच्छन्तमिव उर्ध्वम्, गच्छन्तमिव अधश्च, गच्छन्तमिव अनुदिशाम्।

(हिन्दी) "धीर पुरुष ऐसा ही किया करते हैं, क्यों कि जीवन में कोई आकांक्षा नहीं रहती। तृष्णा को मूलतः नष्ट कर गोधिक ने निर्वाण प्राप्त कर लिया।"

तब भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाये - "आओ, भिक्षुओं! जहाँ ऋषिगिरिपर्वत के पास कालशिला है वहाँ चला जाय। जहाँ गोधिक कुलपुत्र ने आत्महत्या कर ली है।" "अच्छा, भन्ते " कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। तब भगवान् बहुत भिक्षुओं के साथ ऋषिगिरिपर्वत की कालशिला पहुँचे। वहाँ भगवान् ने दूर से ही आयुष्मान् गोधिक को शय्या पर शिथिल शरीर से सोते हुए देखा। उस समय धुएँ या अन्धकार का एक वृत्ताकार के समान कुछ पूर्व दिशा की ओर जाते देखा। फिर पश्चिम दिशा की ओर फिर उत्तर दिशा की ओर, दक्षिण दिशा की ओर, ऊपर, नीचे, सभी ओर जाते हुये देखा।

अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं धूमायितत्तं तिमिरायितत्तं गच्छतेव पुरिमं दिसं, गच्छति पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति उद्धं, गच्छति अधो, गच्छति अनुदिसं''ति? ''एवं, भन्ते''।

''एसो खो, भिक्खवे, मारो पापिमा गोधिकस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं समन्वेसति– 'कत्थ गोधिकस्स कुलपुत्तस्स विञ्ञाणं पतिट्ठितं'ति? अप्पतिट्ठितेन च, भिक्खवे, विञ्ञाणेन गोधिको कुलपुत्तो परिनिब्बुतो''ति।

अथ खो मारो पापिमा बेलुवपण्डुवीणं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि –

''उद्धं अधो च तिरियं, दिसा अनुदिसास्वहं।
अन्वेसं नाधिगच्छामि, गोधिको सो कुहिं गतो''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु भगवान् भिक्षवः आमन्त्रयत— "पश्यत नो यूयम्, भिक्षवः! इदं धूमायितत्वं तिमिरायितत्वं गच्छन्तमिव पूर्वां दिशाम्, गच्छन्तमिव पश्चिमां दिशाम्, गच्छन्तमिव उत्तरां दिशाम्, गच्छन्तमिव दक्षिणां दिशाम्, गच्छन्तमिव उर्ध्वम्, गच्छन्तमिव अधश्च, गच्छन्तमिव अनुदिशाम्"इति? "एवम्, भदन्त"।

एषः खलु, भिक्षवः, मारः पापी गोधिकस्य कुलपुत्रस्य विज्ञानं समन्वेष्यति— कुत्र गोधिकस्य कुलपुत्रस्य विज्ञानं प्रतिष्ठितम् इति? अप्रतिष्ठितेन च, भिक्षवः! विज्ञानेन गोधिको कुलपुत्रः, परिनिर्वृतः''इति।

अथ खलु मारः पापी बेलुवपण्डुवीणाम् आदाय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङक्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

"उर्ध्वम् अधश्च तिर्यकम्, दिशासु अनुदिशास्वाहम्।
अन्वेषन् नाधिगच्छामि, गोधिकः सः कुत्र गतः"इति॥

(हिन्दी) तब भगवान् ने भिक्षुओं को भी उस वृताकार के विषय में जैसा उन्होंने देखा पूछा तो भिक्षुओं ने भी कहाँ- भिक्षुओं! देखो कुछ पूर्व दिशा की ओर जाते देखा। फिर पश्चिम दिशा की ओर फिर उत्तर दिशा की ओर, दक्षिण दिशा की ओर, ऊपर, नीचे, सभी ओर जाते हुये देखा।

भगवान् ने कहाँ- "भिक्षुओं! यह पापी मार गोधिक कुलपुत्र के विज्ञान को खोज रहा है कि उसका विज्ञान अब कहाँ जाकर प्रतिष्ठित हुआ है? परन्तु, भिक्षुओं! गोधिक कुलपुत्र का विज्ञान कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं है। वह तो परिनिर्वृत हो चुका है।"उसी समय पापी मार अपनी बाँस की पीली वीणा लिये हुए भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ तथा गाथा के माध्यम से यों बोला-

''ऊपर, नीचे, आड़े, तिरछे- सभी दिशाओं तथा अनुदिशाओं में मैंने सभी तरफ खोज डाला, परन्तु मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि गोधिक कुलपुत्र कहाँ गया।"

''यो धीरो धितिसम्पन्नो, झायी झानरतो सदा।
अहोरत्तं अनुयुञ्जं, जीवितं अनिकामयं॥
''जेत्वान मच्चुनो सेनं, अनागन्त्वा पुनब्भवं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, गोधिको परिनिब्बुतो''ति॥
''तस्स सोकपरेतस्स, वीणा कच्छा अभस्सथ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथा''ति॥

4.3.4. सत्तवस्सानुबन्धसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे। तेन खो पन समयेन मारो पापिमा सत्तवस्सानि भगवन्तं अनुबन्धो होति ओतारापेक्खो ओतारं अलभमानो। अथ खो मारो पापिमा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) "यो धीरः धृतिसम्पन्नः, ध्यायी ध्यानरतः सदा।
अहोरात्रम् अनुयुक्तम्, जीवितम् अनिकामयन्॥
"जित्वा मृत्योः सेनाम्, अनागत्य पुनर्भवम्।
समूलां तृष्णाब्रूह, गोधिकः परिनिर्वृतः"इति॥
"तस्य शोकपरीतस्य, वीणा कक्षात् अभ्रंशत्।
ततः सः दुर्मनाः यक्षः, तत्रैवान्तर्दधौ"इति॥

4. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् ऊरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनयाः तीरे अजपालन्यग्रोधे। तस्मिन् खलु पुनः समये मारः पापी सप्तवर्षानि भगवतः अनुबन्धं भवति अवतारप्रेक्षः अवतारम् अलभमानः। अथ खलु मारः पापी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

(हिन्दी) (भगवान्-) ''वह गोधिककुलपुत्र धीर, धृतिसम्पन्न, ध्यायी, सततध्यानरत, अहर्निश साधनाभ्यास मेंलगा हुआ, जीवन की अपेक्षा न करता हुआ, मृत्युसेना को जीत कर, पुनर्जन्म का ग्रहण न कर, तृष्णा का समूल नाशकर निर्वाण प्राप्तकर गया।

यह सुनकर पापी मार चिन्तामग्न हो गया। उसके पाश्र्व से उसकी वीणा खिसक गयी। इससे वह खिन्न एवं अद्विग्न होता हुआ वहीं अन्तर्धान हो गया।

4. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् उरुबेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। उस समय पापी मार सात वर्ष से निरन्तर भगवान् के पीछे लगा हुआ था कि उनका कोई दोष दृष्टि में आवे; किन्तु उनमें कोई दोष नहीं मिला। तब पापी मार ने जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, और भगवान् से गाथा में बोला-

''सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि, वित्तं नु जीनो उद पत्थयानो।
आगुं नु गामस्मिमकासि किञ्चि, कस्मा जनेन न करोसि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि ते''ति॥
''सोकस्स मूलं पलिखाय सब्बं, अनागु झायामि असोचमानो।
छेत्वान सब्बं भवलोभजप्पं, अनासवो झायामि पमत्तबन्धू''ति॥
''यं वदन्ति मम यिदं ति, ये वदन्ति ममं ति च।
एत्थ चे ते मनो अत्थि, न मे समण मोक्खसी''ति॥
''यं वदन्ति न तं मय्हं, ये वदन्ति न ते अहं।
एवं पापिम जानाहि, न मे मग्गं पि दक्खसी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''शोकावतीर्णः नु वने ध्यायसि, वित्तं नु हीनम् उत् प्रस्थमानः।
आगस् नु ग्रामेस्वस्मिनमकार्षीत् किञ्चित्, कस्मात् जनेन न करोषि सख्यम्।
सख्यं न सम्पद्यते केनचित् ते''इति॥
''शोकस्य मूलं परिक्षिणं सर्वम्, अनगः ध्यायामि असोचमानः।
छित्वा सर्वं भवलोभजातम्, अनाश्रवः ध्यायामि प्रमत्तबन्धुः"इति॥
''यं वदन्ति मम इदम् इति, ये वदन्ति मम इति च।
इत्थं चेत् ते मनः अस्ति, न मे श्रमण मुञ्चसे"इति॥
''यं वदन्ति न तत् मह्यम्, ये वदन्ति न ते अहम्।
एवं पापिन् जानीहि, न मे मार्गमपि द्रक्ष्यसि"इति॥

(हिन्दी) ''तुम किस चिन्ता या शोक में मग्न हो कि इस निर्जन वन में ध्यानरत हो? क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है कि जिसकी चिन्ता कर रहे हो? या अपने आवास ग्राम में कोई अपराध कर डाला है कि जिसके कारण छिप कर यहाँ बैठे हो? क्यों तुम किसी अन्य पुरुष से मिलते जुडते नहीं हो? क्या तुम्हें किसी से मित्रता करना अच्छा नहीं लगता?''

मैंने तो शोक के कारण को ही मूलतः नष्ट कर दिया। बिना कहीं कोई उत्पाद किये, मैं तो निश्चिन्त सतत ध्यानमग्न रहता हूँ। हे प्रमत्तों के बान्धन! मैं जीवन के सर्वविध लोभ लालच को नष्ट कर, आश्रवरहित होकर ध्यान भावना में रत रहता हूँ।

(मार-) ''लोग जिसे कहते हैं- 'यह मेरा है', या जो कहते हैं 'यह मेरा है'; श्रमण! इन बातों में तुम्हारा मन रमा हुआ है तो मुझ से तुम्हारा मोक्ष नहीं।''

''जिसे लोग कहते है- 'ये मेरा नहीं है', या जो कहते हैं- 'मैं नहीं हूँ', रे पापी! ऐसा मुझ को जान। मेरी साधना को तूँ कभी नहीं देख पायेगा।

''सचे मग्गं अनुबुद्धं, खेमं अमतगामिनं।
अपेहि गच्छ त्वमेवेको, किमञ्ञमनुसाससी''ति॥
''अमच्चुधेय्यं पुच्छन्ति, ये जना पारगामिनो।
तेसाहं पुट्ठो अक्खामि, यं सच्चं तं निरूपधिं''ति॥

''सेय्यथापि, भन्ते, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे पोक्खरणी। तत्रस्स कक्कटको। अथ खो, भन्ते, सम्बहुला कुमारका वा कुमारिकायो वा तम्हा गामा वा निगमा वा निक्खमित्वा येन सा पोक्खरणी तेनुपसङ्कमेय्युं; उपसङ्कमित्वा तं कक्कटकं उदका उद्धरित्वा थले पतिट्ठपेय्युं। यं यदेव हि सो, भन्ते, कक्कटको अळं अभिनिन्नामेय्य तं तदेव ते कुमारका वा कुमारिकायो वा कट्ठेन वा कथलाय वा सञ्छिन्देय्युं सम्भञ्जेय्युं सम्पलिभञ्जेय्युं। एवं हि सो, भन्ते, कक्कटको सब्बेहि अळेहि सञ्छिन्नेहि सम्भग्गेहि सम्पलिभग्गेहि अभब्बो तं पोक्खरणिं ओतरितुं।

(संस्कृतच्छाया) ''तत् चेत् मार्गम् अनुबुद्धम्, क्षेमम् अमृत्युगामिनम्।
अपेहि गच्छ त्वमेवैकः, किमन्मनुशाससि"इति॥
''अमृत्युधेयम् पृच्छन्ति, ये जनाः पारगामिनः।
तेषाम् अहं पृष्टः आख्या, यं सत्यं तत् निरूपधिः"इति॥

तद्यथापि, भदन्त! ग्रामस्य वा निगमस्य वा अविदूरे पुष्करणी। तत्रस्य कर्कटकः। अथ खलु, भदन्त! सम्बहुलाः कुमारकाः वा कुमारिकाः वा तस्मात् ग्रामात् वा निगमात् वा निष्क्रम्य यत्र सा पुष्करणी तत्रोपसङ्क्राम्येयुः, उपसङ्क्रम्य तं कर्कटकम् उदकाद् उद्धृत्य स्थले प्रतिष्ठापयेयुः। यत्र यदैव हि सः, भदन्त! कर्कटकः अलम् अभिनिष्क्रमेत् तत् तदैव ते कुमारकाः वा कुमारिकाः वा काष्ठेन वा कथलया वा सञ्छिन्द्युः सम्भुञ्ज्युः सम्परिभुञ्ज्युः। एवं हि सः, भदन्त! कर्कटकः सर्वैः अलं हि सञ्छिन्नेहि सम्भग्नेहि सम्परिभग्नेहि अभव्यः तां पौष्करणीम् अवतरितुम्।

(हिन्दी) (मार-) ''यदि तुम्हें अजर अमर पद तक पहुँचाने वाले मार्ग का ज्ञान हो गया है तो उस पर तुम अकेले चलो, दूसरो को क्यों उपदेश देते फिरते हो?''

(भगवान्-) ''लोग पूछते हैं कि मृत्यु के राज्य का पार कहाँ हैं? जो उसके पार जाने के इच्छुक हैं, वे जब पूछते हैं तो मैं उनको बातता हूँ कि उपाधियों का सर्वथा अन्त कहाँ और कैसे हो सकता है।''

(मार-) जैसे, भन्ते! किसी ग्राम या कस्बे के निकट कोई पुष्करणी हों, उसमें कोई कर्कट (कैंकड़ा) रहता हों। तब, भन्ते! उस ग्राम के कुछ बालक या बालिकाएँ गाँवों से निकल कर उस पुष्पकरणी पर आ जाएँ, तथा उस पुष्करणी के जल में से कर्कट को जल में से निकाल कर भूमि पर डाला दें। भन्ते! तब वह कर्कट जिधर पैर निकाले उस को वे बालक या बालिकाएँ किसी काष्ठ से या मिट्टी के टुकड़े से या किसी पत्थर से तोड़ दें, काटे दें या मसल दें। इस प्रकार भन्ते! वह र्ककटक सभी पैरों के टूट जाने पर कट जाने पर या मसले जाने पर उस पुष्करणी में उतरने में पूर्णतः असमर्थ हो जाता है।

एवमेव खो, भन्ते, यानि कानिचि विसूकायिकानि विसेवितानि विप्फन्दितानि, सब्बानि तानि भगवता सञ्छिन्नानि सम्भग्गानि सम्पलिभग्गानि। अभब्बो दानाहं, भन्ते, पुन भगवन्तं उपसङ्कमितुं यदिदं ओतारापेक्खो''ति। अथ खो मारो पापिमा भगवतो सन्तिके इमा निब्बेजनीया गाथायो अभासि–

''मेदवण्णं च पासाणं, वायसो अनुपरियगा।
अपेत्थ मुदुं विन्देम, अपि अस्सादना सिया॥
''अलद्धा तत्थ अस्सादं, वायसेत्तो अपक्कमे।
काको व सेलमासज्ज, निब्बिज्जापेम गोतमा''ति॥

4.3.5. मारधीतुसुत्तं

अथ खो मारो पापिमा भगवतो सन्तिके इमा निब्बेजनीया गाथायो अभासित्वा तम्हा ठाना अपक्कम्म भगवतो अविदूरे पठवियं पल्लङ्केन निसीदि तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो

(संस्कृतच्छाया) एवमेव खलु, भदन्त! यानि कानिचित् विसूकायिकानि निवेसितानि विस्पन्दितानि, सर्वाणि तानि भगवता सञ्छिन्नानि सम्भग्नानि सम्परिभग्नानि। अभव्यः इदानीमहम्, भदन्त! पुनः भगवन्तम् उपसङ्क्रमितुम्, यदिदम् अवतारापेक्षः"इति। अथ खलु मारः पापी भगवतः अन्तिके इमां निर्वेदनीयाः गाथाः अभाषिष्ट—

''मेदवर्णं च पाषाणम्, वायसः अनुपर्यगात्।
अप्यत्र मृदुं विन्देम, अपि अस्वादनं स्यात्॥
"अलब्ध्वा तत्र आस्वादम्, वायसः इतः अपाक्रमत्।
काकः इव शैलमासद्य, निविद्यापयामि गौतम"इति॥

5. अथ खलु मारः पापी भगवतः अन्तिके अनया निर्वेदनीय गाथया भाषित्वा तस्मात् स्थानात् अपक्रमितः भगवतः अविदूरे पृथवीव्यां पद्मासनेन न्यसीदत्, तूष्णीभूतः मूकभूतः

(हिन्दी) इसी तरह, भन्ते! जो मेरे पुष्ट अंग प्रत्यंग थे उन सबको भगवान् ने तोड़ दिया, काट दिया, मसल दिया। अन्ततः आप में दोष खोजने के लिये पुनः आने में असमर्थ हो गया।'' तब वह पापी मार भगवान् के सम्मुख दीनतापूर्ण वचनों में यों बोला-

''चर्वी के समान श्वेत पत्थर को देख किसी कौए ने झपट्टा मारा कि यह वस्तु बहुत स्वादिष्ट होगी।

''परन्तु वहाँ कोई स्वाद न पाकर कौआ उड़ गया। उसी तरह मैं भी, हे गौतम! आप को छोड़कर दूर हट जाऊँ इसी मे मेरा हित है।

5. वह पापी मार भगवान् के सम्मुख ये दीनतापूर्ण वचन कहकर, वहाँ से हटकर, भगवान् के समीप ही पद्मासन लगा कर बैठ गया। यों वह गूँगे के समान चुप होकर, लज्जा के कारण अपने कन्धे गिरा कर भूमि को तृण से खोदने लगा।

पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो कट्ठेन भूमिं विलिखन्तो।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन मारो पापिमा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मारं पापिमन्तं गाथाय अज्झभासिंसु–

''केनासि दुम्मनो तात, पुरिसं कं नु सोचसि।
मयं तं रागपासेन, आरञ्ञमिव कुञ्जरं।
बन्धित्वा आनयिस्साम, वसगो ते भविस्सती''ति॥
''अरहं सुगतो लोके, न रागेन सुवानयो।
मारधेय्यं अतिक्कन्तो, तस्मा सोचामहं भुसं''ति॥

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं– ''पादे ते, समण, परिचारेमा''ति। अथ खो भगवा न

(संस्कृतच्छाया) पतितस्कन्धः अधोमुखः प्रध्यायन्तः अप्रतिभानः काष्ठेन भूमिं विलखन्तः।
अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीता यत्र मारः पापी तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य मारं पापमन्तं गाथया अध्यभाषिषत—

"केनासित् दुर्मनः तात, पुरूषं कं नु शोचसि?
वयं तत् रागपाशेन, आरण्यमिव कुञ्जरम्।
बन्धित्वा आनयिष्यामः, वशगः ते भविष्यति"इति॥
''अर्हत् सुगतः लोके, न रागेन स्वानयः।
मारधेयम् अतिक्रान्तः, तस्मात् शोचाम्यहं भृशम्''इति॥

अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचन्— पादौ ते, श्रमण, परिचरेम"इति। अथ खलु भगवान् न

(हिन्दी) तब तृष्णा, अरति एवं रगा नामक तीन मारकन्याएँ पापी मार के पास पहुँची। पहुँच कर पापी मार से गाथा में बोलीं-

''पिताजी! आप खिन्न क्यों हैं? किस पुरुष के विषय में शोक कर रहे हैं? हम उसे अपने राग के जाल में उसी तरह फँसकर ले आवेंगी जैसे जंगली हाथी जाल में फँसा कर लाया जाता है। फिर वह सदा आपके वश में रहेगा।''

(मार-) ''पुत्रियों! संसार में अर्हत् बुद्ध राग में नहीं फँसाये जा सकते; क्यों कि वे मार की राज्यसीमा से बाहर हो चुके हैं। इसीलिये मैं इतना चिन्तित हूँ।

तब तृष्णा, अरति एवं रगा- मार की ये तीनों पुत्रियाँ भगवान् के पास गयीं। वहाँ जाकर भगवान् से यों बोली- ''हे श्रमण! हम आप के चरणों की सेवा करना चाहती हैं। परन्तु भगवान् ने कोई ध्यान नहीं दिया; क्योंकि वे आसक्ति क्षय होने से अनुत्तर विमुक्ति प्राप्त कर चुके थे।

मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं– ''उच्चावचा खो पुरिसानं अधिप्पाया। यंनून मयं एकसतं एकसतं कुमारिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा''ति। अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकसतं एकसतं कुमारिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं– ''पादे ते, समण, परिचारेमा''ति। तम्पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसुं– ''उच्चावचा खो पुरिसानं अधिप्पाया। यंनून मयं एकसतं एकसतं अविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामा''ति। अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकसतं एकसतं

(संस्कृतच्छाया) मनासाकर्षितः,यथा तत् अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः।

अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः एकान्ते अपक्रम्य एवं समचिन्तयन्— उच्चावचाः खलु पुरुषाणाम् अभिप्रायाः। यन्नूनं वयम् एकशतम् एकशतं कुमारिवर्णसत्वं अभिनिर्मायनिर्यामः"इति। अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः एकशतम् एकशतं कुमारिवर्णसत्वम् अभिनिर्माय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचन्— "पादौ ते, श्रमण, परिचरेम"इति। तदपि भगवान् न मनासाकर्षितः, यथा तत् अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः।

अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः एकान्ते अपक्रम्य एवं समचिन्तयन्— उच्चावचाः खलु पुरुषाणाम् अभिप्रायाः। यन्नूनं वयम् एकशतम् एकशतम् अविजातवर्णसत्वम् अभिनिर्मायनिर्यामः"इति। अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः एकशतम् एकशतम्

(हिन्दी) तब वे तृष्णा, अरति एवं रगा- ये तीनों मारकन्याएँ एकान्त में जाकर विचार करने लगीं- "इस संसार में पुरुषों की इच्छाएँ अनेक प्रकार की होती हैं, तो हम लोग क्यों न एक एक सौ कुमारियों के रूप धारण कर उनके पास चलें।" तब वे... तीनों कन्याएँ एक एक सौ कुमारियों के रूप धारण कर भगवान् के सम्मुख पहुँची। आकर भगवान् से यह बात कही- "हम आपके चरणों की सेवा करना चाहती हूँ" परन्तु उन पर भी भगवान् ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी संसारविषयक आसक्ति के क्षीण हो जाने से वे अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब उन मारकन्याओं ने पुनः एकान्त में बैठकर मन्त्रणा की तथा निश्चय किया कि "इस संसार में पुरुषों की इच्छाएँ नानाविध हुआ करती हैं तो क्यों न हम पृथक् पृथक् एक एक सौ सन्तान उत्पन्न न करने वाली नारी के रूप धारण कर उनके पास चलें। तब तृष्णा, अरति एवं रगा मारकन्याओं ने एक एक सौ

अविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं– ''पादे ते, समण, परिचारेमा''ति। तम्पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च...पे॰... यंनून मयं एकसतं एकसतं सकिं विजातवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामाति। अथ खो तण्हा च...पे॰... सकिं विजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोचुं– ''पादे ते, समण, परिचारेमा''ति। तम्पि भगवा न मनसाकासि, यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च...पे॰...यंनून मयं एकसतं एकसतं दुविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामाति। अथ खो तण्हा च...पे॰...दुविजातवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा...पे॰...यथा तं अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो। अथ खो तण्हा च...पे॰... मज्झिमित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामाति। अथ खो तण्हा च...पे॰...

(संस्कृतच्छाया) अविजातवर्णसत्वम् अभिनिर्माय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचन्— "पादौ ते, श्रमण, परिचरेम"इति। तदपि भगवान् न मनसाकार्षित, यथा तत् अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः।

अथ खलु तृष्णा च....पे॰....यन्नूनं वयम् एकशतम् एकशतं सकृद् विजातवर्णसत्वम् अभिनिर्मायनिर्यामः"इति। अथ खलु तृष्णा च.....पे॰...सकृद् विजातवर्णसत्वम् अभिनिर्माय" यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङक्रम्य भगवन्तम् एतदवोचन्— "पादौ ते, श्रमण, परिचरेम"इति। तदपि भगवान् न मनसाकार्षित, यथा तत् अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः।

अथ खलु तृष्णा च....पे॰....यन्नूनं वयम् एकशतम् एकशतं द्वौविजातवर्णसत्वम् अभिनिर्मायनिर्यामः। अथ खलु तृष्णा च.....पे॰...द्वौविजातवर्णसत्वम् अभिनिर्माय यत्र भगवान्....पे॰....यथा तत् अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः। अथ खलु तृष्णा च.....पे॰... मध्यमस्त्रीवर्णसत्वम् अभिनिर्मायनिर्यामः। अथ खलु तृष्णा च....पे॰.....

(हिन्दी) सन्तान उत्पन्न न करने वाली नारी के रूप धारण कर रूप धारण कर भगवान् के सम्मुख पहुंचीं। आकर भगवान् से यह बात ''हम आपके चरणों की सेवा करना चाहती हैं।'' परन्तु उन पर भी भगवान् ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी संसारविषयक आसक्ति के क्षीण हो जाने से वे अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब तृष्णा... पूर्ववत्... तो क्यों न हम पृथक् पृथक् एक एक सौ एक बार प्रसूताओं का रूप धारण कर उनके पास चलें।... पूर्ववत्... चरणों की सेवा करना चाहती हैं।'' परन्तु उन पर भी भगवान् ने कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उनकी संसारविषयक आसक्ति के क्षीण हो जाने से वे अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब तृष्णा... पूर्ववत्... तो क्यों न हम पृथक् पृथक् एक एक सौ दो बार प्रसूताओं का रूप धारण कर उनके पास चलें। तब तृष्णा... पूर्ववत्... दो बार प्रसूताओं का रूप धारण कर... पूर्ववत्... अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे। तब तृष्णा... पूर्ववत्... एक एक सौ मध्यम आयु वाली स्त्रियों का रूप धारण कर उनके पास

मज्झिमित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा...पे॰... अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो।

अथ खो तण्हा च...पे॰... महित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनेय्यामाति। अथ खो तण्हा च...पे॰... महित्थिवण्णसतं अभिनिम्मिनित्वा येन भगवा...पे॰... अनुत्तरे उपधिसङ्खये विमुत्तो। अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो एकमन्तं अपक्कम्म एतदवोचुं– सच्चं किर नो पिता अवोच–

''अरहं सुगतो लोके, न रागेन सुवानयो।
मारधेय्यं अतिक्कन्तो, तस्मा सोचामहं भुसं''ति॥

''यं ह मयं समणं वा ब्राह्मणं वा अवीतरागं इमिना उपक्कमेन उपक्कमेय्याम हृदयं वास्स फलेय्य, उण्हं लोहितं वा मुखतो उग्गच्छेय्य, उम्मादं वा पापुणेय्य चित्तक्खेपं वा। सेय्यथा वा पन नळो हरितो लुतो उस्सुस्सति विसुस्सति मिलायति; एवमेव उस्सुस्सेय्य विसुस्सेय्य मिलायेय्या''ति।

(संस्कृतच्छाया) मध्यमस्त्रीवर्णसत्वम् अभिनिर्माय....पे॰.....अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः।

अथ खलु तृष्णा च....पे॰.....महास्त्रिवर्णसत्वम् अभिनिर्मायनिर्यामः इति। अथ खलु तृष्णा च...पे॰...महास्त्रिवर्णसत्वम् अभिनिर्माय यत्र भगवान्...पे॰...अनुत्तरे उपधिसंक्षये विमुक्तः। अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः एकान्ते अपक्रम्य एतदवोचन्– सत्यं किल नो पिताः अवदत्—

''अर्हत् सुगतः लोके, न रागेण स्वानयः।
मारधेयम् अतिक्रान्तः, तस्मात् शोचाम्यहं भृशम्"इति॥

यं हि वयं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा अवीतरागम् अनेन उपक्रमेण उपक्राम्येम हृदयं वास्य फलेत्, उष्णं लोहितं वा मुखतः उद्गच्छेत् उन्मादं वा प्राप्नुयात् चित्तविक्षेपं वा। तद्यथा वा पुनः नलः हरितः लूतः उद्शुष्यति विशुष्यति म्लायति; एवमेव उद्शुष्येत् विशुष्येत् म्लायेत्"इति।

(हिन्दी) चलें। तब तृष्णा... पूर्ववत्... सौ मध्यम आयु वाली स्त्रियों... पूर्ववत्...अनुत्तर विमुक्ति को पा चुके थे।

तब तृष्णा... पूर्ववत्... एक एक सौ वृद्धा स्त्रियों का रूप धारण कर उनके पास चलें।" तदनुसार रूप धारण कर भगवान् के सम्मुख गयीं; परन्तु भगवान् ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। तब उन तीनों मारकन्याओं ने वहाँ एक तरफ हटकर यह कहा- "अपने पिता जी उचित कर रहे थे-

"संसार में सुगत को राग के माध्यम से आकृष्ट नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे मृत्यु के नियन्त्रण को अतिक्रान्त कर चुके हैं। इसीलिये मैं इतना चिन्तित हूँ।

"यदि हम लोग किसी श्रमण, ब्राह्मण के पास इस तरह जातीं जो वीतराग नहीं हुआ होता तो उसका वक्षःस्थल विदीर्ण हो जाता, या वह अपने मुख से रुधिर का वमन कर देता, या वह प्रमत्त हो जाता, या उन्मत्त हो जाता। या जैसे काटी हुई घासें सूख जाती तथा मुर्झा जाती है वैसे ही वह सूख जाता या मुर्झा जाता।"

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो तण्हा मारधीता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि,वित्तं नु जीनो उद पत्थयानो।
आगुं नु गामस्मिमकासि किञ्चि,कस्मा जनेन न करोसि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि ते''ति॥

''अत्थस्स पत्तिं हृदयस्स सन्तिं, जेत्वान सेनं पियसातरूपं।
एकोहं झायं सुखमनुबोधिं, तस्मा जनेन न करोमि सक्खिं।
सक्खी न सम्पज्जति केनचि मे''ति॥

अथ खो अरति मारधीता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः यत्र भगवान्; तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य एकान्ते अतिष्ठन्। एकान्ते स्थितः खलु तृष्णा मारधीताः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''शोकावतीर्णः नु वने ध्यायसि, वित्तं नु क्षीणम् उत्प्रथ्यमानः।
आगस् नु ग्रामेस्वस्मिनमकार्षीत् किञ्चित्, कस्मात् जनेन न करोषि सख्यम्।
सख्यं न सम्पद्यते केनचित् ते"इति॥

''अर्थस्य प्राप्ति हृदयस्य शान्तिम्, जित्वा सेनां प्रियसातरूपम्।
एकोऽहं ध्यायन् सुखमनुबोधिम्, तस्मात् जनेन न करोमि सख्यम्।
सख्यं न सम्पद्यते केनचित् ते"इति॥

अथ खलु अरतिः मारधीताः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

(हिन्दी) तब तृष्णा आदि वे तीनों मार कन्याएँ भगवान् के पास जाकर एक तरफ खड़ी हो गयी तथा उनमे से तृष्णा ने भगवान् से गाथा में बोली-

तुम किस शोक या चिन्ता के कारण इस निर्जन वन में एकाकी रूप में बैठे हुए ध्यानमग्न हो। क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया है जिसकी चिन्ता कर रहे हो? या तुमने अपने ग्राम में ऐसा कोई प्रमाद कर डाला है कि जिससे लोगों से तुम मिलना भी नहीं चाहते? क्या तुम्हारी किसी से मित्रता नहीं है कि वह तुमसे मिलने भी नहीं आता?''

''मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुकने के कारण हृदय में पूर्ण शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। मैंने इन भ्रामक, मोहक एवं प्रिय लगने वाली सांसारिक वस्तुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। अब मैं एकाकी ध्यानमग्न रहकर सुखानुभव कर रहा हूँ। अतएव मैं किसी से मिलने जुलने की कोई आवश्यकता का अनुभव नहीं करता। तथा मैं किसी से मित्रता करने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझता''।

तब, अरति नामक दूसरी मारकन्या ने भगवान् से यह गाथा कहा-

''कथं विहारीबहुलोध भिक्खु, पञ्चोघतिण्णो अतरीध छट्ठं।
कथं झायिं बहुलं कामसञ्ञा, परिबाहिरा होन्ति अलद्ध यो तं''ति॥
''पस्सद्धकायो सुविमुत्तचित्तो, असङ्खरानो सतिमा अनोको।
अञ्ञाय धम्मं अवितक्कझायी, न कुप्पति न सरति न थिनो॥
''एवंविहारीबहुलोध भिक्खु, पञ्चोघतिण्णो अतरीध छट्ठं।
एवं झायिं बहुलं कामसञ्ञा, परिबाहिरा होन्ति अलद्ध यो तं''ति॥

अथ खो रगा मारधीता भगवतो सन्तिके गाथाय अज्झभासि–

''अच्छेज्ज तण्हं गणसङ्घचारी, अद्धा चरिस्सन्ति बहू च सद्धा।
बहुं वतायं जनतं अनोको, अच्छेज्ज नेस्सति मच्चुराजस्स पारं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "कथं विहरतिबहुलौधे भिक्षुः, पञ्चोघतीर्णः अतरदिह षष्ठम्।
कथं ध्यायिनं बहुलं कामसंज्ञा, परिबहिराभवन्ति अलब्धयन् यो तम्"इति॥
''स्तब्धकायः सुविमुक्तचित्तः, असंस्कारः स्मृतिमान् अनौकः।
आज्ञाय धर्मम् अवितर्कध्यायी, न कुप्यति न सरति न स्थिरः॥
''एवं विहरतिबहुलौधे भिक्षुः, पञ्चोघतीर्णः अतरदिह षष्टम्।
एवं ध्यायिनं बहुलं कामसंज्ञा, परिबहिरा भवन्ति अलब्धयन् यो तम्"इति॥

अथ खलु रगा मारधीता भगवतः अन्तिके गाथया अध्यभाषिष्ट—

''आछिद्य तृष्णां गणसङघचारी, अद्धा चरिष्यन्ति बहू च श्रद्धा।
बहुं वतायं जनता अनेकाः, आछिद्य नेष्यति मृत्युराजस्य पारम्"इति॥

(हिन्दी) "कोई भिक्षु कैसे निरन्तर ध्यानमग्न रह पाता है ? वह पाँच ओघों को पार कर छठे को कैसे पार कर जाता है? कैसे सतत ध्यानाभ्यासी को कामसंज्ञा क्यों नहीं जकड़ पाती, वे उसके बाहर ही क्यों टहलती रह जाती है?"

(भगवान्-) "जिसकी काया शान्त हो गयी है चित्त दोषों से मुक्त हो गया है, जिसके संस्कार विनष्ट हो चुके हैं, जो स्मृतिमान्, आवासरहित तथा धर्म को जानकर अवितर्क ध्यान में रत रहता हुआ न किसी पर क्रोध करता है, न किसी से वैर बाँधता है, न साधना में अनुत्साही होता है।"

"भिक्षु ऐसे ही निरन्तर ध्यानमग्न रहता है, पाँच बाढ़ों को पार कर छठे को भी पार कर जाता है। ऐसे ध्यानाभ्यासी को ये सांसारिक कामसंज्ञायें किसी भी दशा में नहीं बाँध पाती। वे तो उसके बाहर ही टहलती रह जाती हैं, उसके चित्त को दूषित नहीं कर पातीं।"

तब रगा मारकन्या ने भगवान से यों गाथाएँ कहीं-

गण एवं संघ में रहकर साधना करने वाला तृष्णा को छिन्न भिन्न कर आगे बढ़ जाता है। अन्य बहुत से साधक भी आगे बढ़ जायेगें। यह प्रव्रजित भिक्षु उन बहुत से लोगों को मृत्युराज से छुड़ाकर पार ले जायेगा।

''नयन्ति वे महावीरा, सद्धम्मेन तथागता।
धम्मेन नयमानानं, का उसूया विजानतं''ति॥

अथ खो तण्हा च अरति च रगा च मारधीतरो येन मारो पापिमा तेनुपसङ्कमिंसु। अद्दसा खो मारो पापिमा तण्हं अरतिञ्च रगञ्च मारधीतरो दूरतोव आगच्छन्तियो। दिस्वान गाथाहि अज्झभासि–

''बाला कुमुदनाळेहि, पब्बतं अभिमत्थथ।
गिरिं नखेन खनथ, अयो दन्तेहि खादथ॥
''सेलंव सिरसूहच्च, पाताले गाधमेसथ।
खाणुंव उरसासज्ज, निब्बिज्जापेथ गोतमा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''नयन्ति वे महावीराः, सद्धर्मेण तथागता।
धर्मेण नयमानानाम्, का आसूया विजानतम्''इति॥

अथ खलु तृष्णा च अरतिः च रगा च मारधीताः यत्र मारः पापी तत्रोपसमक्रमिषुः। अपश्यत् खलु मारः पापी तृष्णाञ्च अरतिञ्च रगाञ्च मारधीतः दूरत एव आगच्छतः। दृष्ट्रवा गाथाभिः अध्यभाषिष्ट—

"बाला कुमुदनालेन्, पर्वतम् अभिमथ्नासि।
गिरि नखेन खनथः, अयः दन्तभि खादयसि॥
"शैलम् इव शिरसावो, पातालस्य गाधमिच्छसि।
स्थाणुम् इव उरसाशाद्य, निवृत्यापेथ गौतम"इति॥

(हिन्दी) ''महाबलशाली तथागत अपने सद्धर्मोपदेश द्वारा उन साधक प्राणियों को साधना में आगे बढ़ाते हैं। विवेकी पुरुषों का धर्म के द्वारा साधना को आगे बढ़ाने वालों के साथ ईष्या द्वेष कैसा!''

तब वे तृष्णा, अरति, और रगा तीनों मार कन्याएँ अपने पिता के पास पहुँची। पापी मार ने तृष्णा, अरति, और रगा उनको दूर से आते हुए देख लिया। देख कर उसने उनको इन गाथाओं के माध्यम से यों कहाँ-

''अरी मूर्खों! तुम कमल की नाल से पर्वत को मथना चाहती हो, पहाड़ को नखों से खोदना चाहती हो, लोहे को दांत से चबाना चाहती हो!

''पर्वत को अपने सिर से टक्कर मारना चाहती हो! पाताल की गहराई खोजना चाहती हो! वृक्ष के ठूँठ से अपने वक्षःस्थल टकरा रही हो! अच्छा हुआ, तुम उस श्रमण गौतम का पीछा छोड़कर पुनः लौट गयीं।

''दद्दल्लमाना आगञ्छुं, तण्हा च अरती रगा।
ता तत्थ पनुदी सत्था, तूलं भट्ठंव मालुतो''ति॥
ततियो वग्गो।

तस्सुद्दानं–

सम्बहुला समिद्धि च, गोधिकं सत्तवस्सानि।
धीतरं देसितं बुद्ध, सेट्ठेन इमं मारपञ्चकं''ति॥
मारसंयुत्तं समत्तं।

(संस्कृतच्छाया) ''दल्लमाना आगच्छन्, तृष्णा च अरतीः रगा।
ताः तत् अपनोदिताः शास्ता, तूलं भ्रष्टं इव मारुतः"इति॥
तृतीय वर्गः।

तस्योद्दानम्–

सम्बहुला समद्धि च, गोधिकं ससवर्षानु।
धीतरं देसितं बुद्ध, श्रेष्ठेन इमां मारपञ्चमम्''इति॥

(हिन्दी)- यों, वे तीनों- तृष्णा, अरति एवं रगा- मारकन्याएँ अपने शरीर के विशिष्ट हाव भाव दिखाती हुई पुनः लौट आयीं। शास्ता ने उनको अपने यहाँ से वैसे ही भगा दिया जैसे वायु रूई को उड़ा देती है, बिखेर देती है।

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में सम्बहुलसुत्त, समृद्धिसुत्त, गोधिकसुत्त, ससवर्षानुबन्धसुत्त एवं मारधीतासुत्त है।

******

5. भिक्खुनीसंयुत्तं

5.1. आळविकासुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आळविका भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि विवेकत्थिनी। अथ खो मारो पापिमा आळविकाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो विवेकम्हा चावेतुकामो येन आळविका भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आळविकं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''नत्थि निस्सरणं लोके, किं विवेकेन काहसि।
भुञ्जस्सु कामरतियो, माहु पच्छानुतापिनी''ति॥

अथ खो आळविकाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो आळविकाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो विवेकम्हा चावेतुकामो गाथं

(संस्कृतच्छाया) 1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु आटविका भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भुक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ता यत्र अन्धवनं तत्रोपसमक्रमीत् विवेकार्थिनी। अथ खलु मारः पापिमान् आटविकायाः भिक्षुण्याः भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षम् उत्पादयितुकामो विवेकात् चापेतुकामो यत्र आटविका भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य आटविका भिक्षुणी गाथया अध्यभाषिष्ट–

''नास्ति निस्सरणं लोके, किं विविक्तेन कांक्षसि।
भुञ्जस्व कामरतिम्, माभूत् पश्चादनुतापिनी''इति॥

अथ खलु आटविकायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''को नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु आटविकायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामो विवेकात् चापेतुकामो गाथां

(हिन्दी) 1. ऐसा मैंने सुना...। एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय आलविका नामक भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन कर, पात्र चीवर लेकर, श्रावस्ती में भिक्षा हेतु प्रविष्ट हुई। वह श्रावस्ती में भिक्षाकर, भोजनक्रिया के उपरांत होकर साधनाहेतु एकान्तवास खोजती हुई अन्धवन में पहुँची। वहाँ पापी मार उस समय आलविका भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चित एवं शान्ति को तोड़ देने की इच्छा से उस भिक्षुणी के पास पहुँचा तथा यह बोला– "इस संसार में मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। एकान्त सेवन से क्या फायदा! अभी तो तुम सांसारिक कामगुणों का उपभोग करो, अन्यथा बाद में इसके लिये तुम्हें पछताना होगा।" तब आलविका भिक्षुणी के मन में यह हुआ– "यह कौन मनुष्य या अमनुष्य गाथा में बोल रहा हैं। यह कौन बोल रहा है? " तब उसके ध्यान में आया– "यह तो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करने के लिये,

भासती''ति। अथ खो आळविका भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''अत्थि निस्सरणं लोके, पञ्ञाय मे सुफुस्सितं।
पमत्तबन्धु पापिम, न त्वं जानासि तं पदं॥
''सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।
यं त्वं कामरतिं ब्रूसि, अरति मय्ह सा अहू''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं आळविका भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.2. सोमासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सोमा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन

(संस्कृतच्छाया) भाषते'' इति। अथ खलु आटविका भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''अस्ति निस्सरणं लोके, प्रज्ञा मे सुस्पर्शितम्।
प्रमत्तबन्धो पापिमान्, न त्वम् जानासि तत् पदम्॥
''शक्तिशूलोपमा कामा, स्कन्धानाम् अधिकुट्टना।
यं त्वं कामरतिं ब्रबीसि, अरतिः मह्यं सा अभूत''इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति माम् आटविका भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

2. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु सोमा भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चाद् भुक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ता यत्र

(हिन्दी) पापी मार की कुचेष्टा है। इस तरह कहकर यह मुझे एकान्त साधना से च्युत करना चाहता है।" तब आलविका ने प्रत्युत्तर में गाथा में बोली—

"संसार से मुक्ति का भी उपाय है, जिसको मैने प्रज्ञा द्वारा प्राप्त कर लिया है। ओ पापिन्! ओ प्रमत्त पुरूषों के मित्र! तूँ उस पद (स्थान) को नहीं जानता।

"ये सांसारिक कामभोग तो शूल एवं भालों के समान हैं, जो प्राणियों को चुभते रहते हैं। जिसे तुम कामभोग कहते हो उसमें मेरी कोई रूचि नहीं रह गयी है"।

तब पापी मार "आलविका भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

2. श्रावस्ती में ही...। तब सोमा भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अंधवन है

अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा सोमाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन सोमा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सोमं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''यं तं इसीहि पत्तब्बं, ठानं दुरभिसम्भवं।
न तं द्वङ्गुलपञ्ञाय, सक्का पप्पोतुमित्थिया''ति॥

अथ खो सोमाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथं भासती''ति? अथ खो सोमाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति। अथ खो सोमा भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

(संस्कृतच्छाया) अन्धवनम् तत्रोपसमक्रमीत् दिवाविहाराय। अन्धवनम् अध्यवगाह्य अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहाराय न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् सोमायाः भिक्षुण्याः भयं स्तम्भितत्वं नु रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेः चापेतुकामो यत्र सोमा भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य सोमां भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''यत् तद् ऋषिभिः प्राप्तव्यम्, स्थानं दुरभिसम्भवम्।
न तद् द्विङ्गुलप्रज्ञया, शक्ता प्राप्तुं स्त्रि'' इति॥

अथ खलु सोमायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''को नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु सोमायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामो गाथायां भाषते''इति। अथ खलु सोमा भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापमन्तं गाथाभिः प्रत्यभाषत्–

(हिन्दी) वहाँ चली गई। अन्धवन में किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठी। तब पापी मार सोमा भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चित कर देने, समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ सोमा भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर सोमा भिक्षुणी सें गाथा में बोला—

"ओ साधारण नारि! जो स्थान बड़े-बड़े ऋषि मुनियों द्वारा भी बहुत कठिन साधना से प्राप्त करने योग्य है, उसे तुम अपनी इस छोटी सी दो अंगुल की प्रज्ञा से प्राप्त करना चाहती हो।"

तब सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ(उसके समझ में आया)- यह गाथा बोलने वाला कोई मनुष्य है या अमनुष्य (देवता)? तब सोमा भिक्षुणी के मन में यह हुआ (उसके समझ में आया) कि यह अवश्य पापी मार ही है जो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करा साधना से च्युत करने के विचार से गाथा बोल रहा है। तब सोमा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है", जान कर, गाथा बोली—

''इत्थिभावो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥
''यस्स नून सिया एवं, इत्थाहं पुरिसोति वा।
किञ्चि वा पन अञ्ञस्मि, तं मारो वत्तुमरहती''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं सोमा भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.3. किसागोतमीसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो किसागोतमी भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा किसागोतमिया भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन किसागोतमी भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि;

(संस्कृतच्छाया) ''स्त्रीभावः किम् कुर्यात्, चित्ते सुसमाहिते।
ज्ञाने वर्तमाने, सम्यक् धर्मं विपश्यतः॥
''यस्य नूनं स्याद् एवम्, स्त्री अहं पुरुष इति वा।
किञ्चित् वा पुन अन्यस्मिन्, तत् मारः वक्तुमर्हति'' इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां सोमा भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

3. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु कृषागौतमी भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भुक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्तो यत्र अन्धवनं तत्रोपसमक्रमीत् दिवाविहाराय। अन्धवनम् अध्यवगाह्य अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् कृषागौतम्याः भिक्षुण्या भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामो यत्र कृषागौतमी भिक्षुणी आसीत् तत्रोपसमक्रमीत्;

(हिन्दी) "यदि किसी का चित्त भलीभाँति समाहित हो चुका है, तब स्त्री भाव क्या करेगा। यदि उसने धर्म का साक्षात्कार सम्यक् प्रकार से कर ज्ञान प्राप्त कर लिया है"। "हाँ, जिस साधक में 'मैं स्त्री हूँ' या 'पुरुष हूँ'—यह या ऐसा ही कोई अन्य भाव विद्यमान है, हे मार, उस से ऐसा कह सकता है"। तब पापी मार "सोमा भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

3. श्रावस्ती में ही...। तब कृशा गौतमी भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अंधवन है वहाँ चली गई। अन्धवन में किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठी। तब पापी मार कृशा गौतमी भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चित कर देने, समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ

उपसङ्कमित्वा किसागोतमिं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''किं नु त्वं मतपुत्ताव, एकमासि रुदम्मुखी।
वनमज्झगता एका, पुरिसं नु गवेससी''ति॥

अथ खो किसागोतमिया भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो किसागोतमिया भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति।

अथ खो किसागोतमी भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''अच्चन्तं मतपुत्ताम्हि, पुरिसा एतदन्तिका।
न सोचामि न रोदामि, न तं भायामि आवुसो॥

(संस्कृतच्छाया) उपसङ्क्रम्य कृषागौतमीं भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''किम् नु त्वं मृतपुत्रा इव, एकासि रुदन्मुखी।
वनमध्यागता एका, पुरुषं नु गवेषयसि'' इति॥

अथ खलु कृषागौतम्याः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''को नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु कृषागौतम्याः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकाम गाथां भाषते''इति।

अथ खलु कृषागौतमी भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापमन्तं गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''अत्यन्तं मृतपुत्रास्मि, पुरुष एतदन्तिका (अप्रासङ्गिकः)।
न शोचामि न रोदिमि, न त्वत् विभेमि आयुष्मन्!॥

(हिन्दी) कृशा गौतमी भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर कृशा गौतमी भिक्षुणी सें गाथा में बोला—

"क्या मृतपुत्रा स्त्री के समान रोना मुख बनाये हुए, यहाँ एकान्त वन में बैठकर किसी पुरुष की प्रतीक्षा कर रही हो?"

तब इस कृशा गौतमी के मन में यह हुआ- यह गाथा बोलने वाला कोई मनुष्य है या अमनुष्य (देवता)? तब कृशा गौतमी भिक्षुणी के मन में यह हुआ (अन्त में उसके समझ में आया) कि यह अवश्य पापी मार ही है जो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करा साधना से च्युत करने के विचार से गाथा बोल रहा है।

तब कृशा गौतमी भिक्षुणी ने "यह पापी मार है", जान कर, गाथा बोली—

"पुत्रमृत्युशोक से मैं ऊपर उठ चुकी हूँ। पुरुष की खोज की चाह अब मुझमें नहीं है। न मैं अब शोक करती हूँ, न उसके लिये रोती कलपती हूँ। अतः आयुष्मन्! अब तुमसे मुझे किसी प्रकार का भय नहीं रह गया है।

''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोक्खन्धो पदालितो।
जेत्वान मच्चुनो सेनं, विहरामि अनासवा''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं किसागोतमी भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.4. विजयासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो विजया भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे॰... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा विजयाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन विजया भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा विजयं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''दहरा त्वं रूपवती, अहञ्च दहरो सुसु।
पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, एहय्येभिरमामसे''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''सर्वत्र विहता नन्दी, तमःस्कन्धः प्रदारितः।
जित्वा मृत्युसेनाम्, विहरामि अनाश्रवा'' इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां कृषागौतमी भिक्षुणी'' इति दुःखी दुर्मना तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

4. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु विजया भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य ...पे॰... अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् विजयाः भिक्षुण्याः भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामो यत्र विजया भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य विजया भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''दहरा त्वं रूपवती, अहं च दहरः शिशुः।
पंचांगिकेन तुर्येण, एहि आर्ये अभिरमेवाह''इति ॥

(हिन्दी) "मेरी सभी सांसारिक तृष्णाएँ समाप्त हो चुकी है, मेरा अज्ञानान्धकार भी विनष्ट हो चुका है। मैं मृत्युसेना को जीतकर निर्विकारचित्त होकर साधना में रत रहती हूँ।"

तब पापी मार "कृशा गौतमी भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

4. श्रावस्ती में ही...। कभी विजया भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन...पूर्ववत्...किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठी। तब पापी मार विजया भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चित कर देने, समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ विजया भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर विजया भिक्षुणी से गाथा में यह बोला—

"भद्रे! तुम युवती एवं सुन्दरी हो, मैं भी तरुण एवं रूपवान् हूँ, तो क्यों न हम दोनों पञ्चाङ्गिक गाजे बाजे के साथ परस्पर अभिरमण करें।"

अथ खो विजयाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो विजयाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति। अथ खो विजया भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
निय्यातयामि तुय्हेव, मार नाहं तेनत्थिका॥
''इमिना पूतिकायेन, भिन्दनेन पभङ्गुना।
अट्टीयामि हरायामि, कामतण्हा समूहता॥
''ये च रूपूपगा सत्ता, ये च अरूपट्ठायिनो।
या च सन्ता समापत्ति, सब्बत्थ विहतो तमो''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु विजयाभिक्षुण्याः एतदभूत्– ''को नु खल्वयं मनुष्यः वा अमनुष्यः वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु विजयाभिक्षुण्या एतदभूत्– ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामः गाथां भाषते''इति। अथ खलु विजयाभिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापमन्तं गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''रूपाः शब्दाः रसाः गन्धाः, स्प्रष्टव्याश्च मनोरमाः।
निर्यातयामि तव एव, मार नाहं तेनार्थिकः॥
''अनेन पूतिकायेन, भिन्दनेन प्रभङ्गुरा।
आर्दितास्मि जिह्रेमि, कामतृष्णा समूहता॥
''ये च रूपोपगाः सत्त्वाः, ये च अरूपस्थायिनः।
ये च शान्तिं समापत्तिः, सर्वत्र विहतस्तमः'' इति॥

(हिन्दी) तब इस कृशा गौतमी के मन में यह हुआ- "यह गाथा बोलने वाला कोई मनुष्य है या अमनुष्य (देवता)?" तब विजया भिक्षुणी ने के मन में यह हुआ (उसके समझ में आया) कि "यह अवश्य पापी मार ही है जो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करा साधना से च्युत करने के विचार से गाथा बोल रहा है"।

तब कृशा विजया भिक्षुणी ने "यह पापी मार है", जान कर, गाथा में यह उत्तर दिया—

"मार! ये रूप शब्द, रस, गन्ध एवं स्प्रष्टव्य विषय तुमको ही रूचिकर लगें, मुझको इनकी आवयकता नहीं।

"इस मलिन, विनाशशील एवं क्षणस्थायी शरीर से मैं घृणा करती हूँ, इसमें मेरी कोई आस्था नहीं है। क्यों कि मेरी सभी प्रकार की सांसारिक कामतृष्णाएँ समाप्त हो चुकी हैं।

"जो यह संसार (=रूपलोक) एवं देवलोक (स्वर्ग= अरूपलोक) में रहने वाले प्राणी हैं, तथा जो शान्त समापत्ति (ध्यानावस्था) है इन सभी के विषय में मेरा अज्ञानान्धकार नष्ट हो चुका है।"

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं विजया भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.5. उप्पलवण्णासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो उप्पलवण्णा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे॰... अञ्ञतरस्मिं सुपुप्फितसालरुक्खमूले अट्ठासि। अथ खो मारो पापिमा उप्पलवण्णाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो येन उप्पलवण्णा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उप्पलवण्णं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''सुपुप्फितग्गं उपगम्म भिक्खुनि, एका तुवं तिट्ठसि सालमूले।
न चत्थि ते दुतिया वण्णधातु, बाले न त्वं भायसि धुत्तकानं''ति॥

अथ खो उप्पलवण्णाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो उप्पलवण्णाय भिक्खुनिया एतदहोसि–

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां विजयाभिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

5. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु उत्पलवर्णा भिक्षुणी पूर्वाह्नसमये निवस्य ...पे॰... अन्यतरस्मिन् सुपुष्पितशालवृक्षमूले अस्थात्। अथ खलु मारः पापिमान् उत्पलवर्णायाः भिक्षुण्याः भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामः यत्र उत्पलवर्णा भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य उत्पलवर्णां भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''सुपुष्पिताग्रम् उपगम्य भिक्षुणी, एका त्वं तिष्ठसि शालमूलम्।
न चास्ति ते द्वितीयो वर्णधातुः, बाले न त्वं विभेषि धूर्तकेभ्यः॥

अथ खलु उत्पलवर्णाभिक्षुण्या एतदभूत्– ''को नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु उत्पलवर्णायाः भिक्षुण्या एतदभूत्–

(हिन्दी) तब पापी मार "विजया भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"— यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

5. श्रावस्ती में ही...। उत्पलवर्णा भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन...पूर्ववत्...किसी सुपुष्पित शालवृक्ष के नीचे खड़ी थी। इतने में ही, पापी मार उत्पलवर्णा भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चित कर देने, समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ उत्पलवर्णा भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर उत्पलवर्णा भिक्षुणी से गाथा में यह बोला— "अरे ओ नादान भिक्षुणी! इस सुपुष्पित शालवृक्ष के नीचे एकाकी खड़ी हो। क्या तुम्हारे जैसा सौन्दर्य तुम्हें किसी अन्य में नहीं मिला कि तुम अकेली यहाँ चली आयी हो? क्या तुम्हें दुष्ट जनों से भय नहीं लगता?" तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी के मन में यह हुआ- यह गाथा बोलने वाला कोई मनुष्य है या अमनुष्य (देवता)? तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी के मन में यह हुआ(अन्त में उसके समझ में आया)

''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति। अथ खो उप्पलवण्णा भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''सतं सहस्सानिपि धुत्तकानं, इधागता तादिसका भवेय्युं।
लोमं न इञ्जामि न सन्तसामि, न मार भायामि तमेकिकापि॥
''एसा अन्तरधायामि, कुच्छिं वा पविसामि ते।
पखुमन्तरिकायम्पि, तिट्ठन्तिं मं न दक्खसि॥
''चित्तस्मिं वसीभूताम्हि, इद्धिपादा सुभाविता।
सब्बबन्धनमुत्ताम्हि, न तं भायामि आवुसो''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं उप्पलवण्णा भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

(संस्कृतच्छाया) ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामः गाथां भाषते''इति। अथ खलु उत्पलवर्णा भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापमन्तं गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''शतं सहस्रान्यपि धूर्तकानाम्, इहागता तादृशाः वा भवेयुः।
लोमं न ऋञ्जामि (एजे) न सन्त्रसामि, न मारं विभेमि तमैकाकिन्यपि॥
''एषा अन्तर्दधामि, कुक्षिं वा प्रविशामि ते।
पक्षमन्तरिकायामपि, तिष्ठन्तीं मां न अद्राक्षीः॥
''चित्ते वशीभूतास्मि, ऋद्धिपादा सुभाविता।
सर्वबन्धनमुक्तास्मि, न त्वद् विभेमि आयुष्मन!'' इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति माम् उत्पलवर्णा भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

(हिन्दी) कि यह अवश्य पापी मार ही है जो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करा साधना से च्युत करने के विचार से गाथा बोल रहा है। तब उत्पलवर्णा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है", जान कर, उस पापी मार को पहचान कर यह बोली—"तुम्हारे समान हजार धूर्त जन भी यहाँ चले आवें तो भी मुझे उनसे कोई भय नहीं है। मेरा एक भी रोम नहीं कँपा सकते। मुझे उनसे कोई भय नहीं लगता। मार! मैं तुमसे भी कोई भय नहीं मान रही हूँ। "मैं इतनी ऋद्धि (धर्मसाधना के कारण) प्राप्त कर चुकी हूँ कि मैं अभी यहाँ से अन्तर्धान हो सकती हूँ। तुम्हारे उदर में प्रविष्ट हो सकती हूँ। तुम्हारी भौहों के बीच खड़ी हुई को भी तुम मुझे देख नहीं सकते। "चित्त के वश में हो जाने पर ऋद्धियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं। मैं स्वयं बन्धनमुक्त हूँ। आयुष्मन्! मुझे तुम से भी किसी प्रकार का भय नहीं लगता"। तब पापी मार "उत्पलवर्णा भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

5.6. चालासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो चाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे॰... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन चाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा चालं भिक्खुनिं एतदवोच– ''किं नु त्वं, भिक्खुनि, न रोचेसी''ति? ''जातिं ख्वाहं, आवुसो, न रोचेमी''ति।

''किं नु जातिं न रोचेसि, जातो कामानि भुञ्जति।
को नु तं इदमादपयि, जातिं मा रोच भिक्खुनी''ति॥
''जातस्स मरणं होति, जातो दुक्खानि फुस्सति।
बन्धं वधं परिक्लेसं, तस्मा जातिं न रोचये॥
''बुद्धो धम्ममदेसेसि, जातिया समतिक्कमं।
सब्बदुक्खप्पहानाय, सो मं सच्चे निवेसयि॥

(संस्कृतच्छाया) 6. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु चाला भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य ...पे॰... अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् यत्र चाला भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य चाला-भिक्षुणीम् एतदवोचत्– ''किं नु तुभ्यम्, भिक्षुणि! न रोचते''इति? ''जातिं खलु मह्यं, आयुष्मन!' न रोचते''इति।

''किं नु जातिं न रोचसे, जातः कामानि भुङ्क्ते।
को नु त्वां इदमापादयत्, जातिं मा रोच भिक्षुणी''इति॥
''जातस्य मरणं भवति, जातो दुःखानि स्पर्शयति।
बन्धं वधं परिक्लेशम्, तस्मात् जातिं न रोचयेत॥
''बुद्धः धर्मम् उपादिशेत्, जातिं समतिक्रमम्।
सर्वदुःखप्रहाणाय, स मां सत्ये न्यविक्षत्॥

(हिन्दी) 6. श्रावस्ती में ही...। तब चाला भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन.....किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठ गई थी। तब पापी मार जहाँ चाला भिक्षुणी थी वहाँ आया। आकर चाला भिक्षुणी से गाथा में यह बोला-"भिक्षुणी! तुम्हें क्या अच्छा नहीं लगता?"

"मुझे जन्मपरम्परा अच्छी नहीं लगती?"

"क्यों जन्मपरम्परा तुम्हें अच्छी नहीं लगती"?

"यहाँ जन्म लेने पर ही मनुष्य कामभोगों का सुख अनुभव कर सकता है। भिक्षुणी! तुम को यह किसने समझा दिया कि संसार में जन्म लेना हितावह एवं सुखकर नहीं हैं।"

"जन्म लेने पर मनुष्य को मरना होता है। दुःखों को भोगता है"। नानाविध बन्धन, हत्याएँ, परिक्लेश आदि भी सहन करने पड़ते हैं, अतः मुझे यहाँ जन्म लेना अच्छा नहीं लगता। "भगवान् बुद्ध ने मुझको यहाँ जन्म लेने से मुक्ति दिलाने के लिये तथा सभी दुःखों के प्रहाण के लिये धर्मोपदेश कर सत्यपथ पर आरूढ कर दिया।

''ये च रूपूपगा सत्ता, ये च अरूपट्ठायिनो।
निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं चाला भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.7. उपचालासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो उपचाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे॰... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन उपचाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा उपचालं भिक्खुनिं एतदवोच– ''कत्थ नु त्वं, भिक्खुनि, उप्पज्जितुकामा''ति?

''न ख्वाहं, आवुसो, कत्थचि उप्पज्जितुकामा''ति।

''तावतिंसा च यामा च, तुसिता चापि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।

(संस्कृतच्छाया) ''ये च रूपोपगाः सत्त्वाः, ये च अरूपस्थायिनः।
निरोधम् अप्रजानन्तः, आगन्तारः पुनर्भवम्''इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां चाला भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ''इति।

7. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु उपचाला भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य ...पे॰... अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् यत्र उपचाला भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य उपचालां भिक्षुणीम् एतदवोचत्– ''कुत्र नु त्वम्, भिक्षुणि! न उत्पद्यतुकामा''इति?

''न खल्वहम्, आयुष्मन्! कुत्रचित् उत्पद्यतुकामा''इति।

''त्रायस्त्रिंशाश्च यामाश्च, तुषिताश्चापि देवताः।
निर्माणरतयो देवाः, ये देवाः वशवर्तिनः।

(हिन्दी) "जो प्राणी रूप (मनुष्य लोक) एवं अरूप (देवलोक) में आसक्त हैं, वे निरोध मार्ग को न जानने के कारण, इस तरह यहाँ बार बार जन्म लेते हैं।"

तब पापी मार "चाला भिक्षुणी ने मुझको पहचान लिया"—यह जानकर, वह दुःखी एवं खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

7. श्रावस्ती में ही...। किसी दिन उपचाला भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन...पूर्ववत्...किसी वृक्ष के निचे दिन के विहार के लिए बैठी थी। तब पापी मार जहां उपचाला भिक्षुणी थी वहां जाकर उपचाला भिक्षुणी से ऐसा बोला— "भिक्षुणी! तुम कहाँ उत्पन्न होना चाहती हो?"

उपचाला ने कहा— "मैं कहीं भी उत्पन्न होना नहीं चाहती।"

मार— ("यहाँ नहीं तो) त्रायंस्त्रिश, याम, तुषित, निर्माणरति एवं वशवर्ती देवलोक भी हैं,

तत्थ चित्तं पणिधेहि, रतिं पच्चनुभोस्ससी''ति॥

''तावतिंसा च यामा च, तुसिता चापि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।
कामबन्धनबद्धा ते, एन्ति मारवसं पुन॥

''सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥

''अकम्पितं अपज्जलितं, अपुथुज्जनसेवितं।
अगति यत्थ मारस्स, तत्थ मे निरतो मनो''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं उपचाला भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

(संस्कृतच्छाया) तत्र चित्तं प्रणिधिभिः, रतिं प्रत्यनुभविष्यसी''ति॥

''त्रायस्त्रिंशाश्च यामाश्च, तुषिताश्चापि देवताः।
निर्माणरतयो देवाः, ये देवा वशवर्तिनः।
कामबन्धनबद्धाः ते, भवन्ति मारवशं पुनः॥

''सर्व आदीप्तः लोकः, सर्वः लोकः प्रधूपितः।
सर्वः प्रज्वलितः लोकः, सर्वः लोकः प्रकम्पितः॥

''अकम्पितम् अप्रज्वलितम्, अपृथग्जनसेवितम्।
अगतिः यत्र मारस्य, तत्र मे निरतो मनः''इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति माम् उपचाला भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ इति।

(हिन्दी) उनमें मन लगाओ। उनमें तुम यहाँ की अपेक्षा बहुत अधिक सुख का अनुभव करोगी।"

उपचाला- "त्रायंस्त्रिश, याम, तुषित, निर्माणरति एवं वशवर्ती लोक के देवता आदि सभी मार-बन्धन में बँधे हुए हैं।

"सारा संसार जल रहा है, सारा संसार धुआँ फेंक रहा है। सारा संसार धधक रहा है, तथा सारा संसार भय के कारण काँप रहा है।

"मेरे मन को तो वही स्थान रूचिकर लगता है जो किसी भय के कारण न काँप रहा हो, न किसी पापवह्नि से प्रज्वलित हो, न धुआँ फेंक रहा हो, जहाँ दुष्टजनों का वास न हो तथा जहाँ मार की किसी भी प्रकार से गति न हो।"

तब पापी मार "उपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

5.8. सीसुपचालासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सीसुपचाला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा ...पे॰... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा येन सीसुपचाला भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सीसुपचालं भिक्खुनिं एतदवोच– ''कस्स नु त्वं, भिक्खुनि, पासण्डं रोचेसी''ति? ''न ख्वाहं, आवुसो, कस्सचि पासण्डं रोचेमी''ति।

''कं नु उद्दिस्स मुण्डासि, समणी विय दिस्ससि।
न च रोचेसि पासण्डं, किमिव चरसि मोमूहा''ति॥
''इतो बहिद्धा पासण्डा, दिट्ठीसु पसीदन्ति ते।
न तेसं धम्मं रोचेमि, ते धम्मस्स अकोविदा॥
''अत्थि सक्यकुले जातो, बुद्धो अप्पटिपुग्गलो।
सब्बाभिभू मारनुदो, सब्बत्थमपराजितो॥

(संस्कृतच्छाया) ४. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु शीर्षोपचाला भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य...पे॰... अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् यत्र शीर्षोपचाला भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य शीर्षोपचालां भिक्षुणीम् एतदवोचत्– ''कस्य नु तुभ्यम्, भिक्खुणि, पाषण्डं रोचते''ति? ''न खलु मह्यम्, *आवुस*'! कस्यचित् पाषण्डं रोचते''इति।

''कं नु उद्दिश्य मुण्डासि, श्रामणी इव दृष्यसे।
न च रोचते पाषण्डम्, किमिव चरसि सम्मूढा''इति॥
''इतः बहिर्द्धाः पाषण्डाः, दृष्टिषु प्रसीदन्ति ते।
न तेभ्यो धर्मः रोचते, ते धर्मस्य अकोविदाः॥
''अस्ति शाक्यकुले जातः, बुद्धोऽप्रतिपुद्गलः।
सर्वाभिभूः मारनुदः, सर्वार्थमपराजितः॥

(हिन्दी) ४. श्रावस्ती में ही....। तब शीर्षोपचाला भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन...पूर्ववत्...किसी वृक्ष के निचे दिन के विहार के लिए बैठी थी। तब पापी मार जहां शीर्षोपचाला भिक्षुणी थी वहां जाकर शीर्षोपचाला भिक्षुणी से ऐसा बोला— "भिक्षुणी! तुम्हें किस धर्मोपदेष्टा का मत (पाषण्ड) अच्छा लगता है?" "आयुष्मान्! किसी भी उपदेष्टा का मत अच्छा नहीं लगता"।

मार— "तो तुमने अपना मुण्डन क्यों करा लिया है, वस्त्रों के परिवेश से भिक्षुणी ज्ञात लगती हो। जब तुम्हें किसी का भी मत अच्छा नहीं लगता तो क्यों इधर उधर भटक रही हो?"

भिक्षुणी— "मुझे तो मेरे इस स्वीकृत धर्म से बाहर सभी पाषण्ड लगते हैं, क्यों कि उन सभी की आत्मदृष्टि में श्रद्धा है, यह वे धर्म का मूल नहीं जानते, अतः मुझे उनका मत स्वीकार नहीं है। "भगवान् बुद्ध ही मेरे शास्ता है, जो शाक्यकुलोत्पन्न हैं, ज्ञानी है, अद्वितीय है, सर्वविजयी हैं, मार को दूर भगाने वाले हैं, संसार में सभी से अपराजेय हैं।

''सब्बत्थ मुत्तो असितो, सब्बं पस्सति चक्खुमा।
सब्बकम्मक्खयं पत्तो, विमुत्तो उपधिसङ्खये।
सो मय्हं भगवा सत्था, तस्स रोचेमि सासनं''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं सीसुपचाला भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

5.9. सेलासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सेला भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा...पे॰... अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा सेलाय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो...पे॰... सेलं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''केनिदं पकतं बिम्बं, क्वनु बिम्बस्स कारको।
क्वनु बिम्बं समुप्पन्नं, क्वनु बिम्बं निरुज्झती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''सर्वत्र मुक्तः असितः, सर्वं पश्यति चक्षुष्मान्।
सर्वकर्मक्षयं प्राप्तः, विमुक्तः उपधिसंक्षयेत्।
स मह्यं भगवान् शास्ता, तस्य रोचते शासनम्''ति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां शीर्षोपचाला भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

9. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु शैलां भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य...पे॰...अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहारं न्यसीदत्। अथ खलु मारः पापिमान् शैलायाः भिक्षुण्याः भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः...पे॰...शैला भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''केनेदं प्रकृतं बिम्बम्, क्व नु बिम्बस्य कारकः।
क्व नु बिम्बं समुत्पन्नम्, क्व नु बिम्बः निरुध्यते''ति॥

(हिन्दी) "सर्वथा मुक्त हैं, पूर्ण स्वतन्त्र हैं, परमज्ञानी हैं, सर्वद्रष्टा हैं। सभी कर्मों को क्षीण कर चुके हैं, उपधियों (चित्तविकारों) के क्षीण होने के कारण मुक्त हो चुके हैं। ऐसे वे भगवान् ही मेरे शास्ता हैं। मुझे उन्हीं से उपदिष्ट धर्म अभिमत है। " तब पापी मार "शीर्षोपचाला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहाँ से अन्तर्धान हो गया।

9. श्रावस्ती में ही....। तब शैला भिक्षुणी पूर्वाह्न समय मे वस्त्र पहनकर...पूर्ववत्...किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठ गई। तब पापी मार शैला भिक्षुणी को डराकर, उससे पापी मार यह बोला— "यह आकृति किसने बनायी? इसको बनाने वाला कौन है? यह आकृति कहाँ से उत्पन्न हुई? तथा अन्त में इस आकृति का कहाँ निरोध हो जाता है?"

अथ खो सेलाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो सेलाय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति। अथ खो सेला भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''नयिदं अत्तकतं बिम्बं, नयिदं परकतं अघं।
हेतुं पटिच्च सम्भूतं, हेतुभङ्गा निरुज्झति॥
''यथा अञ्ञतरं बीजं, खेत्ते वुत्तं विरूहति।
पथवीरसञ्चागम्म, सिनेहञ्च तदूभयं॥
''एवं खन्धा च धातुयो, छ च आयतना इमे।
हेतुं पटिच्च सम्भूता, हेतुभङ्गा निरुज्झरे''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं सेला भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु शैलायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''कः नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु शैलायाः भिक्षुण्या एतदभूत्– ''मारः खलु अयं पापिमान् मयि भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामः गाथां भाषते''इति।

अथ खलु शैला भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्''इति विदित्वा मारं पापमन्तम् गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''नेदम् आत्मकृतं बिम्बम्, नेदं परकृतमघम्।
हेतुं प्रतीत्य सम्भूतम्, हेतुभङ्गात् निरुध्यते॥
''यथा अन्यतरं बीजम्, क्षेत्रे वृत्तं विरुध्यते।
पृथ्वीरसञ्चागम्य, स्नेहञ्च तद् उद्भूतम्॥
''एवं स्कन्धाश्च धातुश्च, षट् चैव आयतना इमे।
हेतुं प्रतीत्य सम्भूताः, हेतुभङ्गात् निरुध्यन्ते''ति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां शैला भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

(हिन्दी) तब शैला भिक्षुणी ने...जानकर उसको गाथा में यह उत्तर दिया— "न तो यह आकृति स्वयं बन गयी है, न इस पाप का कोई दूसरा बनाने वाला है। यह तो हेतु के होने से बनी हुई दिखायी देती है, तथा हेतु के निरोध (नाश) से यह नष्ट (निरुद्ध) हो जायगी। "जैसे किसी बीज के खेत में रोप देने से वह पौधे के रूप में उग आता है, तथा पृथ्वी का रस तथा आर्द्रता पाकर बढ़ने लगता है"।

"इसी तरह से स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान) ये धातुएँ, ये छह आयतन हेतु के कारण उद्भूत होते हैं। तथा एक दिन हेतु के नाश से नष्ट हो जाते हैं"। तब पापी मार "शैला भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहाँ से अन्तर्धान हो गया।

5.10. वजिरासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो वजिरा भिक्खुनी पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्ता येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि। अथ खो मारो पापिमा वजिराय भिक्खुनिया भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतकामो येन वजिरा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वजिरं भिक्खुनिं गाथाय अज्झभासि–

''केनायं पकतो सत्तो, कुवं सत्तस्स कारको।
कुवं सत्तो समुप्पन्नो, कुवं सत्तो निरुज्झती''ति॥

अथ खो वजिराय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''को नु ख्वायं मनुस्सो वा अमनुस्सो वा गाथं भासती''ति? अथ खो वजिराय भिक्खुनिया एतदहोसि– ''मारो खो अयं पापिमा

(संस्कृतच्छाया) 10. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु वज्रा भिक्षुणी पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भुक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्ता: यत्र अन्धवनं तत्रोपसमक्रमीत् दिवाविहाराय। अन्धवनम् अध्यवगाह्य अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले दिवाविहाराय न्यसीदत्। अथ खलु मार: पापिमान् वज्राया भिक्षुण्या: भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकाम: समाधेश्चापेतुकाम: यत्र वज्रा भिक्षुणी तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य वज्रां भिक्षुणीं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''केनायं प्रकृत: सत्त्व:, क्व नु सत्त्वस्य कारक:।
क्व सत्त्व: समुत्पन्न:, क्व नु सत्व: निरुध्यते''ति॥

अथ खलु वज्राया: भिक्षुण्या: एतदभूत्– ''क: नु खल्वयं मनुष्यो वा अमनुष्यो वा गाथां भाषते''इति? अथ खलु वज्राया: भिक्षुण्या: एतदभूत्– ''मार: खलु अयं पापिमान्

(हिन्दी) 10. श्रावस्ती में ही...। तब वज्रा भिक्षुणी पूर्वाह्न में वस्त्रों को पहन और पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाटन से लौट, भोजन कर लेने के बाद दिन के विहार के लिए जहाँ अंधवन है वहाँ चली गई। अन्धवन में किसी वृक्ष के नीचे दिन के विहार के लिए बैठी। तब पापी मार वज्रा भिक्षुणी को डराने कँपाने, रोमाञ्चितकर देने, समाधि से गिरा देने के विचार से जहाँ वज्रा भिक्षुणी थी वहाँ आया।

आकर वज्रा भिक्षुणी सें गाथा में बोला— "इस प्राणी को किसने बनाया है? इसको बनाने वाला कहाँ है? कहाँ से यह प्राणी उत्पन्न हो जाता है, तथा कहाँ जाकर यह विलीन हो जाता है?" तब वह वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ- यह गाथा बोलने वाला कोई मनुष्य है या अमनुष्य (देवता)? तब वज्रा भिक्षुणी के मन में यह हुआ कि यह अवश्य पापी मार ही है।

मम भयं छम्भितत्तं लोमहंसं उप्पादेतुकामो समाधिम्हा चावेतुकामो गाथं भासती''ति। अथ खो वजिरा भिक्खुनी ''मारो अयं पापिमा'' इति विदित्वा, मारं पापिमन्तं गाथाहि पच्चभासि–

''किं नु सत्तोति पच्चेसि, मार दिट्ठिगतं नु ते।
सुद्धसङ्खारपुञ्जोयं, नयिध सत्तुपलब्भति॥
''यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तोति सम्मुति॥
''दुक्खमेव हि सम्भोति, दुक्खं तिट्ठति वेति च।
नाञ्ञत्र दुक्खा सम्भोति, नाञ्ञं दुक्खा निरुज्झती''ति॥

अथ खो मारो पापिमा ''जानाति मं वजिरा भिक्खुनी''ति दुक्खी दुम्मनो तत्थेवन्तरधायी ति।

(संस्कृतच्छाया) मां भयं स्तम्भितत्वं रोमहर्षणम् उत्पादयितुकामः समाधेश्चापेतुकामः गाथां भाषते''इति। अथ खलु वज्रा भिक्षुणी ''मारोऽयं पापिमान्'' इति विदित्वा मारं पापमान् गाथाभिः प्रत्यभाषिष्ट–

''किं नु सत्व इति प्रत्येषि, मार दृष्टिगतं नु ते।
शुद्धसंस्कारपुञ्जोऽयम्, नेह सत्त्वोपलभ्यते॥
''यथा ह्यङ्गसम्भाराः, भवति शब्दः रथ इति।
एवं स्कन्धेषु सत्सु, भवति सत्त्व इति समनुते ॥
''दुःखमेव हि सम्भवति, दुःखं तिष्ठति व्ययेति च।
नान्यत्र दुःखात् सम्भवति, नान्यत् दुःखात् निरुध्यते''इति॥

अथ खलु मारः पापिमान् ''जानाति मां वज्रा भिक्षुणी''इति दुःखी दुर्मनः तत्रैवान्तर्दधौ'' इति।

(हिन्दी) जो मुझे डराने कँपाने, रोमाञ्चित करा साधना से च्युत करने के विचार से गाथा बोल रहा है। तब वज्रा भिक्षुणी ने "यह पापी मार है", जान कर, गाथा बोली— "'प्राणी'—ऐसा क्यों बोल रहे हो? मार! ज्ञात होता है तुम आत्मदृष्टि से मुग्ध हो। अन्यथा, यह तो संस्कारों का एक पुञ्जमात्र है। वस्तुतः यहाँ 'प्राणी' कोई नहीं है।

"जैसे सब अङ्गों को मिला देने से वह अङ्ग समूह 'रथ' इस संज्ञा का बोधक होता है, वैसे ही पाँच स्कन्धों के मिलने से 'प्राणी' यह लोक में व्यवहृत होता है।"

"वस्तुतः दुःख ही उत्पन्न होता है। दुःख ही रहता है, तथा दुःख ही चला जाता है। दुःख को छोड़कर न कोई अन्य उत्पन्न होता है तथा उसे छोड़कर न किसी अन्य का निरोध ही होता है।"

तब पापी मार "वज्रा भिक्षुणी ने मुझे पहचान लिया" समझ दुःखित और खिन्न हो वहाँ से अन्तर्धान हो गया।

तस्सुद्दानं– आळविका च सोमा च, गोतमी विजया सह।
उप्पलवण्णा च चाला, उपचाला सीसुपचाला च।
सेला वजिराय ते दसाति॥

(संस्कृतच्छाया) तस्योद्दानम्– 'आटविका च सोमा च, गौतमी विजया सह।
उत्पलवर्णा च चाला, उपचाला शीर्षोपचाला च।
शैला वज्रा ते दशा' इति॥

(हिन्दी) इसमें व्याख्यात सूत्रों की सूची- 1. आळविका, 2. सोमा, 3. कृशा गौतमी, 4. विजया, 5. उत्पलवर्णा, 6. चाला, 7. उपचाला, 8. शीर्षोपचाला, 9. शैला एवं 10. वज्रासूत्र।

******

6. ब्रह्मसंयुत्तं

1. पठमवग्गो

6.1.1. ब्रह्मायाचनसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– ''अधिगतो खो म्यायं धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो। आलयरामा खो पनायं पजा आलयरता आलयसम्मुदिता। आलयरामाय खो पन पजाय आलयरताय आलयसम्मुदिताय दुद्दसं इदं ठानं यदिदं इदप्पच्चयतापटिच्चसमुप्पादो। इदं पि खो ठानं दुद्दसं यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। अहं चेव खो पन धम्मं देसेय्यं; परे च मे न आजानेय्युं; सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा''ति। अपिस्सु भगवन्तं इमा अनच्छरिया गाथायो पटिभंसु पुब्बे अस्सुतपुब्बा–

1. (संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् उरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनायाः तीरे अजपालन्यग्रोधमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। अथ खलु भगवतः रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत- ''अधिगतः खलु मे अयं धर्मः गम्भीरः दुर्दर्शः दुर्निबोधः शान्तः प्रणीतः अतर्कावचरः निपुणः पण्डित-वेदनीयः। आलयरामा खलु पुनरियं प्रजा आलयरता आलयसंमुदिता। आलयारामायै खलु पुनः प्रजायै आलयरतायै आलयसंमुदितायै दुर्दर्शम् इदं स्थानं यदिदम् इदम्प्रत्ययता-प्रतीत्यसमुत्पादः। इदमपि खलु स्थानं दुर्दर्शं यदिदं सर्वसंस्कारशमथः सर्वोपधिप्रतिनिसर्गः तृष्णाक्षयः विरागः निरोधः निर्वाणम्। अहं चैव खलु पुनः धर्मं देशेयम्; परे च मां न आजानीयुः; सः मां क्लामति, सा मह्यं विहिंसा''इति। अपि स्युः भगवन्तम् इमा अनाश्चर्याः गाथाः प्रतिभ्रंशाः पूर्वम् अश्रुतपूर्वाः–

1. (हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् प्रथम सम्बोधि प्राप्त कर उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के मन में यह विचार उठा— "मैने यह गम्भीर, कठिनता से साक्षात्करणीय, कठिनता से ही बोधगम्य, शान्त, उत्तम, किसी भी तर्क से अखण्डनीय, निपुण एवं पण्डितों द्वारा समझे जाने योग्य धर्म प्राप्त तो कर लिया, परन्तु इस धर्म का जिसको उपदेश करना है वह जनता कामतृष्णा से ही अपने को तृप्त मानती हुई, इन कामभोगों के आस्वाद में ही प्रसन्नता अनुभव कर रही है। कामभोगलिप्त इस जनता के लिये यह प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त समझ पाना दुरूह ही होगा। साथ ही वह स्थान पाना तो इससे भी अधिक कठिन होगा जिसे सभी संस्कारों का प्रशमन, सभी मानसिक ऊहापोहों का परित्याग, तृष्णाक्षय, वैराग्य, दुःखनिरोध तथा 'निर्वाण' कहा जाता है। यदि, मैं किसी तरह उसको धर्मोपदेश करूँ, परन्तु वह उसे समझ ही न पावे तो यह भी मेरे लिये मानसिक कष्ट ही होगा!" उन्हें उस समय इसी विचार से सम्बद्ध ये गाथाएँ जो पहले कभी सुनी नहीं गयी थीं, ध्यान में आयीं—

''किच्छेन मे अधिगतं, हलं दानि पकासितुं।
रागदोसपरेतेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो॥
''पटिसोतगामिं निपुणं, गम्भीरं दुद्दसं अणुं।
रागरत्ता न दक्खन्ति, तमोखन्धेन आवुटा''ति ॥

इतिह भगवतो पटिसञ्चिक्खतो अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाय।

अथ खो ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि– ''नस्सति वत भो लोको, विनस्सति वत भो लोको, यत्र हि नाम तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अप्पोस्सुक्कताय चित्तं नमति, नो धम्मदेसनाया''ति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा

(संस्कृतच्छाया) "कृच्छ्रेण मया अधिगतम्, हि अलम् इदानीं प्रकाशितुम्।
रागद्वेषपरीतैः, नायं धर्मः सुसम्बोद्ध्यः॥
"प्रतिस्रोतगामि-निपुणम्, गम्भीरं दुर्दर्शम् अणुम्।
रागरताः न पश्यन्ति, तमःस्कन्धेन आवृताः"इति॥

इतीह भगवतः प्रतिसञ्चख्यायतः अल्पोत्सुकाय चित्तं नमति, न धर्मदेशनायै।

अथ खलु ब्रह्मणः सहम्पतेः भगवतः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय एतदभूत्— "नश्यति वत भो लोकः, विनश्यति वत भो लोकः, यत्र हि नाम तथागतस्य अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य अल्पोत्सुकाय चित्तं नमति, नः धर्मदेशनायै"इति। अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः– तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तर्हितो भगवतः पुरतः प्रादुरभूत्। अथ खलु ब्रह्मा

(हिन्दी) "जिस धर्मज्ञान को मैने इतनी कठिनता से अधिगत किया है, उसे ऐसे किसी दूसरे को सहजता से समझा देना सरल नहीं है जो अपने चित्त को रागद्वेष में लिप्त किये बैठा हो।

"क्योंकि यह धर्म तो अतिनिपुण है अतिगम्भीर है, संसार से विपरीत धारा में चलने वाला है, तथा दुःखेन साक्षात्करणीय एवं सूक्ष्म है। इसको सांसारिक मायामोह से लिप्त एवं ज्ञानान्धकार से आवृत जनता कहाँ समझ पायेगी।"

भगवान् के चित्त में ऐसा विचार उत्पन्न होने के कारण, उनका चित्त धर्म प्रचार की ओर न झुककर धर्म प्रचार में उपेक्षा की ओर मुड गया।

तब सहम्पति ब्रह्मा ने भगवान् के मन की बात जानकर यह विचार हुआ— "अरे! भगवान् के इस निश्चय से तो धर्मप्राण जनता का विनाश ही हो जायेगा। इस धर्मोपदेश के प्रति भगवान् की यह उपेक्षा अनुचित है। इन्हें धर्मप्राण जनता के हित में धर्मोपदेश के प्रति उत्साहसम्पन्न रहना ही उचित है।" तब ब्रह्मा सहम्पति, जैसे कोई बलवान् पुरूष अपनी सिकुड़ी बाहु को सरलता से फैला दे या फैली हुई

सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''देसेतु, भन्ते, भगवा धम्मं, देसेतु सुगतो धम्मं। सन्ति सत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति। भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो''ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा अथापरं एतदवोच–

''पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे, धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं, सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥
''सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो, यथापि पस्से जनतं समन्ततो।
तथूपमं धम्ममयं सुमेध, पासादमारुय्ह समन्तचक्खु।
सोकावतिण्णं जनतमपेतसोको, अवेक्खस्सु जातिजराभिभूतं॥
''उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, सत्थवाह अनण विचर लोके।

(संस्कृतच्छाया) सहम्पतिः एकस्मिन् अंशे उत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणजानुमण्डलं पृथिव्यां निहत्य यत्र भगवान् तत्र अञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "दिशतु, भदन्त! भगवान् धर्मम्, दिशतु सुगतः! धर्मम्। सन्ति सत्त्वाः अल्परजस्कजातीयाः, अश्रवणताः धर्मं परिहापयन्ति। भविष्यन्ति धर्मस्य आज्ञातारः"इति। इदमवोचत् ब्रह्मा सहम्पतिः, इदम् उक्त्वा अथापरम् एतदवोचत्—

''प्रादुरभूत् मगधेषु पूर्वम्, धर्म अशुद्धः समलैः चिन्तितः।
अवापुरेतम् अमृतस्य द्वारम्, श्रृण्वन्तु धर्मं विमलेनानुबुद्धम्॥
''शैले यथा पर्वतमूर्ध्निस्थितः, यथापि पश्येत् जनतां समन्ततः।
तथोपमं धर्ममयं सुमेधः!, प्रासादमारुह्य समन्तचक्षो।
शोकावतीर्णां जनतामपेतशोकः, अवेक्ष्यते जातिजराभिभूताम्॥
''उतिष्ठ वीर! विजितसंग्रामः, सार्थवाह अनृणः विचरतु लोके।

(हिन्दी) बाहु को समेट ले, वैसे ही वे ब्रह्मलोक से अन्तर्हित होकर भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। वहाँ सहम्पति ब्रह्मा ने अपना अङ्गवस्त्र एक कन्धे पर कर, दक्षिण जानु को पृथ्वी पर टिकाकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर हाथ जोड़ कर भगवान् से निवेदन किया—

"भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें, क्यों कि लोक में अल्प चित्तविकार वाले धार्मिक जन भी हैं। धर्मोपदेश न सुनने से उनकी बहुत हानि होगी। अतः आप उन्हें उपदेश करें। धर्मश्रवण करने वालों की कोई कमी नहीं हैं।" ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से यों कहाँ, साथ ही यह गाथा भी कही—

"मगधदेश में पहले मलिनचित्त चिन्तकों द्वारा चिन्तित धर्म प्रकट किया गया था, परन्तु अब धर्मप्रिय जनता को निर्मलचित्त आप द्वारा साक्षात्कृत अमृतमय धर्म श्रवण करने का अवसर मिल गया है।

"अतः हे सुमेध! सर्वत्र समदृष्टि रखने वाले आप इस दयनीय एवं जन्म मरण से अभिभूत जनता को धर्ममय पर्वत पर चढ़कर उसी तरह देखें, जैसे कोई ऊँचे शैल पर्वत के शिखर पर खड़ा पुरुष नीचे भूमि पर चारों ओर खड़े हुए लोगों को देखता है।

देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती''ति॥

अथ खो भगवा ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा सत्तेसु च कारुञ्ञतं पटिच्च बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेसि। अद्दसा खो भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो सत्ते अप्परजक्खे महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते। सेय्यथापि नाम उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तो निमुग्गपोसीनि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि समोदकं ठितानि, अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदका अच्चुग्गम्म ठितानि अनुपलित्तानि उदकेन; एवमेव भगवा बुद्धचक्खुना लोकं वोलोकेन्तो अद्दस सत्ते अप्परजक्खे

(संस्कृतच्छाया) दिशेत् भगवान् धर्मम्, आज्ञातारः भविष्यन्ति"इति॥

अथ खलु भगवान् ब्रह्मणः च अध्येषणं विदित्वा सत्त्वेषु च कारुण्यतां प्रतीत्य बुद्धचक्षुषा लोकमवालोकयत्। अद्राक्षीत् खलु भगवान् बुद्धचक्षुषा लोकम् अवलोकयन्तः सत्त्वाः अल्परजस्काः महारजस्काः तीक्ष्णेन्द्रियाः मृदु इन्द्रियाः स्वाकारे दुराकारे सुविज्ञापिने दुर्विज्ञापिने अप्येकत्र परलोकवद्यभयदर्शिनः विहरन्ते, अप्येकत्र न परलोकवद्यभयदर्शिनः विहरन्ते। तद्यथापि नाम उत्पलिन्यां वा पद्मिन्यां वा पुण्डरीकिन्यां वा अप्येकत्र उत्पलानि वा पद्मानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवर्द्धितानि उदकानुद्गतानि अन्तः निमग्नोषितानि, अप्येकत्र उत्पलानि वा पद्मानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवर्द्धितानि समोदके स्थितानि, अप्येकत्र उत्पलानि वा पद्मानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवर्द्धितानि उदकादत्युद्गम्य स्थितानि अनुपलिप्तानि उदकेन; एवमेव भगवान् बुद्धचक्षुषा लोके अवलोकयत् अपश्यत् सत्वे अल्परजस्के

(हिन्दी) "हे वीतशोक! हे संग्रामजित्! हे वीर! हे सार्थवाह हे ऋणी को ऋणरहित करने वाले! आप सन्नद्ध हों, तथा लोक में विचरण करें। अपना धर्मोपदेश आरम्भ करें। उसको सुनने वाले भी मिलेंगे ही।"

तब भगवान् ने ब्रह्मा सहम्पति के हार्दिक आशय को समझ कर प्राणियों पर दया दिखाते हुए बुद्ध चक्षु से लोक पर दृष्टिपात किया। ऐसा करते हुए भगवान् ने देखा कि लोक में कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार वाले भी हैं तो कुछ अधिक चित्तविकार वाले। कोई मृदुइन्द्रिय हैं तो कुछ तीक्ष्णबुद्धि। कोई सरलस्वभाव हैं तो कोई उसे कठिनता से समझते हैं। कोई परलोक से भय मान कर यथाशक्ति सदाचार रत रहते हैं तो कुछ लोगों को परलोक से कोई भय ही नहीं है। जैसे उत्पलसमूह, पद्मसमूह या पुण्डरीकसमूह वाली पुष्पकरणियों में कितने ही उत्पन्न, पद्म या पुण्डीक जल में उत्पन्न हुए, जल में बढते हुए, जल से बाहर निकल कर जल में डूबे हुए ही पोसित होते रहते हैं, तो कुछ जल में उत्पन्न होकर तथा जल में सम्पृक्त रहते हुए उदक के समान स्तर पर रहते हुए पोषित होते रहते हैं। तथा कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक उदक में उत्पन्न तथा उदक

महारजक्खे तिक्खिन्द्रिये मुदिन्द्रिये स्वाकारे द्वाकारे सुविञ्ञापये दुविञ्ञापये, अप्पेकच्चे परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते, अप्पेकच्चे न परलोकवज्जभयदस्साविने विहरन्ते। दिस्वान ब्रह्मानं सहम्पतिं गाथाय पच्चभासि–

''अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा, ये सोतवन्तो पमुञ्चन्तु सद्धं।
विहिंससञ्ञी पगुणं न भासिं, धम्मं पणीतं मनुजेसु ब्रह्मे''ति॥

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति ''कतावकासो खोम्हि भगवता धम्मदेसनाया''ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायीति।

6.1.2. गारवसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधमूले पठमाभिसम्बुद्धो। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं

(संस्कृतच्छाया) महारजस्के तीक्ष्णेन्द्रिये मृदु इन्द्रिये स्वाकारे दुराकारे सुविज्ञाप्ये दुर्विज्ञाप्ये अप्येकत्र परलोकवद्यभयदर्शिनः विहरन्ते, अप्येकत्र न परलोकवद्यभयदर्शिनः विहरन्ते। दृष्ट्वा ब्रह्माणं सहम्पतिं गाथया प्रत्यभाषिष्ट—

"अपावृतानि तेषाम् अमृतस्य द्वाराणि, ये श्रोतवन्तः प्रमोचयन्तु श्रद्धाम्।
विहिंससंज्ञी प्रगुणं न भाषितम्, धर्मं प्रणीतं मनुष्येषु ब्रह्मन्!"इति॥

अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः "कृतावकाशो खलु अहं भगवता धर्मदेशनाय"इति भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

2. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् उरुवेलायां विहरति नद्याः निरञ्जनायाः तीरे अजपालन्यग्रोधमूले प्रथमाभिसम्बुद्धः। अथ खलु भगवतः रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं

(हिन्दी) से सम्पृक्त रहकर भी उदक से बहुत ऊपर निकल कर खड़े रहते हैं, इसी तरह भगवान् ने अपने ज्ञानचक्षु से लोक को देखा जहाँ कुछ प्राणी अल्प चित्तविकार वाले भी हैं तो कुछ अधिक चित्तविकार वाले।तो कुछ तीक्ष्णबुद्धि कोई मृदुइन्द्रिय हैं। कोई सरलस्वभाव हैं तो कोई उसे कठिनता से समझते हैं। कोई परलोक से भय मान कर सदाचार रत रहते हैं कोई परलोक से भय न मानकर सदाचार रत रहते हैं। उन्हें देखकर ब्रह्मा सहम्पति को भगवान् ने यह आश्वासन दिया—

"हे ब्रह्मन्! अब इन लोगों के लिये अमृतद्वार खुल गया, जो ध्यान लगाकर मेरा उपदेश सुनेंगे और मुझ पर श्रद्धा रखेंगे। मैं तो पहले वृथा कष्ट को ध्यान में रखकर ही प्राणियों को इस उत्तम धर्म का उपदेश नहीं कर रहा था।"

तब ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् से उक्त आश्वासन प्राप्त कर, समझ लिया कि भगवान् ने प्राणियों को धर्मोपदेश करने की स्वीकृति दे दी। अतः वे ब्रह्मा भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गये।

2. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् प्रथम सम्बोधि प्राप्त कर उरुवेला में निरंजना नदी के तट पर अजपाल न्यग्रोधवृक्ष के नीचे विहार कर रहे थे। तब एकान्त में विराजमान भगवान् के मन में यह

चेतसो परिवितक्को उदपादि– ''दुक्खं खो अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, कं नु ख्वाहं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं''ति?

अथ खो भगवतो एतदहोसि– ''अपरिपुण्णस्स खो सीलक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अत्तना सीलसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

''अपरिपुण्णस्स खो समाधिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके...पे॰... अत्तना समाधिसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

(संस्कृतच्छाया) चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत— "दुःखं खलु अगौरवः विहरति अप्रतिश्रयः, कं नु खलु अहं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्"इति?

अथ खलु भगवतः एतदभूत्— "अपरिपूर्णस्य खलु शीलस्कन्धस्य परिपूर्णाय अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। न खलु पुनः अहं पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मणायां प्रजायां सदेवमनुष्ये आत्मना शीलसम्पन्नतरम् अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्।

"अपरिपूर्णस्य खलु समाधिस्कन्धस्य परिपूर्णाय अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। न खलु पुनः अहं पश्यामि सदेवके लोके....पे॰...आत्मना समाधिसम्पन्नतरम् अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा यमहं सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्।

(हिन्दी) विचार उठा— "किसी को अपने ज्येष्ठ माने बिना, उसके प्रति अपने हृदय में गौरव रखे बिना धर्मसाधना कष्टदायक ही हुआ करती है, अतः मैं किस श्रमण या ब्राह्मण को सम्मानित कर, उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए साधनारत रहूँ।'

तब भगवान् के मन में यह हुआ— "अपरिपूर्ण शीलस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रवण या ब्राह्मण को अपने से ज्येष्ठ मान कर साधना करना उचित होता है। परन्तु मेरे समान समस्त शीलस्कन्ध को पूर्ण किया हुआ साधक इस लोक या परलोक में, देवता, मनुष्य तथा श्रमण ब्राह्मणोंसहित संसार की इस समस्त जनता में मुझे ऐसा कोई पुरूष नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर सत्कार या गौरव प्रदान करूँ।"

"इसी तरह अपरिपूर्ण समाधिस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रवण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान कर साधना करना चाहिये। परन्तु मेरे समान समस्त...पूर्ववत्... जनता में मुझे ऐसा कोई समाधिसम्पन्न नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर, सत्कारकर, गौरव प्रदान कर विहार करूँ।"

''अपरिपुण्णस्स पञ्ञाक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके...पे॰... अत्तना पञ्ञासम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

''अपरिपुण्णस्स खो विमुत्तिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके...पे॰... अत्तना विमुत्तिसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

''अपरिपुण्णस्स खो विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अत्तना विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नतरं अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। यंनूनाहं य्वायं धम्मो मया अभिसम्बुद्धो

(संस्कृतच्छाया) "अपरिपूर्णस्य प्रज्ञास्कन्धस्य परिपूर्णाय अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। न खलु पुनः अहं पश्यामि सदेवके....पे॰...आत्मना प्रज्ञासम्पन्नतरम् अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्।

"अपरिपूर्णस्य खलु विमुक्तिस्कन्धस्य परिपूर्णाय अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। न खलु पुनः अहं पश्यामि सदेवके....पे॰...आत्मना विमुक्तिसम्पन्नतरम् अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्।

"अपरिपूर्णस्य खलु विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धस्य परिपूर्णाय अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। न खलु पुनः अहं पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मणयोः प्रजायाः सदेवमनुष्ययोः आत्मना विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्नतरम् अन्यं श्रमणं वा ब्राह्मणं वा, यमहं सत्कृत्य गुरुं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेत्। यन्नूनमहं योऽयं धर्मः मया अभिसम्बुद्धः

(हिन्दी)- "इसी तरह अपरिपूर्ण प्रज्ञास्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रवण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान कर विहार करना चाहिये। परन्तु मेरे समान समस्त...पूर्ववत्... जनता में मुझे ऐसा कोई प्रज्ञासम्पन्न नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर सत्कारकर, गौरव प्रदान कर विहार करूँ।"

"इसी तरह अपरिपूर्ण विमुक्तिस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रवण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान कर साधना करना चाहिये। परन्तु मेरे समान समस्त...पूर्ववत्... जनता में मुझे ऐसा कोई विमुक्तिसम्पन्न नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर सत्कारकर, गौरव प्रदान कर विहार करूँ।"

"इसी तरह अपरिपूर्ण विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध की पूर्णता के लिये ही किसी अन्य श्रवण या ब्राह्मण को ज्येष्ठ मान कर विहार करना चाहिये। परन्तु मेरे समान समस्त...पूर्ववत्... जनता में मुझे ऐसा कोई

तमेव धम्मं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं''ति।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– ब्रह्मलोके अन्तरहितो भगवतो पुरतो पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत! येपि ते, भन्ते, अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा, तेपि भगवन्तो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरिंसु; येपि ते, भन्ते, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा तेपि भगवन्तो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरिस्सन्ति। भगवापि, भन्ते, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मञ्ञेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरतू''ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा अथापरं एतदवोच–

(संस्कृतच्छाया) तमेव धर्मं सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरेयम्"इति।

अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः भगवतः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तर्हितो भगवतः पुरतः प्रादुरभूत्। अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः एकस्मिन् अंशे उत्तरासङ्गं कृत्वा यत्र भगवान् तत्र अञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "एवमेतम्, भगवन्! एवमेतम्, सुगत!" येऽपि ते, भदन्त! अभूवन् अतीतमध्वानम् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धा, तेऽपि भगवन्तं धर्मज्ञमेव सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय व्यहार्षुः, येऽपि, भदन्त! भविष्यन्ति अनागतमध्वानम् अर्हन्तः सम्यक् सम्बुद्धाः तेऽपि भगवन्तः धर्मज्ञमेव सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरिष्यन्ति। भगवान् अपि, भदन्त! एतर्हि अर्हं सम्यक् सम्बुद्धः धर्मज्ञमेव सत्कृत्य गुरूं कृत्वा उपनिःश्राय विहरतु" इति। इदमवोचत् ब्रह्मा सहम्पति, इदमुक्त्वा यथापरम् एतदवोचत्—

(हिन्दी) विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न नहीं दिखायी देता जिसे मैं अपने से श्रेष्ठ मानकर सत्कार या गौरव प्रदान करूँ।"तो क्यों न मैंने स्वयं जिस धर्म का साक्षात्कार किया है, उसे ही श्रेष्ठ मानते हुआ उसका सत्कारकर, गौरव प्रदान कर विहार कँ।"

तब ब्रह्मा सहम्पति ने भगवान् के इस चित्तविचार को स्वचित्त से जानकर, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाहु को पसार दे और पसारी बाहु को समेट ले वैसे ही- ब्रह्मलोक में अन्तर्धान हो भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। तब बह्मा सहम्पति उत्तरासंग को एक कन्धे पर सम्भाल कर भगवान् से हाथ जोड़कर यह बोले- "यही उचित है, भगवन्! यही उचित है सुगत! पूर्वकाल में भी जो ज्ञानी सम्यक्यसम्बुद्ध हुए हैं, उन्होंने स्वयं साक्षात्कृत धर्म को ही श्रेष्ठ मान कर उसी को सत्कार एवं गौरव प्रदान कर साधना में रत रहे थे! इसी तरह भविष्य में भी जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होंगे...पूर्ववत्...में रत रहेंगे। इसी तरह वर्तमान में आप भी, भन्ते! ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध होकर स्वसाक्षात्कृत धर्म को ही सत्कार तथा गौरव प्रदान करते हुए, उसी का आलम्बन कर, साधना में तत्पर रहे।"ब्रह्मा सहम्पति ने यह कहा। यह कहकर फिर यह भी कहा-

''ये च अतीता सम्बुद्धा, ये च बुद्धा अनागता।
यो चेतरहि सम्बुद्धो, बहूनं सोकनासनो॥
''सब्बे सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च।
तथापि विहरिस्सन्ति, एसा बुद्धान धम्मता॥
''तस्मा हि अत्तकामेन, महत्तमभिकङ्खता।
सद्धम्मो गरुकातब्बो, सरं बुद्धान सासन''॥

6.1.3. ब्रह्मदेवसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरिस्सा ब्राह्मणिया ब्रह्मदेवो नाम पुत्तो भगवतो सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति।

अथ खो आयस्मा ब्रह्मदेवो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो

(संस्कृतच्छाया) ''ये च अतीता सम्बुद्धाः, ये च बुद्धा अनागताः।
यः चेतर्हिः सम्बुद्धः, बहूनां शोकनाशनः॥
''सर्वेः सद्धर्मगुरवे, व्यहार्षुः विहरन्ति च।
तथापि विहरिष्यन्ति, एषा बुद्धानां धर्मता॥
''तस्मात् हि आत्मकामेन, महत्तामभिकाङ्क्षता।
सद्धर्मः गुरुकर्त्तव्यः, स्मरन् बुद्धानां शासनम्"इति॥

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये अन्यतरस्याः ब्राह्मण्याः ब्रह्मदेवः नाम पुत्रः भगवतः अन्तिके अगारात् अनागारं प्रव्रजितो भवति।

अथ खलु आयुष्मान् ब्रह्मदेवः एकः व्युपकृष्ट अप्रमत्तः आतापी प्रहितात्मा विहरन्

(हिन्दी) "पूर्वकाल में जो ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध हुए हैं, भविष्य में जो सम्यक्सम्बुद्ध होंगे, या वर्तमान में आप सम्यक्सम्बुद्ध हैं, जो बहुत से जिज्ञासुओं के शोकविनाशक हैं।"

"सभी ने स्वसाक्षात्कृत धर्म के प्रति गौरव शील हो, विहार करते थे और करते हैं, तथा आगे भी करेंगे। यही बुद्धों की धर्मता है।"

"अतः आत्मज्ञानाभिलाषुक को, साधना में महत्त्वप्राप्ति की इच्छा से बुद्धों के उपदेश का स्मरण करते हुए सद्धर्म को ही गौरव प्रदान करना चाहिये।"

3. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय किसी ब्राह्मणी का ब्रह्मदेव नाम का पुत्र भगवान् के पास आकर घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गया।

तब, आयुष्मान् ब्रह्मदेव ने एकाकी रहकर एकान्त में अप्रमत्त होकर, उद्योग करते हुए, संयतेन्द्रिय होकर

नचिरस्सेव– यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया''ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा ब्रह्मदेवो अरहतं अहोसि।

अथ खो आयस्मा ब्रह्मदेवो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो येन सकमातु निवेसनं तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स माता ब्राह्मणी ब्रह्मुनो आहुतिं निच्चं पग्गण्हाति। अथ खो ब्रह्मुनो सहम्पतिस्स एतदहोसि– ''अयं खो आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स माता ब्राह्मणी ब्रह्मुनो आहुतिं निच्चं पग्गण्हाति। यंनूनाहं तं उपसङ्कमित्वा संवेजेय्य''न्ति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– ब्रह्मलोके अन्तरहितो

(संस्कृतच्छाया)- न चिरादेव- यस्यार्थाय कुलपुत्राः सम्यक् एव आगारात् अनागारिकं प्रव्रजन्ति, तदनुत्तरं ब्रह्मचर्यपर्यवसानं दृष्टेव धर्मे स्वयम् अभिज्ञाय साक्षिकृत्य उपसम्पद्य व्यहार्षीत्— 'क्षीणा जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयम्, नापरम् इत्थंभावमिति अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरः च खलु पुनः आयुष्मान् ब्रह्मदेवः अर्हत् अभूत्।

अथ खलु आयुष्मान् ब्रह्मदेवः पूर्वाह्णसमयं निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां स्वपादाभ्यां पिण्डाय चरमानः यत्र स्वमातुः निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत्। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मतः ब्रह्मदेवस्य माता ब्राह्मणी ब्रह्मणे आहुतिं नित्यं परिगृह्णाति। अथ खलु ब्रह्मणः सहम्पतेः एतदभूत्— ''इयं खलु आयुष्मतः ब्रह्मदेवस्य माता ब्राह्मणी ब्रह्मणो आहुतिं नित्यं परिगृह्णाति। यन्नूनमहं तम् उपसङ्क्रम्य संवेदेयम्" इति। अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— ब्रह्मलोके अन्तर्हितो

(हिन्दी) साधना करते हुए उस अद्वितीय परम फल को देखते ही देखते स्वंय साक्षात् कर लिया, जिसके लिये अनेक कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से गृहत्याग कर प्रव्रजित हुआ करते हैं। उसने- 'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो गयी, मैं कृतकृत्य हो चुका, अब मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया' यह जान लिया। अन्त में ये आयुष्मान् ब्रह्मदेव अर्हतों में एक हो गये।

तब आयुष्मान् ब्रह्मदेव प्रातःकाल अपने वस्त्रों को शरीर पर सुव्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वे श्रावस्ती में सभी घरों में भिक्षा करते हुए अपनी माता के घर पहुँचे। उस समय उस ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी ब्रह्मा को आहुति दे रही थी। तब, सहम्पति ब्रह्मा के मन में यह विचार उद्भूत हुआ- "यह आयुष्मान् ब्रह्मदेव की माता ब्राह्मणी ब्रह्मा को आहुति दे रही है, तो क्यों न मैं वहाँ चलकर इसके मन में इस कार्य के प्रति संवेग उत्पन्न कर दूँ। "तब सहम्पति ब्रह्मा, जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाहु को पसार दे और पसारी बाहु को समेट ले वैसे ही- ब्रह्म लोक से अन्तर्धान हो ब्रह्मदेव की माता के घर

आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स मातु निवेसने पातुरहोसि। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति वेहासं ठितो आयस्मतो ब्रह्मदेवस्स मातरं ब्राह्मणिं गाथाय अज्झभासि–

''दूरे इतो ब्राह्मणि ब्रह्मलोको, यस्साहुतिं पग्गण्हासि निच्चं।
नेतादिसो ब्राह्मणि ब्रह्मभक्खो, किं जप्पसि ब्रह्मपथं अजानं॥
''एसो हि ते ब्राह्मणि ब्रह्मदेवो, निरूपधिको अतिदेवपत्तो।
अकिञ्चनोभिक्खु अनञ्ञपोसी, यो ते सो पिण्डाय घरं पविट्ठो॥
''आहुनेय्यो वेदगु भावितत्तो, नरानं देवानञ्च दक्खिणेय्यो।
बाहित्वा पापानि अनूपलित्तो, घासेसनं इरियति सीतिभूतो॥
''न तस्स पच्छा न पुरत्थमत्थि, सन्तो विधूमो अनिघो निरासो।
निक्खित्तदण्डो तसथावरेसु, सो त्याहुतिं भुञ्जतु अग्गपिण्डं॥

(संस्कृतच्छाया) आयुष्मतः ब्रह्मदेवस्य मातुः निवेशने प्रादुरभूत्— अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः विहायसि स्थितः आयुष्मतः ब्रह्मदेवस्य मातरं ब्राह्मणीं गाथया अध्यभाषिष्ट-

''दूरे इतः ब्राह्मणि! ब्रह्मलोकः, यस्याहुतिं प्रगृह्णासि नित्यम्।
नैतादृशः ब्राह्मणि! ब्रह्मभक्ष्यः, किं जल्पसि ब्रह्मपथम् अजानन्॥
''एषो हि ते ब्राह्मणि! ब्रह्मदेवः, निरुपाधिकः अतिदेवपुत्रः।
अकिञ्चनः भिक्षु अनन्यपोषी, यः ते सः पिण्डाय गृहं प्रविष्टः॥
''आहवनीयः वेदगः भावितात्मा, नराणां देवानां च दक्षिणेयः।
बाहित्वा पापानि अनूपलिप्तः, घासासनम् ईरयति शीतीभूतः॥
''न तस्य पृष्ठः न पूरः अस्ति, शान्तः विधूमः अनिघः निराशः।
निक्षिप्तदण्डः त्रस स्थावरेषु, सः तवाहुतिं भुञ्जतु अग्रपिण्डम्॥

(हिन्दी) में प्रकट हुए। वहाँ वह ब्रह्मा सहम्पति, आकाश में ही खड़ा रहता हुआ उस ब्राह्मणी से, इन गाथाओं के माध्यम से, यों बोला-

"हे ब्राह्मणि! यहाँ से ब्रह्मलोक बहुत दूर है, जिसके लिये तुम प्रतिदिन आहुति दे रही हो। हे ब्राह्मणि! ब्रह्मा का तो यह भोज्य भी नहीं है, फिर तू ब्रह्ममार्ग के बिना जाने क्यों भटक रही हो।"

"हे ब्रह्मणि! यह तुम्हारा पुत्र ब्रह्मदेव, जो उपाधियों से मुक्त हो चुका है, आज देवताओं से भी आध्यात्मिक शक्ति में अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है, संसार में ममत्व त्यागकर अपनी जीवनयात्रा में सब किसी की आशा त्याग चुका है, तुम्हारे द्वार पर भिक्षा हेतु खड़ा है।"

"यह सत्कार के योग्य है, दुःखमुक्त है, संयतेन्द्रिय है, मनुष्यों और देवताओं का पूजनीय है, पापों को दूर कर संसार से निर्लिप्त शान्त हो कर भिक्षारत में लगा है।"

"न इसके कोई आगे है न पीछे है, वह शान्त है, इसके इन्द्रियविकारों का उपशमन हो चुका है, यह

''विसेनिभूतो उपसन्तचित्तो, नागोव दन्तो चरति अनेजो।
भिक्खु सुसीलो सुविमुत्तचित्तो, सो त्याहुतिं भुञ्जतु अग्गपिण्डं॥
''तस्मिं पसन्ना अविकम्पमाना, पतिट्ठपेहि दक्खिणं दक्खिणेय्ये।
करोहि पुञ्ञं सुखमायतिकं, दिस्वा मुनिं ब्राह्मणि ओघतिण्णं''ति॥
''तस्मिं पसन्ना अविकम्पमाना, पतिट्ठपेसि दक्खिणं दक्खिणेय्ये।
अकासि पुञ्ञं सुखमायतिकं, दिस्वा मुनिं ब्राह्मणी ओघतिण्णं''ति॥

6.1.4. बकब्रह्मसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन बकस्स ब्रह्मुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति– ''इदं निच्चं, इदं ध्रुवं, इदं सस्सतं, इदं केवलं, इदं अचवनधम्मं, इदं हि न जायति न जीयति न

(संस्कृतच्छाया) ''विसेनीभूतः उपशान्तचित्तः, नाग इव दान्तः चरति अनेजः।
भिक्षुः सुशीलः सुविमुक्तचित्तः, सः तवाहुतिं भुञ्जतु अग्रपिण्डम्॥
''तस्मिन् प्रसन्नाः अविकम्पमानाः, प्रतिष्ठापय दक्षिणं दक्षिणेय।
करोतु पुण्यं सुखमायतिकम्, दृष्ट्वा मुनिं ब्राह्मणि! ओघतीर्णम्''इति॥
''तस्मिन् प्रसन्नाः अविकम्पमानाः, प्रतिष्ठापय दक्षिणं दक्षिणेय।
अकार्षीत् पुण्यं सुखमायतिकम्, दृष्ट्वा मुनिं ब्राह्मणि! ओघतीर्णम्''इति॥

4. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये बकस्य ब्रह्मणः एवं रूपं पापकं दृष्टिगतम् उत्पन्नं भवति— ''इदं नित्यम्, इदं ध्रुवम्, इदं शाश्वतम्, इदं केवलम्, इदम् अच्यवनधर्मम्, इदं हि न जायते न जीर्यते न

(हिन्दी) उत्पातरहित है, यह सांसारिक इच्छाओं से दूर हो चुका है, इसने सभी चल अचल प्राणियों के प्रति शस्त्र एवं दण्ड का त्याग कर दिया है। वह तेरी इस आहुति को ग्रहण करने का अधिकारी है।"

"वह क्लेश की सेनाओं से परित्यक्त, शान्तचित्त, शिक्षित दान्त नाग की तरह गम्भीरता से चलने वाला, भिक्षु गुणसम्पन्न, सुविमुक्तचित्त एवं सुशील है वह तुम्हारी इस आहुति का अधिकारी बने।"

हे ब्राह्मणि! उसके प्रति अटल श्रद्धा से, दक्षिणा-पात्र के प्रति दक्षिणा का दान कर, धारा पार किये मुनि देखकर भविष्य में सुख देने वाले पुण्य कार्य को करो।

तब उसके प्रति अटल श्रद्धा से, उस ब्राह्मणी ने दक्षिणापात्र तथा संसारसागर से पार हुए उस मुनि ब्रह्मदेव के दर्शन कर उसको दक्षिणा का दान किया। जिसके फलस्वरूप उसने भावी पुण्यफल प्राप्त किया।"

4. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय वकब्रह्मा को ऐसी पापदृष्टि उत्पन्न हुई- ''यह नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अखण्ड है, अच्युतस्वभाव है। यह न च्युत होकर अन्यत्र जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न इससे बढ़कर कोई दूसरा मुक्तिस्थल ही है।''

मीयति न चवति न उपपज्जति, इतो च पनञ्ञं उत्तरिं निस्सरणं नत्थी''ति।

अथ खो भगवा बकस्स ब्रह्मुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अद्दसा खो बको ब्रह्मा भगवन्तं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच– ''एहि खो मारिस, स्वागतं ते, मारिस! चिरस्सं खो मारिस! इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। इदं हि, मारिस, निच्चं, इदं धुवं, इदं सस्सतं, इदं केवलं, इदं अचवनधम्मं, इदञ्हि न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति। इतो च पनञ्ञं उत्तरि निस्सरणं नत्थी''ति।

एवं वुत्ते, भगवा बकं ब्रह्मानं एतदवोच– ''अविज्जागतो वत, भो, बको ब्रह्मा; अविज्जागतो वत, भो, बको ब्रह्मा। यत्र हि नाम अनिच्चंयेव समानं निच्चं ति वक्खति, अधुवंयेव समानं धुवन्ति वक्खति, असस्सतंयेव समानं सस्सतन्ति वक्खति, अकेवलंयेव

(संस्कृतच्छाया) म्रियते न च्यवते न उत्पद्यते, इतः च पुनः अन्यम् उत्तरं निःशरणं नास्ति"इति।

अथ खलु भगवान् बकस्य ब्रह्मणः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव- जेतवने अन्तर्हितः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अद्राक्षीत् खलु बकः ब्रह्मा भगवन्तं दूरत एव आगच्छन्तं दृष्ट्वा भगवन्तम् एतदवोचत्— "एहि खलु, मारिष! स्वागतं ते, मारिष! चिरमेव खलु मारिष! इमं पर्यायमकार्षीत् यदिदम् इह आगमनाय। इदं हि, मारिष! नित्यम्, इदं ध्रुवम्, इदं शाश्वतम्, इदं केवलम्, इदम् अच्यवनधर्मम्, इदं हि न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवते न उत्पद्यते। इतः च पुनः अन्यम् उत्तरं निःशरणं नास्ति"इति।

एवमुक्ते, भगवान् बकं ब्रह्माणम् एतदवोचत्— ''अविद्यागतः वत, भो बकः ब्रह्मा। अविद्यागतः वत, भो, बकः ब्रह्मा। यत्र हि नाम अनित्यम् एव समानं नित्यम् इति वक्ति, अध्रुवम् एव समानं ध्रुवम् इति वक्ति, अशाश्वतम् एव समानं शाश्वतम् इति वक्ति, अकेवलम् एव

(हिन्दी) तब भगवान् ने स्वचित्त से वकब्रह्मा के अयुक्त चिन्तन को जान कर जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाहु को पसार दे और पसारी बाहु को समेट ले वैसे ही- जेतवन से अन्तर्हित होकर वे उस ब्रह्मलोक में जाकर प्रकट हुए। उस समय वकब्रह्मा ने भगवान् को दूर से ही देख लिया। तब वह भगवान् से यों बोला- ''आइये, मार्ष! आपका स्वागत है! मार्ष! बहुत समय बाद आपने इधर पधारने का समय निकाला। मार्ष! ''यह नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अखण्ड है, अच्युतस्वभाव है। यह न च्युत होकर अन्यत्र जन्मता है, न जीर्ण होता है, न मरता है, न इससे बढ़कर कोई दूसरा मुक्तिस्थल ही है।''

उस वक ब्रह्मा के ऐसा कहने पर भगवान् ने उससे यह कहा- ''अरे तुम वक ब्रह्मा! अविद्या के वश में हो गये हो! यह बहुत चिन्ता की बात है। ''तुम अनित्य को 'नित्य' कह रहे हो, अध्रुव को 'ध्रुव' कह रहे हो, अशाश्वत को 'शाश्वत' कर रहे हो, अकेवल को 'केवल' कह रहे हो, च्यवनस्वभाव वाले को 'अच्युत' कह रहे हो,

समानं केवलन्ति वक्खति, चवनधम्मंयेव समानं अचवनधम्मन्ति वक्खति। यत्थ च पन जायति च जीयति च मीयति च चवति च उपपज्जति च, तञ्च तथा वक्खति– 'इदं हि न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति'। सन्तञ्च पनञ्ञं उत्तरि निस्सरणं, 'नत्थञ्ञं उत्तरि निस्सरणं'ति वक्खती''ति।

''द्वासत्तति गोतम पुञ्ञकम्मा, वसवत्तिनो जातिजरं अतीता।
अयमन्तिमा वेदगू ब्रह्मुपपत्ति, अस्माभिजप्पन्ति जना अनेका''ति॥
''अप्पञ्हि एतं न हि दीघमायु, यं त्वं बक मञ्ञसि दीघमायुं।
सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, आयुं पजानामि तवाहं ब्रह्मे''ति॥
''अनन्तदस्सी भगवाहमस्मि, जातिजरं सोकमुपातिवत्तो।
किं मे पुराणं वतसीलवत्तं, आचिक्ख मे तं यमहं विजञ्ञा''ति॥
''यं त्वं अपायेसि बहू मनुस्से, पिपासिते घम्मनि सम्परेते।

(संस्कृतच्छाया) समानं केवलम् इति वक्ति, च्यवनधर्मम् एव समानम् अच्यवनधर्मम् इति वक्ति। यत्र च पुनः जायते च जीर्यते च म्रियते च च्यवते च उत्पद्यते च, तञ्च तथा वक्ति— इदं हि न जायते न जीर्यते न म्रियते न च्यवते न उत्पद्यते। शान्तं च पुनः अन्यत् उत्तरं निःशरणं, नास्ति अन्यम् उत्तरं निःशरणम् इति वक्ति"इति।

''द्विसप्ततिः गौतम! पुण्यकर्माणा, वशवर्तिनः जातिजरम् अतीता।
इयमन्तिमाः वेदज्ञाः ब्रह्मोपपत्तिः, अस्माभिजल्पन्ति जनाःअनेके"इति॥
''अल्पं हि एतं न हि दीर्घमायुः, यथा त्वं बक! मन्यसे दीर्घमायुः।
शतं सहस्राणां न्यर्बुदानाम्, आयुः प्रजानामि तव अहं ब्रह्मन्!"इति॥
''अनन्तदर्शी भगवानहमस्मि, जातिजरं शोकमुपातिवृत्तः।
किं मे पुराणं वत शीलवृत्तम्, आचक्ष्व मे त्वं यदहं विजानीयाम"इति॥
''यं त्वम् अपाः बहून् मनुष्यान्, पिपासितान् घर्मणि सम्परेतान्।

(हिन्दी) जहाँ लोग जन्मते हैं, जीर्ण भी होते हैं, मरते भी हैं, उत्पन्न भी होते है उसको आप कह रहे हो- 'यहाँ कोई न जन्मता है...न उत्पन्न होता है', तथा अन्य मुक्तिस्थल के रहते हुए भी कह रहे हो- 'इससे बढ़कर कोई मुक्तिस्थल नहीं है।"

"हे गौतम! हम बहत्तर ब्रह्मा अपने पुण्य कर्मों से वशवर्ती हैं तथा जाति तथा जरा से मुक्ति पा चुके हैं। 'ब्रह्मलोक में उत्पन्न होना ही अन्तिम मुक्ति है। हमें ही लोग अनेक नामों से पुकारते हैं'!

"यह आयु भी अल्प ही है बहुत लम्बी भी नहीं, जैसा कि तुम समझ रहे हो। हे ब्रह्मा! मैं तुम्हारी सैंकड़ों, हजारों तथा करोड़ों वर्षों की आयु जानता हूँ।

मैं अनन्तद्रष्टा भगवान् हूँ। जाति, जरा एवं शोक को अतिक्रान्त कर चुका हूँ"। भगवान्! मेरा सर्वप्रथम शीलव्रत क्या था, कृपया आप बताइये तो मुझे भी समझ में आवें।

तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धोव अनुस्सरामि॥
''यं एणिकूलस्मिं जनं गहीतं, अमोचयी गय्हकं नीयमानं।
तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धोव अनुस्सरामि॥
''गङ्गाय सोतस्मिं गहीतनावं, लुद्धेन नागेन मनुस्सकम्या।
पमोचयित्थ बलसा पसय्ह, तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धो व अनुस्सरामि॥
''कप्पो च ते बद्धचरो अहोसिं, सम्बुद्धिमन्तं वतिनं अमञ्ञि।
तं ते पुराणं वतसीलवत्तं, सुत्तप्पबुद्धोव अनुस्सरामी''ति॥
''अद्धा पजानासि ममेतमायुं, अञ्ञेपि जानासि तथा हि बुद्धो।
तथा हि त्यायं जलितानुभावो, ओभासयं तिट्ठति ब्रह्मलोकं''ति॥

6.1.5. अञ्ञतरब्रह्मसुतं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स ब्रह्मुनो एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं

(संस्कृतच्छाया) तत् ते पुराणं वत शीलवृत्तम्, सुतप्तप्रबुद्ध इव अनुस्मरामि॥
''यं एणिकूले जनं गृहीतम्, अमोचयत् गृह्यकं नीयमानम्।
तत् ते पुराणं वत शीलव्रतम्, सुतप्तप्रबुद्ध इव अनुस्मरामि॥
''गङ्गायाः स्रोतस्मिन् गृहीतनावम्, लुब्धेन नागेन मनुष्यकामन।
प्रामोचयत् बलेन प्रसह्य, तत् ते पुराणं वत शीलव्रतम्, सुतप्तप्रबुद्ध इव अनुस्मरामि॥
''कल्पः च ते बद्धचरः अभूवम्, संबुद्धिमन्तां व्रतिनम् अमंस्थाः।
तत् ते पुराणं वत शीलवृत्तम्, सुतप्तप्रबुद्ध इव अनुस्मरामि"इति॥
''अद्धा प्रजानासि मामेतत् आयुम्, अन्येऽपि जानासि तथा हि बुद्धः।
तथा हि ते अयं ज्वलितानुभावः, अवभासयन् तिष्ठति ब्रह्मलोकम्"इति॥

5. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये अन्यतरस्य ब्रह्मणः एवरूपं पापकं दृष्टिगतम्

(हिन्दी) (भगवान्-) ''जो तुम ने घाम में प्यासे बहुत से मनुष्यों को जल पिलाया था- वही पहला तुम्हारा शीलव्रत था। सोकर जागे हुए की तरह वह मुझे स्मरण है।

''जो गंङ्गा के तट पर बाढ में फँसे प्राणियों को तुमने बचाया था- यह भी तुम्हारा एक पूर्व जन्म का शीलव्रत था। यह भी सोकर जागे हुए की तरह मुझे स्मरण है।

''मनुष्य के लालच में एक नागराज द्वारा खींच ले जाती नौका को तुमने बल लगा कर छुड़ा लिया था- यह भी तुम्हारा पूर्वजन्म का शील व्रत था। यह भी मुझे सोकर जगे हुए के समान भली भाँति स्मरण है।''

''मैं तुम्हारा कल्प नामक अनुगामी शिष्य था, तुमने मुझ को बुद्धिमान् समझा था- यह भी तुम्हारा एक पूर्वजन्म का शीलव्रत था। यह भी मुझको सोकर जागे हुए की तरह भली भाँति स्मरण है।''

''अरे! जैसे भगवान् बुद्ध मेरे इतने जन्मों को जानते हैं। वैसे ही ये मेरे विषय में अन्य घटनाओं को भी जानते होंगे। इन का यह देदीप्यमान ज्ञान का प्रकाश समस्त ब्रह्मलोक को आलोकित कर रहा है।''

उप्पन्नं होति– ''नत्थि सो समणो वा ब्राह्मणो वा यो इध आगच्छेय्या''ति। अथ खो भगवा तस्स ब्रह्मुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे॰...तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो भगवा तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा।

अथ खो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स एतदहोसि– ''कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती''ति? अद्दसा खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसिन्नं तेजोधातुं समापन्नं। दिस्वान– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो पुरत्थिमं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

(संस्कृतच्छाया) उत्पन्नं भवति- ''नास्ति सः श्रमणो वा ब्राह्मणो वा य इह आगच्छेत"इति। अथ खलु भगवान् तस्य ब्रह्मणः चेतसा चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय- तद्यथापि नाम बलवान् पुरुष....पे॰....तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अथ खलु भगवान् तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्केन न्यसीदत् तेजोधातुं समापद्य।

अथ खलु आयुष्मतः महामौद्गल्यायनस्य एतदभूत्— ''कुत्र नु खलु भगवान् एतर्हिः विहरति" इति? अद्राक्षीत् खलु आयुष्मान् महामौद्गल्यानः भगवन्तं दिव्येन चक्षुषाः विशुद्धेन अतिक्रान्तमानुषकेन तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्के निषण्णं तेजोधातुं समापन्नम्। दृष्ट्वा— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— जेतवने अन्तर्हितः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अथ खलु आयुष्मान् महामौद्गल्यायनः पूर्वस्थितां दिशां निःश्राय तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्केन न्यसीदत् तेजोधातुं समापद्य नीचतरं भगवतः।

5.(हिन्दी) श्रावस्ती में। उस समय किसी ब्रह्मा को यह पापदृष्टि उत्पन्न हुई- "ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो इस ब्रह्मलोक में आ सके।" तब भगवान् ने उस ब्रह्मा के इस मानसिक वितर्क को अपने मन से जान कर, जैसे बलवान् पुरूष...पूर्ववत्....ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब भगवान् स्वकीय तेजःप्रताप से उस ब्रह्मा के सिंहासन पर आकाश में पद्मासन लगाकर विराजमान हुए।

उसी समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के मन में यह विचार हुआ- इस समय भगवान् कहाँ विराजमान होंगे।" तब उन्होंने ध्यान भावना द्वारा देखा कि भगवान् तो ब्रह्मलोक में किसी ब्रह्मा के सिंहासन पर स्वकीय तेज प्रताप के प्रभाव से पद्मासन लगाकर विराजमान हैं। देखकर- जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाहु को पसार दे और पसारी बाहु को समेट ले वैसे ही- जेतवन से अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी स्वकीय तेजःप्रभाव से वहाँ जाकर भगवान् से कुछ पूर्व की तरफ आसन लगाकर बैठ गये।

अथ खो आयस्मतो महाकस्सपस्स एतदहोसि– ''कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती''ति? अद्दसा खो आयस्मा महाकस्सपो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना...पे॰... दिस्वान– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे॰... एवमेव– जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महाकस्सपो दक्खिणं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मतो महाकप्पिनस्स एतदहोसि– ''कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती''ति? अद्दसा खो आयस्मा महाकप्पिनो भगवन्तं दिब्बेन चक्खुना...पे॰... तेजोधातुं समापन्नं। दिस्वान– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे॰... एवमेव– जेतवने अन्तरहितो तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा महाकप्पिनो पच्छिमं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मतो अनुरुद्धस्स एतदहोसि– ''कहं नु खो भगवा एतरहि विहरती''ति?

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु आयुष्मतः महाकाश्यपस्य एतदभूत्— ''कुत्र नु खलु भगवान् एतर्हि विहरति"इति? अद्राक्षीत् खलु आयुष्मान् महाकाश्यपः भगवन्तं दिव्येन चक्षुषाः.....पे॰.....दृष्ट्वा— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः.....पे॰.....एवमेव- जेतवने अन्तर्हितः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अथ खलु आयुष्मान् महाकाश्यपो दक्षिणां दिशां निःश्राय तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्केन न्यसीदत् तेजोधातुं समापद्य नीचतरं भगवतः।

अथ खलु आयुष्मतः महाकल्पिनस्य एतदभूत्— ''कुत्र नु खलु भगवान् एतर्हि विहरति"इति? अद्राक्षीत् खलु आयुष्मान् महाकल्पिनः भगवन्तं दिव्येन चक्षुषाः...पे॰....तेजोधातुं समापद्य। दृष्ट्वा— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः...पे॰....एवमेव- जेतवने अन्तर्हितः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अथ खलु आयुष्मान् महाकल्पिनः पश्चिमां दिशां निःश्राय तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्केन न्यसीदत् तेजोधातुं समापद्य नीचतरं भगवतः।

अथ खलु आयुष्मतः अनुरुद्धस्य एतदभूत्— ''कुत्र नु खलु भगवान् एतर्हि विहरती"इति?

(हिन्दी उसी समय आयुष्मान् महाकाश्यप के मन में यह विचार हुआ- इस समय भगवान् कहाँ विराजमान होंगे। तब उन्होंने ध्यान भावना द्वारा देखा कि...पूर्ववत्... देखकर- जैसे बलवान् पुरुष...पूर्ववत्... वैसे ही- जेतवन से अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए।तब आयुष्मान् महाकाश्यप भी स्वकीय तेजःप्रभाव से वहाँ जाकर भगवान् से कुछ दक्षिण की तरफ आसन लगाकर बैठ गये।

उसी समय आयुष्मान् महाकप्पिन के मन में यह विचार हुआ- इस समय भगवान् कहाँ विराजमान होंगे। तब उन्होंने ध्यान भावना द्वारा देखा कि...पूर्ववत्... देखकर- जैसे बलवान् पुरुष...पूर्ववत्... वैसे ही- जेतवन से अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए।तब आयुष्मान् महाकप्पिन भी स्वकीय तेजःप्रभाव से वहाँ जाकर भगवान् से कुछ पश्चिम की तरफ आसन लगाकर बैठ गये।

उसी समय आयुष्मान् अनुरुद्ध के मन में यह विचार हुआ- इस समय भगवान् कहाँ विराजमान होंगे।

अद्दसा खो आयस्मा अनुरुद्धो...पे०... तेजोधातुं समापन्नं। दिस्वान– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे०... तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहोसि। अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो उत्तरं दिसं निस्साय तस्स ब्रह्मुनो उपरि वेहासं पल्लङ्केन निसीदि तेजोधातुं समापज्जित्वा नीचतरं भगवतो।

अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो तं ब्रह्मानं गाथाय अज्झभासि–

''अज्जापि ते आवुसो सा दिट्ठि, या ते दिट्ठि पुरे अहु।
पस्ससि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं''ति॥
''न मे मारिस सा दिट्ठि, या मे दिट्ठि पुरे अहु।
पस्सामि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं।
स्वाहं अज्ज कथं वज्जं, अहं निच्चोम्हि सस्सतो''ति॥

अथ खो भगवा तं ब्रह्मानं संवेजेत्वा– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– तस्मिं ब्रह्मलोके अन्तरहितो जेतवने

(संस्कृतच्छाया) अद्राक्षीत् खलु आयुष्मान् अनुरूद्धः....पे०....तेजोधातुं समापद्य। दृष्ट्वा- तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः ....पे०....तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्। अथ खलु आयुष्मान् अनुरुद्धः उत्तरां दिशां निःश्राय तस्य ब्रह्मणः उपरि विहायसं पर्यङ्केन न्यसीदत् तेजोधातुं समापद्य नीचतरं भगवतः।

अथ खलु आयुष्मान् महामौद्गल्लायनः तं ब्रह्माणं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''अद्यापि ते आयुष्मन्! सा दृष्टिः, या ते दृष्टिः पुरा अभूत्।
पश्यसि व्यतिवृत्तान्तम्, ब्रह्मलोके प्रभास्वरम्"इति॥
''न मे मारिष! सा दृष्टिः, या मे दृष्टिः पुरा अभूत्।
पश्यामि व्यतिवृत्तान्तम्, ब्रह्मलोके प्रभास्वरम्।
स्वाहम् अद्य कथं वद्यम्, अहं नित्यमस्मि शाश्वतः"इति॥

अथ खलु भगवान् तं ब्रह्माणं संविज्य- तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव- तस्मिन् ब्रह्मलोके अन्तर्हितः जेतवने

(हिन्दी) तब उन्होंने ध्यान भावना द्वारा देखा कि...पूर्ववत्... देखकर- जैसे बलवान् पुरुष...पूर्ववत्... वैसे ही- जेतवन से अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। तब आयुष्मान् अनुरुद्धः भी स्वकीय तेजःप्रभाव से वहाँ जाकर भगवान् से कुछ उत्तर की तरफ आसन लगाकर बैठ गये। तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उस ब्रह्मा से गाथा के द्वारा कहा-

''आयुष्मान्! क्या आज भी तुम्हारी वही धारणा है जो पहले थी, क्या सबसे अधिक उत्कृष्ट इस दिव्य लोक में इस महान् तेजःपुंज को नहीं देख पा रहे हो।''

(ब्रह्मा-) ''मार्ष! आज मेरी वह धारणा नहीं रह गयी है जो पहले थीं, क्योंकि मैं अब अपने इस दिव्य लोक में महान् तेजःपुंज को देख रहा हूँ। तो भला, अब मै कैसे कह सकता हूँ कि मैं नित्य एवं शाश्वत हूँ।''

तब भगवान् उस ब्रह्मा को संवेगयुक्त धर्मोपदेश कर- जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाहु को पसार दे और

पातुरहोसि। अथ खो सो ब्रह्मा अञ्ञतरं ब्रह्मपारिसज्जं आमन्तेसि– ''एहि त्वं, मारिस, येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एवं वदेहि– 'अत्थि नु खो, मारिस मोग्गल्लान, अञ्ञेपि तस्स भगवतो सावका एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा; सेय्यथापि भवं मोग्गल्लानो कस्सपो कप्पिनो अनुरुद्धो'''ति? ''एवं, मारिसा''ति खो सो ब्रह्मपारिसज्जो तस्स ब्रह्मुनो पटिस्सुत्वा येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच– ''अत्थि नु खो, मारिस मोग्गल्लान, अञ्ञेपि तस्स भगवतो सावका एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा; सेय्यथापि भवं मोग्गल्लानो कस्सपो कप्पिनो अनुरुद्धो''ति? अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो तं ब्रह्मपारिसज्जं गाथाय अज्झभासि–

''तेविज्जा इद्धिपत्ता च, चेतोपरियायकोविदा।
खीणासवा अरहन्तो, बहू बुद्धस्स सावका''ति॥

(संस्कृतच्छाया) प्रादुरभूत्। अथ खलु सः ब्रह्मा अन्यतरं ब्रह्मपार्षदम् आमन्त्रयत- "एहि त्वम्, मारिष! यत्रायुष्मान् महामोग्गल्लानः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मन्तं महामोग्गल्लानम् एवं वद- 'अस्ति नु खलु, मारिष! मौग्गल्लानः, अन्ये अपि तस्य भगवतः श्रावकाः एवं महाऋद्धिका एवं महानुभावा; तद्यथापि भवान् मौग्गल्लानः कस्सपः कप्पिनः अनुरूद्धः इति? "एवम्, मारिष!"इति खलु सः ब्रह्मपार्षदः तस्य ब्रह्मणः प्रतिश्रुत्य यत्रायुष्मान् महामोग्गल्लानः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मन्तं महामोद्गल्लानम् एतदवोचत्— "अस्ति नु खलु, मारिष! मौग्गल्लान! अन्ये अपि तस्य भगवतः श्रावकाः एवं महाऋद्धिका एवं महानुभावाः; तद्यथापि भवान् मौग्गल्लानः कस्सपः कप्पिनः अनुरुद्धः"इति? अथ खलु आयुष्मान् महामोग्गल्लानः तं ब्रह्मपार्षदं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''त्रिविद्याः ऋद्धिप्राप्ताश्च, चेतःपर्यायकोविदाः।
क्षीणास्रवाः अर्हन्तः, बहवः बुद्धस्य श्रावकाः"इति॥

(हिन्दी) पसारी बाहु को समेट ले वैसे ही- ब्रह्मलोक से अन्तर्हित होकर जेतवन में प्रकट हुए। तब, वह ब्रह्मा अपनी ब्रह्मपरिषद् के किसी सदस्य को बुलाकर आदेश देने लगा- ''मार्ष! तुम वहाँ जाओ, जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन विराजमान हैं, और वहाँ जाकर उनसे पूछो- ''क्या आप के समान अन्य बुद्धशिष्य भी ऐसे ही ऋद्धिमान् है, जैसे आप मौद्गल्यायन, काश्यप, कप्पिन एवं अनुरूद्ध?'' ''अच्छा श्रीमन्!'' कहकर वह ब्रह्मपार्षद आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के पास गया, तथा जाकर आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से कहा- ''मार्ष! मौद्गल्यायन ''क्या आप के समान अन्य बुद्धशिष्य भी ऐसे ही ऋद्धिमान् है, जैसे आप मौद्गल्यायन, काश्यप, कप्पिन एवं अनुरूद्ध?'' तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने उस ब्रह्मपार्षद को गाथा के माध्यम से कहा-

''भगवान् बुद्ध के ऐसे असङ्ख्य श्रावक हैं जो तीनों विद्याओं को जानने वाले, ऋद्धिसम्पन्न, परचित्त के ज्ञाता, क्षीणाश्रव एवं अर्हत् हैं।"

अथ खो सो ब्रह्मपारिसज्जो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा येन सो ब्रह्मा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं ब्रह्मानं एतदवोच– ''आयस्मा मारिस, महामोग्गल्लानो एवमाह–

''तेविज्जा इद्धिपत्ता च, चेतोपरियायकोविदा।
खीणासवा अरहन्तो, बहू बुद्धस्स सावका''ति॥

इदमवोच सो ब्रह्मपारिसज्जो। अत्तमनो च सो ब्रह्मा तस्स ब्रह्मपारिसज्जस्स भासितं अभिनन्दीति।

6.1.6. ब्रह्मलोकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं उपनिस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुब्रह्मा पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासं पच्चेकब्रह्मानं एतदवोच– ''अकालो खो ताव, मारिस, भगवन्तं पयिरुपासितुं; दिवाविहारगतो

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सः ब्रह्मपार्षदः आयुष्मतः महामौग्गल्लानस्य भाषितम् अभिनन्द्य अनुमोद्य यत्र सः ब्रह्मा तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य तं ब्रह्माणम् एतदवोचत्— "आयुष्मन् मारिष! महामौग्गल्लानः एवमाह—

''त्रिविद्याः ऋद्धिप्राप्ताश्च, चेतःपर्यायकोविदाः।
क्षीणास्रवाः अर्हन्तः, बहवः बुद्धस्य श्रावकाः"इति॥

इदमवोचत् सः ब्रह्मपार्षदः। आप्तमनश्च सः ब्रह्मा तस्य ब्रह्मपार्षदः भाषितम् अभ्यनन्दीत्"इति।

6. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् दिवाविहारगतः भवति प्रतिसल्लीनः। अथ खलु सुब्रह्मा च प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासाश्च प्रत्येकब्रह्मा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य प्रत्येकं द्वारवाहम् उपनिःश्राय अतिष्ठन्। अथ खलु सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासं प्रत्येकब्रह्माणम् एतदवोचत्— अकालः खलु तावत्, मारिष! भगवन्तं पर्युपासितुम्; दिवाविहारगतः

(हिन्दी) तब उस ब्रह्मपार्षद ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के कहे का अभिनन्दन और अनुमोदन कर जहाँ वह महा-ब्रह्मा थे वहाँ गये। जाकर उस ब्रह्मा से बोले-

''भगवान् बुद्ध के ऐसे असङ्ख्य श्रावक हैं जो तीनों विद्याओं को जानने वाले, ऋद्धिसम्पन्न, परचित्त के ज्ञाता, क्षीणाश्रव एवं अर्हत् हैं।"

उसने यह कहा ।सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उस ब्रह्मपार्षद के कथन का अभिनन्दन किया।

6. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् दिन में साधना करते हुए ध्यानमग्न होकर विराजमान थे। उसी समय सुब्रह्मा एवं शुद्धवास-नाम के प्रत्येकब्रह्मा जहाँ भगवान् साधनामग्न थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर ये दोनों द्वार के स्तम्भ के सहारे खड़े हो गये। तब सुब्रह्मा ने शुद्धावास प्रत्येकब्रह्मा को यों कहा- ''मार्ष! भगवान् के

भगवा पटिसल्लीनो च। असुको च ब्रह्मलोको इद्धो चेव फीतो च, ब्रह्मा च तत्र पमादविहारं विहरति। आयाम, मारिस, येन सो ब्रह्मलोको तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा तं ब्रह्मानं संवेजेय्यामा''ति। ''एवं मारिसा''ति खो सुद्धावासो पच्चेकब्रह्मा सुब्रह्मुनो पच्चेकब्रह्मुनो पच्चस्सोसि।

अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो...पे॰... एवमेव– भगवतो पुरतो अन्तरहिता तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहेसुं। अद्दसा खो सो ब्रह्मा ते ब्रह्मानो दूरतोव आगच्छन्ते। दिस्वान ते ब्रह्मानो एतदवोच– ''हन्द कुतो नु तुम्हे, मारिसा, आगच्छथा''ति? ''आगता खो मयं, मारिस, अम्ह तस्स भगवतो सन्तिका अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। गच्छेय्यासि पन त्वं, मारिस, तस्स भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा''ति?

एवं वुत्तो खो सो ब्रह्मा तं वचनं अनधिवासेन्तो सहस्सक्खत्तुं अत्तानं अभिनिम्मिनित्वा

(संस्कृतच्छाया) भगवान् प्रतिसल्लीनश्च। असुकः च ब्रह्मलोकः ऋद्ध चैव स्फीतः च, ब्रह्मा च तत्र प्रमादविहारं विहरति। आयाम, मारिष! यत्र सः ब्रह्मलोकः तत्रोपसमक्रमिष्यामः; उपसङ्क्रम्य तं ब्रह्माणं संविद्याम"इति। ''एवं मारिष!" इति खलु शुद्धावासः प्रत्येकब्रह्मा सुब्रह्माणं प्रत्येकब्रह्माणं प्रत्यश्रौषुः।

अथ खलु सुब्रह्मा च प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासश्च प्रत्येकब्रह्मा— तद्यथापि नाम बलवान् पुरूषः ...पे॰...एवमेव- भगवतः पुरतः अन्तर्हिताः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूवन्। अद्राक्षीत् खलु सः ब्रह्मा ते ब्रह्मणः दूरत एव आगच्छन्ति। दृष्ट्वा तान् ब्रह्मणः एतदवोचत्— ''हन्त कुतः नु यूयम्, मारिषा! आगच्छथ"इति? ''आगताः खलु वयम्, मारिष! वयं तस्य भगवतः अन्तिकम् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य। गच्छेः पुनः त्वम्, मारिष! तस्य भगवतः उपस्थानम् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य"इति?

एवमुक्ते खलु सः ब्रह्मा तं वचनम् अनधिवासयनं सहस्रकृत्वः आत्मानम् अभिनिर्मित्य

(हिन्दी) दर्शन करने का यह सुअवसर नहीं है, क्योंकि भगवान् इस समय ध्याननिष्ट हैं। हाँ अमुक ब्रह्मलोक बहुत ऋद्धिसम्पन्न एवं वैभवशाली सुना जा रहा है। किन्तु वहाँ का ब्रह्मा शास्त्रविधि के विपरीत प्रमादविहार में लगा रहता है। मार्ष! तो आओ, उस ब्रह्मलोक में चलकर उस ब्रह्मा से संलाप करें।" ''ठीक है, जैसा तुम कह रहे हो वही किया जाय।'' यह कह कर शुद्धावास प्रत्येकब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा को उत्तर दिया।

तब सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा और प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावास प्रत्येकब्रह्मा- जैसे बलवान् पुरूष...पूर्ववत्... उसी प्रकार- भगवान् के साधनास्थल में अन्तर्हित होकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हुए। वहाँ के ब्रह्मा ने उन दोनों प्रत्येकब्रह्माओं को दूर से आते हुए ही देख लिया। देखकर वह उनसे यों बोला- ''मार्ष! आप लोग कहाँ से आ रहे हैं?'' ''हम तो इस समय भगवान् बुद्ध के पास से आ रहे हैं। मार्ष! क्या आप भी उन भगवान् के दर्शन करने हेतु जाना चाहेंगे?''

सुब्रह्मानं पच्चेकब्रह्मानं एतदवोच– ''पस्ससि मे नो त्वं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं''ति? ''पस्सामि खो त्याहं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं''ति। ''सो ख्वाहं, मारिस, एवंमहिद्धिको एवंमहानुभावो कस्स अञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा उपट्ठानं गमिस्सामी''ति?

अथ खो सुब्रह्मा पच्चेकब्रह्मा द्विसहस्सक्खत्तुं अत्तानं अभिनिम्मिनित्वा तं ब्रह्मानं एतदवोच– ''पस्ससि मे नो त्वं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं''ति? ''पस्सामि खो त्याहं, मारिस, एवरूपं इद्धानुभावं''ति। ''तया च खो, मारिस, मया च स्वेव भगवा महिद्धिकतरो चेव महानुभावतरो च। गच्छेय्यासि त्वं, मारिस, तस्स भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा''ति? अथ खो सो ब्रह्मा सुब्रह्मानं पच्चेकब्रह्मानं गाथाय अज्झभासि–

''तयो सुपण्णा चतुरो च हंसा, ब्यग्घीनिसा पञ्चसता च झायिनो।
तयिदं विमानं जलते च ब्रह्मे, ओभासयं उत्तरस्सं दिसायं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) सुब्रह्माणं प्रत्येकब्रह्माणम् एतदवोचत्— ''पश्यसि मया नो त्वम्, मारिष! एवं रूपं ऋद्ध्यानुभावम्"इति? "पश्यामि खलु त्वामहम्, मारिष! एवं रूपम् ऋद्ध्यानुभावम्"इति। सः खल्वहम्, मारिष! एवंमहाऋद्धिकः एवंमहानुभावः कस्य अन्यस्य श्रमणस्य वा ब्राह्मणस्य वा उपस्थानं गमिष्यामि"इति?

अथ खलु सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा द्विसहस्रकृत्वम् आत्मानम् अभिनिर्मीय ब्रह्माणम् एतदवोचत्— ''पश्यसि मया नो त्वम्, मारिष! एवरूपम् ऋद्ध्यानुभावम्"इति। पश्यामि खलु त्वामहम्, मारिष! एवरूपम् ऋद्ध्यानुभावम्"इति। ''त्वया च खलु, मारिष! मया च स्व एव भगवतः महाऋद्धिकतरः चैव महानुभावतरः च। गच्छेः त्वम्, मारिष! तस्य भगवतः उपस्थानम् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य"इति? अथ खलु सः ब्रह्मा सुब्रह्माणं प्रत्येकब्रह्माणं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''त्रयः सुपर्णाः चत्वारश्च हंसाः, व्याघ्रीणां पञ्चशताश्च ध्यायिनः।
तदिदं विमानं ज्वलितः च ब्रह्म!, अवभासयत् उत्तरस्यां दिशायाम्"इति॥

(हिन्दी) ऐसा कहे जाने पर उस ब्रह्मा ने उन प्रत्येकब्रह्माओं के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुये अपने को हजार गुना बड़ा रूप बनाते हुए सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा को यह पूछा- ''मार्ष! देख रहे हो मेरा ऋद्धिप्रभाव''? ''हाँ, मार्ष! मैं देख तो रहा हूँ।''''तो तुम्ही बताओ, मार्ष! ऐसे ऋद्धिप्रभाव के रहते मैं किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण के पास क्यों जाऊँ?''

तब सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा ने अपने विशिष्ट ऋद्धिप्रभाव से अपने ही समान दो हजार आकृतियाँ बना कर उस ब्रह्मा से पूछा- ''मार्ष! क्या आप मेरा यह ऋद्धिप्रभाव देख रहे हैं? ''हाँ! देख रहा हूँ। मार्ष! हम और आप से भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध का ऋद्ध्यनुभाव विशेष उत्कृष्ट है। क्या आप उनके दर्शन करने हेतु उनके पास जायेगें?'' तब उस ब्रह्मा ने सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा को गाथा में कहा- ''तीन सौ गरूड़, चार सौ हंस एवं पाँच सौ बाघिनियों से युक्त मुझ ध्यानी का यह विमान, प्रदीप्त अग्नि के समान उत्तर दिशा में प्रकाशित हो रहा है।''

''किञ्चापि ते तं जलते विमानं, ओभासयं उत्तरस्सं दिसायं।
रूपे रणं दिस्वा सदा पवेधितं, तस्मा न रूपे रमती सुमेधो''ति॥

अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा तं ब्रह्मानं संवेजेत्वा तत्थेवन्तरधायिंसु। अगमासि च खो सो ब्रह्मा अपरेन समयेन भगवतो उपट्ठानं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्साति।

6.1.7. कोकालिकसुतं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुब्रह्मा पच्चेकब्रह्मा कोकालिकं भिक्खुं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अप्पमेय्यं पमिनन्तो, कोध विद्वा विकप्पये।
अप्पमेय्यं पमायिनं, निवुतं तं मञ्ञे पुथुज्जनं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''किञ्चापि ते तत् ज्वलितः विमानम्, अवभासयत् उत्तरस्यां दिशायाम्।
रूपे रणं दृष्ट्वा सदा प्रवेधितम्, तस्मात् न रूपे रमते सुमेधः"इति॥

अथ खलु सुब्रह्मा च प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासश्च प्रत्येकब्रह्मा तं ब्रह्माणां संविज्य तत्रैवान्तर्दधुः। अगमत् च खलु सः ब्रह्मा अपरेण समयेन भगवतः उपस्थानम् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य"इति।

7. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् दिवाविहारगतः भवति प्रतिसल्लीनः। अथ खलु सुब्रह्मा च प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासश्च प्रत्येकब्रह्मा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य प्रत्येकं द्वारबाहं निःश्राय अतिष्ठन्। अथ खलु सुब्रह्मा प्रत्येकब्रह्मा कोकालिकं भिक्षुमारभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''अप्रमेयं प्रमेयन्, क इह विद्वान् विकल्पयेत्।
अप्रमेयं प्रमायिनम्, निर्वृतं तत् मन्ये पृथग्जनम्"इति॥

(हिन्दी) ''आपका यह विमान उत्तर दिशा को प्रभासित करता हुआ कैसा भी क्यों न प्रज्वलित होता रहे, रूप के सदैव विनश्वर स्वभाव को मानते हुए, इसी कारण, पण्डितजन रूप में आसक्त नहीं होते।''

तदनन्तर सुब्रह्मा एवं शुद्धावास- दोनों ही प्रत्येकब्रह्मा उस ब्रह्मा को संवेग दिलाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तथा वह ब्रह्मा भी किसी दूसरे समय भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के आश्रम में उनकी सेवा हेतु गया।

7. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् दिन की साधना में विराजमान थे। तब सुब्रह्मा एवं शुद्धावास नाम के दोनों प्रत्येकब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर द्वार के स्तम्भ के पास खड़े हो गये। तब सुब्रह्माप्रत्येकब्रह्मा ने कोकालिक भिक्षु को उद्देश्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जिसके गाम्भीर्य का ज्ञान न हो उसके उस गाम्भीर्य का ज्ञान प्राप्त करने की कौन इच्छा करेगा।

6.1.8. कतमोदकतिस्ससुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सुब्रह्मा च पच्चेकब्रह्मा सुद्धावासो च पच्चेकब्रह्मा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सुद्धावासो पच्चेकब्रह्मा कतमोदकतिस्सकं भिक्खुं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''अप्पमेय्यं पमिनन्तो, कोध विद्वा विकप्पये।
अप्पमेय्यं पमायिनं, निवुतं तं मञ्ञे अकिस्सवं''ति॥

6.1.9. तुरूब्रह्मसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन कोकालिको भिक्खु आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो तुरू पच्चेकब्रह्मा अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन कोकालिको भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वेहासं ठितो कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच–

8.(संस्कृतच्छाया) श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् दिवाविहारगतो भवति प्रतिसल्लीनः। अथ खलु सुब्रह्मा च प्रत्येकब्रह्मा शुद्धावासश्च प्रत्येकब्रह्मा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य प्रत्येकं द्वारबाहं निश्राय अतिष्ठन्। अथ खलु शुद्धावासः प्रत्येकब्रह्मा कृतमोदकतिष्यं भिक्षुमारभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''अप्रमेयं प्रमेयन्, कः इह विद्वान् विकल्पयेत्।
अप्रमेयं प्रमायिनम्, निर्वृतं तत् मन्ये अक्लिस्रवम्"इति॥

9. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये कोकालिकः भिक्षुः आबाधिको भवति दुःखितः बाढग्लानः। अथ खलु तुदुप्रत्येकब्रह्मा अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र कोकालिकः भिक्षुः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य विहायसं स्थितः कोकालिकं भिक्षुम् एतदवोचत्—

(हिन्दी) जिसका पार नहीं है उसका पार लगाने का प्रयास करने वाले को मैं पृथग्जन ही समझता हूँ।''

8. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् दिन की साधना में विराजमान थे। तब सुब्रह्मा एवं शुद्धावास नाम के दोनों प्रत्येकब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर द्वार के स्तम्भ के पास खड़े हो गये। तब सुब्रह्मा एवं शुद्धावास ने कृतमोदकतिष्य भिक्षु को उद्देश्य कर भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''जिसके गाम्भीर्य का ज्ञान न हो उसके उस गाम्भीर्य का ज्ञान प्राप्त करने की कौन इच्छा करेगा। जिसका पार नहीं है उसका पार लगाने का प्रयास करने वाले को मैं मूर्ख एवं प्रज्ञा- विहीन समझता हूँ।''

9. श्रावस्ती में। उस समय कोकालिक भिक्षु किसी रोग से बहुत अधिक आक्रान्त था, दुःखी था। अतः तुदु प्रत्येकब्रह्मा उस चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ कोकाकिल भिक्षु थे वहाँ आये। आकर आकाश में खड़े होकर कोकालिक भिक्षु से बोले-

''पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना''ति।

''कोसि त्वं, आवुसो''ति? ''अहं तुरू पच्चेकब्रह्मा''ति।

''ननु त्वं, आवुसो, भगवता अनागामी ब्याकतो, अथ किञ्चरहि इधागतो? पस्स, यावञ्च ते इदं अपरद्धं''ति।

''पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥
''यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥
''अप्पमत्तको अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सापि सहापि अत्तना, अयमेव महन्ततरो कलि।
यो सुगतेसु मनं पदोसये॥

9.(संस्कृतच्छाया) ''प्रसीद, कोकालिक! सारिपुत्तमोग्गल्लानयोः चित्तम्। पेशलौ सारिपुत्तमोग्गल्लानौ" इति।''कोऽसि त्वम्, आयुष्मन्!"इति? "अहं तुरु प्रत्येकब्रह्मा"इति।

''ननु त्वम्, आयुष्मन्! भगवता अनागामी, व्याकृतः, अथ किं तर्हि इहागतः? पश्य, यावच्च त्वया इदम् अपराद्धम्"इति।

''पुरुषस्य हि जातस्य, कुठारी जायते मुखे।
यया छिन्दति आत्मानम्, बालः दुर्भाषितं भणन्॥
''यो निन्दिकं प्रशंसति, तं वा निन्दति यः प्रशंसकः।
विचिनोति मुखेन सः कालम्, कलिना सः सुखं न विन्दति॥
''अप्रमत्तोऽयं कलिः, योऽक्षेसु धनपराजयः।
सर्वस्वमपि सहापि आत्मना, अयमेव महत्तरः कलिः।
यः सुगतेषु मनः प्रदोषयेत्॥

(हिन्दी) ''कोकालिक! आयुष्मान् सारिपुत्र एवं मोग्गल्लायन के प्रति मैत्रीभाव लाओ। दोनों ही सदाचरण-युक्त हैं।'' ''आयुस तुम कौन हो?'' ''मैं तुदु प्रत्येक ब्रह्मा हूँ।'' ''अरे! तुमको तो भगवान् ने 'अनागामी' बता रखा है, फिर तुम इस संसार में क्यों आये देखो तुम्हारा यह कितना बड़ा अपराध है?''

''पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में एक कुठारी भी पैदा होती हैं, जिससे वह मूर्ख दुर्वचन बोल कर स्वयं को ही काटता रहता है।

''जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है, तथा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, मुख से वह पाप का ही अर्जन करता है। उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता।

''किसी मनुष्य का यह दुर्भाग्य तो बहुत छोटा है कि वह जूए में अपना सर्वस्व खो बैठे। हाँ उसका यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है यदि वह बुद्धों तथा बुद्धश्रावकों के प्रति अपना मन मैला करे।

''सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि।
यमरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनञ्च पणिधाय पापकं''ति॥

6.1.10. कोकालिकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– ''पापिच्छा, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लाना पापिकानं इच्छानं वसं गता''ति। एवं वुत्ते, भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच– ''मा हेवं, कोकालिक, अवच; मा हेवं, कोकालिक, अवच। पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना''ति। दुतियं पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– ''किञ्चापि मे, भन्ते, भगवा सद्धायिको पच्चयिको; अथ खो पापिच्छाव भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लाना पापिकानं इच्छानं वसं गता''ति। दुतियं पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच– ''मा हेवं, कोकालिक,

---

(संस्कृतच्छाया) ''शतं सहस्राणां न्यर्बुदानाम्, षट्त्रिंश पञ्च च अर्बुदानि।
यमार्यगर्ही निरयमुपैति, वाचः मनश्च प्रणिधाय पापकम्"इति॥

10. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु कोकालिको भिक्षुः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसंक्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्तं निषण्णः खलु कोकालिकः भिक्षो भगवन्तम् एतदवोचत्— "पापेच्छुकौ, भदन्त! शारिपुत्तमोग्गल्यायनौ, पापिकानामिच्छानां वशं गतौ"इति। एवमुक्ते भगवान् कोकालिकं भिक्षुमेतदवोचत्— मा ह्येवम्, कोकालिक! वद, मा ह्येवम्, कोकालिक! वद। प्रसीद, कोकालिक! शारिपुत्तमोग्गल्यायनयोः चित्तम्। पेशलौ शारिपुत्तमोग्गल्यायनौ"इति। द्वितीयमपि खलु कोकालिकः भिक्षुः भगवन्तम् एतदवोचत्— किञ्चापि मे, भदन्त! भगवान् श्रद्धायकः प्रत्यायकः; अथ खलु पापेच्छुकौ इव, भदन्त! शारिपुत्तमोग्गल्यायनौ पापिकानाम् इच्छानां वशं गतौ"इति। द्वितीयमपि खलु भगवान् कोकालिकं भिक्षुम् एतदवोचत्— मा ह्येवम्, कोकलिक!

(हिन्दी) ''वह आर्य पुरुष का निन्दक अपने वाणी और मन को पाप में लगाकर तो सौ, हजार, निरर्बुद, छत्तीस और पाँच अर्बुद तक निरन्तर नरक में गिर कर पचता रहता है।''

10. श्रावस्ती में। तब कोकालिक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहा पहूँचा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कोकालिक भिक्षु ने भगवान् से कहा- ''भन्ते! ये सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान पापमय इच्छा वाले हैं, पापपूर्ण इच्छाओं के वश में है।'' ऐसा सुनकर भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा- ''कोकालिक! ऐसा न कहो। उन दोनों पर श्रद्धा रखो। वे दोनों तो अत्यधिक सदाचारी है।'' दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु भगवान् से यों बोला- ''भन्ते, आप पर मेरी पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास है, परन्तु ये सारिपुत्र मोग्गल्लान तो पापमय इच्छा वाले हैं, पापपूर्ण इच्छाओं के वश में है। दूसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक

अवच; मा हेवं, कोकालिक, अवच। पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना''ति। ततियं पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– ''किञ्चापि...पे॰... इच्छानं वसं गता''ति। ततियं पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच– ''मा हेवं...पे॰...पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना''ति।

अथ खो कोकालिको भिक्खु उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अचिरपक्कन्तस्स च कोकालिकस्स भिक्खुनो सासपमत्तीहि पीळकाहि सब्बो कायो फुटो अहोसि। सासपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं, मुग्गमत्तियो हुत्वा कलायमत्तियो अहेसुं, कलायमत्तियो हुत्वा कोलट्ठिमत्तियो अहेसुं, कोलट्ठिमत्तियो हुत्वा कोलमत्तियो अहेसुं, कोलमत्तियो हुत्वा आमलकमत्तियो अहेसुं, आमलकमत्तियो हुत्वा बेलुवसलाटुकमत्तियो अहेसुं, बेलुवसलाटुकमत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं, बिल्लमत्तियो हुत्वा पभिज्जिंसु। पुब्बञ्च लोहितञ्च पग्घरिंसु। अथ खो कोकालिको भिक्खु तेनेव

(संस्कृतच्छाया) अवच; मा ह्येवम्, कोकालिक! वद। प्रसीद, कोकालिक! शारिपुत्तमोग्गल्यायनयोः चित्तम्। पेशलौ शारिपुत्तमोग्गल्यायनौ"इति। तृतीयमपि खलु कोकालिकः भिक्षुः भगवन्तम् एतदवोचत्— ''किञ्चापि....पे॰....इच्छानां वशं गतौ"इति। तृतीयमपि खलु भगवान् कोकालिकं भिक्षुम् एतदवोचत्- मा ह्येवम्,....पे॰....पेशलौ शारिपुत्तमोग्गल्यायनौ"इति।

अथ खलु कोकालिकः भिक्षुः उत्थायाऽऽसनात् भगवन्तमभिवन्द्य प्रदक्षिणां कृत्वा प्राक्रमीत्। अचिरं प्रक्रान्तस्य च कोकालिकस्य भिक्षोः सर्षपमात्रपीलकाभिः सर्वः कायः स्फुटोऽभूत् सर्षपमात्रिकाः भूत्वा मुद्गमात्रिका अभूवन्, मुद्गमात्रिकाः भूत्वा कलायमात्रिका अभूवन्, कलायमात्रिकाः भूत्वा कोलास्थिमात्रिका अभूवन्, कोलास्थिमात्रिकाः भूत्वा कोलमात्रिका अभूवन्, कोलमात्रिकाः भूत्वा आमलकमात्रिका अभूवन्, आमलकमात्रिकाः भूत्वा तरुणबिल्वमात्रिका अभूवन्, तरुणबिल्वमात्रिकाः भूत्वा बिल्वमात्रिका अभूवन्। बिल्वमात्रिकाः भूत्वा प्राभिन्दिषुः, पूयञ्च लोहितञ्च प्राघौत्सुः। अथ खलु कोकालिको भिक्षुः तेनैवाबाधेन

(हिन्दी) भिक्षु को कहा- ''कोकालिक! ऐसा न कहो। उन दोनों पर श्रद्धा रखो। वे दोनों तो अत्यधिक सदाचारी है। तीसरी बार भी कोकालिक भिक्षु भगवान् से यों बोला- ''भन्ते, आप पर...पूर्ववत... पापपूर्ण इच्छाओं के वश में है। तीसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को कहा- ''कोकालिक! ऐसा न कहो। उन दोनों पर श्रद्धा रखो। वे दोनों तो अत्यधिक सदाचारी हैं।

तब कोकालिक भिक्खु आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहाँ से चला गया। जाने के कुछ समय बाद कोकालिक भिक्षु के समस्त शरीर में सरसों जितने बड़े फोड़े निकल आये। वे कुछ समय बाद बढ़कर सरसों भर के होकर मूँग भर के हो गये, मटर भर के हो गये, कोलट्ठि भर के होगये, वेर भर के हो गये, आँवले भर के हो गये, छोटे बेल भर के हो गये, बेल भर के हो गये, बेल भर जितने बड़े होकर फूट गये। उनमें से असीम पूय एवं दुर्गन्धयुक्त रक्त निकला। और इसके बाद कोकालिक इसी रोग के परिपाक से

आबाधेन कालमकासि। कालङ्कतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच– ''कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो। कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा''ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायीति।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि– ''इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो

(संस्कृतच्छाया) कालमकार्षीत्। कालङ्कृतश्च कोकालिको भिक्षुः पद्मनिरयमुपापादि सारिपुत्त-मोग्गल्लानयोः चित्तमाहत्य।

अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्तं स्थितः खलु ब्रह्मा सहम्पतिः भगवन्तम् एतदवोचत्— कोकालिकः, भदन्त! भिक्षुः कालंकृतः। कालंकृतः च, भदन्त! कोकालिकः भिक्षुः पद्मं निरयम् उत्पन्नः शारिपुत्रमौद्गल्यायनयोः चित्तमाहत्य''इति। इदमवोचत् ब्रह्मा सहम्पतिः, इदम् उक्त्वा भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

अथ खलु भगवान् तस्याः रात्र्या अत्ययेन भिक्षून् आमन्त्रयत— ''इमाम्, भिक्षवः! रात्रिं ब्रह्मा सहम्पतिः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं जेतवनम् अवभास्य यत्राहं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्तं स्थितः

(हिन्दी) मरणभाव को प्राप्त हो गया। यों वह मरणभाव प्राप्त कर आर्य सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान के प्रति द्वेष रखने के कारण नरक में जा गिरा।

तब ब्रह्मा सहम्पति उस चान्दनी रात्रि में....पूर्ववत्....भगवान् के पास आकर यों बोले- "भन्ते! कोकालिक भिक्षु का देहपात हो गया है। भन्ते! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति अपने मन में द्वेष रखने के कारण कोकालिक भिक्षु मर कर पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है। यह कहकर वह ब्रह्मा सहम्पति भगवान् को प्रणाम कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब भगवान् ने रात्रि के बीतने पर भिक्षुओं को अपने पास बुलाया- "भिक्षुओ! ब्रह्मा सहम्पति उस चान्दनी रात्रि में समस्त जेतवन को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् थे वहा पहुँचा और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ ब्रह्मा सहम्पति मुझसे यों कहे- 'भन्ते! कोकालिक भिक्षु का

खो, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति मं एतदवोच– 'कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो। कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा'ति। इदमवोच, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी''ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच– ''कीवदीघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये आयुप्पमाणं''ति? ''दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निरये आयुप्पमाणं। तं न सुकरं सङ्खातुं– एत्तकानि वस्सानि इति वा, एत्तकानि वस्ससतानि इति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानि इति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानि इति वा''ति। ''सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं''ति? ''सक्का, भिक्खू''ति भगवा अवोच– ''सेय्यथापि, भिक्खु वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो। ततो पुरिसो वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन एकमेकं तिलं उद्धरेय्य; खिप्पतरं खो सो, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव एको अब्बुदो निरयो।

(संस्कृतच्छाया) खलु भिक्षवः! ब्रह्मा सहम्पतिः माम् एतदवोचत्— कोकालिक! भदन्त! भिक्षुः कालंकृतः। कालंकृतश्च, भदन्त! कोकालिकः भिक्षुः पद्मं निरयं उत्पन्नः शारिपुत्तमोग्गल्यायनयोः चित्तमाहत्य"इति। इदमवोचत् भिक्षवः, ब्रह्माः सहम्पति, इदम् उक्त्वा भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

एवम् उक्ते, अन्यतरः भिक्षुः भगवन्तम् एतदवोचत्— ''कियत् दीर्घं नु खलु, भदन्त! पद्मे निरये आयुप्रमाणम्''इति?" दीर्घं खलु, भिक्षो पद्मे निरये आयुप्रमाणम्, तं न सुकरं संख्यातुम् इयन्ति वर्षाणीति वा, इयन्ति वर्षशतानीति वा, इयन्ति वर्षसहस्राणीति वा इयन्ति वर्षशतसहस्राणीति वा"इति। ''शक्या पुनः, भदन्त! उपमा कर्तुम्"इति? ''शक्या, भिक्षवः!"इति भगवान् अवोचत्—''तद्यथापि, भिक्षुः विंशतिखारिकः कौशलकः तिलवाहः। ततः पुरुषः वर्षशताय वर्षशताय अत्ययेन एकमेकं तिलमुद्धरेत्, क्षिप्रतरं खलु स भिक्षुः, विंशतिखारिकः कोशलकः तिलवाहः, अनेनोपक्रमेण परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत्, न त्वेवं एकोऽर्बुदो निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति-अर्बुदाः निरया एवम् एको निरर्बुदो निरयः।

(हिन्दी) देहपात हो गया है तथा वह 'पद्म' नामक नरक लोक में सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान के प्रति द्वेष रखने के कारण जा गिरा ।' "भिक्षुओ! यों कहकर ब्रह्मा सहम्पति मेरा प्रणाम कर वहीं अन्तर्धान हो गये।

"ऐसा कहने पर किसी अन्य भिक्षु ने प्रश्न किया- "भन्ते! इस पद्म नरक में गिरने वाले की कितनी लम्बी आयु होती है? भगवान् ने बताया-"भिक्षुओ! पद्म नरक में गिरने वाले की आयु बहुत लम्बी होती है। उस आयु की गणना वर्षो में नहीं की जा सकती है।" भन्ते! इसकी कोई उपमा की जा सकती है भगवान् बोले- की जा सकती है। "भन्ते! जैसे कोशल प्रदेश के माप से बीस खारी तिल का कोई भार हो। तब कोई पुरूष सौ वर्ष, हजार वर्ष एक एक तिल का दाना निकाल ले। भिक्षुओ! तो कोसल देश के माप से वह बीस

सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया, एवमेको निरब्बुदनिरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति निरब्बुदा निरया, एवमेको अबबो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अबबा निरया, एवमेको अटटो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अटटा निरया, एवमेको अहहो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अहहा निरया, एवमेको कुमुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति कुमुदा निरया, एवमेको सोगन्धिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति सोगन्धिका निरया, एवमेको उप्पलनिरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति उप्पला निरया, एवमेको पुण्डरिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति पुण्डरिका निरया, एवमेको पदुमो निरयो। पदुमे पन, भिक्खु, निरये कोकालिको भिक्खु उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा''ति।

इदमवोच भगवा, इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था–

''पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे।
यायछिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥

(संस्कृतच्छाया) तद्यथापि, भिक्षो! विंशति अर्बुदाः निरयाः एवमेकोऽर्बुदो निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति अर्बुदाः निरयाः एवमेकोऽहहो निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति-अहहाः निरया एवमेकोऽटटो निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति अटटाः निरया एवमेको कुमुदो निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति-कुमुदाः निरयाः एकमेको सौगन्धिको निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति-सौगन्धिक निरया एवमको उप्पलको निरयः। तद्यथापि, भिक्षो! विंशति-उप्पलकाः निरया एवमेको पुण्डरीको निरयः। तद्यथापि भिक्षो! विंशतिपुण्डरीकाः निरया एवमेको पद्मो निरयः। पद्मं पुनः भिक्षो! निरये कोकालिको भिक्षुः उपपन्नः शारिपुत्तमोग्गल्यायनयोः चित्तमाहत्य"इति।

इदमवोचम् भगवान्, इदमुक्त्वा सुगतोऽथापरमेतदवोचत् शास्ता—

''पुरुषस्य हि जातस्य, कुठारी जायते मुखे।
यया छिनत्ति आत्मानम्, बालः दुर्भाषितं भणन्॥

(हिन्दी) खारी तिल का भार इस क्रम से शीघ्र ही घट कर समाप्त हो जायेगा। इतने से एक अर्बुद नरक समाप्त नहीं होता। भिक्षु! बीस अर्बुद का एक निरर्बुद नरक होता है। बीस निरर्बुद का एक अबब नरक होता है। बीस अबब का एक अटट तथा बीस अटट का एक अहह और बीस अहह का एक कुमुद होता है। बीस कुमुद का एक सौगन्धिक नरक होता है। बीस सौगन्धिक का एक उत्पल नरक होता है। बीस उत्पल का एक पुण्डरीक नरक होता है। बीस पुण्डरीक नरकों का एक पद्म नरक होता है। हे भिक्षु! उसी पद्म नरक में यह कोकालिक भिक्षु उत्पन्न हुआ है, सारिपुत्र एवं मोग्गल्लान के प्रति द्वेष रखता हुआ।"

भगवान् ने यह कहा। इतना कहकर बुद्ध और भी बोले-

"पुरुष के जन्म के साथ ही उसके मुख में एक कुठारी भी पैदा होती हैं, जिससे वह मूर्ख दुर्वचन बोल कर स्वयं को ही काटता रहता है।

''यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥
''अप्पमत्तको अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सापि सहापि अत्तना, अयमेव महन्तरो कलि।
यो सुगतेसु मनं पदोसये॥
''सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंसति पञ्च च अब्बुदानि।
यमरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनञ्च पणिधाय पापकं''ति॥

पठमो वग्गो।

तस्सुद्दानं–

आयाचनं गारवो ब्रह्मदेवो, बको च ब्रह्मा अपरा च दिट्।
पमादकोकालिकतिस्सको च, तुदु च ब्रह्मा अपरो च कोकालिको॥

(संस्कृतच्छाया) ''यो निन्दकं प्रशंसति, तं वा निन्दति यः प्रशंसकः।
विचिनोति मुखेन सः कालम्, कलिना सः सुखं न विन्दति॥
''अप्रमत्तोऽयं कलिः, योऽक्षेसु धनपराजयः।
सर्वस्वमपि सहापि आत्मना, अयमेव महत्तरः कलिः।
यः सुगतेषु मनः प्रदोषयेत्॥
''शतं सहस्राणां निरर्बुदानाम्, षट्त्रिंशच्च पञ्च च अर्बुदानि।
यमार्यगर्हीं निरयमुपैति, वाचं मनश्च प्रणिधाय पापकम्"इति॥

प्रथमः वर्गः।

तस्योद्दानम्–

आयाचनं गौरवः ब्रह्मदेवः, बकश्च ब्रह्मा अपरा च दृष्टि।
प्रमादकोकालिकतिष्यकश्च, तुरु च ब्रह्मा अपरश्च कोकालिकः इति॥

(हिन्दी) ''जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है, तथा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, मुख से वह पाप का ही अर्जन करता है। उस पाप के कारण उसे कभी सुख नहीं मिलता।

''किसी मनुष्य का यह दुर्भाग्य तो बहुत छोटा है कि वह जूए में अपना सर्वस्व खो बैठे। हाँ उसका यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है यदि वह बुद्धों तथा बुद्धश्रावकों के प्रति अपना मन मैला करे।

''वह आर्य पुरुष का निन्दक अपने वाणी और मन को पाप में लगाकर तो सौ, हजार, निरर्बुद, छत्तीस और पाँच अर्बुद तक निरन्तर नरक में गिर कर पचता रहता है।''

इस वर्ग उदान- इस वर्ग में ब्रह्मयाचनसुत्त गौरवसुत्त ब्रह्मदेवसुत्त वकब्रह्मसुत्त अन्यतरब्रह्मसुत्त ब्रह्मालोकसुत्त कोकालिकसुत्त कृतमोदकतिष्यसुत्त तुदुब्रह्मसुत्त अपरकोकालिकसुत्त हैं।

2. दुतियवग्गो

6.2.1. सनङ्कुमारसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति सप्पिनीतीरे। अथ खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं सप्पिनीतीरं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं, ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे''ति॥

इदमवोच ब्रह्मा सनङ्कुमारो। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो ब्रह्मा सनङ्कुमारो ''समनुञ्ञो मे सत्था''ति भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायीति।

6.2.2. देवदत्तसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते अचिरपक्कन्ते

1. (संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजृगहे विहरति सर्पिणीतीरे। अथ खलु ब्रह्मा सनत्कुमारः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं सर्पिणीतीरम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु ब्रह्मा सनत्कुमारः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

"क्षत्रियः श्रेष्ठः जनेऽस्मिन्, ये गोत्रप्रतिसारिणः।
विद्याचरणसम्पन्नः, सः श्रेष्ठः देवमनुष्येषु"इति॥

इदमवोचत् ब्रह्मा सनत्कुमारः। समनोज्ञः शास्ता अभूत्। अथ खलु ब्रह्मा सनत्कुमारः "समनोज्ञः मे शास्ता"इति भगवन्तम् अभिवाद्य प्रदक्षिणां कृत्वा तत्रैवान्तर्दधौ इति।

2. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजृगहे विहरति गृध्रकूटे पर्वते अचिरप्रक्रान्ते

1.(हिन्दी) ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् राजगृहनगर के सर्पिणी नदी के तट पर विहार कर रहे थे। तब सनत्कुमार ब्रह्मा चान्दनी रात्रि में सर्पिणी नदी के समस्त तट को आलोकित करता हुआ जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हुआ वह ब्रह्मासनत्कुमार भगवान् से यह गाथा बोला-

''जैसे जाति का विचार करने वालों के लिये मनुष्यों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं, विद्या एवं आचरण से सम्पन्न वह देवताओं एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। सनत्कुमार ब्रह्मा ने यह कहा। बुद्ध भी इससे सहमत हुये। तब वह सनत्कुमार ब्रह्मा 'भगवान् मुझसे सहमत हैं'- यह जानकर, भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

2. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर, देवदत्त के कुछ समय पहले

देवदत्ते। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं गिज्झकूटं पब्बतं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति देवदत्तं आरब्भ भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''फलं वे कदलिं हन्ति, फलं वेळुं फलं नळं।
सक्कारो कापुरिसं हन्ति, गब्भो अस्सतरिं यथा''ति॥

6.2.3. अन्धकविन्दसुत्तं

एकं समयं भगवा मागधेसु विहरति अन्धकविन्दे। तेन खो पन समयेन भगवा रत्तन्धकारतिमिसायं अब्भोकासे निसिन्नो होति, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं अन्धकविन्दं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

(संस्कृतच्छाया) देवदत्ते। अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पं गृध्रकूटपर्वतम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु ब्रह्मा सहम्पतिः देवदत्तम् आरभ्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

"फलं वै कदलीं हन्ति, फलं वेणुं फलं नलम्।
सत्कारः कापुरुषं हन्ति, गर्भः अश्वतरीं यथा"इति॥

3. एकस्मिन् समये भगवान् मगधेषु विहरति अन्धकविन्देषु। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्र्यन्धकारतमिस्रायाम् अभ्यवकाशे निषण्णः भवति, देवश्च एकमेकं स्पर्शायते। अथ खलु ब्रह्मा सहम्पतिः अभिकान्तायां रात्रौ अभिकान्तवर्णः केवलकल्पम् अन्धकविन्दम् अवभास्य यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितः खलु ब्रह्मा सहम्पतिः भगवतः अन्तिके इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

(हिन्दी) वहाँ से चले जाने के बाद, विहार कर रहे थे। तब ब्रह्मा सहम्पति उस चाँदनी रात्रि में समस्त गृध्रकूट को आलोकित करते हुए भगवान् के पास आये। आकर उन्हें प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े हुए वे देवदत्त को उद्देश्य कर यों बोले-

''केले का अपना फल ही उस केले के वृक्ष को नष्ट कर देता है। वेणु (वांस) का फल भी वेणु को तथा नरकट का फल नरकट को नष्ट कर देता है। इसी तरह दुर्जन पुरुष को अपना सत्कार ही नष्ट कर देता है, जैसे खच्चरी को उसका अपना गर्भ नष्ट कर देता है।''

3. एक समय भगवान् मगध के अन्धकविन्द में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् अन्धेरी रात्रि में

''सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, चरेय्य संयोजनविप्पमोक्खा।
सचे रतिं नाधिगच्छेय्य तत्थ, सङ्घे वसे रक्खितत्तो सतीमा॥
''कुलाकुलं पिण्डिकाय चरन्तो, इन्द्रियगुत्तो निपको सतीमा।
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, भया पमुत्तो अभये विमुत्तो॥
''यत्थ भेरवा सरीसपा, विज्जु सञ्चरति थनयति देवो।
अन्धकारतिमिसाय रत्तिया, निसीदि तत्थ भिक्खु विगतलोमहंसो॥
''इदं हि जातु मे दिट्ठं, नयिदं इतिहीतिहं।
एकस्मिं ब्रह्मचरियस्मिं, सहस्सं मच्चुहायिनं॥
''भिय्यो पञ्चसता सेक्खा, दसा च दसधा दस।
सब्बे सोतसमापन्ना, अतिरच्छानगामिनो॥

(संस्कृतच्छाया) ''सेवेत प्रान्तानि शयनासनानि, चरेत् संयोजनविप्रमुक्तः।
सचेत् रतिं नाधिगच्छेत् तत्र, संघे वसेत् रक्षितात्मा स्मृतिमान्॥
''कुलात् कुलं पिण्डिकाय चरन्, इन्द्रियगुप्तः निपुणः स्मृतिमान्।
सेवेत प्रान्तानि शयनासनानि, भयात् प्रमुक्तः अभये विमुक्तः॥
''यत्र भैरवाः सरीसृपाः, विद्युतं संचरति स्तनयति देवः।
अन्धकारतमिस्रायां रात्रौ, न्यसीदत् तत्र भिक्षुः विगतलोमहर्षः॥
''इदं हि जातु मे दृष्टम्, नेदम् ऐतिह्यम्।
एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये, सहस्रं मृत्युहायिनम्॥
''भूयः पञ्चशताः शैक्ष्याः, दशाः च दशधा दश।
सर्वे स्रोतसमापन्नाः, अतिरश्चानगामिनः॥

(हिन्दी) खुले आकाश के नीचे विराजमान थे। वर्षा की कुछ बूँदाबाँदी भी हो रही थी। उसी समय ब्रह्मा....सहम्पति...पूर्ववत्....भगवान् के सम्मुख ये गाथाएँ बोले-

''साधक को चाहिये कि दूर, एकान्त स्थान में वास करे तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्त जीवन बितावे। यदि वहाँ उसका मन न लगे तो सङ्घ के साथ रहता हुआ संयत एवं स्मृतियुक्त जीवन व्यतीत करे।

''वह घर-घर भिक्षाटन करते हुये, संयतेन्द्रिय, ज्ञानी, स्मृतिमान् रहता हुआ जनसमाज से दूर एकान्त स्थानों में रहता हुआ भय से मुक्त होकर निर्भय जीवन बितावे।

''जहाँ भयानक साँप बिच्छु हों, बिजली कड़कती हो, मेघ गर्जते हो, काली अन्धकारमय रात्रि हो, ऐसे स्थानों पर साधक भिक्षु को शान्तचित्त होकर, निर्भय होकर साधना में रत रहना चाहिये॥

''यह इतिहास में कही सुनी बात नहीं है, अपितु मैने अपनी आँखों से देखा है कि एक ही धर्मसाधना में हजारों साधक इस मृत्यु को पार कर गये है। 'पाँच सौ शैक्ष्यों से अधिक तथा दश-दश बार सौ हजार स्रोतापन्न इस धर्मसाधना में लगे हुए हैं, इन सभी का तिरश्चीन योनि में जाना तो असम्भ है।

''अथायं इतरा पजा, पुञ्ञभागाति मे मनो।
सङ्खातुं नोपि सक्कोमि, मुसावादस्स ओत्तपं''ति ॥

6.2.4. अरुणवतीसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति...पे॰... तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा अहोसि अरुणवा नाम। रञ्ञो खो पन, भिक्खवे, अरुणवतो अरुणवती नाम राजधानी अहोसि। अरुणवतिं खो पन, भिक्खवे, राजधानिं सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उपनिस्साय विहासि। सिखिस्स खो पन, भिक्खवे, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स अभिभूसम्भवं नाम सावकयुगं अहोसि अग्गं भद्दयुगं। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभुं भिक्खुं आमन्तेसि– 'आयाम, ब्राह्मण, येन अञ्ञतरो ब्रह्मलोको तेनुपसङ्कमिस्साम, याव भत्तस्स कालो भविस्सती'ति।

(संस्कृतच्छाया) ''अथ इयम् इतरा प्रजा, पुण्यभागा इति मे मनः।
सङ्ख्यातुं न अपि शक्नोमि, मृषावादस्य अवत्रपम्"इति॥

4. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति.....पे॰.....तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत—"भिक्षवः!"इति। "भदन्त!"इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

भूतपूर्वम्, भिक्षवः! राजा अभूत् अरुणवान् नाम। राज्ञः खलु पुनः, भिक्षवः! अरुणवतः अरुणवती नाम राजधानी अभूत्। अरुणवतीं खलु पुनः, भिक्षवः! राजधानीं शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः उपनिःश्राय व्यहार्षीत्। शिखिनः खलु पुनः, भिक्षवः! भगवतः अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य अभिभूसम्भवं नाम श्रावकयुगम् अभूत् अग्रं भद्रयुगम्। अथ खलु, भिक्षवः! शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः अभिभू भिक्षुम् आमन्त्रयत— "आयाहि, ब्राह्मण! यत्र अन्यतरः ब्रह्मलोकः तत्रोपसमक्रमिष्यामः, यावत् भक्तस्य कालः भविष्यति"इति।

(हिन्दी) ''अन्य जो अवशिष्ट हैं उन्हें भी मैं अत्यधिक पुण्यवान् मानता हूँ। कहीं एकान्ततः ठीक सङ्ख्या में न गिने जाने के कारण, असत्यभाषण का आरोप न लग जाय, इसलिये उनकी गणना नहीं कर रहा हूँ।''

4. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती में... पूर्ववत्....भदन्त! ऐसा कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् ने ऐसा कहा-

''भिक्षुओ! पहले कभी अरुणवान् नामक राजा हुआ था। उस अरुणवान् की राजधानी का नाम अरुणवती था। इसी अरुणवती में भगवान् शिखी सम्यक्सम्बुद्ध भी विहार कर रहे थे। इन शिखी बुद्ध के दो अग्रश्रावक थे, जिनमें एक का नाम अभिभू एवं दूसरे का नाम था सम्भव। तब भिक्षुओं! शिखी भगवान् ने

'एवं, भन्ते'ति खो भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पच्चस्सोसि। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभू च भिक्खु– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– अरुणवतिया राजधानिया अन्तरहिता तस्मिं ब्रह्मलोके पातुरहेसुं।

''अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभुं भिक्खुं आमन्तेसि– 'पटिभातु, ब्राह्मण, तं ब्रह्मुनो च ब्रह्मपरिसाय च ब्रह्मपारिसज्जानञ्च धम्मी कथा'ति। 'एवं, भन्ते'ति खो, भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा, ब्रह्मानञ्च ब्रह्मपरिसञ्च ब्रह्मपारिसज्जे च धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। तत्र सुदं, भिक्खवे, ब्रह्मा च ब्रह्मपरिसा च ब्रह्मपारिसज्जा च उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति– 'अच्छरियं वत , भो, अब्भुतं वत भो, कथञ्हि नाम सत्थरि सम्मुखीभूते सावको धम्मं देसेस्सती''ति!

''अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभुं भिक्खुं आमन्तेसि–

(संस्कृतच्छाया) "एवम्, भदन्त!"इति खलु, भिक्षवः! अभिभूः भिक्षुः शिखिनः भगवतः अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य प्रत्यश्रौषीत्। अथ खलु, भिक्षवः! शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः अभिभूश्च भिक्षुः— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— अरुणवत्यां राजधान्याम् अन्तर्हितः तस्मिन् ब्रह्मलोके प्रादुरभूत्।

अथ खलु भिक्षवः! शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः अभिभुवं भिक्षुम् आमन्त्रयत— प्रतिभातु, ब्राह्मण! तान् ब्रह्माणः च ब्रह्मपरिषदि च ब्रह्मपार्षदश्च धर्मी कथा'इति। "एवं भदन्त!"इति खलु, भिक्षवः! अभिभूः भिक्षुः शिखिनः भगवतः अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य प्रतिश्रुत्य ब्रह्माणं च ब्रह्मपरिषदं च ब्रह्मपार्षदश्च धार्मिकया कथया असंदर्शयत् समादापयत् समुत्तेजयत् सम्प्राहर्षयत्। तत्र स्वित्, भिक्षवः! ब्रह्मा च ब्रह्मपरिषद् च ब्रह्मपार्षदश्च उद्ध्यायन्ति क्षयन्ति विपाचयन्ति- आश्चर्यम्, वत, भो, अद्भुतं वत भो, कथं हि नाम शास्तरि सम्मुखीभूते श्रावकः धर्मं देक्ष्यति"इति।

अथ खलु, भिक्षवः! शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः अभिभुवं भिक्षुम् आमन्त्रयत—

(हिन्दी) अभिभू भिक्षु को बुला कर कहा- "आओ, ब्राह्मण! किसी ब्रह्मलोक में चलें। इतने में भिक्षा का समय भी हो जायेगा।" तब भगवान्... पूर्ववत्...शिखी अरूणवती में अन्तर्हित होकर ब्रह्मलोक में जाकर प्रकट हुए।

भिक्षुओ! "तब भगवान् शिखी ने अपने शिष्य अभिभू से कहा- हे ब्राह्मण! तुमको इन ब्रह्मा तथा इस ब्रह्मपरिषद में बैठे पार्षदों को धर्मकथा सुनानी है।' भिक्षुओ! 'ठीक है, भन्ते', कहकर उस अभिभू ने ब्रह्मा एवं उस परिषद् में बैठे ब्रह्मपार्षदों को धार्मिक कथा सुनाकर धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं उत्साहित किया। भिक्षुओ! वहाँ बैठे कुछ पार्षदों ने यह विचार प्रकट करते हुए कि गुरू के विद्यमान रहते शिष्य क्यों कथा कर रहा है।

'उज्झायन्ति खो ते, ब्राह्मण, ब्रह्मा च ब्रह्मपरिसा च ब्रह्मपारिसज्जा च– अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो, कथञ्हि नाम सत्थरि सम्मुखीभूते सावको धम्मं देसेस्सतीति! तेन हि त्वं ब्राह्मण, भिय्योसोमत्ताय ब्रह्मानञ्च ब्रह्मपरिसञ्च ब्रह्मपारिसज्जे च संवेजेही'ति।

एवं, भन्ते'ति खो, भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा दिस्समानेनपि कायेन धम्मं देसेसि, अदिस्समानेनपि कायेन धम्मं देसेसि, दिस्समानेनपि हेट्ठिमेन उपड्ढकायेन अदिस्समानेन उपरिमेन उपड्ढकायेन धम्मं देसेसि, दिस्समानेनपि उपरिमेन उपड्ढकायेन अदिस्समानेन हेट्ठिमेन उपड्ढकायेन धम्मं देसेसि। तत्र सुदं, भिक्खवे, ब्रह्मा च ब्रह्मपरिसा च ब्रह्मपारिसज्जा च अच्छरियब्भुतचित्तजाता अहेसुं– 'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो, समणस्स महिद्धिकता महानुभावता''ति! ''अथ खो अभिभू भिक्खु सिखिं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच– 'अभिजानामि ख्वाहं, भन्ते, भिक्खुसङ्घस्स मज्झे एवरूपिं वाचं

(संस्कृतच्छाया) उद्ध्यायन्ति खलु ते, ब्राह्मण! ब्रह्मा च ब्रह्मपरिषद् च ब्रह्मपार्षदश्च- आश्चर्यम्, वत, भो, अद्भुतं वत भो, कथं हि नाम शास्तरि सम्मुखीभूते श्रावकः धर्मं देक्ष्यति"इति। तस्मिन् हि त्वं ब्राह्मण! भूयः सोमत्ताय ब्रह्माणं च ब्रह्मपरिषदं च ब्रह्मपार्षदश्च संवेजेहि"इति।

"एवम्, भदन्त!" इति खलु, भिक्षवः! अभिभूः भिक्षुः शिखिनः भगवतः अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य प्रतिश्रुत्य दृश्यमानेनापि कायेन धर्मं दिदेश, अदृश्यमानेनापि कायेन धर्मं दिदेश, दृश्यमानेनापि अधस्तेन उपार्धकायेन अदृश्यमानेन उपरिम अनेन उपार्धकायेन धर्मं दिदेश, दृश्यमानेनापि उपरिम अनेन उपार्धकायेन अदृश्यमानेन अधस्तेन उपार्धकायेन धर्मं दिदेश। तत्र स्विद्, भिक्षवः! ब्रह्मा च ब्रह्मपरिषद् च ब्रह्मपार्षदश्च आश्चर्यमद्भुतं चित्तजाता अभूवन्– 'आश्चर्यम्, वत, भो, अद्भुतं वत, भो, श्रमणस्य महाऋद्धिकता महानुभावता"इति!

अथ खलु अभिभूः भिक्षुः शिखिनं भगवन्तम् अर्हन्तं सम्यक्सम्बुद्धम् एतदवोचत्— अभिजानामि खल्वहम्, भदन्त! भिक्षुसङ्घस्य मध्ये एवं रूपां वाचं

(हिन्दी) भिक्षुओ! तब भगवान् शिखी ने अभिभू भिक्षु से कहा- हे ब्राह्मण! ब्रह्मा और ब्रह्मसभासद चिढ़ गये और बुरा मानने लगे हैं- आश्चर्य है, अद्भुत है, कैसी बात है कि शास्ता के सम्मुख श्रावक उपदेश करे। इस लिये तुम ब्रह्मण! इन्हे कुछ अच्छी तरह संवेग दिला दो।'

''भिक्षुओ! 'बहुत अच्छा, भन्ते' कह, वह अभिभु भिक्षु भगवान् शिखी को उत्तर दे, अपने ऊपर के दृश्यमान शरीर से भी धर्मकथा करने लगे, अदृश्यमान शरीर से भी धर्मकथा करने लगे, नीचे के आधे दृश्यमान शरीर से भी धर्मकथा करने लगे, नीचे आधे अदृश्यमान शरीर से भी धर्मकथा करने लगे। भिक्षुओ! तब ब्रह्मा और ब्रह्मसभासद सभी आश्चर्य तथा अद्भुत से भर गये- आश्चर्य है, तथा अद्भुत है! श्रमण के ऋद्धि-बल और प्रताप!! तब अभिभू भिक्षु भगवान् शिखी से बोला- भन्ते! इस ब्रह्मलोक में रह भिक्षु संघ में कह रहा हूँ वैसे ही कहते हुये हजार लोकों को अपना स्वर सुना रहा हूँ।

भासिता– पहोमि ख्वाहं आवुसो, ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेतुं'ति। एतस्स, ब्राह्मण, कालो; यं त्वं, ब्राह्मण, ब्रह्मलोके ठितो सहस्सिलोकधातुं सरेन विञ्ञापेय्यासी'ति। 'एवं, भन्ते'ति खो, भिक्खवे, अभिभू भिक्खु सिखिस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पटिस्सुत्वा ब्रह्मलोके ठितो इमा गाथायो अभासि–

''आरम्भथ निक्कमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥
''यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती''ति॥

''अथ खो, भिक्खवे, सिखी च भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अभिभू च भिक्खु ब्रह्मानञ्च ब्रह्मपरिसञ्च ब्रह्मपारिसज्जे च संवेजेत्वा– सेय्यथापि नाम...पे॰...तस्मिं ब्रह्मलोके अन्तरहिता अरुणवतिया राजधानिया पातुरहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सिखी भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो

(संस्कृतच्छाया) भाषिता— प्रभवामि खल्वहम् आयुषः! ब्रह्मलोके स्थितः सहस्रलोकधातुं स्वरेण विज्ञापयितुम्"इति। एतस्य ब्राह्मण! कालः, एतस्य त्वम्, ब्राह्मण! ब्रह्मलोके स्थितः सहस्रलोकधातुं स्वरेण विज्ञापन्ये"इति। "एवम्, भदन्त!" इति खलु, भिक्षवः! अभिभूः भिक्षुः शिखिनः भगवतः अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य प्रतिश्रुत्य ब्रह्मलोके स्थितः इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

"आरभ्येत निष्क्रमेत्, युञ्ज्यात् बुद्धशासने।
धुनुत मृत्योः सेनाम्, नलागारम् इव कुञ्जरः॥
"योऽस्मिन् धर्मविनये, अप्रमत्तः विहरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारम्, दुःखस्यान्तं करिष्यति"इति॥

अथ खलु, भिक्षवः! शिखी च भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः अभिभूश्च भिक्षुः ब्रह्माणं च ब्रह्मपरिषदं च ब्रह्मपार्षदं च संविज्य- तद्यथापि नाम....पे॰....तस्मिन् ब्रह्मलोके अन्तर्हितायाम् अरुणवत्यां राजधान्यां प्रादुरभूत्। अथ खलु, भिक्षवः! शिखी भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः

(हिन्दी) 'तो ब्राह्मण! वैसी कथा सुनाने का यही अवसर है। तू उस तरह से यहाँ बैठकर ही हजारों लोकधातुओं को धर्मश्रमण करा दे।' भिक्षुओ! 'भन्ते, बहुत अच्छा' कह अभिभू भिक्षु ने, भगवान् शिखी को उत्तर दे ब्रह्मलोक में खड़े-खड़े इन गाथाओं को कहा-

''उत्साहसम्पन्न बनो, गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जाओ। बुद्धशासन के पालन में मन लगाओ। मृत्यु सेना को इस तरह नष्ट भ्रष्ट कर दो जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी तृण की झोपड़ी को नष्ट भ्रष्ट कर देती है।

जो इस धर्मविनय में सावधानीपूर्वक साधनारत रहेगा वह इस जन्म मरण को छोड़कर अपने दुःखों का एक न एक दिन अन्त कर लेगा।

''तब भगवान् शिखी अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथा अभिभू भिक्षु ब्रह्मा एवं उसके पार्षदों को धर्म के प्रति

भिक्खू आमन्तेसि– 'अस्सुत्थ नो, तुम्हे, भिक्खवे, अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा'ति? 'अस्सुम्ह खो मयं, भन्ते, अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा'ति। 'यथा कथं पन तुम्हे, भिक्खवे, अस्सुत्थ अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा'''ति? एवं खो मयं, भन्ते, अस्सुम्ह अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्स–

''आरम्भथ निक्कमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥
''यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती''ति॥

'''एवं खो मयं, भन्ते, अस्सुम्ह अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो

(संस्कृतच्छाया) भिक्षवः आमन्त्रयत— अश्रौष्ट नः, यूयम्, भिक्षवः! अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः भाषमाणस्य" इति? अश्रौष्म खलु वयम्, भदन्त! अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः भाषमाणस्य" इति— यथा कथं पुनः यूयम्, भिक्षवः! अश्रौष्ट अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः भाषमाणस्य"इति? एवं खलु वयम्, भदन्त! अश्रौष्म, अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः भाषमाणस्य-

"आरभ्येत निष्क्रमेत्, युञ्ज्यात् बुद्धशासने।
धुनुत मृत्योः सेनाम्, नलागारम् इव कुञ्जरः॥
"योऽस्मिन् धर्मविनये, अप्रमत्तः विहरिष्यति।
प्रहाय जातिसंसारम्, दुःखस्यान्तं करिष्यति"इति॥

'''एवं खलु वयम्, भदन्त! अश्रौष्म अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः

(हिन्दी) संवेग दिलाकर. पूर्ववत्....ब्रह्मलोक से अन्तर्हित होकर अरूणवती राजधानी में आकर प्रकट हुए। तब, भिक्षुओ! भगवान् शिखी ने वहाँ उपस्थित भिक्षुओं से पूछा-

'भिक्षुओ! तुमने अभिभू भिक्षु द्वारा ब्रह्मलोक में गाथाओं के माध्यम से किया हुआ उपदेश सुना है?''

''हाँ, भन्ते! सुना है।'' ''भिक्षुओ! जैसा तुमने सुना है उसको पुनः हमें अक्षरशः यथार्थरूप में सुनाओ।''

''तब भिक्षु बोले- हमने वह उपदेश इस प्रकार सुना है-

''तुम उत्साहसम्पन्न बनो। गृहत्याग कर प्रव्रजित हो जाओ! बुद्धशासन के पालन में मन लगाओ। मृत्युसेना को उसी तरह नष्ट भ्रष्ट कर दो जैसे कोई मदोन्मत्त हाथी तृण की झोपड़ी नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

'जो इस धर्मविनय में सावधानीपूर्वक साधनारत रहेगा वह इस जन्म मरण को छोड़कर अपने दुःखों का एक न एक दिन अन्त कर लेगा।'

''साधु! भिक्षुजन! साधु! तुमने ब्रह्मलोक में बैठे हुए अभिभू भिक्षु द्वारा कहा गया धर्मोपदेश सर्वथा ठीक ही सुना है।

भासमानस्सा'ति। 'साधु साधु, भिक्खवे; साधु खो तुम्हे, भिक्खवे! अस्सुत्थ अभिभुस्स भिक्खुनो ब्रह्मलोके ठितस्स गाथायो भासमानस्सा'''ति।

इदमवोच भगवा, अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

6.2.5. परिनिब्बानसुत्तं

एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं परिनिब्बानसमये। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''हन्द दानि, भिक्खवे, आमन्तयामि वो– 'वयधम्मा सङ्खारा, अप्पमादेन सम्पादेथा'ति। अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा''।

अथ खो भगवा पठमं झानं समापज्जि। पठमा झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायतना वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतना

(संस्कृतच्छाया) भाषमाणस्य" इति। साधु-साधु, भिक्षवः! साधु खलु यूयम्, भिक्षवः! अश्रौष्ट अभिभुवः भिक्षोः ब्रह्मलोके स्थितस्य गाथाः भाषमाणस्य" इति।

इदमवोचत् भगवान्, आत्तमनांसि ते भिक्षवः भगवतः भाषितम् अभिनन्दन्ति।

5. एकस्मिन् समये भगवान् कुशीनगरे विहरति उपवर्तने मल्लाणां शालवने अन्तरेण यमकशालानां परिनिर्वाणसमये। अथ खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत- ''हन्त इदानीं भिक्षवः! आमन्त्रयामि वः- 'व्ययधर्माः संस्काराः, अप्रमादेन सम्पादयत'इति। अयं तथागतस्य पश्चिमा वाग्''।

अथ खलु भगवान् प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथमध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयध्यानं समापादि। तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थायाकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनमुत्थाय विज्ञानानन्त्यायतनं समापादि। विज्ञानानन्त्यायतनमुत्थाय

(हिन्दी) भगवान् ने यों कहा। उन आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया।

5. एक समय भगवान् परिनिर्वाण के समय कुशीनगर के मल्ल क्षत्रियों के शालवन स्थित उपवन में दो शाल वृक्षों के मध्य साधनारत थे। तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया-''भिक्षुओं! मैं तुम्हें बता रहा हूँ- ''सभी संस्कार नष्ट होने वाले हैं। अतः अप्रमाद के साथ जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करो। यह तथागत का अन्तिम उपदेश है।''

तदनन्तर, भगवान् प्रथम ध्यान में रत हो गये। पुनः प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में रत हुए। द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान में रत हो गये। तृतीय ध्यान से उठकर चतुर्थ ध्यान में रत हो गये। चतुर्थ ध्यान से उठकर आकाशानन्त्यायतन में रत हो गये। आकाशानन्त्यायतन से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन में रत हो गये। विज्ञानानन्त्यायतन से उठकर आकिंचन्यायतन में रत हो गये। आकिंचन्यायतन से उठकर

वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतना वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतना वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि। सञ्ञावेदयितनिरोधा वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतना वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतना वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि। विञ्ञाणञ्चायतना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि। आकासानञ्चायतना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा पठमं झानं समापज्जि। पठमा झाना वुट्ठहित्वा दुतियं झानं समापज्जि। दुतिया झाना वुट्ठहित्वा ततियं झानं समापज्जि। ततिया झाना वुट्ठहित्वा चतुत्थं झानं समापज्जि। चतुत्था झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरं भगवा परिनिब्बायि। परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना ब्रह्मा सहम्पति इमं गाथं अभासि–

(संस्कृतच्छाया) आकिंचन्यायतनं समापादि। आकिंचन्यायतनमुत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञायतनं समापादि। नैवसंज्ञानासंज्ञायतनमुत्थाय संज्ञावेदयितृनिरोधं समापादि। संज्ञावेदयितृनिरोधमुत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञायतनं समापादि नैवसंज्ञानासंज्ञायतनमुत्थाय आकिंचन्यायतनं समापादि। आकिंचन्यायतनमुत्थाय विज्ञानानत्यायतनं समापादि। विज्ञानानन्यायतनमुत्थाय आकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनमुत्थाय चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय तृतीयध्यानं समापादि। तृतीयध्यानादुत्थाय द्वितीयं ध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानादुत्थाय प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथमध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयं ध्यानं समापादि। तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थ ध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय समनन्तरं भगवान् परिनिरवासीत्। परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, ब्रह्मा सहम्पतिः इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

(हिन्दी) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन में रत हो गये। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन से उठकर संज्ञाविज्ञान में रत हो गये। संज्ञाविज्ञान से उठकर आकिंचन्यायतन में रत हो गये। आकिंचन्यायतन से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन में रत हो गये। विज्ञानानन्त्यायतन से उठकर आकाशानन्त्यायतन में रत हो गये। आकाशानन्त्यायतन से उठकर चतुर्थ ध्यान में रत हो गये। चतुर्थ ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान में रत हो गये। तृतीय ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में रत हो गये। प्रथम ध्यान में रत हो गये। पुनः प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में रत हो गये। द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान में ...तृतीय ध्यान चतुर्थ ध्यान में ... चतुर्थ ध्यान से उठते ही भगवान् परिनिर्वृत हो गये। यों भगवान् के परिनिर्वृत होते ही सहम्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही-

''सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं।
यत्थ एतादिसो सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो।
तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुतो''ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि–

''अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो''ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि–

''तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं।
सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते''ति॥

परिनिब्बुते भगवति सह परिनिब्बाना आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि–

(संस्कृतच्छाया) "सर्व एव निक्षेप्स्यन्ति, भूताः लोके समुच्छ्रयम्।
यथैतादृशः शास्ता, लोकेऽप्रतिपुद्गलः।
तथागतो बलप्राप्तः, सम्बुद्धः परिनिर्वृतः"इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, शक्रो देवानामिन्द्रः इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"अनित्याः वत संस्काराः, उत्पादव्ययधर्मिणः।
उत्पद्य निरुध्यन्ते, तेषामुपशमः सुखम्"इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन आयुष्मान् आनन्दः इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"तदासीत् यद् भीषणकम्, तदासीत् लोमहर्षणम्।
सर्वाकारवरोपे ते, सम्बुद्धे परिनिर्वृते"इति॥

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन आयुष्मान् अनुरुद्धः इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

(हिन्दी) संसार के सभी जीव एक न एक दिन मरणभाव को प्राप्त होंगे ही, परन्तु लोक में ऐसे जो अनुपम बुद्ध थे, तथागत एवं बलसम्पन्न सम्यक्सम्बुद्ध थे, वे भी परिनिवृत हो गये।

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही देवराज शक्र ने यह गाथा कही-

''सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पत्ति एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न हो कर भी कभी न कभी निरूद्ध हो ही जाते हैं। उन (संस्कारों) का पूर्णतः शान्त होना ही 'सुख' कहलाता है।'

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही आयुष्मान् आनन्द यों बोले-

''वह समय भगवान् कष्टप्रद था, रोमांचित कर देने वाला था जब इस लोक में सर्वथा श्रेष्ठ सम्बुद्ध परिनिर्वृत हुए।''

भगवान् के परिनिर्वृत होते ही आयुष्मान् अनुरूद्ध ने अपनी वेदना इन गाथाओं के माध्यम से प्रकट की-

''नाहु अस्सासपस्सासो, ठितचित्तस्स तादिनो।
अनेजो सन्तिमारब्भ, चक्खुमा परिनिब्बुतो ॥
''असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो चेतसो अहू''ति॥

तस्सुद्दानं–

ब्रह्मासनं देवदत्तो, अन्धकविन्दो अरुणवती।
परिनिब्बानेन च देसितं, इदं ब्रह्मपञ्चकं ति॥

(संस्कृतच्छाया) "नाभूत् आश्वासप्रश्वासः, स्थितचित्तस्य तायिनः।
अनेजः शान्तिमारभ्य, चक्षुष्मान् परिनिर्वृतः॥"
"असल्लीनेन चित्तेन, वेदनामध्यवासयत्।
प्रद्योतस्यैव निर्वाणम्, विमोक्षः चेतसः अभूत"इति॥

तस्योद्दानम्–

ब्रह्मासनं देवदत्तः, अन्धकविन्दो अरुणवती।
परिनिर्वाणेन च दिशितम्, इदं ब्रह्मपञ्चकम्''इति॥

(हिन्दी) ''उन स्थिरचित्त भगवान् बुद्ध के समान किसी अन्य की जीवनयात्रा नहीं थी। वे तो अकम्पित रहते हुए परम शान्त रूप से निर्वाण को प्राप्त हुए।

उन्होंने निर्विकार चित्त से अपनी वेदनाओं का अन्त कर लिया। जैसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार उनके चित्त की विमुक्ति हो गयी।''

इस वर्ग उदान- इस वर्ग में ब्रह्मासन (सनत्कुमार), देवदत्त, अन्धकविन्द, अरूणवती एवं परिनिर्वाणसुत्त इस तरह इस ब्रह्मपंचक सुत्तसमुदाय की देशना जाननी चाहियें।

दुतियो वग्गो।

ब्रह्मसंयुत्तं

******

7. ब्राह्मणसंयुत्तं

1. अरहन्तवग्गो

7.1.1. धनञ्जानीसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स धनञ्जानी नाम ब्राह्मणी अभिप्पसन्ना होति बुद्धे च धम्मे च सङ्घे च। अथ खो धनञ्जानी ब्राह्मणी भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स भत्तं उपसंहरन्ती उपक्खलित्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि–

''नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्सा''ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो धनञ्जानिं ब्राह्मणिं एतदवोच– ''एवमेवं पनायं वसली यस्मिं वा तस्मिं वा तस्स मुण्डकस्स समणस्स वण्णं भासति। इदानि त्याहं, वसलि, तस्स सत्थुनो वादं आरोपेस्सामी''ति।

(संस्कृतच्छाया) 1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन् खलु पुनः समये अन्यतरस्य भारद्वाजगोत्रस्य ब्राह्मणस्य धनञ्जानी नामा ब्राह्मणी अभिप्रसन्ना भवति बुद्धे च धर्मे च संघे च। अथ खलु धनञ्जानी ब्राह्मणी भारद्वाजगोत्रस्य ब्राह्मणस्य भक्तम् उपसंहरन्ती उपस्खलित्य त्रिवारम् उदानम् उदानयत्–

''नमः तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय।
नमः तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय।
नमः तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय''इति॥

एवम् उक्ते, भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः धनञ्जानीं ब्राह्मणीम् एतदवोचत्– ''एवमेवं पुनरियं वृषली यस्मिन् तस्मिन् वा तस्य मुण्डकस्य श्रमणस्य वर्णं भाषते। इदानीं तु अहम्, वृषली, तस्य शास्तुः वादम् आरोपयिष्यामि''इति।

(हिन्दी) 1. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवन स्थित कलंदकनिवाप में विहार करते थे। उस समय, किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण की धनंजानी नाम की धर्मपत्नी बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति अत्यधिक श्रद्धालु थी। कभी वह ब्राह्मणी अपने पति का भोजन परोस रही थी कि उसका पैर लड़खड़ा गया। तब वह तीन बार यह बोली-

''उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है, उन भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।''

ऐसा कहे जाने पर, वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण उस धनंजानी ब्राह्मणी से यह बोला-''यह शूद्रा इसी तरह जिस किसी मुण्डक श्रमण की प्रशंसा करती रहती है। क्यों न आज मैं इसको उस शास्ता पर युक्तिपुर्वक आक्षेप करूंगा!

''न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय, यो तस्स भगवतो वादं आरोपेय्य अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। अपि च त्वं, ब्राह्मण, गच्छ, गन्त्वा विजानिस्ससी''ति।

अथ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा''ति॥
''कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।
कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स ब्राह्मण।
वधं अरिया पसंसन्ति, तं हि छेत्वा न सोचती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''न खल्वहं तम्, ब्राह्मण! पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मण्यां प्रजायां सदेवमानुषिकायाम्, यः तस्य भगवतः वादम् आरोपयत् अर्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य। अपि च त्वम्, ब्राह्मण! गच्छ, गत्वा विज्ञास्यसि''इति।

अथ खलु भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः कुपित अनात्ममनाः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोद्य कथं सारणीयं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणो भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''किंस्वित् छित्वा सुखं शेते, किंस्वित् छित्वा न शोचति।
कस्यास्य एकधर्मस्य, वधं रोचसे गौतम''इति॥
''क्रोधं छित्वा सुखं शेते, क्रोधं छित्वा न शोचति।
क्रोधस्य विषमूलस्य, मधुराग्रस्य ब्राह्मण!
वधम् आर्याः प्रशंसन्ति, तं हि छित्वा न शोचति''इति॥

(हिन्दी) धनंजानी- ''तुम जो भी कहो, मैं तो देवताओं ब्रह्माओं, मार, एवं श्रमण ब्राह्मणों सहित इस समस्त प्रजा में ऐसे किसी को समर्थ नहीं समझती जो उन पर दोष लगा सके। परन्तु ब्राह्मण! तुम कह रहे हो तो तुम उनके पास जाओ, जाकर स्वयं समझ जाओगे।''

तब वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण कुपित एवं उद्विग्न होता हुआ भगवान् के सम्मुख पहुँचा। तथा कुशल संवाद कर एक ओर बैठ गया। फिर एक ओर बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से यह गाथा बोला- ''किस का नाश करके मनुष्य सुख से सोता है? तथा किस का नाश करने पर भी शोक नहीं करता? हे गौतम! किस एक धर्म का वध आपको उचित लगता है?'' भगवान्- ''मनुष्य अपने क्रोध का नाश कर सुख से सोता है। क्रोध का नाश करने पर शोक नहीं करता। हे ब्राह्मण! विष के मूल रूप इस क्रोध का जो पहले बहुत अच्छा लगता है, वध करना उत्तम पुरुषों द्वारा प्रशंसित है। उसका नाश कर मनुष्य शोक नहीं करता।

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य– चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्तीति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं''ति।

अलत्थ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव– यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं– ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि।

(संस्कृतच्छाया) एवम् उक्ते, भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम, अभिकान्तम्, भो गौतम! तद्यथापि, भो गौतम, निकुज्जितं वा उत्कुज्जेत्, प्रतिच्छन्नं वा विवरेत्, मूढस्य वा मार्गम् आचिक्षेत्, अन्धकारे वा तैलप्रद्योतं संधार्य– चक्षुष्मन्तः रूपाणि दर्शयन्तीति; एवमेवं भवता गौतमेन अनेकपर्यायेण धर्मः प्रकाशितः। एषोऽहम्, भदन्त! भगवन्तं गौतमं शरणं गच्छामि धर्मञ्च भिक्षुसङ्घञ्च। लभेयामहं भवतः गौतमस्य अन्तिके प्रव्रज्याम्, लभेयम् उपसम्पदाम्''इति।

अलभत् खलु भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणो भगवतः अन्तिके प्रव्रज्याम्, अलभत उपसम्पदाम्। अचिरोपसम्पन्नः खलु पुनरायुष्मान् भारद्वाज एको व्यूपकृष्ट अप्रमत्त आतापी प्रहितात्मा विहरन् नचिरस्यैव– यस्यार्थाय कुलपुत्राः सम्यगेव अगारात् अनागार्यं प्रव्रजन्ति तदनुत्तरम्– ब्रह्मचर्यपर्यावसानं दृष्टे एव धर्मे स्वयम् अभिज्ञया साक्षीकृत्य उपसम्पद्य व्यहार्षीत्।

(हिन्दी) भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण यह बोला- 'धन्य है, हे गौतम! धन्य है! जैसे कोई उलटे को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, भटके हुए को सही मार्ग बता दे, अन्धकार में तैल का दीपक जला कर खड़ा हो जाय कि आँखों वाले (मार्ग देखना चाहने वाले) मार्ग देख लें, वैसे ही आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया! यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की भी तथा भिक्षुसङ्घ की भी। (मेरी इच्छा है कि) मैं आप गौतम से प्रव्रज्या पा लूँ, उपसम्पदा पा लूँ।''

बाद में उस भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर ली। सम्पन्न होने के कुछ ही बाद, आयुष्मान् भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त, आतापी तथा संयतेन्द्रिय होकर विहार करते हुए शीघ्र ही उस धर्मसाधना के चरम निष्कर्ष (अन्तिम परिणाम) को प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कोई भी कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक, घर छोड़कर प्रव्रज्या लिया करते हैं।

''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया''ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी ति।

7.1.2. अक्कोससुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अस्सोसि खो अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो– ''भारद्वाजगोत्तो किर ब्राह्मणो समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो''ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसति परिभासति।

एवं वुत्ते, भगवा अक्कोसकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदवोच– ''तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, अपि नु खो ते आगच्छन्ति मित्तामच्चा ञातिसालोहिता अतिथियो ''ति? ''अप्पेकदा मे, भो गोतम, आगच्छन्ति मित्तामच्चा ञातिसालोहिता अतिथियो''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''क्षीणा जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयम्, नापरम् इत्थंभावायेति'' अभ्यजानीत्। अन्यतरः च पुन आयुष्मन् भारद्वाज अर्हतम् अभूत् इति।

2. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। अश्रौषीत् खलु आक्रोशकः भारद्वाजब्राह्मणः''भारद्वाजगोत्रः किल ब्राह्मणः श्रमणस्य गौतमस्य अन्तिके अगारात् अनागार्यं प्रव्रजितः''इति कुपित अनात्ममनाः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् असभ्यैः परुषाभिः वाचाभिः आक्रोशयन् परिभासति।

एवम् उक्ते, भगवान् आक्रोशक भारद्वाजब्राह्मणम् एतदवोचत्– ''तत् किम् मन्यसे, ब्राह्मण, अपि नु खलु ते आगच्छन्ति मित्रामात्याः ज्ञातिसालोहिता अतिथयः''इति? ''यदा कदा मे, भो गौतम, आगच्छन्ति मित्रामात्याः ज्ञातिसालोहिता अतिथयः''इति।

(हिन्दी) तथा उसने-''मेरी जन्मपरम्परा अब क्षीण हो गयी, मेरा ब्रह्मचर्यवास (धर्मसाधना) भी पूर्ण हो गया है, जो मेरा कर्तव्य था उसको मैने पूर्ण कर लिया, अब मेरे लिये आगे कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह गया'- ऐसा जान लिया। वह भारद्वाज ब्राह्मण कुछ समय बाद ही अर्हत्त्व प्राप्त कर गया।

2. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। आक्रोशक (अपशब्दभाषी) भारद्वाज ने जब यह सुना कि 'भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम से, गृहस्थ धर्म छोड़कर (घर से बेघर हो), प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है,' तब वह क्रुद्ध एवं खिन्न होकर भगवान् के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर भगवान् को कुछ खरी खोटी बातें सुनाते हुए उनको गाली गलौज करने लगा।

ऐसा करने पर, भगवान् ने उस आक्रोशक भारद्वाज से पूछा-''ब्राह्मण! यह तो बताओ-तुम्हारे यहाँ कोई तुम्हारे इष्ट मित्र बन्धु बान्धव या अतिथि आते हैं, या नहीं?''

ब्राह्मण ने कहा-''हाँ, गौतम! मेरे यहाँ भी कभी कभी मेरे इष्ट मित्र बन्धु या अतिथि बान्धव आते ही रहते हैं।''

''तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, अपि नु तेसं अनुप्पदेसि खादनीयं वा भोजनीयं वा सायनीयं वा''ति? ''अप्पेकदा नेसाहं, भो गोतम, अनुप्पदेमि खादनीयं वा भोजनीयं वा सायनीयं वा''ति। ''सचे खो पन ते, ब्राह्मण, नप्पटिग्गण्हन्ति, कस्स तं होती''ति? ''सचे ते, भो गोतम, नप्पटिग्गण्हन्ति, अम्हाकमेव तं होती''ति।

''एवमेव खो, ब्राह्मण, यं त्वं अम्हे अनक्कोसन्ते अक्कोससि, अरोसेन्ते रोसेसि, अभण्डन्ते भण्डसि, तं ते मयं नप्पटिग्गण्हाम। तवेवेतं, ब्राह्मण, होति; तवेवेतं, ब्राह्मण, होति''।

''यो खो, ब्राह्मण, अक्कोसन्तं पच्चक्कोसति, रोसेन्तं पटिरोसेति, भण्डन्तं पटिभण्डति, अयं वुच्चति, ब्राह्मण, सम्भुञ्जति वीतिहरतीति। ते मयं तया नेव सम्भुञ्जाम न वीतिहराम। तवेवेतं, ब्राह्मण, होति; तवेवेतं, ब्राह्मण, होती''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''तत् किम् मन्यसे, ब्राह्मण! अपि नु तेषाम् अनुत्पादयसि खादनीयं वा भोजनीयं वा शयनीयं वा''इति? ''अथ किं यदा कदा तेषाम् अहम्, भो गौतम, अनुत्पादयामि खादनीयं वा भोजनीयं वा शयनीयं वा''इति। ''ते चेत् खलु पुनः, ब्राह्मण! न प्रतिगृह्णन्ति, कस्य तत् भवति''इति? ''चेत् ते, भो गौतम, न प्रतिगृह्णन्ति, तदा अस्माकमेव तत् भवति''इति। ''एवमेव खलु, ब्राह्मण, यत् त्वम् मह्यम् अनाक्रोशन्ताय आक्रोशयसि, अरोषन्ताय रोषसे, अभणिताय भणसि, तत् तव अहं न प्रतिगृह्णामि। तव एव एतत्, ब्राह्मण! भवति; तवैव, ब्राह्मण! भवति''।

''यः खलु, ब्राह्मण! आक्रोशन्तं प्रत्याक्रोशति, अरुष्यन्तं प्रतिरुष्यति, भणन्तं प्रतिभणति, इदम् उच्यते, ब्राह्मण, सम्भुञ्जन् व्यतिहरति इति। तत् अहं तव नैव सम्भुनज्मि नैव व्यतिहरामि। तवैव, ब्राह्मण, भवति; तवैव, ब्राह्मण, भवति''इति।

(हिन्दी) भगवान्- ''ब्राह्मण! क्या तुम उनके भोजन आदि के लिये खाने की वस्तुएँ बनवाते हो?''

ब्राह्मण- ''हाँ, कभी कभी उनके लिये ये सब वस्तुएँ भी बनवानी पड़ती हैं।''

भगवान्- ''ब्राह्मण! यदि वे लोग उन वस्तुओं का उपयोग न कर पावें तो उन वस्तुओं का क्या होता है? वे वस्तुएँ पुनः किसको मिलती है?''

ब्राह्मण- ''यदि वे उन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते तो वे पुनः मुझको ही मिलती हैं?''

भगवान्- ''उसी तरह ब्राह्मण! जो तुम कभी अपशब्द न बोलने वाले मुझको अपशब्द कह रहे हो, कभी क्रोध न करने वाले मुझ पर क्रोध कर रहे हो, कभी किसी को ऊँचा नीचा न बोलने वाले मुझको ऊँचा नीचा बोल रहे हो, उसे मैं स्वीकार नहीं करता तो, ब्राह्मण! ये सब तुम्हारी वस्तुएँ तुम्ही को मिल रही हैं, तुम्हारी वस्तुएँ तुम्ही को मिल रही हैं।

''भवन्तं खो गोतमं सराजिका परिसा एवं जानाति– 'अरहं समणो गोतमो'ति। अथ च पन भवं गोतमो कुज्झती''ति।

''अक्कोधस्स कुतो कोधो, दन्तस्स समजीविनो।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो॥
''तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
''उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
''उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।

(संस्कृतच्छाया) ''भवन्तं खलु गौतम! सराजका परिषदा एवं जानाति– 'अर्हत् श्रमणः गौतमः'इति। अथ च पुनः भवान् गौतमः क्रुध्यति''इति।

''अक्रुधितस्य कुतः क्रोधः, दान्तस्य समजीविनः।
सम्यग्ज्ञस्य विमुक्तस्य, उपशान्तस्य तादृशः॥
''तस्यैव तत् पापिनो, यः क्रुद्धं प्रतिक्रुध्यति।
क्रुद्धम् अप्रतिक्रुध्यन्, सङ्ग्रामं जयति दुर्जयम्॥
''उभयार्थम् चरति, आत्मनः च परस्य च।
परं सङ्कुपितं ज्ञात्वा, यः स्वतः उपशाम्यति॥
''उभयोः चिकित्सन्तः, आत्मनः च परस्य च।

(हिन्दी) ''ब्राह्मण! जो अपशब्द करने वाले को अपशब्द कहता है, कुद्ध होने वाले पर क्रोध करता है, ऊँचा नीचा कहने वाले को ऊँचा नीचा कहता है- यह ऐसे अवसरों पर ''परस्पर खिलाना पिलाना'' कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ यह परस्पर खिलाने पिलाने वाला व्यवहार नहीं करता। तुम्हारे दिये का मैं उपयोग नहीं करता। तो ब्राह्मण! ये बाते तुम्ही को (पुनः) मिल रही हैं, तुम्ही को मिल रही हैं।''

ब्राह्मण- ''आप गौतम को तो राजा सहित उसकी समस्त शासनपरिषद् जानती है, कि श्रमण गौतम अर्हत् हैं। वे भला किसी पर क्रोध कैसे कर सकते हैं?

भगवान्- ''क्रोधरहित को क्रोध कैसा! या जो ऊँच नीच के भाव को पार कर चुका है, जो इन्द्रियसंयमी है, परमज्ञानी है, विमुक्त है, जिसका चित्त सर्वथा शान्त है, वह किस पर क्या क्रोध करेगा!

''उससे उसी की निन्दा होती है जो बदले में क्रोध करता है। क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करने वाला तो अजेय संग्राम जीत लेता है।

''दूसरों को क्रोध करते हुए देखकर भी जो स्वयं सावधान होकर शान्त रहता है उससे स्वयं को भी तथा दूसरे को भी-दोनों को ही लाभ पहुँचता है।

''अपनी और दूसरे की-दोनों की चिकित्सा करने वाले ऐसे पुरुष को

जना मञ्ञन्ति बालोति, ये धम्मस्स अकोविदा''ति॥

एवं वुत्ते, अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च। लभेय्याहं, भन्ते, भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं''ति।

अलत्थ खो अक्कोसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा अक्कोसकभारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव– यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं– ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया''ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसीति।

(संस्कृतच्छाया) जनाः मन्यन्ते बालं इति, ये धर्मस्य अकोविदा''इति॥

एवम् उक्ते, आक्रोशकः भारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... एषोऽहं भवन्तं गौतमं शरणं गच्छामि धर्मञ्च भिक्षुसङ्घञ्च। लभेयमहं भदन्त! भवतः गौतमस्य अन्तिके प्रव्रज्याम्, लभेयम् उपसम्पदाम्''इति।

अलभत खलु आक्रोशकभारद्वाजः ब्राह्मणो भगवतोऽन्तिके प्रव्रज्याम्, अलभत उपसम्पदाम्। अचिरोपसम्पन्नः खलु पुन आयुष्मान् आक्रोशकः भारद्वाज एकः व्यूपकृष्ट अप्रमत्त आतापी प्रहितात्मः विहरन्तः नचिरस्यैव– यस्यार्थाय कुलपुत्रा सम्यगेव आगारात् अनागार्यं प्रव्रजन्ति तदनुत्तरम्– ब्रह्मचर्यपर्यावसानं दृष्टे एव धर्मे स्वयम् अभिज्ञा साक्षीकृत्य उपसम्पद्य व्यहार्षीत्। ''क्षीणा जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयं नापरं इत्थंभावायेति'' अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरः च पुन आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत् अभूत् इति।

(हिन्दी) साधारण जन मूर्ख ही समझते हैं, क्यों कि वे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते''। भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह आक्रोशक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''धन्य है, हे गौतम! धन्य है! जैसे कोई....पूर्ववत्..... यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की भी तथा भिक्षुसङ्घ की भी। (मेरी इच्छा है कि) मैं आप गौतम से प्रव्रज्या पा लूँ, उपसम्पदा पा लूँ।''

बाद में उस भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर ली। सम्पन्न होने के कुछ ही बाद, आयुष्मान् भारद्वाज ने एकान्त में अप्रमत्त एवं आतापी तथा संयतेन्द्रिय होकर विहार करते हुए शीघ्र ही उस धर्मसाधना के चरम निष्कर्ष (अन्तिम परिणाम) को प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कोई भी कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक, घर छोड़कर प्रव्रज्या लिया करते हैं। तथा उसने-''मेरी जन्मपरम्परा अब क्षीण हो गयी, मेरा ब्रह्मचर्यवास (धर्मसाधना) भी पूर्ण हो गया है, जो मेरा कर्तव्य था उसको मैने पूर्ण कर लिया, अब मेरे लिये आगे कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह गया'' ऐसा जान लिया।.....

वह भारद्वाज ब्राह्मण कुछ समय बाद ही अर्हत्त्व प्राप्त कर गया।

7.1.3. असुरिन्दकसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अस्सोसि खो असुरिन्दकभारद्वाजो ब्राह्मणो– ''भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो किर समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो''ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसति परिभासति। एवं वुत्ते, भगवा तुण्ही अहोसि। अथ खो असुरिन्दकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''जितोसि, समण, जितोसि, समणा''ति।

''जयं वे मञ्ञति बालो, वाचाय फरुसं भणं।
जयञ्चेवस्स तं होति, या तितिक्खा विजानतो॥
''तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥

(संस्कृतच्छाया) 3. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। अश्रौषीत् खलु असुरेन्द्रक भारद्वाजब्राह्मणः– ''भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः किल श्रमणस्य गौतमस्य सान्तिके आगारात् अनागार्यं प्रव्रजितः''इति कुपितोऽनात्मनः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् असभ्यैः परुषाभिः वाग्भिः आक्रोशयन् परिभाषते। एवम् उक्ते, भगवान् तूष्णीम् अभूत्। अथ खलु असुरेन्द्रक भारद्वाजः ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''जयतु, श्रमण, जयतु, श्रमण''इति।

''जयं वै मन्यते बालः, वाचम् परुषं भणम्।
जयञ्चैवास्य तत्र भवति, या तितिक्षा विजानाति॥
''तस्यैव तत् पापिनो, यः क्रुद्धं प्रतिक्रुध्यति।
क्रुद्धम् अप्रतिक्रुध्यतः, सङ्ग्रामं जयति दुर्जयम्॥

(हिन्दी) 3. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। जब असुरेन्द्रक ब्राह्मण ने सुना-''आक्रोशक भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण घर से बेघर हो (गृहस्थधर्म छोड़कर) श्रमण गौतम से प्रव्रज्या ले चुका है'' तो क्रुद्ध एवं दुःखी होकर भगवान् के पास पहुँचा, तथा वहाँ वह उन्हें कठोर एवं असभ्य वाणी बोलने लगा। यह सब सुनकर भी भगवान् चुप ही रहे। (भगवान् की इस सहनशीलता से प्रभावित होकर) असुरेन्द्रक भारद्वाज भगवान् से यह बोला-''श्रमण! आपकी जीत हो गयी, आपकी जीत हो गयी''

भगवान्- ''मूर्ख मनुष्य, अपने मुख से कठोर वचन कह कर अपनी विजय समझ लेता है, परन्तु विजय उसी ज्ञानी की होती है जो उन रूखे वचनों को सहन कर लेता है।

''उससे उसी की निन्दा होती है जो क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध करता है। जो क्रोध करने वाले के प्रति क्रोध करता, उसने मानों अतिदुर्जय संग्राम जीत लिया है।

''उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
''उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालोति, ये धम्मस्स अकोविदा''ति॥

एवं वुत्ते, असुरिन्दकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.4. बिलङ्गिकसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अस्सोसि खो बिलङ्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो– ''भारद्वाजगोत्तो किर ब्राह्मणो समणस्स गोतमस्स सन्तिके अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो''ति कुपितो अनत्तमनो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं अट्ठासि। अथ खो भगवा बिलङ्गिकस्स भारद्वाजस्स

(संस्कृतच्छाया) ''उभयार्थं चरति, आत्मनः च परस्य च।
परं सङ्कुपितं ज्ञात्वा, यः स्वत उपशाम्यति॥
''उभयोः चिकित्सन्तः, आत्मनः च परस्य च।
जनाः मन्यन्ते बाल इति, ये धर्मस्य अकोविदाः''इति॥

एवम् उक्ते, असुरेन्द्रक भारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरः च पुनरायुष्मान् भारद्वाजोऽर्हत् अभूत्''इति।

4. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। अश्रौषीत् खलु विलङ्गिकभारद्वाजः ब्राह्मणः– ''भारद्वाजगोत्रः किल ब्राह्मणः श्रमणस्य गौतमस्य सन्तिके आगारात् अनागार्यं प्रव्रजितः''इति कुपितोऽनात्मनः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य तूष्णीभूत एकान्ते अस्थात्। अथ खलु भगवान् विलङ्गिकस्य भारद्वाजस्य

(हिन्दी) ''दूसरों को क्रोध करते हुए देखकर भी जो स्वयं सावधान होकर शान्त रहता है उससे स्वयं को भी तथा दूसरे को भी-दोनों को ही लाभ पहुँचता है।

''अपने तथा दूसरे की इस तरह चिकित्सा करने वाले ऐसे पुरुष को साधारण जन मूर्ख ही समझते हैं, क्यों कि वे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते।''

ऐसा कहे जाने पर असुरेन्द्रक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-धन्य हैं आप, जो गौतम!....भारद्वाज अर्हत् हो गया।

4. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। तब विलिङ्गिक भारद्वाज ने सुना-''भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास घर से बेघर हो प्रव्रजित हो गया।'' यह सुनकर वह बहुत कुपित एवं खिन्न हुआ वह भगवान् के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर भगवान् उसके मन की बात अपने मन से जानकर, विलिङ्गिक भारद्वाज

ब्राह्मणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय बिलङ्गिकं भारद्वाजं ब्राह्मणं गाथाय अज्झभासि–

''यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातंव खित्तो''ति॥

एवं वुत्ते, विलङ्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.5. अहिंसकसुतं

सावत्थिनिदानं। अथ खो अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच–
''अहिंसकाहं, भो गोतम, अहिंसकाहं, भो गोतमा''ति।

''यथा नामं तथा चस्स, सिया खो त्वं अहिंसको।

(संस्कृतच्छाया) ब्राह्मणस्य चेतसा चेतोपरिवितर्कमाज्ञाय विलङ्गिकं भारद्वाजं ब्राह्मणं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''योऽप्रदुष्टस्य नरस्य दुष्यति, शुद्धस्य पुरुषस्य अनंगणस्य।
तमेव बालं प्रत्येति पापम्, सूक्ष्मं रजः प्रतिवातमिव क्षिप्तम्''इति॥

एवम् उक्ते, विलङ्गिकभारद्वाजः ब्राह्मणः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरः च पुनरायुष्मान् भारद्वाजः अर्हत् अभूत्''इति।

5. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्द्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोदनीयं कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्–
''अहिंसकोऽहम्, भो गौतम! अहिंसकोऽहम्, भो गौतमा!''इति।

''यथा नाम तथा चास्मि, स्याः खलु त्वम् अहिंसकः।

(हिन्दी) ब्राह्मण से गाथा में बोले- ''जो मूर्ख मनुष्य निर्दोष, शुद्ध एवं निर्मल तथा निष्पाप पुरुष को दोष लगाता है, वह पाप उस मूर्ख मनुष्य का उसी प्रकार पीछा करता है जिस प्रकार सूक्ष्म धूल, विपरीत हवा में फेंके जाने पर, फेंकने वाले पुरुष पर ही आ गिरती है।'

'ऐसा कहे जाने पर, विलिङ्गिक भारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''धन्य हैं आप गौतम!...पूर्ववत्....भारद्वाज अर्हत् हो गया।

5. श्रावस्ती में ही...। तब अहिंसक भारद्वाज ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आ कर भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ कर वह एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''हे गौतम! मैं अहिंसक हूँ। हे गौतम! मेरा नाम 'अहिंसक' ब्राह्मण है।''

भगवान्- ''जैसा तुम्हारा नाम है, कर्म से भी वैसे ही बनो।

यो च कायेन वाचाय, मनसा च न हिंसति।
स वे अहिंसको होति, यो परं न विहिंसती''ति॥

एवं वुत्ते, अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा अहिंसकभारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.6. जटासुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''अन्तोजटा बहिजटा, जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि, को इमं विजटये जटं''ति॥
''सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।

(संस्कृतच्छाया) यः च कायेन वाचा, मनसा च न हिंसति।
स वै अहिंसकः भवति, यः परं न विहिंसति''इति॥

एवम् उक्ते, अहिंसकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम!...पे॰... अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरः च पुनरायुष्मान् अहिंसकभारद्वाजोऽर्हत् अभूत्''इति।

6. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्द्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोदनीयं कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु जटाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथायामध्यभाषिष्ट–

''अन्तो जटा बहिर्जटा, जटाभिः जटिताः प्रजाः।
तत् त्वां गौतम पृच्छामि, क इमां विजटयेत् जटाम्''इति॥
''शीले प्रतिष्ठाय नरः सप्रज्ञः, चित्तं प्रज्ञाञ्च भावयन्।

(हिन्दी) तुम वस्तुतः अहिंसक (हिंसा न करने वाला) बन जाओ, क्यों कि जो काय, वाणी एवं मन में हिंसा नहीं करता वही वस्तुतः अहिंसक होता है। जो दूसरों को कभी कोई कष्ट नहीं देता।''

भगवान् के ऐसा कहने पर वह अहिंसक भारद्वाज.....पूर्ववत्....वह भारद्वाज अर्हत् हो गया।

6. श्रावस्ती में ही...। जब कोई जटाभारद्वाज नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया। आकर कुशल मङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से यह प्रश्न किया-

''भीतर भी जटा (उलझन) है, बाहर भी जटा है, इस संसार का यह समस्त प्रजा(प्राणि) समूह जटाओं में उलझी हुई हैं। अतः हे गौतम! मैं आप से ही पूँछता हूँ कि इस जटा (सांसारिक मायाजाल) को कौन सुलझा सकता है?

भगवान्- ''तपस्वी, प्रज्ञावान् एवं विवेकी पुरुष ही शील में प्रतिष्ठित (अभ्यस्त) होता हुआ, चित्त,

आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥
''येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, तेसं विजटिता जटा॥
''यत्थ नामञ्च रूपञ्च, असेसं उपरुज्झति।
पटिघं रूपसञ्ञा च, एत्थेसा छिज्जते जटा''ति॥

एवं वुत्ते, जटाभारद्वाजो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.7. सुद्धिकसुतं

सावत्थिनिदानं। अथ खो सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) आतापी निपकः भिक्षुः, स इमां विजटयेत् जटाम्॥
''येषां रागश्च दोषश्च, अविद्या च विधूपिता।
क्षीणास्रवा अर्हन्तः, तेषां विजटिता जटा॥
''यत्र नामं च रूपञ्च, अशेषम् उपरुध्यते।
प्रतिघं रूपसंज्ञा च, अत्रैषा छिद्यते जटा''इति॥

एवम् उक्ते, जटाभारद्वाजो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम!...पे॰... अन्यतरः च पुनरायुष्मान् भारद्वाज अर्हत् अभूत्''इति।

7. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु शुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्द्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोदनीयं कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु शुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतः अन्तिके इमा गाथायामध्यभाषिष्ट–

(हिन्दी) समाधि एवं प्रज्ञा की भावना करते हुए उत्साहसम्पन्न होकर निपुणता से इस (सांसारिक मायाजाल) जटा को सुलझा सकता है।

''जिन साधकों का चित्त रागद्वेषविहीन हो चुका है, अविद्यान्धकार नष्ट हो चुका है ऐसे क्षीणास्रव (निर्मलचित्त) ज्ञानी भिक्षु ही इस जटा को सुलझाने में समर्थ हो सके हैं।

''जिसने रागद्वेष और अविद्या को हटा दिया हैं तथा जिसके प्रतिघसंज्ञा (कामभव) एवं रूपसंज्ञा (रूपभव) निरूद्ध हो चुकी है, उनकी ये जटाएँ सुलझी हुई ही समझी जानी चाहिये।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर जटाभारद्वाज ब्राह्मण भगवान् से यह निवेदन करने लगा-

''धन्य हैं आप गौतम....पूर्ववत्....यह आयुष्मान् भारद्वाज अर्हतों में एक हो गया।

7. श्रावस्ती में ही.....। तब कोई शुद्धिक भारद्वाज नामक ब्राह्मण भगवान् के पास गया। जाकर भगवान् से कुशल क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर उसने इस गाथा से यह कहा-

''न ब्राह्मणो सुज्झति कोचि, लोके सीलवापि तपोकरं।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सो सुज्झति न अञ्ञा इतरा पजा''ति॥
''बहुम्पि पलपं जप्पं, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
अन्तोकसम्बु सङ्किलिट्ठो, कुहनं उपनिस्सितो॥
''खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो, सुद्दो चण्डालपुक्कुसो।
आरद्धवीरियो पहितत्तो, निच्चं दळ्हपरक्कमो।
पप्पोति परमं सुद्धिं, एवं जानाहि ब्राह्मणा''ति॥

एवं वुत्ते, सुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.8. अग्गिकसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन

(संस्कृतच्छाया) ''न ब्राह्मणो शुद्ध्यते कोऽपि, लोके शीलवतोऽपि तपस्कारः ।
विद्याचरणसम्पन्नः, सः शुद्ध्यते न अन्ये इतरे प्रजा''इति॥
''बहुधा प्रलापैः जल्पैः, न जात्या च भवति ब्राह्मणः।
अन्तः कसायम्बुः संक्लिष्टः, कुहन उपनिश्रितः॥
''क्षत्रियः ब्राह्मणः वैश्यः, शूद्रः चाण्डालपुल्कसः।
आलब्धवीर्यः प्रहितात्मा, नित्यं दृढपराक्रमः।
प्राप्नोति परमां शुद्धिम्, एवं जानीहि ब्राह्मणा''इति॥

एवम् उक्ते, शुद्धिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अन्यतरः च पुनरायुष्मान् भारद्वाज अर्हत् अभूत्''इति।

8. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। तेन खलु पुनः समयेन

(हिन्दी) ''लोक में कोई ब्राह्मण (उस जाति में उत्पन्न होने मात्र से) शुद्ध नहीं होता, अत्यधिक शीलवान्, तपस्वी तथा विद्या एवं आचरण से सम्पन्न पुरुष ही शुद्ध होता है, अन्य कोई नहीं।''
भगवान्- ''भले ही कोई कितना ही बड़ा बोलने वाला (शास्त्रप्रवक्ता) हो, जातिमात्र से कोई ब्राह्मण शुद्ध नहीं होता। वह तो सर्वथा मलिन चित्त वाला होने के कारण ढोंगी तथा धूर्त होता है।''
''क्षत्रिय हो, ब्राह्मण हो, वैश्य हो, शूद्र, चाण्डाल या पुल्कस हो, यदि वह उत्साही आत्मसंयमी तथा सदैव उद्यम में तत्पर रहता है तो वह अवश्य एक न एक दिन परम शुद्धि प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मण! तुम इस शुद्धि के विषय में यही निष्कर्ष समझो।'' भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह शुद्धिक भारद्वाज ब्राह्मण से यह निवेदन करने लगा-''धन्य है आप गौतम.....पूर्ववत्.....आयुष्मान् भारद्वाज अर्हत हो गया।

8. एक समय भगवान् राजगृह के वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय

अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स सप्पिना पायसो सन्निहितो होति– ''अग्गिं जुहिस्सामि, अग्गिहुत्तं परिचरिस्सामी''ति।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। राजगहे सपदानं पिण्डाय चरमानो येन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वान भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, जातिमा सुतवा बहू।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सोमं भुञ्जेय्य पायसं''ति॥
''बहुम्पि पलपं जप्पं, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
अन्तोकसम्बु संकिलिट्ठो, कुहना परिवारितो॥

(संस्कृतच्छाया) आग्निकस्य भारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य पार्श्वे सर्पिः पायसश्च सन्निहितः भवति– ''आग्निहोत्रं होष्यामि, आग्निहोत्रं परिचरिष्यामि''इति।

अथ खलु भगवान् पूर्वाह्नसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय प्राविशत्। राजगृहं सपदं पिण्डाय चरमानः यत्र आग्निकभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य एकान्ते अस्थात्। अद्राक्षीत् खलु आग्निकभारद्वाजः ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय अस्थात्। दृष्ट्वा भगवन्तं गाथायाम् अध्यभाषिष्ट–

''तिसृभिः विद्याभिः सम्पन्नः, जातिमान् श्रुतवान् बहु।
विद्याचरणसम्पन्नः, स इदम् भुञ्जेत् पायसम्''इति॥
''बहुधा प्रलापैः जल्पैः, जात्या च न भवति ब्राह्मणः।
अन्तः कसायम्बुः संक्लिष्टः, कुहनोऽपरिवारितः॥

(हिन्दी) अग्निक भारद्वाज "अग्नि प्रज्वलित करूंगा, हवि दूँगा" कहने लगा। उसके घर अग्नि में हवन के लिये घी के साथ खीर बनी थी। "मै अग्नि जलाऊँगा, हवि दूँगा" ऐसा उसका विचार था। उस समय भगवान् सुबह में वस्त्र पहन और पात्र चीवर ले राजगृह में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। प्रत्येक घर में भिक्षा करते करते वे अग्निकभारद्वाज के घर पर पहुँचे। पहुँच कर एक ओर खड़े हो गये। उस ब्राह्मण को भिक्षाहेतु विचरण करते देखा। देखकर उसने भगवान् से यह गाथा में कहा-

''जो तीन वेदों का ज्ञाता हो, उच्च जाति का हो, प्रसिद्ध विद्वान् हो तथा विद्या एवं आचरण से सम्पन्न हो वही इस खीर को खाये।''

भगवान्- ''भले ही कोई कितना ही बड़ा बोलनेवाला (महान् वक्ता) क्यों न हो, वह ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं होता। वह तो सर्वथा मलिन चित्त वाला होने के कारण ढोंगी तथा धूर्त होता है।

''पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥
''एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो।
विज्जाचरणसम्पन्नो, सोमं भुञ्जेय्य पायसं''ति॥
''भुञ्जतु भवं गोतमो। ब्राह्मणो भवं''ति।
''गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा॥
''अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तञ्हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती''ति॥

एवं वुत्ते, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अञ्ञतरो च पनायस्मा अग्गिकभारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''पूर्वं निवासं यः वेत्ति, स्वर्गापायञ्च पश्यति।
अथ जातिक्षयं प्राप्तः, अभिज्ञावोषितः मुनिः॥
''एताभिः तिसृभिः विद्याभिः, त्रैविद्यः भवति ब्राह्मणः।
विद्याचरणसम्पन्नः, सोऽमुं भुञ्जेत् पायसम्''इति॥
''भुञ्जतु भवान् गौतम। ब्राह्मणो भव''इति।
''गाथाभिगीतं मे अभोजनीयम्, सम्पश्यत्वं ब्राह्मण! नैषः धर्मः।
गाथाभिगीतम् प्रणुदन्ति बुद्धाः, धर्मे सति ब्राह्मणः वृत्तिरेषा॥
''अन्येन च केवलिनं महर्षिम्, क्षीणाश्रवं कौकृत्योपशान्तम्।
अन्नेन पानेन उपतिष्ठ, क्षेत्रं हि तं पुण्यापेक्षस्य भवतीति॥

एवम् उक्ते, आग्निकभारद्वाजो ब्राह्मणः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अन्यतरः च पुनरायुष्मान् आग्निकभारद्वाजो अर्हत् अभूत्''इति।

(हिन्दी) ''जो पूर्व जन्म की बातों को जानता है, स्वर्ग तथा नरक (के हेतुओं) को जानता है, जिसकी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, जो परमज्ञानी तथा मुनि हो चुका है।

''इन तीन विद्याओं को जानकर ही कोई ब्राह्मण 'त्रैविद्य' कहलाता है, वह त्रैविद्य एवं विद्या तथा आचरण से सम्पन्न पुरुष ही 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी है। वही इस खीर को खाये।''

ब्राह्मण- ''ठीक है आप इस पायस (खीर) का भोजन करें। आप इसके खाने के अधिकारी हैं।''

भगवान्-''धर्मोपदेश करने पर प्राप्त हुए भोजन को मैं स्वीकार नहीं किया करता। हे ब्राह्मण! ज्ञानियों के लिये यह उचित भी नहीं होता। बुद्ध ने भी इस परम्परा को निभाया है। धर्मानुसार जीवनयापन करने वाले को ऐसा ही करना चाहिये। ''हाँ, तुम दूसरे अन्न से पान से, केवली महर्षि, क्षीणास्रव एवं परमशुद्ध श्रमणों की सेवा कर सकते हो। हे पुण्यार्थिन्! इसी से तुम्हारा पुण्य बढ सकता है। यही पुण्य क्षेत्र है।''

7.1.9. सुन्दरिकसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति सुन्दरिकाय नदिया तीरे। तेन खो पन समयेन सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो सुन्दरिकाय नदिया तीरे अग्गिं जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गिं जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा उट्ठायासना समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि– ''को नु खो इमं हब्यसेसं भुञ्जेय्या''ति? अद्दसा खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले ससीसं पारुतं निसिन्नं। दिस्वान वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन कमण्डलुं गहेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पदसद्देन सीसं विवरि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो 'मुण्डो अयं भवं, मुण्डको अयं भव'न्ति ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि– 'मुण्डा पि हि इधेकच्चे ब्राह्मणा भवन्ति; यंनूनाहं तं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय्यं'ति।

(संस्कृतच्छाया) 9. एकस्मिन् समये भगवान् कौशलेषु विहरति सुन्दरिकायाः नद्याः तीरे। तत्र खलु पुनः समयेन सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणः सुन्दरिकायाः नद्याः तीरे अग्नि जुहोति, अग्निहोत्रं परिचरति। अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजः ब्राह्मणः अग्निहोत्रम् जुहित्वा(हुत्वा) अग्निहोत्रं परिचार्य उत्थायासनः समन्तात् चतुर्दिशम् अनुविलोकयति– ''कः नु खलु इमं हव्यशेषं भुञ्जेत्''इति? अद्राक्षीत् खलु सुन्दरिकभारद्वाजः ब्राह्मणो भगवन्तम् अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले स्वशीर्षं प्रावृतं निषण्णम्। दृष्टवा वामहस्तेन हव्यशेषं गृहीत्वा दक्षिणेन हस्तेन कमण्डलुं गृहीत्वा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्। अथ खलु भगवान् सुन्दरिकभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य पादशब्देन शीर्षं व्यवीवरत्। अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजः ब्राह्मणो 'मुण्डोऽयं भवान्, मुण्डकोऽयं भवान्' इति तत् एव पुनः निवृत्तितुकाम अभूत्। अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य एतदभूत्– 'मुण्डोऽपि हि इह क्वचित् ब्राह्मणाः भवन्ति; यन्नूनमहं तम् उपसङ्क्रम्य जातिं पृच्छेयम्'इति।

(हिन्दी) भगवान् द्वारा ऐसा कहा जाने पर.....पूर्ववत्.....आयुष्मान् भारद्वाज एक अर्हत् हो गये।

9. एक समय भगवान् बुद्ध सुन्दरिका नदी के तट पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण उस सुन्दरिका नदी के तट पर हवन कर उससे अवशिष्ट हविर्भाग को इस उद्देश्य से सुरक्षित रखे हुए था कि कोई इस हविर्भाग का सुयोग्य दक्षिणेय श्रमण या ब्राह्मण अपना भोज्य बना ले। उस सुन्दरिक भारद्वाज ने आसन से उठकर दूर तक देखा तो उसने दूर तट पर भगवान् को देखा जो अपना शिर वस्त्र से ढक कर साधना में विराजमान थे। तब वह सुन्दरिक भारद्वाज बाँये हाथ में वह हविर्भाग तथा दूसरे हाथ के कमण्डलु लेकर वहाँ गया जहाँ भगवान् विराजमान थे। उस समय, भगवान् ने वहाँ आते हुए सुन्दरिक भारद्वाज के आने की पदध्वनि सुनकर अपने शिर पर से वस्त्र हटा दिया। तब उन्हें देखते ही वह ब्राह्मण बोल उठा-''अरे! मथमुंडा है! अरे! यह मथमुंडा है!'' यह सोचकर पीछे लौट ही रहा था कि उसके ध्यान में आया-''अरे! मुण्डित शिरवाला भी कोई ब्राह्मण हो सकता है, तो क्यों न पहले इसकी जाति ही पूछ ली जाय।''

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच– 'किंजच्चो भवं'ति?

''मा जातिं पुच्छ चरणञ्च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनोपि मुनि धितिमा, आजानीयो होति हिरीनिसेधो॥
''सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो।
यञ्ञोपनीतो तमुपव्हयेथ, कालेन सो जुहति दक्खिणेय्ये''ति॥
''अद्धा सुयिट्ठं सुहुतं मम यिदं, यं तादिसं वेदगुमद्दसामि।
तुम्हादिसानञ्हि अदस्सनेन, अञ्ञो जनो भुञ्जति हब्यसेसं''ति॥
''भुञ्जतु भवं गोतमो। ब्राह्मणो भवं''ति।
''गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् एतदवोचत्– 'किं जातिकः भवान्'इति?

''मा जातिं पृच्छ चरणञ्च पृच्छ, काष्ठात् ह्वै जायते जातवेदः।
नीचाकुलीनोऽपि मुनिः धृतिमान्, आजानीयो भवति ह्रीनिषेधः॥
''सत्येन दान्तः दमेन उपेतः, वेदन्तग उषितब्रह्मचर्यः।
यज्ञोपनीतः तमुपाह्वयेत्, कालेन सः जुहोति दाक्षिणेयः''इति॥
''अद्धा! स्विष्टं सुहुतं ममेदम्, यत्त्वादृशं वेदगमुत्पश्यामि।
यत् त्वादृशानां हि अदर्शनेन, अन्यः जनः भुनक्ति हव्यशेषम्''इति॥
''भुनक्तु भवान् गौतम! ब्राह्मणः भवान्''इति।
''गाथाभिगीतं मया अभोजनीयम्, सम्पश्यन्ताम् ब्राह्मण! नैषः धर्मः।

(हिन्दी) तब उस ब्राह्मण ने भगवान् के पास जाकर पूछा-''आपकी क्या जाति है?''

भगवान् ने उत्तर दिया- ''ब्राह्मण! मेरी जाति न पूछ, आचरण पूछ! क्योंकि प्रत्येक अग्नि काष्ठ से ही उत्पन्न होती है। नीच कुल में भी कोई जन्म लेकर, साधना के बल पर, एक उच्च कोटि का मुनि होते है, श्रेष्ठ और लज्जाशील पुरुष होते है।

सत्य आचरण से मनुष्य इन्द्रियसंयमी होते है, दुःखों के अन्त को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य के फल पाये, ऐसे यज्ञोपवीतधारी का तुम आह्वान करो, वही समय पर वास्तविक हवन करता है। वही सच्चा दक्षिणापात्र है''। यह सुनकर सुन्दरिक भारद्वाज बोला-''निश्चय हि मेरा यह यज्ञ सफल हो गया कि मुझे आप जैसे सुयोग्य ज्ञानी मिल गया। आप जैसे ज्ञानियों के दर्शन न होने के कारण ही अन्य दूसरे तीसरे साधारण लोग इस हविःशेष को खा जाया करते थे। ''आप इस हविःशेष का भोग लगावें, क्योंकि आप वास्तविक ब्राह्मण हैं।''

भगवान्-''धर्मोपदेश करने पर प्राप्त हुए भोजन को मैं स्वीकार नहीं किया करता। हे ब्राह्मण! ज्ञानियों के लिये यह उचित भी नहीं होता।

गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा॥
''अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तञ्हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती''ति॥

''अथ कस्स चाहं, भो गोतम, इमं हब्यसेसं दम्मी''ति? ''न ख्वाहं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्सेसो हब्यसेसो भुत्तो सम्मा परिणामं गच्छेय्य अञ्ञत्र, ब्राह्मण, तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा। तेन हि त्वं, ब्राह्मण, तं हब्यसेसं अप्पहरिते वा छड्डेहि अप्पाणके वा उदके ओपिलापेही''ति।

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो तं हब्यसेसं अप्पाणके उदके ओपिलापेसि। अथ खो सो हब्यसेसो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति।

(संस्कृतच्छाया) गाथाभिगीतम् प्रणुदन्ति बुद्धाः, धर्मे सति ब्राह्मण! वृत्तिरेषा॥
''अन्येन च केवलिनं महर्षिम्, क्षीणास्रव कौकृत्योपशान्तम्।
अन्नेन पानेन उपस्थेयात्, क्षेत्रं हि तत् पुण्यप्रेक्षस्य भवति''इति॥

''अथ कस्मै चाहम्, भो गौतम! इमं हव्यशेषं ददामि''इति? ''न खल्वहम्, ब्राह्मण! पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मण्यां प्रजायां सदेवमनुषिकायां यस्मै एषो हविर्शेषो भुक्तः सम्यक् परिणामं गच्छेत् अन्यत्र, ब्राह्मण! तथागतस्य वा तथागतश्रावकस्य वा। तत्र हि त्वम्, ब्राह्मण! तं हव्यशेषम् अप्रहरिते वा छर्दय, अप्राणिके वा उदके अवप्लावय''इति।

अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो तं हव्यशेषं अप्राणिके उदके अवप्लावयत। अथ खलु सः हव्यशेषः उदके प्रक्षिप्तः *चिच्चिटायति चिटिचिटायति* संधूपायते सम्पधूपायते।

(हिन्दी) बुद्ध ने भी इस परम्परा को निभाया है। धर्मानुसार जीवनयापन करने वाले को ऐसा ही करना चाहिये। ''हाँ, तुम दूसरे अन्न से पान से, केवली महर्षि, क्षीणास्रव एवं परमशुद्ध श्रमणों की सेवा कर सकते हो। हे पुण्यार्थिन्! इसी से तुम्हारा पुण्य बढ सकता है। यही पुण्य क्षेत्र है।''

तब सुन्दरिक भारद्वाज ने पूछा- ''तो, हे गौतम! मैं यह हविःशेष अब किसको दान करूँ?

भगवान्- ''ब्राह्मण! मैं इन समस्त देवलोक, मारलोक, ब्रह्मलोक, श्रमणब्राह्मण, सहित मनुष्यलोक में ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखता जो इस हविःशेष को खाकर पचा सकता हो। अतः तुम इसे लेकर कहीं ऐसे स्थान पर डाल दो जहाँ हरी घास न उगी हो, या इसे जल में ऐसे स्थान में बहा दो जहाँ प्राणि न हों।''

तब सुन्दरिक भारद्वाज ने उस हव्यशेष को प्राणिरहित जल में बहा दिया। वह हव्यशेष जल में गिरते ही चटचटा उठा, भभक उठा, लहरा उठा,

सेय्यथापि नाम फालो दिवसंसन्तत्तो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति; एवमेव सो हब्यसेसो उदके पक्खित्तो चिच्चिटायति चिटिचिटायति सन्धूपायति सम्पधूपायति।

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहट्ठजातो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं भगवा गाथाहि अज्झभासि–

''मा ब्राह्मण दारु समादहानो, सुद्धिं अमञ्ञि बहिद्धा हि एतं।
न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति, यो बाहिरेन परिसुद्धिमिच्छे॥
''हित्वा अहं ब्राह्मण दारुदाहं, अज्झत्तमेवुज्जलयामि जोतिं।
निच्चग्गिनी निच्चसमाहितत्तो, अरहं अहं ब्रह्मचरियं चरामि॥

(संस्कृतच्छाया) तद्यथापि नाम फालो दिवसां सन्तप्तः उदके प्रक्षिप्तः *चिच्चिटायति चिटिचिटायति* संधूपायते सम्पधूपायते; एवमेव सः हव्यशेषः उदके प्रक्षिप्तः *चिच्चिटायति चिटिचिटायति* संधूपायते सम्पधूपायते।

अथ खलु सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणः संविग्नः रोमहर्षितः जातो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य एकान्ते अस्थात्। एकान्ते स्थितं खलु सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं भगवान् गाथया अध्यभाषत–

''मा ब्राह्मण दारु समादाहयन्, शुद्धिम् अमन्यत् बहिर्णाम् हि एताम्।
न हि तत्र शुद्धिं कुशलाः वदन्ति, यः बाह्यतः परिशुद्धिमिच्छेत्॥
''हित्वा अहं ब्राह्मण! दारुदाहं, अध्यात्ममेवोज्वलयामि ज्योतिम्।
नित्याग्निः नित्यसमाहितात्मा, अर्हत् अहम् ब्रह्मचर्यं चरामि॥

(हिन्दी) जैसे कि धूप में दिन भर पड़ा हुआ हल का फाल जल में डालते ही चटपटा उठता है, भभक उठता है, लहरा उठता है।

तदनन्तर, सुन्दरिक भारद्वाज आश्चर्यचकित होकर भगवान् के पास गया, तब भगवान् ने उसको यह कहा- ''हे ब्राह्मण! तूँ लकड़ियाँ जला जला कर की गयी अपनी बाह्य शुद्धि न समझ। यह तो केवल बाह्य प्रदर्शनमात्र है। पण्डित जन इस बाह्य शुद्धि को वास्तविक शुद्धि नहीं मानते।

''ब्राह्मण! मैं इस काष्ठदाह की उपेक्षा करता हुआ अध्यात्म ज्योति प्रज्वलित करने को ही महत्त्व देता हूँ। मेरी यह अध्यात्म ज्योति नित्य प्रज्वलित रहती है, मैं नित्य समाहित रहता हूँ। मैं ज्ञानपूर्वक सतत धर्मसाधना में निरत रहता हूँ।

''मानो हि ते ब्राह्मण खारिभारो, कोधो धुमो भस्मनि मोसवज्जं।
जिव्हा सुजा हृदयं जोतिठानं, अत्ता सुदन्तो पुरिसस्स जोति॥
''धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो, अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वेदगुनो सिनाता, अनल्लगत्ताव तरन्ति पारं॥
''सच्चं धम्मो संयमो ब्रह्मचरियं, मज्झे सिता ब्राह्मण ब्रह्मपत्ति।
स तुज्जुभूतेसु नमो करोहि, तमहं नरं धम्मसारीति ब्रूमी''ति॥

एवं वुत्ते, सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसी''ति।

7.1.10. बहुधीतरसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स चतुद्दस बलीबद्दा नट्ठा होन्ति। अथ खो

(संस्कृतच्छाया) ''मानः हि ते ब्राह्मण खारिभारः, क्रोधो धूमः भस्मो मृषावद्यम्।
जिह्वा स्रुवा हृदयं ज्योति स्थानम्, आत्मा सुदान्तः पुरुषस्य ज्योतिः॥
''धर्मः हृदो ब्राह्मण! शीलतीर्थः, अनाविलः सद्भिः सतां प्रशस्तः।
यत्र हवै वेदगुणः निष्णातः, अनार्द्र गात्रमिव तरन्ति पारम्।।
''सत्यं धर्मः संयमः ब्रह्मचर्यम्, मध्ये स्थितः ब्राह्मण! ब्रह्म पतिः।
सः त्वं ऋजुभूतेभ्यः नमः कुरु, तमहं नरं धर्मसारीति ब्रवीमि''इति॥

एवम् उक्ते, सुन्दरिकभारद्वाजः ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अन्यतरः च पुनरायुष्मान् भारद्वाजो अर्हत् अभूत्''इति।

10. एकस्मिन् समये भगवान् कोसलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तत्र खलु पुनः समये अन्यतरस्य भारद्वाजगोत्रस्य ब्राह्मणस्य चतुर्दशबलीवर्दाः नष्टा अभूवन्। अथ खलु

(हिन्दी) ''हे ब्राह्मण! अभिमान ही तुम्हारे लिये अन्नरूप है, क्रोध धुआँ है, असत्य भाषण ही भस्म है। जिह्वा स्रुवा है, हृदय अग्निकुण्ड है, संयत आत्मा ही पुरुष की अन्तर्ज्योति है।

''धर्म जलाशय है, शील उसका तट है, वह निर्मल है तथा सज्जनों द्वारा प्रशस्त है। ज्ञानिजन उसमें स्नान करते हैं। स्वच्छ हृदय वाले साधक अपना शरीर गीला किये विना इसको पार कर जाते हैं।

''सत्य, धर्म, संयम एवं सतत धर्माभ्यास करने वाला, मध्यममार्ग स्वीकार करने वाला साधक ही श्रेष्ठ है। अतः ऐसे सन्मार्गारूढ साधक को प्रणाम करो। मेरी दृष्टि में ऐसा सतत धर्माभ्यासी ही श्रेष्ठ है।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण.....पूर्ववत्...वह भारद्वाज ब्राह्मण अर्हतों में एक हो गया।

10. एक समय भगवान् बुद्ध कौशल देश किसी वनखण्ड में साधना हेतु विराजमान थे। उसी समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के चौदह बैल खो गये। तब

भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो ते बलीबद्दे गवेसन्तो येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अद्दस भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमा गाथायो अभासि–

''न हि नूनिमस्स समणस्स, बलीबद्दा चतुद्दस।
अज्जसट्ठिं न दिस्सन्ति, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, तिलाखेत्तस्मि पापका।
एकपण्णा दुपण्णा च, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, तुच्छकोट्ठस्मि मूसिका।
उस्सोळ्हिकाय नच्चन्ति, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, सन्थारो सत्तमासिको।

(संस्कृतच्छाया) भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः तान् बलीवर्दान् गवेषयन् यत्र सः वनखण्डः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य अद्राक्षीत् भगवन्तं तस्मिन् वनखण्डे निषण्णं पर्यङ्कम् आभुञ्ज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय परिमुखं स्मृतिम् उपस्थाप्य। दृष्ट्वा यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः सान्तिके इमां गाथाम् अभाषत–

''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, बलीवर्दाः चतुर्दश।
अद्यषष्टेऽहनि न दृश्यन्ते, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, तिलक्षेत्रेऽस्मिन् पापकाः।
एकपर्णाः द्विपर्णाश्च, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, तुच्छकोष्ठस्मिन् मूषकाः।
सोल्लासकायाः नृत्यन्ति, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, संस्तरेः सप्तमासिकम्।

(हिन्दी) वह ब्राह्मण अपने उन चौदह बैलों को खोजता हुआ उसी वनखण्ड में पहुँचा जहाँ भगवान् साधना हेतु विराजमान थे। वहाँ पहुँच कर उसने भगवान् को उसी वनखण्ड में शरीर को सीधा कर, स्मृति सँजाये हुए पद्मासन से बैठे हुए देखा। देखकर वह भगवान् के पास गया। तथा वहाँ जाकर वह ये गाथाएँ बोला-

''अवश्य ही इस श्रमण के, मेरी तरह, चौदह बैल नहीं खोये गये हैं, तभी वह आज छह दिन से इसके विषय में कुछ ज्ञात न होने के कारण सुखी एवं निश्चिन्त है।

''अवश्य इस श्रमण के खेतों में तिलों आदि का नाश नहीं होता होगा! न इसको यही चिन्ता है कि इसके खेतों के तिल एक एक पत्ते वाले हुए या दो पत्तों वाले! इसी लिये यह श्रमण सुखी है!।

''अवश्य ही इस श्रमण के खाली पड़े धान्यागार में चूहे व्यायाम नहीं करते, इसी लिये यह श्रमण सुखी है!।

''अवश्य ही विगत सात मास से इस श्रमण की खाट में,

उप्पाटकेहि सञ्छन्नो, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, विधवा सत्त धीतरो।
एकपुत्ता दुपुत्ता च, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, पिङ्गला तिलकाहता।
सोत्तं पादेन बोधेति, तेनायं समणो सुखी॥
''न हि नूनिमस्स समणस्स, पच्चूसम्हि इणायिका।
देथ देथाति चोदेन्ति, तेनायं समणो सुखी''ति॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, बलीबद्दा चतुद्दस।
अज्जसट्ठिं न दिस्सन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, तिलाखेत्तस्मि पापका।
एकपण्णा दुपण्णा च, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥

(संस्कृतच्छाया) उद्दंशकैः सञ्छिन्नम्, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, विधवा सप्त दुहितारः।
एकपुत्राः द्विपुत्राः च, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, पिङ्गलाः तिलाहताः।
सुप्तं पादेन बोधयति, तेनायं श्रमणः सुखी॥
''न हि नूनमस्य श्रमणस्य, प्रत्यूषसमये ऋणदायकाः।
देहि देहीति चोदयन्ति, तेनायं श्रमणः सुखीति॥
न हि मम ब्राह्मण!, बलीवर्दाः चतुर्दश।
अद्यषष्टेऽहानि न दृश्यन्ते, तत्राहं ब्राह्मण! सुखी॥
''न हि मम ब्राह्मण!, तिलक्षेत्रेऽस्मिन् पापकाः।
एकपर्णाः द्विपर्णाः च, तत्राहं ब्राह्मण! सुखी॥

(हिन्दी) आसन में जूँ या खटमल नहीं पड़े होंगे, तभी यह श्रमण सुखी है!।'' ''अवश्य ही इस श्रमण की सात विधवा पुत्रियाँ एक बेटे वाली या दो बेटे वाली नहीं है, इसी लिये यह ब्राह्मण सुखी है!।
''अवश्य ही इस श्रमण की (रक्ताल्पता के कारण) पीली पड़ी हुई तथा सारे शरीर में तिलों वाली स्त्री नहीं होगी जो इसको प्रातःकाल पैर के प्रहार से जगाती हो, इसी लिये यह सुखी है। ''अवश्य ही इस श्रमण को प्रतिदिन सुबह-सुबह कर्जदाताओं की 'हमारा कर्ज चुकाओ, ''हमारा कर्ज चुकाओ'- यह कर्कश शब्दावलि नहीं सुननी पड़ती होगी, इसी लिये यह श्रमण 'सुखी' ज्ञात होता है!''। भगवान्- ''हाँ, ब्राह्मण! तुम्हारी यह बात सत्य है कि तुम्हारी तरह मेरे चौदह बैल नहीं खोये गये, इसलिये मैं सुखी हूँ!''। ''मेरे खेतों में तिलों आदि का नाश नहीं होता! इसलिये मैं सुखी हूँ!''। न मुझे इसकी चिन्ता है कि मेरे खेतों के तिल एक एक पत्ते वाले हुए या दो पत्तों वाले! इसलिये मैं सुखी हूँ!''।

''न हि मय्हं ब्राह्मण, तुच्छकोट्ठस्मि मूसिका।
उस्सोळ्हिकाय नच्चन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, सन्थारो सत्तमासिको।
उप्पाटकेहि सञ्छन्नो, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, विधवा सत्त धीतरो।
एकपुत्ता दुपुत्ता च, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, पिङ्गला तिलकाहता।
सोत्तं पादेन बोधेति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी॥
''न हि मय्हं ब्राह्मण, पच्चूसम्हि इणायिका।
देथ देथाति चोदेन्ति, तेनाहं ब्राह्मणा सुखी''ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं

(संस्कृतच्छाया) ''न हि मम ब्राह्मण, तुच्छकोष्ठेस्मिन् मूषकाः।
सोल्लासकायाः नृत्यन्ति, तत्राहं ब्राह्मण! सुखी॥
''न हि मम ब्राह्मण, संस्तारेः सप्तमासिकैः।
उपदंशकै सञ्छिन्नम्, तेनाहं ब्राह्मण! सुखी॥
''न हि मम ब्राह्मण!, विधवाः सप्त दुहितारः।
एकपुत्राः द्विपुत्राःच, तेनाहं ब्राह्मण! सुखी॥
''न हि मम ब्राह्मण!, कृष्णश्वेत वर्णाच्छन्न गात्रा।
सुप्तं पादेन बोधयति, तेनाहं ब्राह्मण! सुखी॥
''न हि मम ब्राह्मण!, प्रत्यूषसमये ऋणदायकाः।
देहि दहीति चोदयन्ति, तत्राहं ब्राह्मण! सुखी''इति॥

एवम् उक्ते, भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः भगवन्तम् एतदवोचत् ''अभिकान्तम्, भो गौतम! अभिकान्तम्, भो गौतम! तद्यथापि, भो गौतम! निकुज्जितं वा उत्कुज्जेत्, प्रतिच्छन्नं

(हिन्दी) मेरे खाली पड़े धान्यागार में चूहे व्यायाम नहीं करते, इसलिये मैं सुखी हूँ!''।..... मेरे खाट में, आसन में जूँ या खटमल नहीं पड़े होंगे, इसलिये मैं सुखी हूँ!''।..... मेरे सात विधवा पुत्रियाँ एक बेटे वाली या दो बेटे वाली नहीं है, इसलिये मैं सुखी हूँ!''। मुझे प्रतिदिन सुबह-सुबह कर्जदाता भी मुझे अपनी कर्कश वाणी से पीडित नहीं करते, इसलिये मैं 'सुखी' ज्ञात होता हूँ''!

ऐसा कहे जाने पर वह भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण यह बोला-''हे गौतम! आप धन्य हैं, जैसे कोई उलटे को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे,

वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य– चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्तीति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च। लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं''ति।

अलत्थ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव– यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं– ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया''ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसीति।

(संस्कृतच्छाया) वा विवरेत्, मूढस्य वा मार्गम् आचिक्षेत्, अन्धकारे वा तैलप्रद्योतं संधार्य– चक्षुमन्तः रूपाणि दर्शयेत् इति; एवमेव भगवता गौतमेन अनेकपर्यायेण धर्मः प्रकाशितः। एषोऽहं भवन्तं गौतमं शरणं गच्छामि धर्मञ्च भिक्षुसङ्घञ्च। लभेयाहं भवतः गौतमस्य अन्तिके प्रव्रज्यां, लभेयम् उपसम्पदाम्''इति।

अलभत खलु भारद्वाजगोत्रः ब्राह्मणः भगवतः सान्तिकं प्रव्रज्जाम्, अलभत उपसम्पदाम् च। अचिरोपसम्पन्नः पुनरायुष्मान् भारद्वाजः एक व्यपकृष्ट अप्रमत्त आतापी प्रहीतात्मा विहरन् नचिरस्यैव– यस्यार्थाय कुलपुत्राः सम्यगेव अगारात् अनागारिकं प्रव्रजन्ति, तदनुत्तरं– ब्रह्मचर्यवसानं दृष्टवैव धर्मे स्वयम् अभिज्ञा साक्षीकृत्य उपसम्प्रद्य व्यहर्षित्। ''क्षीणा जातिः, उषितं ब्रह्मचर्यम्, कृतं करणीयम्, नापरम् इहार्थाय''इति अभ्यज्ञासीत्। अन्यतरश्च पुनरायुष्मान् भारद्वाजो अर्हत् अभूत् इति।

(हिन्दी) भटके हुए को सही मार्ग बता दे, अन्धकार में तैल का दीपक जला कर खड़ा हो जाय कि आँखों वाले मार्ग देख लें, वैसे ही आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश किया! यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की....पूर्ववत्....।

बाद में उस ब्राह्मण ने भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर ली। सम्पन्न होने के कुछ ही समय बाद, भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण ने एकान्त में अप्रमत्त, आतापी तथा संयतेन्द्रिय होकर विहार करते हुए शीघ्र ही उस धर्मसाधना के चरम निष्कर्ष (अन्तिम परिणाम) को प्राप्त कर लिया, जिसके लिये कोई भी कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक, छोड़कर प्रव्रज्या लिया करते हैं। तथा उसने-''मेरी जन्मपरम्परा अब क्षीण हो गयी, मेरी धर्मसाधना भी पूर्ण हो गयी, जो मेरा कर्तव्य था उसको मैने पूर्ण कर लिया, अब मेरे लिये आगे कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह गया'- ऐसा जान लिया।

वह भारद्वाज ब्राह्मण कुछ समय बाद ही अर्हत्त्व प्राप्त कर गया।

अरहन्तवग्गो पठमो।

तस्सुद्दानं– धनञ्जानी च अक्कोसं, असुरिन्दं बिलङ्गिकं।
अहिंसकं जटा चेव, सुद्धिकञ्चेव अग्गिका।
सुन्दरिकं बहुधीतरेन च ते दसाति॥

2. उपासकवग्गो

7.2.1. कसिभारद्वाजसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति दक्खिणागिरिस्मिं एकनाळायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पञ्चमत्तानि नङ्गलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पकाले। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो भगवा येन परिवेसना तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय ठितं। दिस्वा

(संस्कृतच्छाया) तस्योद्दानम्– 'धनञ्जानी च अक्रोशक, असुरेन्द्रं विलङ्गिकम्।
अहिंसकं जटा चैव, शुद्धिकञ्चैव अग्निका।
सुन्दरिकं बहुदुहीतारेन च ते दशः' इति॥

1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् मगधेषु विहरति दक्षिणागिरौ एकनालायां ब्राह्मणग्रामे। तस्मिन् खलु पुनः समये कृषिभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य पञ्चमात्राणि लाङ्गलशतानि प्रयुक्तानि भवन्ति वप्रकाले। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्नसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय यत्र कृषिभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य कर्मान्तः तत्रोपसमक्रमीत्। तस्मिन् खलु पुनः समये कृषिभारद्वाजस्य ब्राह्मणस्य परिवेशण वर्तते। अथ खलु भगवान् यत्र परिवेशण तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य एकान्ते अस्थात्। अद्राक्षीत् खलु कृषिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय स्थितम्। दृष्ट्वा

(हिन्दी) इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रसूची- 1.धनंजानीसूत्र 2. आक्रोशकसूत्र, 3. असुरेन्द्रसूत्र, 4. विलिङ्गिकसूत्र, 5. अहिंसकसूत्र, 6. घटसूत्र, 7. शुद्धिसूत्र, 8. अग्निकसूत्र, 9. सुन्दरिकसूत्र एवं 10. बहुधीतासूत्र।

1. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध मगध देश के दक्षिणागिरि स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण ग्राम में विहार करते थे। उस समय बोनी के काल पर कृषिभारद्वाज नामक ब्राह्मण के खेतों में पाँच सौ हल एक साथ चलते थे। तभी कभी भगवान् प्रातः अपने वस्त्रों को व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के खेतों पर पहुँचे। उस समय कृषिभारद्वाज ब्राह्मण के कृषिकर्म स्थान पर भोजन दिया जा रहा था। भगवान् भी भोजन लेने वालों की पंक्ति में जाकर एक ओर खड़े हो गये। कृषिभारद्वाज ने जब भगवान् को उस पंक्ति में भिक्षा हेतु खड़े हुए देखा तो वह भगवान्

भगवन्तं एतदवोच– ''अहं खो, समण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि। त्वम्पि, समण, कसस्सु च वपस्सु च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सू''ति।

''अहम्पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामी''ति।''न खो मयं पस्साम भोतो गोतमस्स युगं वा नङ्गलं वा फालं वा पाचनं वा बलीबद्दे वा, अथ च पन भवं गोतमो एवमाह– 'अहम्पि खो, ब्राह्मण, कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामी'''ति।

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''कस्सको पटिजानासि, न च पस्सामि ते कसिं।
कस्सको पुच्छितो ब्रूहि, कथं जानेमु तं कसिं''ति॥
''सद्धा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्ञा मे युगनङ्गलं।
हिरी ईसा मनो योत्तं, सति मे फालपाचनं॥

(संस्कृतच्छाया) भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अहं खलु, श्रमण, कर्षामि च वपामि च, कृष्ट्वा च उप्त्वा च भुञ्जे। त्वमपि, श्रमण! कर्ष च वप च, कृष्ट्वा च उप्त्वा च भुङ्क्ष्व'' इति।

''अहमपि खलु, ब्राह्मण! कर्षामि च वपामि च, कृष्ट्वा च उप्त्वा च भुञ्जे'' इति। न खलु वयं पश्यामः भवतः गौतमस्य युगं वा लाङ्गलं वा फालं वा प्राजनं वा बलीवर्दौ वा, अथ च पुनः भवान् गौतम एवमाह– ''अहमपि खलु, ब्राह्मण, कर्षामि च वपामि च, कृष्ट्वा च उप्त्वा च भुञ्जे'' इति।

अथ खलु कृषिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथायाम् अध्यभाषिष्ट–

''कर्षकः प्रतिजानासि, न च पश्यामि ते कृषिम्।
कर्षकः पृष्टो ब्रूहि, कथं जानीयाम तां कृषिम्''॥
''श्रद्धा बीजं तपो वृष्टिः, प्रज्ञा मे युगलाङ्गलम्।
ह्रीः ईषा मनो योक्त्रं, स्मृतिः मे फालप्राजनम्॥

(हिन्दी) से यह बोला-''श्रमण! मैं खेत जोतता हूँ, बोता हूँ, अन्न पैदा करता हूँ तब खाता हूँ, श्रमण! तुम भी खेत जोतो, बोओ, अन्न पैदा करो तब खाओ!''

भगवान्- ''मैं भी खेत जोतता हूँ, बोता हूँ, जोत कर, बो कर खाता हूँ।''

ब्राह्मण- ''हम तो आप गौतम के हाथों न हल देखते हैं, न फाल, न बैलों के हाँकने का दण्ड या आपके पास कोई बैल ही देख रहे हैं, फिर भी आप कह रहे हैं-मैं भी खेत जोतता हूँ.....तब खाता हूँ।''

तब, कृषिभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से ये गाथाएँ कहीं-

''आप कह तो रहे हैं कि आप कृषक हैं, परन्तु मैं आप की खेती नहीं देख पा रहा हूँ। कृषक(मैं) आप से पूछता है, कहें कि आप उस खेती को मैं कैसे जानूँ?''

भगवान्- ''मेरे पास श्रद्धा ही बीज है, मेरा तप ही बारिश है, मेरी प्रज्ञा ही जूआ तथा हल है। लज्जा (संकोच) ही मेरा हलदण्ड है, मन ही बैलों की रस्सी है। तथा मेरी स्मृति ही बैलों की नियन्त्रित रखने वाला दण्ड है।

''कायगुत्तो वचीगुत्तो, आहारे उदरे यतो।
सच्चं करोमि निद्दानं, सोरच्चं मे पमोचनं॥
''वीरियं मे धुरधोरय्हं, योगक्खेमाधिवाहनं।
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थ गन्त्वा न सोचति॥
''एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतप्फला।
एतं कसिं कसित्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चती''ति॥

''भुञ्जतु भवं गोतमो। कस्सको भवं। यञ्हि भवं गोतमो अमतप्फलम्पि कसिं कसती''ति।

''गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा॥
''अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं।

(संस्कृतच्छाया) ''कायगुप्तो वचोगुप्तः, आहारे उदरे यतः।
सत्यं करोमि निर्दानं, सौरत्यं मे प्रमोचनम्॥
''वीर्यं मे धुरधौरवह्यम्, योगक्षेमाधिवाहनम्।
गच्छति अनिवर्तमानम्, यत्र गत्वा न शोचति॥
''एवमेषा कृषिः कृष्टा, सा भवति अमृतफला।
एतां कृषिं कृष्ट्वा, सर्वदुःखात् प्रमुच्यते''इति॥

''भुङ्क्ताम् भवान् गौतम! कर्षको भवान्। यो हि भवान् गौतमो अमृतफलामपि कृषिं कर्षतीति।

''गाथाभिगीतं मया अभोजनीयम्, सम्पश्यतां ब्राह्मण नैष धर्मः।
गाथाभिगीतं प्रणुदन्ति बुद्धाः, धर्मे सति ब्राह्मण वृत्तिरेषा॥
''अन्येन च केवलिनं महर्षिम्, क्षीणास्रवं कौकृत्योपशान्तम्।

(हिन्दी) ''मैं काय एवं वाणी से संयत रहता हुआ, भोजन की मात्रा जानने वाला, सत्य की निराई करता हूँ। अर्हत्व की प्राप्ति ही मेरा फसल काटना हैं। साधना में पराक्रम रखना ही मेरा बैल है जो मुझे निर्वाण तक ले जाता है। पीछे लौटे बिना आगे ही बढता जाता है जहाँ जाकर मनुष्य शोकरहित हो जाता है।

''इस तरह का मेरा यह कृषिकर्म है। ऐसी कृषि से अमृत का उत्पाद होता है। ऐसी कृषि कर साधना सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाता है।''

यह सुन कर वह ब्राह्मण बोला-''पूजनीय गौतम! आप ससम्मान मेरे यहाँ भोजन करें। आप तो वस्तुतः उत्तम कृषक है, जिनके किये हुए कृषिकर्म से अमृत का उत्पाद होता है।''

तब भगवान् बोले-''धर्मोपदेश करने पर प्राप्त हुए भोजन को मैं स्वीकार नहीं किया करता। हे ब्राह्मण! ज्ञानियों के लिये यह उचित भी नहीं होता। बुद्ध ने भी इस परम्परा को निभाया है। धर्मानुसार जीवनयापन करने वाले को ऐसा ही करना चाहिये।

''हाँ, तुम दूसरे अन्न से पान से, केवली महर्षि, क्षीणास्रव एवं

अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तञ्हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होती''ति॥

एवं वुत्ते, कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'ति।

7.2.2. उदयसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन उदयस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि। अथ खो उदयो ब्राह्मणो भगवतो पत्तं ओदनेन पूरेसि। दुतियम्पि खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन उदयस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि...पे॰... ततियम्पि खो उदयो ब्राह्मणो भगवतो पत्तं ओदनेन पूरेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पकट्ठकोयं समणो गोतमो पुनप्पुनं आगच्छती''ति।

''पुनप्पुनञ्चेव वपन्ति बीजं, पुनप्पुनं वस्सति देवराजा।
पुनप्पुनं खेत्तं कसन्ति कस्सका, पुनप्पुनं धञ्ञमुपेति रट्ठं॥

(संस्कृतच्छाया) अन्नेन पानेन उपतिष्ठ, क्षेत्रं हि तं पुण्यापेक्षाय भवति''इति॥

एवं उक्ते, कृषिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तं शरणं गतम्'' इति।

2. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय यत्र उदयस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत्। अथ खलु उदयः ब्राह्मणः भगवतः पात्रम् ओदनेन अपूरयत्। द्वितीयमपि खलु भगवान् पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय यत्र उदयस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत् ...पे॰... तृतीयम् अपि खलु उदयो ब्राह्मणः भगवतः पात्रम् ओदनेन पूरयित्वा भगवन्तम् एतदवोचत्– ''प्रकर्षकोऽयं श्रमणः गौतमः पुनः पुन आगच्छति'' इति।

''पुनः पुनः चैव वपन्ति बीजम्, पुनः पुनः वर्षति देवराजः।
पुनःपुनः क्षेत्रं कर्षन्ति कृषकाः, पुनः पुनः धान्यमुपैति राष्ट्रम्॥

(हिन्दी) परमशुद्ध श्रमणों की सेवा कर सकते हो। हे पुण्यार्थिन्! इसी से तुम्हारा पुण्य बढ सकता है। यही पुण्य क्षेत्र है।''

भगवान् द्वारा- ऐसा कहे जाने पर वह कृषि भारद्वाज ब्राह्मण से यह बोला- ''धन्य हैं आप, हे गौतम !....पूर्ववत्.....आज से मुझे आप, मेरे प्राण रहने तक, अपना शरणागत उपासक समझें।''

2. श्रावस्ती में ही...। तब भगवान् प्रातःकाल ही, वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र चीवर ले, भिक्षाहेतु उदय ब्राह्मण के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर उदय ब्राह्मण ने भगवान् का पात्र ओदन (भात) से भर दिया। दूसरी बार भी...पूर्ववत्....तीसरी बार भी भगवान् का पात्र ओदन से भर कर उदय ब्राह्मण ने भगवान् को लक्ष्य कर यह कहा- ''यह श्रमण तो बहुत कठोर है कि प्रतिदिन भिक्षा हेतु द्वार पर आ खड़ा होता है।''

''लोग बार-बार खेत में बीज बोते हैं बार-बार मेघों से जल गिरता है। किसान बार-बार खेत जोतते हैं, इसके फलस्वरूप राष्ट्र को बार-बार अन्न मिलता है।''

''पुनप्पुनं याचका याचयन्ति, पुनप्पुनं दानपती ददन्ति।
पुनप्पुनं दानपती ददित्वा, पुनप्पुनं सग्गमुपेन्ति ठानं॥
''पुनप्पुनं खीरनिका दुहन्ति, पुनप्पुनं वच्छो उपेति मातरं।
पुनप्पुनं किलमति फन्दति च, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो॥
''पुनप्पुनं जायति मीयति च, पुनप्पुनं सीवथिकं हरन्ति।
मग्गञ्च लद्धा अपुनब्भवाय, न पुनप्पुनं जायति भूरिपञ्ञो''ति॥

एवं वुत्ते, उदयो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.3. देवहितसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन भगवा वातेहाबाधिको होति; आयस्मा च उपवाणो भगवतो उपट्ठाको होति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं उपवाणं आमन्तेसि–

(संस्कृतच्छाया) ''पुनः पुनः याचकाः याचन्ति, पुनः पुनः दानपतयः ददति।
पुनः पुनः दानपतिः दत्त्वा, पुनः पुनः स्वर्गमुपैति स्थानम्॥
''पुनः पुनः क्षीरणिकाः दुहन्ति, पुनः पुनः वत्स उपैति मातरम्।
पुनः पुनः क्लाम्यति स्पन्दते च, पुनः पुनः गर्भमुपैति मन्दः॥
''पुनः पुनः जायते म्रियते च, पुनः पुनः श्मशानं शतानकं हरति।
मार्गं च लब्ध्वा अपुनर्भवाय, न पुनः पुनः जायते भूरिप्रज्ञः'' इति ॥

एवम् उक्ते, उदयो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतमो धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

3. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् वातेन बाधितो भवति; आयुष्मान् च उपवाणः भगवत उपस्थापकः भवति। अथ खलु भगवान् आयुष्मन्तम् उपवाणम् आमन्त्रयत्–

(हिन्दी) ''तब याचक भी बार-बार भिक्षाहेतु आते रहते हैं, दानी लोग उन्हें बार-बार दान देते हैं। इस तरह वे दानी इन याचकों को बार-बार दान देकर बार-बार स्वर्ग में अपना स्थान सुरक्षित करते हैं।''

"बार-बार ग्वाले दूध दूहते है, बार-बार बच्चा माँ के पास जाता है, बार-बार मेहनत करते है"।

''कोई मूर्ख पापी यहाँ बार-बार पैदा होता है, बार-बार मरता है, बार-बार उसकी अर्थी श्मशान ले जायी जाती है। इसके विपरीत, बुद्धिमान् पुरुष पुनर्जन्म से मुक्ति पाने का मार्ग खोज कर अन्त में ज्ञान प्राप्त कर बार-बार, जन्म मरण के क्रम से मुक्ति पा जाता है।''

भगवान् द्वारा- ऐसा कहे जाने पर वह उदय ब्राह्मण भगवान से यह बोला- ''धन्य हैं आप, हे गौतम!...पूर्ववत्....आज से मुझे आप, मेरे प्राण रहने तक, अपना शरणागत उपासक समझें।''

3. श्रावस्ती में ही .....। उस समय, भगवान् वात रोग से पीडित हो गये। आयु. उपवाण उस समय भगवान् के सेवक थे। अतः भगवान् ने उपवाण से कहा-

''इङ्घ मे त्वं, उपवाण, उण्होदकं जानाही''ति। ''एवं, भन्ते''ति खो आयस्मा उपवाणो भगवतो पटिस्सुत्वा निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन देवहितस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं अट्ठासि। अद्दसा खो देवहितो ब्राह्मणो आयस्मन्तं उपवाणं तुण्हीभूतं एकमन्तं ठितं। दिस्वान आयस्मन्तं उपवाणं गाथाय अज्झभासि–

''तुण्हीभूतो भवं तिट्ठं, मुण्डो सङ्घाटिपारुतो।
किं पत्थयानो किं एसं, किं नु याचितुमागतो''ति॥
''अरहं सुगतो लोके, वातेहाबाधिको मुनि।
सचे उण्होदकं अत्थि, मुनिनो देहि ब्राह्मण॥
''पूजितो पूजनेय्यानं, सक्करेय्यान सक्कतो।
अपचितो अपचेय्यानं, तस्स इच्छामि हातवे''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अंग मे त्वम्, उपवाण, उष्णोदकं जानीहि'' इति। ''एवं, भदन्त!'' इति खलु आयुष्मान् उपवाणः भगवतः प्रतिश्रुत्य निवस्य पात्रचीवरमादाय यत्र देवहितस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य तूष्णीभूत एकान्तम् अस्थात्। अद्राक्षीत् खलु देवहितो ब्राह्मण आयुष्मन्तम् उपवाणं तूष्णीभूत एकान्ते स्थितः। दृष्ट्वा आयुष्मन्तम् उपवाणं गाथायाम् अध्यभाषिष्ट–

''तूष्णीभूतः भवान् तिष्ठति, मुण्डः सङ्घाटिप्रावृतः।
किं प्रार्थयमानः किम् गवेषयन्, किन्नु याचितुमागतः'' इति॥
''अर्हत् सुगतः लोके, वातेन बाधितो मुनिः।
चेत् उष्णोदकम् अस्ति, मुनये देहि ब्राह्मण!॥
''पूजितः पूजनीयानाम्, सत्करणीयानां सत्कारितः।
अपचित अपचेयानाम्, तस्य इच्छामि हेतवे''इति॥

(हिन्दी) उपवाण! मेरे लिए कहीं से उष्ण जल की व्यवस्था करो।" अच्छा, भन्ते!" कहा कर, वह उपवाण अपने शरीर के वस्त्र व्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर देवहित ब्राह्मण के घर गया। जाकर एक ओर खड़ा हो गया। तब देवहित ब्राह्मण ने आयुष्मान् उपवाण को शान्त खड़े देखकर इस गाथा में कहा (पूछा)- ''हे श्रमण! आप शिर मुंडाये सङ्घाटि धारण कर, चुपचाप शान्त खड़े हो, क्या चाहते हैं? हे ब्राह्मण! आप क्या खोजते, क्या माँगने के लिये आये है?''

उपवाण बोले- ''हे ब्राह्मण! लोक में प्रसिद्ध अर्हत्, मुनिस्वरूप भगवान् सुगत को कोई वातरोग पीड़ित कर रहा है। यदि गरम पानी है, तो ब्राह्मण मुनि के लिए दो। (यदि आप उसकी व्यवस्था कर सकें तो कर दें।) ''क्यों कि वे तथागत पूजनीयों में पूजनीय एवं सत्करणीयों में सत्करणीय हैं। आदरणीयों में आदरणीय भी हैं, उन्हीं के स्नान के लिये मैं चाहता हूँ''।

अथ खो देवहितो ब्राह्मणो उण्होदकस्स काजं पुरिसेन गाहापेत्वा फाणितस्स च पुटं आयस्मतो उपवाणस्स पादासि। अथ खो आयस्मा उपवाणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं उण्होदकेन न्हापेत्वा उण्होदकेन फाणितं आलोलेत्वा भगवतो पादासि। अथ खो भगवतो आबाधो पटिप्पस्सम्भि।

अथ खो देवहितो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''कत्थ दज्जा देय्यधम्मं, कत्थ दिन्नं महप्फलं।
कथञ्हि यजमानस्स, कथं इज्झति दक्खिणा''ति॥
''पुब्बेनिवासं यो वेदी, सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु देवहितो ब्राह्मण उष्णोदकस्य पात्रं पुरुषेण ग्राहयित्वा फाणितस्य च पुटम् आयुष्मते उपवाणाय प्रादात्। अथ खलु आयुष्मान् उपवाणः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् उष्णोदकेन स्नापयित्वा उष्णोदकेन फाणितम् आलोड्य भगवते प्रादात्। अथ खलु भगवत आबाधः प्रतिप्राशमत्। अथ खलु देवहितो ब्राह्मणः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य भगवता सार्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथायाम् अध्यभाषिष्ट–

''कस्मै दद्यात् देय धर्मम्, कस्मिन् दत्ते महत्फलम्।
कीदृशस्य यजमानस्य, कथं ऋध्यति दक्षिणा''इति॥
''पूर्वनिवासं यो वेत्ति, स्वर्गापायञ्च पश्यति।
अथ जातिक्षयं प्राप्तः, अभिज्ञावसितो मुनिः॥

(हिन्दी) तब देवहित ब्राह्मण ने अपने नौकरों से गरम पानी से भरी बालटियों को उठवाकर साथ ही उनको गुड की एक पोटली भी दिया। यह सब लेकर आयुष्मान् उपवाण भगवान् के पास लौट गये। तथा भगवान् को उस गरम पानी से नहला कर, गरम पानी में ही वह फाणित मिलाकर दिया। इसके प्रयोग से भगवान् का वह वातरोग कुछ शान्त हो गया। एतदनन्तर, देवहित ब्राह्मण भी कुछ समय बाद भगवान् की सेवा में गया, तथा वहाँ जाकर उनसे कुशलक्षेम पूछा। कुशलक्षेम पूछने के बाद, एक ओर बैठे उस ब्राह्मण ने भगवान् से गाथा में कहा (प्रश्न पूछा)-

''कैसे दानपात्र को दाता दान दे? किसको दान देने से महाफल होता है? कैसे यजमान को दी गयी दक्षिणा फलवती होती है?''

भगवान्- ''जो अपने पूर्वजन्मों की बातें जानता है, जो स्वर्ग नरक के विषय में जानता है, जो साधना द्वारा अपनी जन्म-मरणपरम्परा क्षीण कर चुका है, जिसने ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया है।

''एत्थ दज्जा देय्यधम्मं, एत्थ दिन्नं महप्फलं।
एवञ्हि यजमानस्स, एवं इज्झति दक्खिणा''ति॥

एवं वुत्ते, देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.4. महासालसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो अञ्ञतरो ब्राह्मणमहासालो लूखो लूखपावुरणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो तं ब्राह्मणमहासालं भगवा एतदवोच– ''किन्नु त्वं, ब्राह्मण, लूखो लूखपावुरणो''ति? ''इध मे, भो गोतम, चत्तारो पुत्ता। ते मं दारेहि संपुच्छ घरा निक्खामेन्ती''ति। ''तेन हि त्वं, ब्राह्मण, इमा गाथायो परियापुणित्वा सभायं महाजनकाये सन्निपतिते पुत्तेसु च सन्निसिन्नेसु भासस्सु–

(संस्कृतच्छाया) ''अत्र दद्यात् देय धर्मम्, अत्र दत्तं महत्फलम्।
एवं हि यजमानस्य, एवं ऋध्यति दक्षिणा'' इति॥

एवम् उक्ते, देवहितो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम् भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतमो धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तं शरणं गतम्''इति।

4. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु अन्यतरः ब्राह्मणमहाशालः रुक्षः रुक्षप्रावरणः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य भगवता सार्धं सम्मोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु तं ब्राह्मणमहाशालं भगवान् एतदवोचत्– ''किन्नु त्वम्, ब्राह्मण! रुक्षः रुक्षप्रावरणः'' इति? ''इह मे, भो गौतम! चत्वारः पुत्राः। ते मां दारान् संपृच्छ्य गृहात् निष्क्रामयन्'' इति। ''तत्र हि त्वम्, ब्राह्मण! इमां गाथायां परिपूर्य सभायां महाजनकाये सन्निपतितेषु पुत्रेषु च सन्निषण्णेषु भाषस्व–

(हिन्दी) ''दान करने वाला (यजमान) ऐसे सत्पुरुष को ही दान करे। ऐसे यज्ञ करने वाले की ऐसी ही दक्षिणा सफल होती है।'' भगवान् द्वारा- ऐसा कहे जाने पर, देवहित ब्राह्मण भगवान् से यह निवेदन करने लगा- 'धन्य हैं आप, हे गौतम !.....पूर्ववत्....मुझे अपना शरणागत समझें।''

4. श्रावस्ती में ही.....। तब कोई एक ब्राह्मण जो पहले महान् वैभवशाली था, परन्तु आज फटे पुराने वस्त्र पहने हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से कुशलक्षेम पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए ब्राह्मण से भगवान् बुद्ध ने यह पूछा-''इतने फटे पुराने वस्त्र क्यों पहने हुए हो?''

''हे गौतम! मेरे चार पुत्र हैं, उन्होंने मुझे अपनी स्त्रियों के परामर्श से घर से निकाल दिया है।''

''तो, ब्राह्मण! इन गाथाओं को तुम याद कर जब महाजनों के सम्मुख सभा में सब लोग पूर्णतः एकत्र हो गये हो तुम्हारे पुत्र भी वहाँ आ चुके हो, तब तुम वहाँ उच्च स्वर से ये गाथाएँ बोलना-

''येहि जातेहि नन्दिस्सं, येसञ्च भवमिच्छिसं।
ते मं दारेहि संपुच्छ, साव वारेन्ति सूकरं॥
''असन्ता किर मं जम्मा, तात तातति भासरे।
रक्खसा पुत्तरूपेन, ते जहन्ति वयोगतं॥
''अस्सोव जिण्णो निब्भोगो, खादना अपनीयति।
बालकानं पिता थेरो, परागारेसु भिक्खति॥
''दण्डोव किर मे सेय्यो, यञ्चे पुत्ता अनस्सवा।
चण्डम्पि गोणं वारेति, अथो चण्डम्पि कुक्कुरं॥
''अन्धकारे पुरे होति, गम्भीरे गाधमेधति।
दण्डस्स आनुभावेन, खलित्वा पतितिट्ठती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''येषु जातेषु नन्दितः, एषां च भवमीप्सितम्।
ते माम् दाराभिः संपृच्छय, श्वा इव वारयति शूकरम्॥
''असन्ताः किल माम् जाल्माः, तात! तात! इति भाषन्ते।
राक्षसाः पुत्ररूपेण, ते जहति वयोगतम्॥
''अश्व इव जीर्णः निर्भोग्यः, खादनाद् अपनीयते।
बालकानां पिता स्थविरः, परागारेषु भिक्षते॥
''दण्ड एव किल मे श्रेयः, यः चेत् पुत्रा अनाश्रयाः।
चण्डमपि गौणं वारयति, अथ चण्डमपि कुक्कुरम्॥
''अन्धकारे पुरः भवति, गम्भीरे गाधमेधते।
दण्डस्य अनुभावेन, स्खलित्वा प्रतितिष्ठति'' इति॥

(हिन्दी) ''जिनके पैदा होने पर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी, जिनका चिरायु रहना मुझे अत्यधिक अभीष्ट था, आज वे अपनी स्त्रियों के परामर्श से मुझे अपने घर से वैसे ही निकाल दे रहे हैं, जैसे कोई कुत्ता किसी सूअर को।

''वे नीच एवं खोटे यद्यपि मुझे अब भी 'पिता जी' ही कहते हैं, किन्तु वे मेरे लिये अब पुत्र रूप में राक्षस हैं, क्योंकि वे मुझे अब इस बुढापे में अकेला छोड़ रहे हैं।

''जैसे बेकार बुढे घोड़े को उसके स्वामी दाना देना बन्द कर देते हैं, वैसे ही उन पुत्रों का यह बूढा पिता आज दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता फिर रहा है।

''मेरी यह लाठी भी इन (पुत्रों) की अपेक्षा मेरे लिये अधिक हितकर है जो सामने आते हुए भड़के साँड़ को या दुष्ट कुत्तों को दूर हटाने में आज भी समर्थ है।

''यह मेरी लाठी अन्धकार में आगे रहती है, गहरे जल की थाह लगा लेती है। इसी के सहारे से मैं ठोकर लगने पर भी बच जाता हूँ।''

अथ खो सो ब्राह्मणमहासालो भगवतो सन्तिके इमा गाथायो परियापुणित्वा सभायं महाजनकाये सन्निपतिते पुत्तेसु च सन्निसिन्नेसु अभासि–

''येहि जातेहि नन्दिस्सं, येसञ्च भवमिच्छिसं।
ते मं दारेहि संपुच्छ, साव वारेन्ति सूकरं॥
''असन्ता किर मं जम्मा, तात तातति भासरे।
रक्खसा पुत्तरूपेन, ते जहन्ति वयोगतं॥
''अस्सोव जिण्णो निब्भोगो, खादना अपनीयति।
बालकानं पिता थेरो, परागारेसु भिक्खति॥
''दण्डोव किर मे सेय्यो, यञ्चे पुत्ता अनस्सवा।
चण्डम्पि गोणं वारेति, अथो चण्डम्पि कुक्कुरं॥
''अन्धकारे पुरे होति, गम्भीरे गाधमेधति।

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सः ब्राह्मणमहाशालः भगवतः अन्तिके इमां गाथां परिपूर्य सभायां महाजनकाये सन्निपतिते पुत्रेषु च सन्निषण्णेषु अभाषिष्ट–

''येषु जातेषु नन्दितः स्याम्, एषां च भवमीप्सितम्।
ते मां दाराभिः संपृच्छय, श्वा इव वारयति शूकरम्॥
''असन्ताः किल मम जाल्माः, तात! तात! इति भाषन्ते।
राक्षसाः पुत्ररूपेण, ते जहति वयोगतम्॥
''अश्व इव जीर्णः निर्भोग्यः, खादनाद् अपनीयते।
बालकानां पिता स्थविर, परागारेषु भिक्षते॥
''दण्ड एव किल मे श्रेयः, यः चेत् पुत्रा अनाश्रयाः।
चण्डमपि गौणं वारयति, अथ चण्डमपि कुक्कुरम्॥
''अन्धकारे पुरः भवति, गम्भीरे गाधमेधता।

(हिन्दी) यों, उस वैभवशाली ब्राह्मण ने भगवान् से ये गाथाएँ सीख कर भी अपनी जाति की सभा में, पुत्रों द्वारा अपना स्थान ग्रहण कर लेने पर, महाजनों के बीच खड़े होकर उन गाथाओं को उच्चस्वर से पढना आरम्भ किया- ''जिनमें जन्म लेने पर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी, जिनका चिरायु रहना मुझे अत्यधिक अभीष्ट था, आज वे अपनी स्त्रियों के परामर्श से मुझे अपने घर से वैसे ही निकाल दे रहे हैं, जैसे कोई कुत्ता किसी सूअर को। ''वे नीच एवं खोटे यद्यपि मुझे अब भी 'पिता जी' ही कहते हैं, किन्तु वे मेरे लिये अब पुत्र रूप में राक्षस हैं, क्योंकि वे मुझे अब इस बुढापे में अकेला छोड़ रहे हैं। ''जैसे बुढे घोड़े को उसके स्वामी दाना देना बन्द कर देते हैं, वैसे ही उन पुत्रों का यह बूढा पिता आज दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता फिर रहा है। ''मेरी यह लाठी भी इन (पुत्रों) की अपेक्षा मेरे लिये अधिक हितकर है जो सामने आते हुए भड़के साँड़ को या दुष्ट कुत्तों को दूर हटाने में आज भी समर्थ है। ''यह मेरी लाठी अन्धकार में आगे रहती है,

दण्डस्स आनुभावेन, खलित्वा पतितिट्ठती''ति॥

अथ खो नं ब्राह्मणमहासालं पुत्ता घरं नेत्वा न्हापेत्वा पच्चेकं दुस्सयुगेन अच्छादेसुं। अथ खो सो ब्राह्मणमहासालो एकं दुस्सयुगं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो ब्राह्मणमहासालो भगवन्तं एतदवोच– ''मयं, भो गोतम, ब्राह्मणा नाम आचरियस्स आचरियधनं परियेसाम। पटिग्गण्हतु मे भवं गोतमो आचरियधन''न्ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय। अथ खो सो ब्राह्मणमहासालो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे.... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.5. मानत्थद्धसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन मानत्थद्धो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं

(संस्कृतच्छाया) दण्डस्य अनुभावेन, स्खलित्वा प्रतितिष्ठति'' इति॥

अथ खलु तं ब्राह्मणमहाशालम् पुत्राः गृहं नीत्वा स्नापयित्वा प्रत्येकैः दुष्ययुगेन आच्छादितः। अथ खलु सो ब्राह्मणमहाशालः एकं दुष्ययुगम् आदाय यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य भगवता सार्धम् सममोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु तं ब्राह्मणमहाशालं भगवान् एतदवोचत्– ''मया, भो गौतम, ब्राह्मणानाम् आचार्यस्य आचार्यधनेन पर्येष्यामः। प्रतिगृह्णातु मे भवान् गौतम! आचार्यधनम्'' इति। प्रत्यगृह्णान्तु भगवान् अनुकम्पाम् उपादाय। अथ खलु सः ब्राह्मणमहाशालः भगवन्तम् एतदवोचत्–''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे.... उपासकं मां भवान् गौतम धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्'' इति।

5. श्रावस्तीनिदानम्। तत्र खलु पुनः समये मानस्तब्धः नाम ब्राह्मणः श्रावस्त्यां

(हिन्दी) गहरे जल की थाह लगा लेती है। इसी के सहारे से मैं ठोकर लगने पर भी बच जाता हूँ''।

तब उस पूर्ववैभवसम्पन्न ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर ले जाकर स्नान करा कर उसको प्रत्येक ने दुशाला ओढाया। तब वह वैभवशाली ब्राह्मण एक दुशाला साथ में ले कर भगवान् ने सम्मुख गया, तथा उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक तरफ बैठते हुए बोला-

''हे गौतम! हम ब्राह्मणों में यह परिपाटी चली आ रही है कि हम लोग अपने आचार्य को आचार्य-धन से सम्मानित करें।'' अतः हे गौतम! आप मेरी यह भेंट स्वीकार करें। भगवान् ने अनुकम्पा करते हुए यह भेंट स्वीकार कर ली। तब वह वैभवशाली ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''आप धन्य है, हे गौतम!.....पूर्ववत्.....आज से आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।''

5. श्रावस्ती में ही....। उस समय मानस्तब्ध (अभिमान, अकड़) नामक कोई ब्राह्मण श्रावस्ती

पटिवसति। सो नेव मातरं अभिवादेति, न पितरं अभिवादेति, न आचरियं अभिवादेति, न जेट्ठभातरं अभिवादेति। तेन खो पन समयेन भगवा महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। अथ खो मानत्थद्धस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि–''अयं खो समणो गोतमो महतिया परिसाय परिवुतो धम्मं देसेति। यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं। सचे मं समणो गोतमो आलपिस्सति, अहम्पि तं आलपिस्सामि। नो चे मं समणो गोतमो आलपिस्सति, अहम्पि नालपिस्सामी''ति। अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तुण्हीभूतो एकमन्तं अट्ठासि। अथ खो भगवा तं नालपि। अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो– 'नायं समणो गोतमो किञ्चि जानाती'ति ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो भगवा मानत्थद्धस्स ब्राह्मणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय मानत्थद्धं ब्राह्मणं गाथाय अज्झभासि–

''न मानं ब्राह्मण साधु, अत्थिकस्सीध ब्राह्मण।

(संस्कृतच्छाया) प्रतिवसति। स नैव मातरम् अभिवादयति, न पितरम् अभिवादयति, न आचार्यम् अभिवादयति, न जेष्ठभ्रातरम् अभिवादयति। तत्र खलु पुनः समये भगवान् महापरिषदा परिवृतः धर्मं दिशति स्म। अथ खलु मानस्तब्धस्य ब्राह्मणस्य एतदभूत्– ''अयं खलु श्रमणः गौतमः महापरिषदा परिवृतः धर्मं दिशति। यत् नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसङ्क्रामयामि। चेत् माम् श्रमणः गौतमः आलपिष्यति, अहमपि तं आलपिष्यामि। नो चेत् माम् श्रमणः गौतम आलपिष्यति, अहमपि नालपिष्यामि'' इति। अथ खलु मानस्तब्धः ब्राह्मणः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य तूष्णींभूतः एकान्ते अस्थात्। अथ खलु भगवान् तां नालपत्। अथ खलु मानस्तब्धः ब्राह्मणः– 'नायं श्रमणो गौतमः किञ्चित् जानाति' इति तत् एव पुनः निवर्तितुकाम अभूत्। अथ खलु भगवान् मानस्तब्धस्य ब्राह्मणस्य चितस्य चित्तपरिवितर्कमाज्ञाय मानस्तब्धं ब्राह्मणं गाथायां अध्यभाषिष्ट–

''न मानं ब्राह्मण साधु, अर्थिकस्य इह ब्राह्मण!

(हिन्दी) में रहता था। वह न तो अपनी माता को प्रणाम करता था, न पिता को। न आचार्य को प्रणाम करता था, न ज्येष्ठ भ्राता को। भगवान् कभी धर्मसभा में विराजे हुए धर्मोपदेश कर रहे थे। उस समय मानस्तब्ध ब्राह्मण के मन में यह विचार आया-''यह श्रमण गौतम इस विशाल सभा में विराजे हुए धर्मोपदेश कर रहे हैं, यहाँ मैं भी चलूँ। तब यदि ये मुझसे कुछ संवाद करेंगे तो मैं भी उनसे कुछ बातचीत करूँगा, अन्यथा नहीं। तब वह मान्तस्तब्ध ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख गया। जाकर भगवान् के सम्मुख खड़ा हो गया। परन्तु भगवान् उससे कुछ न बोले। इस पर उस मानस्तब्ध ब्राह्मण ने सोचा-''अवश्य ये श्रमण कुछ नहीं जानते, इसी लिये ये मुझसे कोई संवाद करने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। अतः वह वहाँ से पुनः लौट कर चलने की इच्छा करने लगा। तब भगवान् ने उस मानस्तब्ध से कहा-

''ब्राह्मण, सन्तों के सम्मुख आकर इस तरह मान करना उचित नहीं।

येन अत्थेन आगच्छि, तमेवमनुब्रूहये''ति॥

अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो– ''चित्तं मे समणो गोतमो जानाती''ति तत्थेव भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति पाणीहि च परिसम्बाहति, नामञ्च सावेति–

''मानत्थद्धाहं, भो गोतम, मानत्थद्धाहं, भो गोतमा''ति। अथ खो सा परिसा अब्भुतचित्तजाता अहोसि– 'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो! अयञ्हि मानत्थद्धो ब्राह्मणो नेव मातरं अभिवादेति, न पितरं अभिवादेति, न आचरियं अभिवादेति, न जेट्ठभातरं अभिवादेति; अथ च पन समणे गोतमे एवरूपं परमनिपच्चकारं करोती'ति। अथ खो भगवा मानत्थद्धं ब्राह्मणं एतदवोच– ''अलं, ब्राह्मण, उट्ठेहि, सके आसने निसीद। यतो ते मयि चित्तं पसन्नं''ति। अथ खो मानत्थद्धो ब्राह्मणो सके आसने निसीदित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) येन अर्थेन आगतः, तमेवमनुब्रूयात्''इति॥

अथ खलु मानस्तब्धः ब्राह्मणः– ''चित्तं मे श्रमणो गौतमो जानाति'' इति तत्रैव भगवतः पादेषु शिरसा निपत्य भगवतः पादेषु मुखं च परिचुम्बति प्राणिभिः च परिसंवाहयति, नाम च श्रावयति–

''मानस्तब्धः अहम्, भो गौतम! मानस्तब्धः अहम्, भो गौतम!'' इति। अथ खलु सा परिषद अद्भुतचित्तजात अभूत्– 'आश्चर्यं वत भो, अद्भुतं वत भो! अयं हि मानस्तब्धो ब्राह्मणो नैव मातरम् अभिवादयति, न पितरम् अभिवादयति, न आचार्यं अभिवादयति, न ज्येष्ठभ्रातरम् अभिवादयति; अथ च पुनः श्रमणे गौतमे एवरूपं परमनिपत्याकारं करोति' इति। अथ खलु भगवान् मानस्तब्धं ब्राह्मणं एतदवोचत्–''अलम्, ब्राह्मण, उत्थाय, स्वके आसने न्यसीदत्। यतस्ते मयि चित्तं प्रसन्नमिति। अथ खलु मानस्तब्धो ब्राह्मणः स्वके आसने निषद्य भगवन्तम् गाथायां अध्यभाषिष्ट–

(हिन्दी) अतः तुम जिस उद्देश्य से यहाँ आये हो, उसे वैसा कह डालो।''

तब वह मानस्तब्ध ब्राह्मण-''ये गौतम मेरे चित्त की बात जान तो गये।'' तथा वह ब्राह्मण भगवान् के इस व्यवहार से भावविह्वल होकर भगवान् की चरणवन्दना करता हुआ, उनको चरणों को अपने शिर तथा मुख से चूमने लगा, अपने हाथों से पोंछने लगा। और साथ ही अपना नाम सुनाने लगा-''भगवान्! मैं मानस्तब्ध ब्राह्मण हूँ। हे गौतम! मैं मानस्तब्ध ब्राह्मण हूँ''।

तब वहाँ बैठी धर्मपरिषद् आश्चर्य चकित होती हुई सोचने लगी-''अरे! यह बहुत आश्चर्य की बात है, अद्भुत बात है कि यह मानस्तब्ध ब्राह्मण जो न माता को प्रणाम करता था, न पिता को, न आचार्य को, न ज्येष्ठ भ्राता को, वह आज श्रमण गौतम के चरणों पर इतना गिर रहा है!'' भगवान् ने उस ब्राह्मण से कहा-''ब्राह्मण! अब बस करो, उठो, अपना आसन ग्रहण करो, यदि तुम्हारा चित्त मेरे प्रति स्नेहिल हो गया है।'' तब भगवान् ने उस मानस्तब्ध ब्राह्मण ने इस गाथा के माध्यम से यह पूछा-

''केसु न मानं कयिराथ, केसु चस्स सगारवो।
क्यस्स अपचिता अस्सु, क्यस्सु साधु सुपूजिता''ति॥
''मातरि पितरि चापि, अथो जेट्ठम्हि भातरि।
आचरिये चतुत्थम्हि, तेसु न मानं कयिराथ।
तेसु अस्स सगारवो, त्यस्स अपचिता अस्सु। त्यस्सु साधु सुपूजिता॥
''अरहन्ते सीतीभूते, कतकिच्चे अनासवे।
निहच्च मानं अथद्धो, ते नमस्से अनुत्तरे''ति॥

एवं वुत्ते, मानत्थद्धो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

(संस्कृतच्छाया) ''केषु न मानं कुर्यादथ, केषु चास्य सगौरवः।
कस्य अपचितोऽस्तु, कस्यास्तु साधु सुपूजित''इति॥
''मातरि पितरि चापि, अथ ज्येष्ठं भ्रातरि।
आचार्ये चतुर्थे हि, तेषु न मानं कुर्याद्।
तेषु अस्य सगौरवः, कस्य अपचितोऽस्तु। कस्य साधुः सुपूजितः॥
''अरहन्ते शीतीभूते, कृतकृत्ये अनाश्रवे।
निहत्य मानं अर्थज्ञः, तस्मै नमस्येत् अनुत्तरम्''इति॥

एवम् उक्ते, मानस्तब्धः ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतम धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्'' इति।

(हिन्दी) ''हे गौतम! मनुष्य को किनके साथ अभिमान नहीं करना चाहिये! किनके प्रति गौरव का भाव रखना चाहिये? वह किसका सम्मान करे? तथा उसके लिये किसकी पूजा करना अच्छा है?''

भगवान्- ''माता, पिता, ज्येष्ठ तथा चतुर्थ आचार्य-इन चार के प्रति अभिमान न करे, उन्हींके प्रति सदैव अपने मन में आदर भाव रखना चाहिये।

उन्हींका सम्मान किया करे। उनके प्रति अपने मन में सदैव पूजा प्रतिष्ठा का भाव रखे। उनका सबके सम्मुख गौरव करना चाहिये। उनकी पूजा करना ही उचित है।

''अर्हत् (ज्ञानी) के सम्मुख जाने पर उनके प्रति शान्त भाव से, कृतकृत्य होकर, अभिमान त्याग कर निर्विकार भाव से उन्हें प्रणाम करना चाहिये।''

भगवान् द्वारा ऐसा उपदेश किये जाने पर, वह मानस्तबन्ध ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''आप धन्य हैं, हे गौतम! आप धन्य हैं!....पूर्ववत्.....आज से आप मुझे प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक समझें''।

7.2.6. पच्चनीकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन पच्चनीकसातो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति। अथ खो पच्चनीकसातस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि–''यंनूनाहं येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमेय्यं। यं यदेव समणो गोतमो भासिस्सति तं तदेवस्साहं पच्चनीकास्स''न्ति। तेन खो पन समयेन भगवा अब्भोकासे चङ्कमति। अथ खो पच्चनीकसातो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं चङ्कमन्तं एतदवोच– 'भण समणधम्मं'ति।

''न पच्चनीकसातेन, सुविजानं सुभासितं।
उपक्किलिट्ठचित्तेन, सारम्भबहुलेन च॥
''यो च विनेय्य सारम्भं, अप्पसादञ्च चेतसो।
आघातं पटिनिस्सज्ज, स वे जञ्ञा सुभासितं''ति॥

एवं वुत्ते, पच्चनीकसातो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम,

(संस्कृतच्छाया) 6. श्रावस्तीनिदानम्। तस्मिन् खलु पुनः समये प्रत्यनीकशातः नाम ब्राह्मणः श्रावस्त्यां प्रतिवसति। अथ खलु प्रत्यनीकशातस्य ब्राह्मणस्य एतदभूत–''यत् नूनमहं यत्र श्रमणः गौतमः तत्रोपसमक्रामयामि। यं यदैव श्रमणः गौतमः भाषिष्यते तं तदैवास्याहं प्रत्यनीकमहे भाषिष्यामि''इति। तेन खलु पुनः समये भगवान् अभ्राकाशे चङ्क्रमति। अथ खलु प्रत्यनीकशातः ब्राह्मणः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य भगवन्तं चङ्क्रमन्तं एतदवोचत्– 'भण श्रमण धर्मम्'इति।

''न प्रत्यनीकशातेन, सुविज्ञानं सुभाषितम्।
उपक्लिष्टचित्तेन, सारम्भबहुलेन च॥
''यश्च विनीय सारम्भम्, अप्रसादं च चेतसः।
आघातं प्रतिनिःसृज्य, स वै जानाति सुभाषितम्''इति॥

एवम् उक्ते, प्रत्यनीकशातः ब्राह्मणः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम

(हिन्दी) 6. श्रावस्ती में ही..। उस समय एक प्रत्यनीकसात नामक ब्राह्मण श्रावस्ती में रहता था। उस ब्राह्मण के मन में कभी यह (विचार) हुआ- ''मुझे श्रमण गौतम के पास चलना चाहिये। तब वहाँ श्रमण गौतम जो कहेगा उसके विपरीत ही मैं बोलूँगा।'' उस समय भगवान् खुले आकाश के नीचे चंक्रमण कर रहे थे। इसी क्षण वह ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख पहुँचा और उनसे निवेदन करने लगा-''श्रमण! मुझे कुछ धर्मोपदेश कीजिये!''

भगवान् बोले- ''जिसका चित्त मलिन है, जो कलह के लिये सतत तैयार रहता है! ऐसे कलहप्रिय के साथ किसी तरह का संवाद करना उचित नहीं लगता।

''(इसके विपरीत) जिसने अपने द्वेष (विरोध) भाव तथा चित्त की उच्छृङ्खलता को दबाकर द्वेष का सर्वथा छोड़ दिया है, वही सुभाषित का महत्त्व समझ सकता है''।

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह प्रत्यनीकशात ब्राह्मण बोला-''आप गौतम! धन्य हैं

अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.7. नवकम्मिकसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो तस्मिं वनसण्डे कम्मन्तं कारापेति। अद्दसा खो नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं सालरुक्खमूले निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वानस्स एतदहोसि– ''अहं खो इमस्मिं वनसण्डे कम्मन्तं कारापेन्तो रमामि। अयं समणो गोतमो किं कारापेन्तो रमती''ति? अथ खो नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''के नु कम्मन्ता करीयन्ति, भिक्खु सालवने तव।
यदेकको अरञ्ञस्मिं, रतिं विन्दति गोतमो''ति॥

(संस्कृतच्छाया)...पे॰...उपासकं मां भवान् गौतम धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्'' इति।

7. एकस्मिन् समये भगवान् कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन नवकर्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणः तस्मिन् वनखण्डे कामं कारयति स्म। अद्राक्षीत् खलु नवकर्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् अन्यतरस्मिन् शालवृक्षमूले निषण्णः पर्यङ्कम् आभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय परिमुखं स्मृतिम् उपस्थाप्य। दृष्टवा अस्य एतदभूत्– ''अहं खलु अस्मिन् वनखण्डे कामं कुर्वन् रमे। अयं श्रमणो गौतमः किं कार्यं कुर्वन् रमते''इति? अथ खलु नवकर्मिकभारद्वाजः ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्कम्य भगवन्तं गाथायाम् अध्यभाषिष्ट–

''किं नु कर्म करोषि, भिक्षु! शालवने त्वम्।
यदेकक अरण्येऽस्मिन्, रतिं विन्दति गौतम!''इति॥

(हिन्दी)....पूर्ववत्.....शरणागत उपासक समझें''।

7. एक समय भगवान् बुद्ध कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहर करते थे। उस समय किसी नवकार्मिक भारद्वाज ब्राह्मण ने लकड़ी चिरवाते हुए, उस वनखण्ड में किसी साल वृक्ष के नीचे साधनाहेतु पद्मासन से विराजमान, शरीर को सीधाकर, स्मृतिसम्प्रज्ञान के साथ भगवान् को देखा। उन्हें देखकर उसके मन में यह हुआ (विचार आया)-''मैं तो इस जंगल में अपना काम करवा रहा हूँ। ये श्रमण गौतम यहाँ बैठे हुए क्या कर रहे हैं?'' तब वह भगवान् के पास गया, तथा इस गाथा के माध्यम से पूछने लगा-

''हे भिक्षु! इस एकान्त में बैठे हुए आप क्या कार्य कर रहे हैं? अकेले आप यहाँ शाल वन में विराजमान रहकर किस सुख का अनुभव कर रहे हो?''

''न मे वनस्मिं करणीयमत्थि, उच्छिन्नमूलं मे वनं विसूकं।
स्वाहं वने निब्बनथो विसल्लो, एको रमे अरतिं विप्पहाया''ति॥

एवं वुत्ते, नवकम्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.8. कट्ठहारसुत्तं

एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भारद्वाजगोत्तस्स ब्राह्मणस्स सम्बहुला अन्तेवासिका कट्ठहारका माणवका येन वनसण्डो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अद्दसंसु भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वान येन भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भारद्वाजगोत्तं ब्राह्मणं एतदवोचुं– ''यग्घे, भवं जानेय्यासि! असुकस्मिं वनसण्डे समणो निसिन्नो पल्लङ्कं आभुजित्वा

(संस्कृतच्छाया) ''न मे वनेऽस्मिन् करणीयमस्ति, उच्छिन्नमूलं मे वनं विशुष्कम्।
सोऽहं वने निर्वाणार्थो विषल्यः, एको रमे अरतिं विप्रहाय''इति॥

एवम् उक्ते, नवकर्मिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतमो धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

8. एकस्मिन् समये भगवान् कोसलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तस्मिन् खलु पुनः समये अन्यतरस्य भारद्वाजगोत्रस्य ब्राह्मणस्य सम्बहुला अन्तेवासिनः काष्टहारकाः माणवकाः यत्र वनखण्डे तत्रोपसमङ्क्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य अद्राक्षुः भगवन्तम् तस्मिन् वनखण्डे निषण्णः पर्यंकम् आभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय परिमुखं स्मृतिम् उपस्थाप्य। दृष्टवा यत्र भारद्वाजगोत्रो ब्राह्मणः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भारद्वाजगोत्रं ब्राह्मणम् एतदवोचत्– ''यदर्घ्ये भवान् जानाति! असौ अस्मिन् वनखण्डे श्रमणो निषण्णः पर्यंकम् आभुज्य

(हिन्दी) ''हे ब्राह्मण! मेरा इस वन में कोई कार्य नहीं है। मेरे लिये यह समस्त वन कट कर समतल हो चुका है। मैं इस वन में दुःख से मुक्त होकर, परमपद प्राप्त कर सांसारिक असन्तोष (आसक्ति) का परित्याग कर एकाकी धर्मसाधनारत रहता हूँ''। भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर.....पूर्ववत्.....शरणागत उपासक समझें।

8. एक समय भगवान् बुद्ध कौसल देश के किसी वनखण्ड में विहार करते थे। उस समय किसी भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण के कुछ शिष्य, लकड़ी चुनने के लिये, उस वनखण्ड में गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् किसी वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर शरीर को सीधा कर स्मृति के साथ साधनारत थे। उन्हें देखकर उन शिष्यों ने भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण से कहा "आप जानते है! यहाँ इस वनखण्ड में एक श्रमण पद्मासन लगाकर

उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा''। अथ खो भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो तेहि माणवकेहि सद्धिं येन सो वनसण्डो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवन्तं तस्मिं वनसण्डे निसिन्नं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''गम्भीररूपे बहुभेरवे वने, सुञ्ञं अरञ्ञं विजनं विगाहिय।
अनिञ्जमानेन ठितेन वग्गुना, सुचारुरूपं वत भिक्खु झायसि॥

''न यत्थ गीतं नपि यत्थ वादितं, एको अरञ्ञे वनवस्सितो मुनि।
अच्छेररूपं पटिभाति मं इदं, यदेकको पीतिमनो वने वसे॥

''मञ्ञामहं लोकाधिपतिसहब्यतं, आकङ्खमानो तिदिवं अनुत्तरं।
कस्मा भवं विजनमरञ्ञमस्सितो, तपो इध कुब्बसि ब्रह्मपत्तिया''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ऋजुं कायं प्रणिधाय परिमुखं स्मृतिम् उपस्थाप्य''। अथ खलु भारद्वाजगोत्रो ब्राह्मणस्तैः माणवकैः सार्द्धम् यत्र स वनखण्डः तत्रोपसङ्क्रमीत्। अपश्यत् खलु भगवन्तम् तस्मिन् वनखण्डे निषण्णं पर्यंकम् आभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय परिमुखं स्मृतिम् उपस्थाप्य। दृष्टवा यत्र भगवान् तत्रोपसङ्क्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथायां अध्यभाषिष्ट–

''गम्भीररूपे बहुभैरवे वने, शून्यम् अरण्यं विजनं विगाह्य।
अनिङ्गितेन स्थितेन वल्गुना, सुचारुरूपं वत भिक्षु ध्यायसि॥

''न यत्र गीतम् नापि यत्र वादित्रम्, एकोऽरण्ये वनवासी मुनिः।
आश्चर्यरूपं प्रतिभाति मे इदम्, यदेककः प्रीतिमनो वने वसेः॥

''मन्येऽहं लोकाधिपतिसहभावम्, आकांक्षमानःत्रिदिवमनुत्तरम्।
कस्मात् भवान् विजनमरण्यमाश्रितः, तप इह करोति ब्रह्मप्राप्तये''इति॥

(हिन्दी) शरीर को सीधा कर स्मृति के साथ साधनारत है''। यह सुनकर वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण उस शिष्य के साथ जहाँ वनखण्ड था वहाँ गया तथा भगवान् को उस स्थिति में बैठे देखकर, भगवान् के पास आया। आकर वह यह गाथा बोला-

''हे भिक्षु! आप इस घोर, भयानक, शून्य एवं निर्जन अरण्य में बैठ कर भव्य अचल आसन लगाये हुए बहुत अच्छी ध्यानभावना में रत हो।

''जहाँ न किसी का गीत है, न कोई वाद्य। ऐसे अरण्य में एकाकी वनवासी मुनि को देखकर मुझे बहुत आश्चर्य (उद्विग्नता) होता है कि वह कैसे एकाकी इस वन में प्रसन्नता के साथ बैठा है।

''मैं समझता हूँ कि लोकाधिपति के साथ अनुत्तर स्वर्ग की कामना से आप इस निर्जन वन में क्यों वास कर रहे हैं? क्या आप ब्रह्मत्व प्राप्ति हेतु इस तपःसाधना में रत हैं?!''

''या काचि कङ्खा अभिनन्दना वा, अनेकधातूसु पुथू सदासिता।
अञ्ञाणमूलप्पभवा पजप्पिता, सब्बा मया ब्यन्तिकता समूलिका॥
''स्वाहं अकङ्खो असितो अनूपयो, सब्बेसु धम्मेसु विसुद्धदस्सनो।
पप्पुय्य सम्बोधिमनुत्तरं सिवं, झायामहं ब्रह्म रहो विसारदो''ति॥

एवं वुत्ते, भारद्वाजगोत्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे.... अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.9. मातुपोसकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो मातुपोसको ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो मातुपोसको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अहञ्हि, भो गोतम, धम्मेन भिक्खं परियेसामि, धम्मेन भिक्खं परियेसित्वा मातापितरो पोसेमि।

(संस्कृतच्छाया) ''या काचित् कांक्षा अभिनन्दना वा, अनेकधातुषु प्रथिता सदाश्रिता।
अज्ञानमूलप्रभवा प्रजल्पिता, सर्वा मया व्यन्तकृता समूलका॥
''सोऽहम् आकांक्ष असित अनूपयः, सर्वेषु धर्मेषु विशुद्धदर्शनः।
प्रापयेत् सम्बोधिमनुत्तरं शिवम्, ध्यायाम्यहं ब्रह्म! रहसि विशारदः''इति॥

एवम् उक्ते, भारद्वाजगोत्रो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम अभिकान्तम्, भो गौतम...पे.... अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

9. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु मातृपोषको ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्द्धम् सममोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु मातृपोषको ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अहं हि, भो गौतम! धर्मेण भिक्षां पर्येषामि, धर्मेण भिक्षां परीष्य मातापितरौ पोषयामि।

(हिन्दी) भगवान्- ''संसार के पदार्थों में जो कोई भी आकांक्षा, आनन्द या आसक्ति है, इच्छा है वे सब अज्ञानमूलक हैं। इन सभी का मैं मूलतः त्याग कर चुका हूँ।

''इस तरह मैं इन तृष्णाओं तथा इच्छाओं से रहित होकर एकाकी रूप में सभी धर्मों की वास्तविकता जानकर अद्वितीय एवं मङ्गलमय बुद्धत्व को प्राप्त कर हे ब्राह्मण! एकान्त में निर्भय होकर ध्यानभावना में लगा हुआ हूँ।''

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह भारद्वाजगोत्र ब्राह्मण....पूर्ववत्....शरणागत उपासक समझें।

9. श्रावस्ती में ही...। तब कोई मातृपोषक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे उनके पास गया। जाकर भगवान् के साथ कुशलक्षेम संवाद कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठा वह ब्राह्मण भगवान् से यह बोला-''हे गौतम! मैं धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता हूँ। इस तरह भिक्षाटन कर मैं अपनी माता का भी पालन पोषण करता हूँ।

कच्चाहं, भो गोतम, एवंकारी किच्चकारी होमी''ति?

''तग्घ त्वं, ब्राह्मण, एवंकारी किच्चकारी होसि। यो खो, ब्राह्मण, धम्मेन भिक्खं परियेसति, धम्मेन भिक्खं परियेसित्वा मातापितरो पोसेति, बहुं सो पुञ्ञं पसवती''ति।

''यो मातरं पितरं वा, मच्चो धम्मेन पोसति।
ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती''ति॥

एवं वुत्ते, मातुपोसको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.10. भिक्खकसुत्तं

सावत्थिनिदानं। अथ खो भिक्खको ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा

(संस्कृतच्छाया) कति चाहम्, भो गौतम, एवङ्कारी कृत्यकारी भवामि''इति? ''तद्धि त्वम्, ब्राह्मण, एवङ्कारी कृत्यकारी भवसि। यत् खलु, ब्राह्मण, धर्मेण भिक्षां पर्येषि, धर्मेण भिक्षां परीष्य मातापितरौ पोषयति, बहु सः पुण्यं प्रसूते''इति।

''यो मातरं पितरं वा, मर्त्यो धर्मेण पोषति।
तस्मै तं पारिचर्यायम्, मातापितृषु पण्डिताः।
इहैव तं प्रशंसन्ति, प्रेत्य स्वर्गे प्रमोदते''इति॥

एवम् उक्ते, मातृपोषको ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम् भो गौतम, अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतम! धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

10. श्रावस्तीनिदानम्। अथ खलु भिक्षुको ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य

(हिन्दी) ऐसा करता हुआ मैं उचित करता हूँ या नहीं?''

''अवश्य तुम, ब्राह्मण! ऐसा करते हुए अच्छा ही कर रहे हो। ब्राह्मण! जो धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता है, तथा धर्मपूर्वक भिक्षाटन करता हुआ अपनी माता का पालन पोषण भी करता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।''ब्राह्मण! जो मनुष्य धर्माचरण द्वारा माता या पिता का पालन करता है, उसकी इस माता पिता की परिचर्या को पण्डित लोग बहुत ही प्रशंसा करते हैं। तथा वह देहपात के बाद स्वर्ग में जा कर भी आनन्द का ही उपभोग करता है''। भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर वह ब्राह्मण बोला-''हे गौतम! आप धन्य हैं।....पूर्ववत्....मुझे, प्राण रहने तक, अपना शरणागत उपासक समझें।''

10. श्रावस्ती में ही...। तब कोई भिक्षुक ब्राह्मण (गली गली घूमकर भिक्षा माँगने वाला) भगवान् के पास

भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भिक्खको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अहम्पि खो, भो गोतम, भिक्खको, भवम्पि भिक्खको, इध नो किं नानाकरणं''ति?

''न तेन भिक्खको होति, यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता॥
''योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, बाहित्वा ब्रह्मचरियं।
सङ्खाय लोके चरति, स वे भिक्खूति वुच्चती''ति॥

एवं वुत्ते, भिक्खको ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे॰... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.11. सङ्गारवसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तेन खो पन समयेन सङ्गारवो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति

(संस्कृतच्छाया) भगवता सार्द्धम् सममोदिष्ट। सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु भिक्षुको ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्–''अहमपि खलु, भो गौतम, भिक्षुकः, भवान् अपि भिक्षुकः, इह नो किम् नानाकरणम्''इति?

''न तेन भिक्षुको भवति, यावता भिक्षते परे।
विस्रं धर्मं समादाय, भिक्षुः भवति न तावता॥
''य इह पुण्यं च पापं च, वाहयित्वा ब्रह्मचर्यम्।
समाख्यातो लोके चरति, स वै भिक्षुरित्युच्यते''इति॥

एवम् उक्ते, भिक्षुको ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम, अभिकान्तम्, भो गौतम...पे॰... उपासकं मां भवान् गौतम धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

11. श्रावस्तीनिदानं। तस्मिन् खलु पुनः समये सङ्गारवो नाम ब्राह्मणः श्रावस्त्यां प्रतिवसति

(हिन्दी) गया। जाकर कुशलमङ्गल पूछने के बाद उसने भगवान् से प्रश्न किया-''तो गौतम! मैं भी भिक्षुक हूँ (गली गली घूमकर भिक्षा माँगता हूँ,) आप भी भिक्षुक हैं (ऐसा ही करते हैं), तब हम दोनों में क्या अन्तर है?''

भगवान्- ''ब्राह्मण! केवल 'भिक्षा माँगना' कर्म से कोई 'भिक्षु' नहीं होता। जब तक उसका चित्त दोषयुक्त है तब तक वह भिक्षु नहीं हो सकता।'' ''हाँ, जो संसार के पाप एवं पुण्य की बातों को बहाकर, ज्ञानपूर्वक सच्चे अर्थ में धर्मसाधना करता है वही यथार्थ में 'भिक्षु' कहलाने का अधिकारी है''।

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह भिक्षुक ब्राह्मण भगवान् से निवेदन करने लगा-''हे गौतम! आप धन्य है!....पूर्ववत्...आज से मुझे अपना प्राण रहने तक शरणागत उपासक समझें''।

11. श्रावस्ती में ही....। उस समय सङ्गारव नामक एक ब्राह्मण श्रावस्ती में रहता था,

उदकसुद्धिको, उदकेन परिसुद्धिं पच्चेति, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच– ''इध, भन्ते, सङ्गारवो नाम ब्राह्मणो सावत्थियं पटिवसति उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेति, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। साधु, भन्ते, भगवा येन सङ्गारवस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया''ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सङ्गारवस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सङ्गारवो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि।

(संस्कृतच्छाया) उदकशुद्धिक, उदकेन परिशुद्धिं प्रत्येति, सायं प्रातः उदकावरोहणानुयोगमनुयुक्तो विहरति। अथ खलु आयुष्मान् आनन्दः पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत्। श्रावस्त्यां पिण्डाय चरित्वा पश्चात् भक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्तो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु आयुष्मान् आनन्दः भगवन्तम् एतदवोचत्– ''इह, भदन्त! सङ्गारवो नाम ब्राह्मणः श्रावस्त्यां प्रतिवसति उदकशुद्धिकः, उदकेन परिशुद्धिं प्रत्येति, सायं प्रातः उदकावरोहणानुयोगमनुयुक्तो विहरति। साधु, भदन्त! भगवान् यत्र सङ्गारवस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसङ्क्रमतु अनुकम्पामुपादाय''ति। अधिवासयति स्म भगवान् तूष्णीभावेन।

अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय यत्र सङ्गारवस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य प्रज्ञप्ते आसने न्यसीदत्। अथ खलु सङ्गारवो ब्राह्मणो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवता सार्द्धम् सममोदिष्ट।

(हिन्दी) जो उदकस्नानमात्र द्वारा पापों से शुद्धि मानता था। अतः वह प्रतिदिन सुबह तथा शाम बहुत समय जल में ही पड़ा रहता था। तब, कभी आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण में शरीर के वस्त्रों को व्यवस्थित कर श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। वहाँ से लौटकर वे जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एकान्त में बैठने के बाद, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से कहा- ''भन्ते! वहाँ सङ्गारव नामक ब्राह्मण.....पूर्ववत्....जल में ही पड़ा रहता है। अच्छा हो, भन्ते, यदि आप कृपाकर सङ्गारव ब्राह्मण के घर पधारें।'' भगवान् ने चुप रहते हुए आयुष्मान् आनन्द का निवेदन स्वीकार कर लिया।

तब भगवान् कभी सुबह वस्त्र पहन और पात्र चीवर ले जहाँ संगारव का घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठ गये। तब संगारव ब्राह्मण जहाँ भगवान थे वहाँ आया। आकर कुशल प्रश्न पूछने के बाद एक ओर बैठ गया।

सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सङ्गारवं ब्राह्मणं भगवा एतदवोच– ''सच्चं किर त्वं, ब्राह्मण, उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेसि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरसी''ति? ''एवं, भो गोतम''। ''किं पन त्वं, ब्राह्मण, अत्थवसं सम्पस्समानो उदकसुद्धिको, उदकसुद्धिं पच्चेसि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरसी''ति? ''इध मे, भो गोतम, यं दिवा पापकम्मं कतं होति, तं सायं न्हानेन पवाहेमि, यं रत्तिं पापकम्मं कतं होति तं पातं न्हानेन पवाहेमि। इमं ख्वाहं, भो गोतम, अत्थवसं सम्पस्समानो उदकसुद्धिको, उदकेन सुद्धिं पच्चेमि, सायं पातं उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरामी''ति।

''धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो, अनाविलो सब्भि सतं पसत्थो।
यत्थ हवे वेदगुनो सिनाता, अनल्लगत्ताव तरन्ति पारं''ति॥

एवं वुत्ते, सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम,

(संस्कृतच्छाया) सम्मोदनीयां कथनसरणीं व्यतिसार्य एकान्ते न्यसीदत्। एकान्ते निषण्णः खलु सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''सत्यं किल त्वम्, ब्राह्मण, उदकशुद्धिकः, उदकेन परिशुद्धिं प्रत्येति, सायं प्रातः उदकावरोहणानुयोगमनुयुक्तः विहरसि''इति? ''एवम्, भो गौतम''। ''किम् पुनस्त्वम्, ब्राह्मण, अर्थवसात् सम्पश्यमान उदकशुद्धिकः, उदकशुद्धिं प्रत्येति, सायं पातम् उदकावरोहणानुयोगमनुयुक्तः विहरसि''इति? ''इह मे, भो गौतम, यत् दिवा पापकर्म कृतं भवति, तत् सायं स्नानेन प्रवाह्यामि, यत् रात्रौ पापकर्म कृतं भवति, तं प्रातः स्नानेन प्रवाह्यामि। इमं खल्वहम्, भो गौतमः, अर्थवसात् सम्पश्यमानः उदकशुद्धिक, उदकेन शुद्धिं प्रत्येमि, सायं प्रातः उदकावरोहणानुयोगमनुयुक्तः विहरामि''इति।

''धर्मो ह्रदः ब्राह्मण शीलतीर्थः, अनाविलो सद्भिज्ञस्ति सतां प्रशस्तः।
यत्र हवै वेदगुणः निष्णातः, अनार्द्रगात्रः तरति पारम्''इति॥

एवं उक्ते, सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तम् एतदवोचत्– ''अभिकान्तम्, भो गौतम,

(हिन्दी) एक ओर बैठे भगवान् ने सङ्गारव ब्राह्मण से पूछा- ''क्या सच में तुम उदक शुद्धिक हो, ब्राह्मण! स्नानमात्र से मनुष्य की आन्तरिक शुद्धि होना मानते हो? सुबह-साँझ जल में ही बैठे रहते हो?'' ''हाँ, गौतम! ऐसी ही बात है।'' ''ब्राह्मण! तुम किस उद्देश्य से उदक से शुद्धि होना मानते हो?.....'' ''हे गौतम! दिन भर में मुझसे जो पाप होते हैं, उन्हें शाम को उदक से स्नान कर बहा देता हूँ। तथा रात्रि में जो पाप मुझसे होते हैं उन्हें मैं सुबह स्नान कर बहा देता हूँ। हे गौतम! मैं इसी उद्देश्य से उदकशुद्धिक सिद्धान्त को मानता हूँ। और इसीलिये मैं सुबह-साँझ जल में पड़ा रहता हूँ।''

भगवान्- ''हे ब्राह्मण! धर्म ही जलाशय है, शील का आचरण उसमें उतरने की सीढियाँ (तीर्थ=घाट) हैं। जो कि पूर्णतः स्वच्छ है। विद्वज्जनों द्वारा यह प्रशस्त है। जिसमें परम ज्ञानी ही स्नान कर पवित्रशरीर होकर भवसागर के पार चला जाता है।'' भगवान् द्वारा इतना कहे जाने पर, सङ्गारव ब्राह्मण बोला-''हे गौतम!

अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं''ति।

7.2.12. खोमदुस्ससुत्तं

एवं मे सुतं– एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति खोमदुस्सं नामं सक्यानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय खोमदुस्सं निगमं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका सभायं सन्निपतिता होन्ति केनचिदेव करणीयेन, देवो च एकमेकं फुसायति। अथ खो भगवा येन सा सभा तेनुपसङ्कमि। अद्दसंसु खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वान एतदवोचुं– ''के च मुण्डका समणका, के च सभाधम्मं जानिस्सन्ती''ति? अथ खो भगवा खोमदुस्सके ब्राह्मणगहपतिके गाथाय अज्झभासि–

''नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो, सन्तो न ते ये न वदन्ति धम्मं।

(संस्कृतच्छाया) अभिकान्तम्, भो गौतम...पे०...उपासकं मां भवान् गौतमः धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

12. एवं मया श्रुतम्– एकस्मिन् समये भगवान् शाक्येषु विहरति क्षोमदुष्यं नाम शाक्यानां निगमः। अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णसमये निवस्य पात्रचीवरमादाय क्षोमदुष्यं निगमं पिण्डाय प्राविशत्।

तेन खलु पुनः समयेन क्षोमदुष्यकाः ब्राह्मणगृहपतिकाः सभायां सन्निपतिताः भवन्ति केनचिदेव करणीयेन, देवश्च एकमेकं जलविन्दं स्फारयति। अथ खलु भगवान् यत्र सा सभा तत्रोपसङ्क्रमत्। अपश्यन् क्षोमदुष्यकाः ब्राह्मणगृहपतिकाः भगवन्तं दूरत एव आगच्छन्तम्। दृष्टवा एतदवोचुः– ''के च मुण्डकाः श्रमणकाः, किं च सभाधर्मं ज्ञास्यन्ति''इति? अथ खलु भगवान् क्षोमदुष्यके ब्राह्मणगृहपतिकं गाथाया अध्यभाषिष्ट–

''नैषां सभा यत्र न सन्ति सन्तः, सन्तो न ते ये न वदन्ति धर्मम्।

(हिन्दी) आप धन्य है!...पूर्ववत्...आजसे आप मुझे अपना जीवन भर के लिए शरणागत उपासक समझें।।''

12. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् बुद्ध शाक्य जनपद के क्षोमदुष्यक नामक एक शाक्यों के निगम में विहार करते थे। तब कभी भगवान्....क्षोमदुष्यक में भिक्षाकर्म हेतु प्रविष्ट हुए।

उस समय क्षोमदुष्यकवासी ब्राह्मण गृहस्थ किसी कार्यविशेष से सभा में एकत्र थे। बूँदाबाँदी भी हो रही थी। भगवान् भी उस सभा में पधारे! उस समय कुछ क्षोमदुष्यकवासी कुछ तरूण भी उस सभा में उपस्थित थे। भगवान् को देखकर वे बोले उठे-''अरे ये श्रमण मुण्डक कौन होते हैं। ये सभा में उठना बैठना या बोलना क्या जानें!'' तब भगवान् ने उन ब्राह्मण गृहपतियों को यह गाथा कही-

''वह सभा वास्तविक सभा नहीं, जहाँ सन्त न विराजमान हो। इसी तरह वे सन्त भी वास्तविक सन्त नहीं जो धर्मप्रवचन में निपुण न हों।

रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं, धम्मं वदन्ता च भवन्ति सन्तो''ति॥

एवं वुत्ते, खोमदुस्सका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं एतदवोचुं– ''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम; सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य– चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्तीति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते''ति।

उपासकवग्गो दुतियो।

तस्सुद्दानं– कसि उदयो देवहितो, अञ्ञतरमहासालं।
मानथद्धं पच्चनीकं, नवकम्मिककट्ठहारं।
मातुपोसकं भिक्खको, सङ्गारवो च खोमदुस्सेन द्वादसाति॥

(संस्कृतच्छाया) रागं च दोषं च प्रहाय मोहम्, धर्मं वदन्तश्च भवन्ति सन्तः''इति॥

एवम् उक्ते, क्षोमदुष्यकाः ब्राह्मणगृहपतिकाः भगवन्तम् एतदवोचुः– ''अभिकान्तम्, भो गौतम! अभिकान्तम्, भो गौतम! तद्यथापि, भो गौतम! निकुज्जितं वा उत्कुज्जेत्, प्रतिच्छन्नं वा विवरेत्, मूढस्य वा मार्गम् आचिक्षेत्, अन्धकारे वा तैलप्रद्योतं सन्धार्य– चक्षुष्मन्तो रूपाणि द्रक्ष्यन्तीति, एवमेवं भगवता गौतमेन अनेकपर्यायेण धर्मः प्रकाशितः।

एते वयं भवन्तं गौतमं शरणं गच्छामः धर्मञ्च भिक्षुसङ्घञ्च। उपासक नो भवान् गौतमो धारयतु अद्यतोऽग्रे प्राणोपान्तम् शरणं गतम्''इति।

तस्सोद्दानम्– कृषि उदयो देवहितः, अन्यतरमहाशालम्।
मानस्तब्धं प्रत्यनीकं, नवकर्मिककाष्टहारं।
मातृपोषकं भिक्षुकः, सङ्गारवो च क्षोमदुष्येन द्वादश इति॥

(हिन्दी) राग, द्वेष, एवं मोह का त्याग का जो एकमात्र धर्म का ही प्रवचन करते हैं वे ही वस्तुतः 'सन्त' हैं।।

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वे उस सभा में उपस्थित क्षोमदुष्यकवासी सभासद् यह बोले-''आप, गौतम! धन्य हैं...पूर्ववत्.....अपना शरणागत उपासक स्वीकार करें।।''

इस वर्ग में व्याख्यात सूत्रों की सूची-1. कृषिभारद्वाजसूत्र, 2. उदयसूत्र, 3. देवहितसूत्र, 4. महासारसूत्र, 5. मानस्तब्ध-सूत्र, 6. प्रत्यनीसूत्र, 7. नवकार्मिकसूत्र, 8. काष्ठहारसूत्र, 9. मातृपोषकसूत्र, 10. भिक्षुक-सूत्र, 11. सङ्गारवसूत्र, 12. क्षोमदुष्यकसूत्र।

******

8. वङ्गीससंयुत्तं

8.1. निक्खन्तसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये आयस्मता निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा वङ्गीसो नवको होति अचिरपब्बजितो ओहिय्यको विहारपालो। अथ खो सम्बहुला इत्थियो समलङ्करित्वा येन अग्गाळवको आरामो तेनुपसङ्कमिंसु विहारपेक्खिकायो। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स ता इत्थियो दिस्वा अनभिरति उप्पज्जति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे अनभिरति उप्पन्ना, रागो चित्तं अनुद्धंसेति, तं कुतेत्थ लब्भा, यं मे परो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्य। यंनूनाहं अत्तनाव अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्यं''ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तनाव अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेत्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

---

1. (संस्कृतच्छाया)- एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये आयुष्मान् वङ्गीशः आलव्यां विहरति अग्गालवे चैत्ये आयुष्मता न्यग्रोधकल्पेन उपाध्यायेन सार्धम्। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् वङ्गीशः नवको भवति अचिरप्रव्रजित अवहीयकः विहारपालः। अथ खलु सम्बहुलाः स्त्रियः समलङ्कृत्य यत्र अग्गालवकः आरामः तत्रोपसमक्रमिषुः विहारप्रेक्षिकाः। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य ताः स्त्रियः दृष्ट्वा अनभिरतिः उत्पद्यते, रागः चित्तम् अनुध्वंसते। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्— ''अलाभाः वत मे, न वत मे लाभा; दुर्लब्धं वत मे, न वत मे सुलब्धम्; यस्य मे अनभिरतिः उत्पन्ना, रागः चित्तम् अनुध्वंसते, तद् कुतः एते लाभाः, यत् मे परोऽनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पादयेत। यन्नूनमहम् आत्मनैव आत्मनः अनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पादयेयम्''इति। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आत्मनैव आत्मनोऽनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पाद्य तस्यां वेलायां इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

1.(हिन्दी)- ऐसा मैने सुना है। एक समय आयुष्मान् बङ्गीश आळवी स्थित अग्गाळव चैत्य में अपने उपाध्याय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प के साथ ठहरे हुए थे। उस समय आष्युमान् वङ्गीश अभी नये ही प्रव्रजित हुए थे तथा विहार की देखभाल के लिये नियुक्त कर दिये गये थे। तब कुछ स्त्रियाँ सजधजकर विहार में दर्शन हेतु वहाँ चली आयीं। उन स्त्रियों को देखकर आयुष्मान् वङ्गीश का चित्त धर्म के प्रति अनभिरत (अनुत्सुक) हो गया तथा उन स्त्रियों के प्रति आसक्त हो गया। परन्तु वङ्गीश को तत्काल ध्यान आया- ''अरे मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं, यह मेरा दुर्भाग्य ही है, सौभाग्य नहीं कि मेरी यह धर्म के प्रति अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति आसक्ति हो। अब यह कैसे होगा कि कोई अन्य अधिकारी साधक आकर मेरी इस अनभिरत तथा आसक्ति को दूर करे! तो क्यों न मैं स्वयं ही इस धार्मिक अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति चित्त में उत्पन्न आसक्ति को विवेकपूर्वक दूर कर लूँ।'' तब आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने चित्त की इस धर्म के प्रति अनभिरति को नष्ट कर तथा उसमें अभिरति उत्पन्न करते हुए उस समय यह गाथाएँ कहीं-

''निक्खन्तं वत मं सन्तं, अगारस्मानगारियं।
वितक्का उपधावन्ति, पगब्भा कण्हतो इमे॥
''उग्गपुत्ता महिस्सासा, सिक्खिता दळ्हधम्मिनो।
समन्ता परिकिरेय्युं, सहस्सं अपलायिनं॥
''सचेपि एततो भिय्यो, आगमिस्सन्ति इत्थियो।
नेव मं ब्याधयिस्सन्ति, धम्मे सम्हि पतिट्ठितं॥
''सक्खी हि मे सुतं एतं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
निब्बानगमनं मग्गं, तत्थ मे निरतो मनो॥
''एवञ्चे मं विहरन्तं, पापिम उपगच्छसि।
तथा मच्चु करिस्सामि, न मे मग्गं पि दक्खसी''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- "निष्क्रान्तं वत मां सान्तम्, अगारादनगारिकम्।
वितर्का उपधावन्ति, प्रगल्भाः कृष्णतः इमे॥
"उद्गतपुत्राः महेश्वासाः, शिक्षिताः दृढधर्मिणः।
समन्तात् परिकिरेयुः, सहस्रम् अपलायिनम्॥
"सचेत् अपि एततः भूयस्, आगमिष्यन्ति स्त्रियः।
नैव मां व्याधयिष्यन्ति, धर्मे स्वस्मिन् प्रतिष्ठिताम्॥
"साक्षात् हि मे श्रुतमेतत्, बुद्धस्य आदित्यबन्धुनः।
निर्वाणगमनं मार्गः, तत्र मे निरतः मनः॥
"एवं चेत् मां विहरन्तम्, पापिमन् उपगच्छसि।
तथा मृत्यो! करिष्यामि, न मे मार्गमपि द्रक्ष्यसि''इति॥

(हिन्दी)-''घर से निकल कर प्रव्रजित हुए मेरे मन में ये अशुभ एवं पापमय सङ्कल्प क्यों उठ रहे हैं।

''श्रेष्ठजनों के पुत्र, शिक्षित, महाधनुर्धर एवं दृढ़पराक्रमशाली पुरूष भी आकर युद्ध में पीठ न दिखाने वाले मुझ पर हजारों बाण बरसावें।

''या हजारों स्त्रियाँ अलङ्कृत होकर मेरे सामने आवें तो भी अब यह मेरा मन विचलित नहीं होगा, क्योंकि अब यह मेरा मन सम्यक् प्रकार से धर्म में प्रतिष्ठित हो गया है।

''मैंने अपने कानों से सूर्यकुलोत्पन्न भगवान् बुद्ध को उपदेश करते हुए सुना है कि निर्वाण की ओर जाने वाला मार्ग कौन सा है। उसमें मेरा यह मन रम चुका है।

'इस तरह साधना करते हुए मुझको हे पापत्मन्। मृत्यु! यदि तुम मुझको बलपूर्वक घेरना चाहोगे तो मैं ऐसी स्थिति बना दूँगा कि तुम मेरा मार्ग भी न देख पाओगे।''

8.2. अरतिसुत्तं

एकं समयं...पे॰... आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये आयस्मता निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा निग्रोधकप्पो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विहारं पविसति, सायं वा निक्खमति अपरज्जु वा काले। तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि – ''अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; यस्स मे अनभिरति उप्पन्ना, रागो चित्तं अनुद्धंसेति; तं कुतेत्थ लब्भा, यं मे परो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्य। यंनूनाहं अत्तनाव अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेय्य''न्ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तनाव अत्तनो अनभिरतिं विनोदेत्वा अभिरतिं उप्पादेत्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

2- (संस्कृतच्छाया)- एकस्मिन् समये....पे॰.... आयुष्मान् वङ्गीशः आलव्यां विहरति अग्गालवे चैत्ये आयुष्मता न्यग्रोधकल्पेन उपाध्यायेन सार्धम्। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् न्यग्रोधकल्पः पश्चाद्भक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्तः विहारे प्रविशति, सायं वा निष्क्रमति अपरेद्युः इव काले। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मतः वङ्गीशस्य अनभिरतिः उत्पन्ना भवति, रागः चित्तम् अनुध्वंसते। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्— "अलाभाः वत मे, न वत मे लाभा; दुर्लब्धं वत मे, न वत मे सुलब्धम्; यस्य मे अनभिरतिः उत्पन्ना, रागः चित्तम् अनुध्वंसते, तद् कुतः एते लाभाः, यत् मे परः अनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पादयेत्। यन्नूनमहम् आत्मनैव आत्मनोऽनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पादयेयम्" इति। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आत्मनैव आत्मनोऽनभिरतिं विनुद्य अभिरतिम् उत्पाद्य तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

2.(हिन्दी)- एक समय आयुष्मान् वङ्गीश आळवी के अग्गाळव चैत्य में अपने उपाध्याय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प के साथ ठहरे हुए थे। उस समय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प में भिक्षाटन से लौट भेजन कर लेने के करने के बाद साधनास्थल में प्रविष्ट होते तो सायङ्काल होने पर या दूसरे दिन वहाँ से निकलते थे। इस कारण आयुष्मान् वङ्गीश को धर्मसाधना में अनत्कण्ठा एवं सांसारिक पदार्थों में आसक्ति होने लगी। तब आयुष्मान् वङ्गीश को तत्काल ध्यान आया- ''अरे मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं, यह मेरा दुर्भाग्य ही है, सौभाग्य नहीं कि मेरी यह धर्म के प्रति अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति आसक्ति हो। अब यह कैसे होगा कि कोई अन्य अधिकारी साधक आकर मेरी इस अनभिरत तथा आसक्ति को दूर करे! तो क्यों न मैं स्वयं ही इस धार्मिक अनुत्कण्ठा तथा इन स्त्रियों के प्रति चित्त में उत्पन्न आसक्ति को विवेकपूर्वक दूर कर लूँ।'' तब आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने चित्त की इस धर्म के प्रति अनभिरति को नष्ट कर तथा उसमें अभिरति उत्पन्न करते हुए उस समय यह गाथाएँ कहीं-

''अरतिं च रतिं च पहाय, सब्बसो गेहसितं च वितक्कं।
वनथं न करेय्य कुहिञ्चि, निब्बनथो अरतो स हि भिक्खु ॥
''यमिध पथविञ्च वेहासं, रूपगतञ्च जगतोगधं।
किञ्चि परिजीयति सब्बमनिच्चं, एवं समेच्च चरन्ति मुतत्ता॥
''उपधीसु जना गधितासे, दिट्ठसुते पटिघे च मुते च।
एत्थ विनोदय छन्दमनेजो, यो एत्थ न लिम्पति तं मुनिमाहु॥
''अथ सट्ठिनिस्सिता सवितक्का, पुथू जनताय अधम्मा निविट्ठा।
न च वग्गगतस्स कुहिञ्चि, नो पन दुट्ठुल्लभाणी स भिक्खु॥
''दब्बो चिररत्तसमाहितो, अकुहको निपको अपिहालु।
सन्तं पदं अज्झगमा मुनि पटिच्च, परिनिब्बुतो कङ्खति कालं''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- "अरतिं च रतिं च प्रहाय, सर्वशः गेहश्रितं च वितर्कम्।
वनथं न कुर्यात् कुत्रचित्, निर्वनथः अरतः स हि भिक्षुः॥
''यद् इह पृथवीयं च विहायसम्, रूपगतं च जगतोगधम्।
किञ्चित् परिजीर्यते सर्वमनित्यम्, एवं समेत्य चरन्ति मुक्ताः॥
''उपधीषु जनाः ग्रथिताषु, दृष्टेश्रुते प्रतिघे च मते च।
अत्र विनोदय छन्दोऽनेजः, योऽत्र न लिम्पति तं मुनिमाहुः॥
''अथ षष्टिनिःश्रिताः सवितर्काः, पृथुजनतायै अधर्माः निविष्टाः।
न च वर्गगतस्य कुत्रचित्, नः पुनः दुष्टुल्लभाणी सः भिक्षुः॥
''द्रव्यः चिररात्रिसमाहितः, अकुहकः निपुणः अस्पृहालुः।
शान्तं पदमध्यगमाः मुनिः प्रतीत्य, परिनिर्वृतः काङ्क्षति कालम्''इति॥

(हिन्दी)- असन्तोष, सन्तोष और सारे पाप वितर्कों को छोड दे जिससे कहीं भी जंगल उगने न पावे, जंगल को साफ कर खुले में रहने वाला भिक्षु है।

जो पृथ्वी के ऊपर या आकाश में संसार के जितने रूप हैं सभी पुराने होते जाते हैं, अनित्य हैं, ज्ञानीजन इसे जानकर विचरण करते हैं।

साधारण जन देखे सुने एवं अनुभव किये हुए धर्मों के प्रति सांसारिक पदार्थों में लुब्ध रहते हैं। परन्तु स्थिरचित्त ज्ञानिजन इनके प्रति अपनी इच्छाओं को दबाकर इनमें लिप्त नहीं होते। ऐसे साधक को ही मुनि कहते हैं।

''जो साठ मिथ्या धारणाएँ पृथग्जनों को आवृत किये रहती हैं, उनमें जो लिप्त नहीं होता, जो किसी को कोई अपशब्द नहीं बोलता वही 'भिक्षु' कहलाता है।

''बुद्धिमान् चिरकाल से समाहितचित्त, ढोंग न करने वाले, दक्ष एवं इच्छा न करने वाला जिस मुनि ने शान्त पद जान कर निर्वाण को प्राप्त कर लिया है वह अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा है।''

8.3. पेसलसुत्तं

एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिये आयस्मता निग्रोधकप्पेन उपज्झायेन सद्धिं। तेन खो पन समयेन आयस्मा वङ्गीसो अत्तनो पटिभानेन अञ्ञे पेसले भिक्खू अतिमञ्ञति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अलाभा वत मे, न वत मे लाभा; दुल्लद्धं वत मे, न वत मे सुलद्धं; य्वाहं अत्तनो पटिभानेन अञ्ञे पेसले भिक्खू अतिमञ्ञामी''ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो अत्तनाव अत्तनो विप्पटिसारं उप्पादेत्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि –

''मानं पजहस्सु गोतम, मानपथं च पजहस्सु।
असेसं मानपथस्मिं, समुच्छितो विप्पटिसारीहुवा चिररत्तं॥
''मक्खेन मक्खिता पजा, मानहता निरयं पपतन्ति।
सोचन्ति जना चिररत्तं, मानहता निरयं उपपन्ना॥

3-(संस्कृतच्छाया)- एकस्मिन् समये आयुष्मान् वङ्गीशः आलव्यां विहरति अग्गालवे चैत्ये आयुष्मता न्यग्रोधकल्पेन उपाध्यायेन सार्धम्। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् वङ्गीशः आत्मनः प्रतिभानेन अन्यान् पेशलान् भिक्षून् अत्यमन्यत। अथ खलु आयुष्मातः वङ्गीशस्य एतदभूत्— "अलाभाः वत मे, न वत मे लाभा; दुर्लब्धं वत मे, न वत मे सुलब्धम्; खल्वहम् आत्मनः प्रतिभानेन अन्यान् पेशलान् भिक्षून् अत्यमन्यत" इति। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आत्मनैव आत्मनः विप्रतिसारणम् उत्पाद्य तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''मानं प्रजहातु गौतम, मानपथं च प्रजहातु।
अशेषे मानपथे, सम्मुच्छितः विप्रतिसारीभूत्य चिररात्रम्॥
''मदेन मदिताः प्रजाः, मानहताः निरयं प्रपतन्ति।
शोचन्ति जनाः चिररात्रम्, मानहताः निरयमुत्पन्नाः॥

3- (हिन्दी)- एक समय आयुष्मान् वङ्गीश आळवी के अग्गाळव चैत्य में अपने उपाध्याय आयुष्मान् न्यग्रोधकल्प के साथ ठहरे हुए थे। आयुष्मान् वङ्गीश अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे भिक्षुओं को उद्विग्न करते रहते थे। तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ- ''मेरा बड़ा अलाभ हुआ, लाभ नहीं; मेरा बड़ा दुर्भाग्य हुआ, सौभाग्य नही, कि मैं अपनी प्रतिभा के अभिमान से दूसरे अच्छे भिक्षुओं की निन्दा करता हूँ।'' तब स्वयं अपने चित्त में पश्चात्ताप उत्पन्न कर आयुष्मान् वङ्गीश के मुँह से उस समय यह गाथायें निकल पड़ी-

''हे गौतम शिष्य! यह वृथाभिमान त्याग दे। अभिमान के मार्ग से दूर हट। इस अभिमान के मार्ग में भटक कर बहुत दिनों तक पश्चाताप करते रहेगा!।

''यह समस्त जनता अपने वृथाभिमान में मत्त है। अभिमानियों का अन्त में नरक में पात होता है। वे इस कारण नकर में उत्पन्न होकर बहुत काल तक शोकमान रहते हैं।

''न हि सोचति भिक्खु कदाचि, मग्गजिनो सम्मापटिपन्नो।
किर्त्तिं च सुखं च अनुभोति, धम्मदसोति तमाहु पहितत्तं॥
''तस्मा अखिलोध पधानवा, नीवरणानि पहाय विसुद्धो।
मानं च पहाय असेसं, विज्जायन्तकरो समितावी''ति॥

8.4. आनन्दसुत्तं

एकं समयं आयस्मा आनन्दो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि आयस्मता वङ्गीसेन पच्छासमणेन। तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स अनभिरति उप्पन्ना होति, रागो चित्तं अनुद्धंसेति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं आनन्दं गाथाय अज्झभासि– ''कामरागेन डय्हामि, चित्तं मे परिडय्हति।
साधु निब्बापनं ब्रूहि, अनुकम्पाय गोतमा''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- ''न हि शोचति भिक्षुः कदाचित्, मार्गजिनः सम्यक्प्रतिपन्नः।
कीर्तिञ्च सुखञ्च अनुभवति, धर्मदृशः हि तमाहुः प्रहितात्मम्॥
''तस्मात् अखिल इह प्रधानवान्, नीवरणानि प्रहाय विशुद्धः।
मानं च प्रहाय अशेषम्, विद्यान्तकरः शमितावि''इति॥

4- एकस्मिन् समये आयुष्मान् आनन्दः श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। अथ खलु आयुष्मान् आनन्दः पूर्वाह्णसमयं निवस्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्त्यां पिण्डाय प्राविशत् आयुष्मता वङ्गीशेन पृच्छाश्रमणेन। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मतः वङ्गीशस्य अनभिरतिः उत्पन्नाः भवति, रागः चित्तं अनुध्वंसते। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आयुष्मन्तम् आनन्दं गाथया अध्यभाषिष्ट— ''कामरागेन दह्यामि, चित्तं मे परिदहति।
साधु निर्वापनं ब्रूहि, अनुकम्पया गौतम''इति॥

(हिन्दी)- ''भिक्षु कभी शोक नहीं करता, जिसने मार्ग को जीत लिया हो। ऐसा सम्यक्प्रतिपन्न साधक चिरकाल तक सुखानुभव करता है। धर्म का साक्षात्कार करने वाला ही 'धर्मात्मा' कहलाता है।

''अतः, हे साधक! मन के मैल को दूर कर उत्साही बन। बन्धनो को काटकर विशुद्ध हो जा। तथा अपने इस वृथाभिमान को सर्वथा दबा दें। यों शान्तचित्त होकर साधक ज्ञानपूर्वक अपने अन्त की प्रतीक्षा करता है।''

4- एक समय आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण में, वस्त्रों को व्यवस्थित कर पात्रचीवर ले आयुष्मान् वङ्गीश के साथ भिक्षाहेतु श्रावस्ती में प्रविष्ट हुए। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश को धर्म के प्रति अनभिरूचि तथा सांसारिक विषयों के प्रति अभिरूचि उत्पन्न हुई। इसका चित्त राग से चन्चल होने लगा। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् आनन्द से कहा- ''मैं कामराग से जल रहा हूँ। चित्त भी मेरा जल रहा है। हे गौतमशिष्य! कृपाकर उसकी शान्ति का कोई उचित उपाय बताइये ?''

''सञ्ञाय विपरियेसा, चित्तं ते परिडय्हति।
निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं॥
''सङ्खारे परतो पस्स, दुक्खतो मा च अत्ततो।
निब्बापेहि महारागं, मा डय्हित्थो पुनप्पुनं॥
''असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं।
सति कायगता त्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव॥
''अनिमित्तञ्च भावेहि, मानानुसयमुज्जह।
ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्ससी''ति॥

8.5. सुभासितसुत्तं

सावत्थिनिदानं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

(संस्कृतच्छाया)- ''संज्ञाय विपरियाश्र, चित्तं ते परिदह्यते।
निमित्तं परिवर्जय, शुभं रागोपसंहितः॥
'संस्कारं परतः पश्य, दुःखतः मा च आत्मतः।
निर्वापय महारागम्, मा दह पुनर्पुनः॥
''अशुभैः चित्तं भावय, एकाग्रं सुसमाहितम्।
स्मृतिं कायगतां त्यक्त्वा, निर्वेदाबहुलो भव॥
''अनिमित्तं च भावय, मानानुशयमुज्जहन्।
ततः मानाभिशमनात्:, उपशान्तः चरिष्यसि''इति॥

5- श्रावस्तीनिदानम्। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत— भिक्षवः! इति "भदन्त!" इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

(हिन्दी)- (आनन्द-) ''मन के भ्रान्त होने से वह जल रहा है। राग-उत्पादक इस शुभ लगने वाले आकर्षण का त्याग कर दो।''

''अपने संस्कारों को अन्य के संस्कारों के समान देखो, उन्हें दुःखमय तथा अनात्म समझो। इस तरह इस महाराग को बुझा दो। इस तरह तुम्हारा यह बार बार जलना समाप्त हो गया।

चित्त में अशुभ भावना लाओ, एकाग्र और समाधिस्थ हो, कायगता स्मृति का अभ्यास करो जिससे वैराग में वृद्धि हो।

''तुम दुःख, अनित्य एवं अनात्म की भावना करो, वृथाभिमान तथा घमण्ड का त्याग कर दो। तब इस मान के प्रहाण (नाश) से तुम शान्तचित्त होकर विचरण करोगे।''

5- श्रावस्ती में। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाया- हे भिक्षुओं!। भदन्त! कहकर उन भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् यों उपदेश करने लगे-

''चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्भासिता; अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुभासितंयेव भासति नो दुब्भासितं, धम्मंयेव भासति नो अधम्मं, पियंयेव भासति नो अप्पियं, सच्चंयेव भासति नो अलिकं। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं''ति। इदमवोच भगवा, इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था–

''सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थं''ति॥

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता''ति।

(संस्कृतच्छाया)- चतुर्भिः, भिक्षवः! अङ्गैः समन्वागता वाचा सुभाषिता भवति, नः दुर्भाषिता; अनवद्या च अननुवद्या च विज्ञैः। कतमैः चतुर्भिः? इह, भिक्षवः!, भिक्षु सुभाषितम् एव भाषते न दुर्भाषितम्, धर्मम् एव भाषते न अधर्मम्, प्रियम् एव भाषते न अप्रियम्, सत्यम् एव भाषते न अलीकम्। एभिः खलु, भिक्षवः! चतुर्भिः अङ्गैः समन्वागता वाचा सुभाषिता भवति, न दुर्भाषिता, अनवद्या च अननुवद्या च विज्ञैः''इति। इदमवोचत् भगवान्, इदम् उक्त्वा सुगतः अथापरम् एतदवोचत् शास्ता—

''सुभाषितम् उत्तममाहुः सन्तः, धर्मं भणेत् नाधर्मं तद् द्वितीयम्।
प्रियं भणेत् नाप्रियं तत् तृतीयम्, सत्यं भणेत् नालीकं तत् चतुर्थम्''इति॥

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थाय आसनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्- ''प्रतिभाति मां भगवन्!, प्रतिभाति मां सुगत!''इति।

(हिन्दी)- भिक्षुओ! चार अङ्गों से युक्त होने पर वचन सुभाषित होता है, दुर्भाषित नहीं, विद्वानों से अनिन्द्य होता है, निन्द्य नहीं। किन चार अङ्गों से? भिक्षुओं! यहाँ कोई भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, दुर्भाषित नहीं, धर्मपूर्वक ही भाषण करता है, अधर्मपूर्वक नहीं, प्रिय वचन ही बोलता है, अप्रिय वचन नहीं, एवं सत्य वचन ही बोलता है, असत्य वचन नहीं। भिक्षुओं! इन चार अङ्गों से युक्त वाणी ही सुभाषित होती है, दुर्भाषित नहीं, विद्वानों द्वारा अनिन्दनीय ही होती है, निन्दनीय नहीं।'' भगवान् ने यो कहाँ। यह कहकर भगवान् ने गाथाओं के माध्यम से यह भी कहा-

''सन्तों ने सुभाषित को ही श्रेष्ठ 'वचन' कहा है। धर्मपूर्वक ही भाषण करना चाहिये, अधर्मपूर्वक नहीं। प्रिय वचन ही बोलना चाहिये, अप्रिय वचन नहीं। सत्यभाषण ही करना चाहिये, असत्य भाषण नहीं॥

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने, आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यों कहाँ- ''भगवन्! मैं कुछ कहना चाहता हूँ, सुगत! मैं कुछ बोलना चाहता हूँ।''''कहो, वङ्गीश! तुम्हें

''पटिभातु तं वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि–

''तमेव वाचं भासेय्य, यायत्तानं न तापये।
परे च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभासिता॥
''पियवाचंव भासेय्य, या वाचा पटिनन्दिता।
यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं॥
''सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।
सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतिट्ठिता॥
''यं बुद्धो भासते वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रतिभातु त्वाम्, वङ्गीशः''इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः भगवतः सम्मुखं सरूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयत्—

''तामेव वाचं भाषेत्, ययात्मानं न तापयेत्।
पराँश्च न विहिंसेत, सा वै वाचा सुभाषिता॥
''प्रियवाचमेव भाषेत्, या वाचा प्रतिनन्दिता।
यमनादाय पापानि, परेषां भाषते प्रियम्॥
''सत्यं वै अमृता वाचा, एष धर्मः सनातनः।
सत्ये अर्थे च धर्मे च, आहुः सन्तः प्रतिष्ठिताः॥
''यां बुद्धः भाषते वाचम्, क्षेमं निर्वाणप्राप्तये।
दुःखस्यान्तकरणाय, सा वै वाचामुत्तमा''इति॥

(हिन्दी)- मेरी अनुज्ञा है''- भगवान् ने यों आदेश दिया। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने समयोचित वाणी से भगवान् की स्तुति करते हुए यह कहा-

''साधक को वही वाणी बोलनी चाहिये जिसे बोलने के बाद पश्चाताप न करना पड़े तथा उससे दूसरों को कोई कष्ट भी न हो। ऐसी वाणी को ही 'सुभाषित' कहते हैं।

''प्रियवचन ही बोलने चाहिये जो सुनने वाले को मधुर लगे। जो अपनी वाणी से दूसरों के दोष नहीं निकालता वही 'प्रिय वक्ता' कहलाता है।

''सत्यभाषण ही सर्वोत्तम है। यही सनातन धर्म है। क्योंकि सत्यभाषण को ही विद्वानों ने प्रयोजनयुक्त तथा धर्म में प्रतिष्ठित बताया है।

''इस लिये, बुद्ध जो क्षेम तथा निर्वाण की प्राप्ति एवं दुःखों का अन्त करने के लिये वचन बोलते हैं वे तो सबसे उत्तम वचन हैं।''

८.६. सारिपुत्तसुत्तं

एकं समयं आयस्मा सारिपुत्तो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अयं खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यंनूनाहं आयस्मन्तं सारिपुत्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं''ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येनायस्मा सारिपुत्तो तेनञ्जलिं पणामेत्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं, आवुसो

6 (संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये आयुष्मान् सारिपुत्रः श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् सारिपुत्रः भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहृष्यति पोराण वाचा विशिष्टया अनिरर्गलया अर्थस्य विज्ञापनीयया ते च भिक्षव आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितस्रोतारः धर्मं शृण्वन्ति। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्- अयं खलु आयुष्मान् सारिपुत्रः भिक्षून् धर्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहृष्यति पोराण वाचा विशिष्टया अनिरर्गलया अर्थस्य विज्ञापनीयया। ते च भिक्षव आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितस्रोतारः धर्मं शृण्वन्ति। यन्नूनमहम् आयुष्मन्तं सारिपुत्रं संमुखं सरूप्याभिः गाथाभिः अभिस्तुयाम्''इति।

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थाय आसनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्रायुष्मान् सारिपुत्रः तत्राञ्जलिं प्रणम्य आयुष्मन्तं सारिपुत्रम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति माम्, आयुष्मन्!

6- (हिन्दी)- एक समय आयुष्मान् सारिपुत्र श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश द्वारा सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। उन के धर्मोपदेश के वचन सभ्य, स्पष्ट, निर्दोष एवं सार्थक थे। सामने बैठे हुए भिक्षु भी उसको बहुत आदरपूर्वक मन लगा कर, ध्यान देकर कान लगा कर सुन रहे थे। तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में हुआ कि- यह आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश द्वारा सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया। उन के धर्मोपदेश के वचन सभ्य, स्पष्ट, निर्दोष एवं सार्थक थे। भिक्षु भी उसको बहुत आदरपूर्वक मन लगा कर, ध्यान देकर सुन रहे थे। ऐसे अवसर पर मैं भी क्यों न सारिपुत्र की समयोचित वाणी से, गाथा के माध्यम से, स्तुति करूँ।

सारिपुत्त, पटिभाति मं, आवुसो सारिपुत्ता''ति। ''पटिभातु तं, आवुसो वङ्गीसा''ति। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं सारिपुत्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि –

''गम्भीरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस्स कोविदो।
सारिपुत्तो महापञ्ञो, धम्मं देसेति भिक्खुनं॥
''संखित्तेनपि देसेति, वित्थारेनपि भासति।
साळिकायिव निग्घोसो, पटिभानं उदीरयि॥
''तस्स तं देसयन्तस्स, सुणन्ति मधुरं गिरं।
उदग्गचित्ता मुदिता, सोतं ओधेन्ति भिक्खवो''ति॥

8.7. पवारणासुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे

(संस्कृतच्छाया)- सारिपुत्र! प्रतिभाति माम्, आयुष्मन् सारिपुत्र!''इति। ''प्रतिभातु तम्, आयुष्मन् वङ्गीश!'' इति। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आयुष्मन्तं सारिपुत्रं सम्मुखा सरूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयत्-

''गम्भीरप्रज्ञो मेधावी, मार्गामार्गस्य कोविदः।
सारिपुत्रो महाप्रज्ञः, धर्मं दिशति भिक्षूणाम्॥
''संक्षिप्तेनपि दिशति, विस्तारेणापि भाषते।
सारिका इव निर्घोषः, प्रतिभानम् हि उदीरिताम्।
''तस्य तं दिशन्तस्य, शृण्वन्ति मधुरां गिराम्।
उदग्रचिताः मुदिताः स्रोत्रे अवधारयन्ति भिक्षवः''इति॥

7- एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति पूर्वारामे मृगार-मातृप्रासादे महता भिक्षुसङ्घेन सार्धं पञ्चमात्रैः भिक्षुशतैः सर्वैः एव अर्हन्तैः। तत्र खलु पुनः समये भगवान् तदोपोसथायां

(हिन्दी)- तब आयुष्मान् वङ्गीश आसन से उठ कर उत्तरासंग...पूर्ववत्.....गाथाओं से यों स्तुति करने लगे-

गम्भीर प्रज्ञावाले, बुद्धिमान्, सत् एवं असत् के ज्ञाता ये सारिपुत्र महाप्रज्ञ भिक्षुओं को धर्मोपदेश कर रहे हैं।

''वे संक्षेप में भी उपदेश करते हैं, उसका समयोचित्त विस्तार भी करते हैं। उनका स्वर सारिका मैना के समान मधुर है। उनकी प्रत्युत्पन्नमतिता उच्च स्तर की है।

उनके उपदेश की वाणी मधुर, आनन्ददायक, सुनने में मीठी, तथा सुन्दर है, अतएव ये भिक्षुजन उनको प्रसन्न एवं प्रमुदितचित्त होकर ध्यानपूर्वक कान लगा कर सुन रहे हैं।

7- एक समय भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम स्थित मृगारमातृप्रसाद में पाँचा सौ भिक्षुओं के, जो कि सभी अर्हत् हो चुके थे, विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् पंचदशी (पूर्णिमा)

पवारणाय भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि– ''हन्द दानि, भिक्खवे, पवारेमि वो। न च मे किञ्चि गरहथ कायिकं वा वाचसिकं वा''ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''न खो मयं, भन्ते, भगवतो किञ्चि गरहाम कायिकं वा वाचसिकं वा। भगवा हि, भन्ते, अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता, असञ्जातस्स मग्गस्स सञ्जनेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता, मग्गञ्ञू मग्गविदू मग्गकोविदो। मग्गानुगा च, भन्ते, एतरहि सावका विहरन्ति पच्छा समन्नागता; अहञ्च खो, भन्ते, भगवन्तं पवारेमि। न च मे भगवा किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा''ति।

''न ख्वाहं ते, सारिपुत्त, किञ्चि गरहामि कायिकं वा वाचसिकं वा। पण्डितो त्वं, सारिपुत्त, महापञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, पुथुपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, हासपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त,

(संस्कृतच्छाया)- पञ्चदश्यां प्रवारणाय भिक्षुसङ्घपरिनिर्वृतः अभ्यवकाशे निषण्णो भवति। अथ खलु भगवान् तूष्णीभूतं भिक्षुसङ्घम् अनुविलोक्य भिक्षून् आमन्त्रयत— ''हन्त, इदानीं भिक्षवः! प्रवारयामि वः। न च मया किञ्चित् गर्हितं कायिकं वा वाचिकं वा''इति?

एवमुक्ते, आयुष्मान् सारिपुत्रः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— ''नु खलु वयम, भदन्त! भगवतः किञ्चित् गर्हयामः कायिकं वा वाचिकं वा। भगवान् हि, भदन्त! अनुत्पन्नस्य मार्गस्य उत्पादयिता, असंज्ञातस्य मार्गस्य संज्ञापिता, अनाख्यातस्य मार्गस्य आख्याता मार्गज्ञः मार्गविद् मार्गकोविदः। मार्गानुगः च, भदन्त! एतर्हि श्रावकाः विहरन्ति पश्चात् समन्वागताः, अहं च खलु, भदन्त! भगवन्तं प्रवारयामि। न च मया भगवान् किञ्चित् गर्हते कायिकं वा वाचिकं वा''इति?

''न खल्वहं ते, सारिपुत्र! किञ्चित् गर्हयामि कायिकं वा वाचिकं वा। पण्डितः त्वम्, सारिपुत्र! महाप्रज्ञः त्वम्, सारिपुत्र! पृथुप्रज्ञस्त्वम्, सारिपुत्र! हासप्रज्ञस्त्वम्, सारिपुत्र!

(हिन्दी)- के उपोसथ के दिन प्रवारणा के लिये भिक्षुसङ्घ के मध्य खुले आकाश के नीचे विराजमान थे। तब भगवान् भिक्षुसङ्घ को चुप देखकर कहा- ''भिक्षुओं! मैं अपनी प्रवारणा (आत्मशुद्धि का आश्वासन) देता हूँ। क्या तुम में से किसी ने मेरा कोई निन्दनीय कायिक वाचिक दोष तो नहीं देखा?''

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यों कहाँ- ''भन्ते! हम भगवान् पर किसी भी प्रकार का कायिक या वाचिक दोष नहीं लगा सकते। भन्ते! भगवान् ही हमारे लिये अनुत्पन्न मार्ग के उत्पादक हैं, अज्ञात मार्ग के ज्ञाता, मार्गज्ञ तथा सम्यग्मार्गप्रदर्शक हैं। भन्ते! इस समय आपके श्रावक भी आपके पीछे पीछे चल रहे हैं। भन्ते! मैं भगवान् को प्रवारणा करता हूँ- भगवान् ने हममें कोई कायिक तथा वाचिक दोष तो नहीं देखा?''

''सारिपुत्र! मैं तुममें कोई कायिक या वाचिक दोष नहीं देखता। सारिपुत्र! तुम तो महान् पण्डित हो,

जवनपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, तिक्खपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त, निब्बेधिकपञ्ञो त्वं, सारिपुत्त। सेय्यथापि, सारिपुत्त, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स जेट्ठपुत्तो पितरा पवत्तितं चक्कं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; एवमेव खो त्वं, सारिपुत्त, मया अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेसी''ति।

''नो चे किर मे, भन्ते, भगवा किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा। इमेसं पन, भन्ते, भगवा पञ्चन्नं भिक्खुसतानं न किञ्चि गरहति कायिकं वा वाचसिकं वा''ति। ''इमेसम्पि ख्वाहं, सारिपुत्त, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं न किञ्चि गरहामि कायिकं वा वाचसिकं वा। इमेसञ्हि, सारिपुत्त, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं सट्ठि भिक्खू तेविज्जा, सट्ठि भिक्खू छळभिञ्ञा, सट्ठि भिक्खू उभतोभागविमुत्ता, अथ इतरे पञ्ञाविमुत्ता''ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता''ति।

(संस्कृतच्छाया)- जवनप्रज्ञस्त्वं सारिपुत्र! तीक्ष्णप्रज्ञः त्वम्, सारिपुत्त! निर्बेधिकपज्ञः त्वम्, सारिपुत्र!। तद्यथापि, सारिपुत्र! राज्ञः चक्रवर्तिनः, ज्येष्ठपुत्रः पित्रा प्रवर्तितं चक्रं सम्यगेव अनुप्रवर्तते इति; एवमेव खलु त्वम्, सारिपुत्र! मया अनुत्तरं धर्मचक्रं प्रवर्तितं सम्यगेवानुप्रवर्तसे"इति।

''नो चेत् किल मे भदन्त! भगवान् किञ्चित् गर्हयति कायिकं वा वाचिकं वा। एतेषां पुनः, भदन्त! भगवान् पञ्चानां भिक्षुशतानां न किञ्चित् गर्हयति कायिकं वा वाचिकं वा"इति। एतेषामपि खल्वहम्, सारिपुत्र! पञ्चानां भिक्षुशतानां न किञ्चित् गर्हयामि कायिकं वा वाचिकं वा। एतेषां हि, सारिपुत्र! पञ्चानां भिक्षुशतानां षष्ठिः भिक्षवः त्रैविद्याः, षष्ठिः भिक्षवः षड्भिज्ञाः, षष्ठिः भिक्षव उभयभागविमुक्ताः, अथ इतरे प्रज्ञाविमुक्ताः"इति।

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति मां भगवन्! प्रतिभाति मां सुगत!"इति।

(हिन्दी)- महाप्रज्ञ हो, तीव्रबुद्धि हो, प्रसन्न बुद्धि वाले हो। सर्वत्र गति, कुशाग्र एवं अपराजेय हो। सारिपुत्र! जैसे चक्रवर्ती राजा का ज्येष्ठ पुत्र पिता द्वारा प्रवर्तित शासनचक्र का प्रवर्तन करता है वैसे ही तुम मेरे द्वारा प्रवर्तित इस धर्मचक्र का सम्यक् प्रवर्तन करते हो।''

''भन्ते! यदि भगवान् मुझमें कोई कायिक वाचिक दोष नहीं पा रहे हैं तो भगवन्! आप विश्वास कीजिये कि इस पाँच सौ भिक्षुओं में भी कोई वैसा दोष नहीं मिलेगा।'' सारिपुत्र! इन पाँच सौ भिक्षुओं में भी मैं कोई कायिक या वाचिक दोष नहीं देख पा रहा हूँ। सारिपुत्र! इन पाँच सौ भिक्षुओं में साठ भिक्षु त्रैविद्य हैं, साठ भिक्षु षड्भिज्ञ है, साठ भिक्षु संयोजनों के दोनों भागों से विमुक्त हैं, तथा अवशिष्ट प्रज्ञा-विमुक्त हैं।

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने, आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़कर यों कहाँ- ''भगवन्! मैं कुछ कहना चाहता हूँ, सुगत! मैं कुछ बोलना चाहता हूँ।''

''पटिभातु तं, वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि–

''अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया, भिक्खू पञ्चसता समागता।
संयोजनबन्धनच्छिदा, अनीघा खीणपुनब्भवा इसी॥
''चक्कवत्ती यथा राजा, अमच्चपरिवारितो।
समन्ता अनुपरियेति, सागरन्तं महिं इमं॥
''एवं विजितसङ्गामं, सत्थवाहं अनुत्तरं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥
''सब्बे भगवतो पुत्ता, पलापेत्थ न विज्जति।
तण्हासल्लस्स हन्तारं, वन्दे आदिच्चबन्धुनं''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रतिभातु त्वां वङ्गीश''इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयत्—

''अद्य पञ्चदश्यां विशुद्धये, भिक्षवः पञ्चशततम समागताः।
संयोजनबन्धनच्छिदाः, अनघाः क्षीणपुनर्भवाः ऋषयः॥
''चक्रवर्ती यथा राजा, अमात्यपरिवारितः।
समन्ताद् अनुपर्येति, सागरान्तं महीम् इमाम्॥
''एवं विजितसंग्रामम्, सार्थवाहम् अनुत्तरम्।
श्रावकाः पर्युपासन्ते, त्रैविद्याः मृत्युघातिनः॥
''सर्वे भगवतः पुत्राः, प्रलापमत्र न विद्यते।
तृष्णाशल्यस्य हन्तारम्, वन्दे आदित्यबन्धुन्''इति॥

(हिन्दी)- ''कहो, वङ्गीश! तुम्हें मेरी अनुज्ञा है''। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने समयोचित वाणी से भगवान् की स्तुति करते हुए यह कहा-

''आज पूर्णिमा के दिन विशुद्धिज्ञापन के निमित्त एकत्र ये पाँच सौ भिक्षु सभी संयोजन बन्धन को काट चुके हैं, निष्पाप हैं, इनकी जन्ममरणपरम्परा क्षीण हो चुकी है, अतः ये ऋषितुल्य हैं।

''जैसे चक्रवर्ती राजा अपने मन्त्रियों से घिरा हुआ अपने अधीन समस्त राज्य में समुद्र तक चारों ओर धूम आता है,

वैसे ही आप विजितसंग्राम तथा अद्वितीय नायक की उपासना करके श्रावकगण उपासना करते हैं। ये सभी त्रैविद्य एवं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर चुके हैं।''

''ये सभी भगवान् के शिष्य हैं, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। तृष्णारूपी शल्य को काटने वाले हैं, अतः मैं आप सूर्यवंशोत्पन्न बुद्ध को प्रणाम करता हूँ।''

४.४. परोसहस्ससुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेलसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अयं खो भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। यंनूनाहं भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं''ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं भगवा, पटिभाति मं सुगता''ति।

४. (संस्कृतच्छाया)- एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे महता भिक्षुङ्घेन सार्धम् अर्द्धत्रयोदशभिः भिक्षुशतैः। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् भिक्षून् धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहृष्यति। ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितस्रोतारः धर्मं शृण्वन्ति। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्- अयं खलु भगवान् भिक्षून् निर्वाणप्रतिसंयुक्ताय धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहृष्यति। ते च भिक्षवः आस्थां कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसाः समन्वाहृत्य अवहितस्रोतारः धर्मं शृण्वन्ति। यन्नूनमहं भगवतः सम्मुखं सरूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयेम''इति।

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति मां भगवन्!, प्रतिभाति मां सुगत!"इति।

४.(हिन्दी)- एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में 1250 सङ्ख्यावाले भिक्षुसङ्घ के साथ विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण की ओर प्रवृत्त करने वाली धार्मिक कथा से सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट कर रहे थे। भिक्षु भी उस कथा को बहुत ही मन लगाकर, ध्यान लगाकर खुले कानों से सुन रहे थे। तब आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण की ओर प्रवृत्त करने वाली धार्मिक कथा से सन्दृष्ट, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट कर रहे है। भिक्षु भी उस कथा को बहुत ही मन लगाकर, ध्यान लगाकर खुले कानों से सुन रहे है। तो क्यों न मैं भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति करूँ!

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आसन से उठ कर उत्तरासंग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ जोड़ कर यह बोले- भगवन्! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। सुगत! मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

''पटिभातु तं, वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि–

''परोसहस्सं भिक्खूनं, सुगतं पयिरुपासति।
देसेन्तं विरजं धम्मं, निब्बानं अकुतोभयं॥
''सुणन्ति धम्मं विमलं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सोभति वत सम्बुद्धो, भिक्खुसङ्घपुरक्खतो॥
''नागनामोसि भगवा, इसीनं इसिसत्तमो।
महामेघोव हुत्वान, सावके अभिवस्सति॥
''दिवाविहारा निक्खम्म, सत्थुदस्सनकम्यता।
सावको ते महावीर, पादे वन्दति वङ्गीसो''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रतिभातु त्वां वङ्गीश''इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयत्—

''परः सहस्रं भिक्षुणाम्, सुगतं पर्युपासते।
दिशन्तं विरजं धर्मम्, निर्वाणम् अकुतोभयम्॥
''शृण्वन्ति धर्मं विमलम्, सम्यक्सम्बुद्धदेशितम्।
शोभते वत सम्बुद्धः, भिक्षुसङ्घपुरस्कृतः॥
''नागनामसि भगवान्, ऋषीणाम् ऋषिसप्तमः।
महामेघ इव भूत्वा, श्रावके अभिवर्षति॥
''दिवाविहाराः निष्क्रम्य, शास्तादर्शनकाम्यते।
श्रावकः ते महावीर, पादौ वन्दति वङ्गीशः''इति॥

(हिन्दी)- भगवान् बोले- वङ्गीश!- अवकाश है, कहो। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं में उनकी स्तुति की-

''हजार सङ्ख्या से भी अधिक भिक्षु भगवान् के चारों ओर बैठे हैं, भगवान् उनको विमल धर्म का उपदेश कर रहे हैं। जो कि भय से रहित करने वाला तथा निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है।

''उस विमल धर्म का श्रवण कर रहे हैं जिसे भगवान् बुद्ध उपदेश कर रहे हैं। इस तरह भिक्षुसङ्घ भगवान् को चारों ओर से घेरे बैठा है। इन भिक्षुओं के बीच में भगवान् अत्यधिक शोभायमान हो रहे हैं।

''इन भगवान् का एक नाम नाग है, ये ऋषियों में सातवें ऋषि हैं। ये महामेघ की तरह भिक्षुसङ्घ पर धर्मोपदेश की वर्षा कर रहे हैं।

'दिन विहार से उठकर बुद्ध की दर्शन की इच्छा से, हे महावीर! आप का यह वङ्गीश श्रावक आप के चरणों में वन्दना करता है।''

''किं नु ते, वङ्गीस, इमा गाथायो पुब्बे परिवितक्किता, उदाहु ठानसोव तं पटिभन्ती''ति ? 'न खो मे, भन्ते, इमा गाथायो पुब्बे परिवितक्किता, अथ खो ठानसोव मं पटिभन्ती'ति। 'तेन हि तं, वङ्गीस, भिय्योसोमत्ताय पुब्बे अपरिवितक्किता गाथायो पटिभन्तू'ति। 'एवं, भन्ते'ति खो आयस्मा वङ्गीसो भगवतो पटिस्सुत्वा भिय्योसोमत्ताय भगवन्तं पुब्बे अपरिवितक्किताहि गाथाहि अभित्थवि–

''उम्मग्गपथं मारस्स अभिभुय्य, चरति पभिज्ज खिलानि।
तं पस्सथ बन्धपमुञ्चकरं, असितं भागसो पविभजं॥
''ओघस्स नित्थरणत्थं, अनेकविहितं मग्गं अक्खासि।
तस्मिञ्चे अमते अक्खाते, धम्मद्दसा ठिता असंहीरा॥
''पज्जोतकरो अतिविज्झ, सब्बट्ठितीनं अतिक्कममद्दस।

(संस्कृतच्छाया) किं नु त्वया, वङ्गीश! इमाः गाथाः पूर्वं परिवितर्किता, उदाहुः स्थाने एव ताः प्रतिभायन्ते"इति? न खलु मया, भदन्त! इमाः गाथाः पूर्वं परिवितर्किता, अथ खलु स्थाने एव मां प्रतिभायन्ते"इति। तस्मिन् हि त्वां, वङ्गीश! भूयःसोनमत्ताय पूर्वम् अपरिवितर्किताः गाथाः प्रतिभायन्ते"इति। "एवम्, भदन्त!" इति खलु आयुष्मान् वङ्गीशः भगवतः प्रतिश्रुत्य भूयसोनमत्ताय भगवन्तं पुर्वम् अपरिवितर्कैः गाथाभिः अभ्यर्थयत्—

''उन्मार्गपथं मारस्य अभिभूय, चरति प्रभिद्य कीलानि।
तं पश्यथ बन्धप्रमुञ्चकरम्, असितं भागशः प्रविभाजनृम्॥
''ओघस्य निस्तरणार्थम्, अनेकविहितं मार्गम् आख्यासि।
तस्मिन् चेद् अमृते आख्याते, धर्मदृशा स्थिताः असंहार्याः॥
''प्रद्योतकरः अतिविद्य, सर्वस्थितीनाम् अतिक्रममद्राक्षीत्।

(हिन्दी)- यह सुनकर भगवान् ने वङ्गीश से पूछा- ''वङ्गीश! तुमने ये गाथाएँ पहले से ही बना लिया था, या तुम्हें ये इसी क्षण सूझी हैं?'' भन्ते! मैंने इन गाथाओं को पहले से नहीं बनाया था, अपितु अभी सूझी हैं।''तो वङ्गीश! ऐसी ही कुछ अन्य गाथाएँ भी सुनाओ, जिनको तुमने पहले कभी नही रचा हो।''''भन्ते! बहुत अच्छा''- कहकर आयुष्मान् वङ्गीश भगवान् को उत्तर दे पहले कभी नहीं रची गई गाथाओं से भगवान् की यों स्तुति करने लगे-

''मार के मिथ्या मार्ग को धूलिसात् कर, मानसिक ग्रन्थियों को काटकर विचरण करते हैं। बन्धनों से मुक्त कराने वाले अपने इन शिष्यों पर आप अनुकम्पामय दृष्टि डालें, जो जिज्ञासुओं को स्मृतिप्रस्थान आदि साधन धर्मोपदेश द्वारा वितरित करते हैं।''

''औघों से निस्तरण के लिये आप अनेक प्रकार के साधना-मार्ग का उपदेश करते रहते हैं। आपसे वह अमृतोपदेश सुनकर ये धर्मज्ञानी अजेय हो गये।

''अन्तर्मन को प्रकाशित कर देने वाले आपने उच्च से उच्च लक्ष्य का साक्षात्कार कर लिया। सर्वप्रथम

ञत्वा च सच्छिकत्वा च, अग्गं सो देसयि दसद्धानं॥
''एवं सुदेसिते धम्मे, को पमादो विजानतं धम्मं।
तस्मा हि तस्स, भगवतो सासने।
अप्पमत्तो सदा, नमस्समनुसिक्खे''ति॥

४.९. कोण्डञ्ञसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा अञ्ञासिकोण्डञ्ञो सुचिरस्सेव येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि मुखेन च परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामं च सावेति– ''कोण्डञ्ञोहं, भगवा, कोण्डञ्ञोहं, सुगता''ति। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अयं खो आयस्मा अञ्ञासिकोण्डञ्ञो सुचिरस्सेव येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवतो पादानि मुखेन च

(संस्कृतच्छाया)- ज्ञात्वा च साक्षिकृत्य च, अग्रं सः देशयसि दशद्धानम्॥
''एवं सुदेशिते धर्मे, कः प्रमादविजानन्तं धर्मम्।
तस्मात् हि तस्य, भगवतः शासने।
अप्रमत्तः सदा, नमस्यमनुशिक्षे''इति॥

9- एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। अथ खलु आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य सुचिरस्येव यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः पादौ शिरसा निपत्य भगवतः पादयोः मुखेन च परिचुम्बति, पाणिभ्याम् च परिसम्बाधते, नामं च स्रावयति इति। ''कौण्डिन्योऽहम्, भगवन्!, कौण्डिन्योऽहम्, सुगत!''इति। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्- अथ खलु आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्यः सुचिरस्येव यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः पादौ शिरसा निपत्य भगवतः पादयोः मुखेन च

(हिन्दी)- आपने जिज्ञासुओं को ज्ञान का उपदेश किया।

''इस प्रकार का धर्मोपदेश सुनने वाले को धर्म के विषय में प्रमाद कैसा! इसलिये जिज्ञासु साधक आप भगवान् के शासन मे सदा अप्रमत्त होकर नम्रतापूर्वक साधनाभ्यास करें।''

9- एक समय भगवान् राजगृह स्थित वेणुवन के कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। तब आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्य, बहुत समय बाद, जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर भगवान् के श्रीचरण में प्रणाम कर भावातिरेक में उनके श्रीचरणों का चुम्बन करने लगे, तथा उनके चरणों को अपने हाथों से दबाते हुए, कहने लगे कि भगवन्! मैं कौण्डिन्य हूँ, सुगत! मैं कौण्डिन्य हूँ। तब आयुष्मान् वङ्गीश को यह विचार हुआ- ''यह आयुष्मान् आज्ञातकौण्डिन्य बहुत समय बाद, जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर भगवान् के श्रीचरण में प्रणाम कर भावातिरेक में उनके श्रीचरणों का चुम्बन करने लगे, तथा उनके चरणों को अपने हाथों से दबते

परिचुम्बति, पाणीहि च परिसम्बाहति, नामञ्च सावेति– 'कोण्डञ्ञोहं, भगवा, कोण्डञ्ञोहं, सुगता'ति। यंनूनाहं आयस्मन्तं अञ्ञासिकोण्डञ्ञं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं''ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता''ति। ''पटिभातु तं, वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं अञ्ञासिकोण्डञ्ञं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि–

''बुद्धानुबुद्धो सो थेरो, कोण्डञ्ञो तिब्बनिक्कमो।
लाभी सुखविहारानं, विवेकानं अभिण्हसो॥
''यं सावकेन पत्तब्बं, सत्थुसासनकारिना।
सब्बस्स तं अनुप्पत्तं, अप्पमत्तस्स सिक्खतो॥

(संस्कृतच्छाया)- परिचुम्बति, पाणिभ्याम् च परिसम्बाधते, नाम च स्नावयति— "कौण्डिन्योऽहम्, भगवन्!, कौण्डिन्योऽहम्, सुगत!"इति। यन्नूनमहम् आयुष्मन्तम् आज्ञातकौण्डिन्यः भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयेयम्"इति—

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति माम्, भगवन्! प्रतिभाति माम्, सुगत!"इति। "प्रतिभातु त्वाम्, वङ्गीश!"इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आयुष्मन्तम् आज्ञातकौण्डिन्यं भगवतः सम्मुखं सरूप्याभिः गाथाभिः अभ्यार्थयत्—

''बुद्धानुबुद्धः सः स्थविरः, कौण्डिन्यः तीव्रनिष्क्रमः।
लाभी सुखविहाराणाम्, विवेकानाम् अभीक्ष्णशः॥
''यं श्रावकेन प्राप्तव्यम्, शास्तुः शासनकारिणा।
सर्वं तत् अनुप्राप्तम्, अप्रमत्तस्य शिक्षतः॥

(हिन्दी)- हुए, कहने लगे कि भगवन्! मैं कौण्डिन्य हूँ, सुगत! मैं कौण्डिन्य हूँ। तो क्यों न मैं इन आज्ञातकौण्डिन्य का, भगवन् के सम्मुख ही, समयोचित गाथाओं से सम्मान करूँ।''

यह विचारकर आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने आसन से उठकर....पूर्ववत्.....भगवान् से निवेदन किया। भगवान् ने वङ्गीश को अनुमति दे दी। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् आज्ञात-कौण्डिन्य की इन सामयिक गाथाओं से स्तुति की-

''भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के ज्ञाता स्थविर, अत्युत्साही, हे कौण्डिन्य! आप सुखपूर्वक साधना में लगे हुए हैं। आप ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुके हैं।

''आपने, बुद्ध के शासन में रहकर किसी शिष्य द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है वह आपने अप्रमत्त हो अभ्यास कर के प्राप्त कर लिया है।

''महानुभावो तेविज्जो, चेतोपरियायकोविदो।
कोण्डञ्ञो बुद्धदायादो, पादे वन्दति सत्थुनो''ति॥

8.10. मोग्गल्लानसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति इसिगिलिपस्से काळसिलायं महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि। तेसं सुदं आयस्मा महामोग्गल्लानो चेतसा चित्तं समन्नेसति विप्पमुत्तं निरुपधिं। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अयं खो भगवा राजगहे विहरति इसिगिलिपस्से काळसिलायं महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सब्बेहेव अरहन्तेहि। तेसं सुदं आयस्मा महामोग्गल्लानो चेतसा चित्तं समन्नेसति विप्पमुत्तं निरुपधिं। यंनूनाहं आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यं''ति।

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा

(संस्कृतच्छाया)- ''महानुभावः त्रैविद्यः, चेतःपर्यायकोविदः।
कौण्डिन्यः बुद्धदायादः, पादौ वन्दति शास्तुः''इति॥

10- एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति ऋषिगिरिपार्श्वे कालशिलायां महता भिक्षुसङ्घेन सार्धं पञ्चमात्रैः भिक्षुशतैः सर्वैः एव अर्हन्तैः। तेषां स्वित् आयुष्मान् महामौद्गल्यानः चेतसा चित्तं समन्येष्यति विप्रमुक्तं निरूपधिम्। अथ खलु आयुष्मतः वङ्गीशस्य एतदभूत्- "अयं खलु भगवान् राजगृहे विहरति ऋषिगिरिपार्श्वे कालशिलायां महता भिक्षुसङ्घेन सार्धं पञ्चमात्रैः भिक्षुशतैः सर्वैः इव अर्हन्तैः। तेषां स्विद् आयुष्मान् महामौद्गल्यायनः चेतसा चित्तं समन्येष्यति विप्रमुक्तं निरूपधिम्। यन्नूनमहम् आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनं भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयेयम्'' इति।

अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान्

(हिन्दी)- ''आप बहुत बड़े प्रतापी, तीनों विद्याओं के ज्ञाता, परचित्तज्ञानी है। आप बुद्ध के प्रथम शिष्य हैं, अतः आप उचित ही भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना कर रहे हैं।''

10- एक समय भगवान् राजगृह के ऋषिगिरि पर्वत के पास मे स्थित कालशिला पर पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं के साथ विराजमान रहते हुए विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायन साधना द्वारा इस स्थिति में पहुँच गये थे कि वे स्वचित्त से अन्य के चित्त की विमुक्ति एवं निर्विकारता को जान रहे थे। इस अवसर पर आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह हुआ- भगवान् पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ राजगृह के ऋषिगिरि पर्वत के पास कालशिला पर विहार कर रहे हैं। और आयुष्मान् महामौद्गल्यायन ने अपने चित्त से उनके चित्त को विमुक्त और उपाधिरहित जान लिया है। तो मैं भगवान् के सम्मुख आयुष्मान् मौद्गल्यायन की इन गाथाओं से प्रशंसा करू।

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आसन से उठ कर उत्तरासंग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की ओर हाथ

तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता''ति। ''पटिभातु तं, वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं भगवतो सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि–

''नगस्स पस्से आसीनं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥
''ते चेतसा अनुपरियेति, मोग्गल्लानो महिद्धिको।
चित्तं नेसं समन्नेसं, विप्पमुत्तं निरूपधिं॥
''एवं सब्बङ्गसम्पन्नं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
अनेकाकारसम्पन्नं, पयिरुपासन्ति गोतमं''ति॥

8.11. गग्गरासुत्तं

एकं समयं भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन

(संस्कृतच्छाया) तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति माम्, भगवन्! प्रतिभाति माम्, सुगत!" इति। "प्रतिभातु त्वाम्, वङ्गीश!" इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनं भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथाभिः अभ्यर्थयत्—

''नागस्य पार्श्वे आसीनम्, मुनिं दुःखस्य पारगम्।
श्रावकाः पर्युपासते, त्रैविद्याः मृत्युहायिनः॥
''ते चेतसा अनुपर्येति, मौद्गल्यायनः महर्द्धिकः।
चित्तं तेषां समन्वेषाम्, विप्रमुक्तं निरूपधिम्॥
''एवं सर्वाङ्गसम्पन्नम्, मुनिं दुःखस्य पारगम्।
अनेकाकारसम्पन्नम्, पर्युपासते गौतमम्''इति॥

11. एकस्मिन् समये भगवान् चम्पायां विहरति गग्गरायाः पुष्करण्याः तीरे महता भिक्षुसङ्घेन

(हिन्दी)- जोड़ कर यह बोले- भगवन्! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। सुगत! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। भगवान् बोले- वङ्गीश! अवकाश है, कहो। तब आयुष्मान् वङ्गीश ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की भगवान् के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं से प्रशंसा करने लगे-

''पर्वत के पास में विराजमान, दुःखों के पार चले गये महामुनि की त्रैविद्य एवं मृत्युजेता शिष्य उपासना कर रहे हैं।

''ऋद्धिसम्पन्न आयुष्मान् महामौद्गल्यायन स्वचित्त से उनके चित्त की विमुक्ति एवं निर्विकार को जान रहे हैं।''

''इस तरह विविध अङ्गों द्वारा नाना प्रकार से सम्पन्न तथा दुःखों के अन्तकारक महामुनि गौतम बुद्ध की, उनके शिष्य उपासना कर रहे हैं।''

11. एक समय भगवान् चम्पा नगरी की गग्गरा नामक पुष्करणी के तट पर पाँच सौ भिक्षुओं के विशाल

सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सत्तहि च उपासकसतेहि सत्तहि च उपासिकासतेहि अनेकेहि च देवतासहस्सेहि। त्यास्सुदं भगवा अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स एतदहोसि– ''अयं खो भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सत्तहि च उपासकसतेहि सत्तहि च उपासिकासतेहि अनेकेहि च देवतासहस्सेहि। त्यास्सुदं भगवा अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। यंनूनाहं भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाय गाथाय अभित्थवेय्यं''ति।अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच– ''पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता''ति। ''पटिभातु तं, वङ्गीसा''ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाय गाथाय अभित्थवि–

''चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, विरोचति विगतमलोव भाणुमा।
एवम्पि अङ्गीरस त्वं महामुनि, अतिरोचसि यससासब्बलोकं''ति॥

(संस्कृतच्छाया)- सार्धं पञ्चशतभिक्षुभिः सप्तशतोपासकैः सप्तशतोपासिकाभिः अनेकैः च देवतासहस्रैः। तस्मिन् स्विद् भगवान् अतिरोचते वर्णेन चैव यशसा च। अथ खलु आयुष्मतः वाङ्गीशस्य एतदभूत्— अयं खलु भगवान् चम्पायां विहरति गग्गरायाः पुष्करण्याः तीरे महता भिक्षुसङ्घेन सार्धं पञ्चशतभिक्षुभिः सप्तशतोपासकैः सप्तशतोपासिकाभिः अनेकैः च देवतासहस्रैः। तस्मिन् स्विद् भगवान् अतिरोचते वर्णेन चैव यशसा च। यन्नूनमहं भगवन्तं सम्मुखं सारूप्याभिः गाथया अभ्यर्थयेयम्''इति। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः उत्थायासनात् एकांशम् उत्तरासंगं कृत्वा यत्र भगवान् तत्राञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "प्रतिभाति माम्, भगवन्!, प्रतिभाति माम्, सुगत!"इति। प्रतिभातु त्वाम्, वङ्गीश!"इति भगवान् अवोचत्। अथ खलु आयुष्मान् वङ्गीशः भगवतः सम्मुखं सारूप्याभिः गाथया अभ्यार्थयत्।

''चन्द्रो यथा विगतवलाहके नभे, विरोचते विगतमलेव भास्मानः।
एवमपि अङ्गीरस त्वं महामुनिः, अतिरोचसे यशसासर्वलोके''इति॥

(हिन्दी) भिक्षुसङ्घ से, सात सौ उपासकों, सात सौ उपासिकाओं और कई हजार देवताओं के साथ विहार कर रहे थे। उनमें भगवान् अपनी कान्ति और यश से बहुत शोभित हो रहे थे। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश के मन में यह विचार उठा- ''इस समय भगवान्. चम्पा नगरी की गग्गरा नामक पुष्करणी के तट पर पाँच सौ भिक्षुओं....पूर्ववत्...अतिशय शोभायमान् हो रहे हैं, तो क्यों न मैं उचित गाथाओं के माध्यम से स्तुति करूँ।''

तब आयुष्मान् वङ्गीश ने अपने आसन से उठकर....पूर्ववत्....भगवान् से निवेदन किया। भगवान् ने वङ्गीश को अनुमति दे दी। आयुष्मान् वङ्गीश ने भगवान् के सम्मुख स्तुति में यह समयोचित गाथा कही-

''जैसे मेघ रहित आकाश में चन्द्रमा अपने निर्मल प्रकाश से सुशोभित होता है, उसी तरह से महामुनि अंगिरस्! आप भी अपने विशिष्ट यश के कारण समस्त संसार से अधिक शोभित हो रहे हैं।

8.12. वङ्गीससुत्तं

एकं समयं आयस्मा वङ्गीसो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा वङ्गीसो अचिर अरहत्तप्पत्तो हुत्वा विमुत्तिसुखं पटिसंवेदी तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''कावेय्यमत्ता विचरिम्ह पुब्बे, गामा गामं पुरा पुरं।
अथद्दसाम सम्बुद्धं, सद्धा नो उपपज्जथ॥
''सो मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो।
तस्साहं धम्मं सुत्वान, पब्बजिं अनगारियं॥
''बहुन्नं वत अत्थाय, बोधिं अज्झगमा मुनि।
भिक्खूनं भिक्खुनीनञ्च, ये नियामगतद्दसा॥

12.(संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये आयुष्मान् वङ्गीशः श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् वङ्गीशः अचिरम् अर्हतप्राप्तः भूत्वा विमुक्तिसुखं प्रत्यसंवेदयत् तस्यां वेलायां इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''काव्यैः मत्ताः व्यचरम पूर्वे, ग्रामात् ग्रामं पुरात् पुरम्।
अथाद्राक्षं सम्बुद्धम्, श्रद्धा नो उपपद्येत्॥
''स मां धर्ममदिक्षत्, स्कन्धायतनधातुनाम्।
तस्य अहं धर्मं श्रुत्वा, प्राव्रजम् अनगारियम्॥
''बहूनां वत अर्थानाम्, बोधिम् अध्यगमत् मुनिः।
भिक्षूणां भिक्षूणीनां च, ये नियमगतादृशम्॥

---

12. (हिन्दी)- एक समय आयुष्मान् वङ्गीश श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् वङ्गीश को अर्हत्व प्राप्त किये हुए कुछ ही समय हुआ था। वह विमुक्तिसुख का आनन्द ले रहे थे। उस समय उनके मुख से ये गाथायें निकल पड़ी-

''प्रव्रजित होने से पूर्व में इस ग्राम से उस ग्राम एवं इस नगर से उस नगर में लोगों को कविता सुनाते हुए घूमता था। उसी समय मैंने भगवान् बुद्ध के दर्शन किये। जिससे उनमें मेरी श्रद्धा उत्पन्न हो गई।

''उन्होंने मुझको स्कन्ध आयतन एवं धातुओं के विषय में धर्मोपदेश किया। उनका उपदेश सुनकर मैंने घर छोड़कर प्रवज्या ग्रहणकर ली।

''बहुत से भिक्षु-भिक्षुणियों की अर्थसिद्धि के लिए मुनि ने बुद्धत्व प्राप्त किया। उन भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिये, जो नियमों (बुद्धोपदिष्ट शिक्षापदों) का साक्षात्कार किया।

''स्वागतं वत मे आसि, मम बुद्धस्स सन्तिके।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥
''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खुं विसोधितं।
तेविज्जो इद्धिपत्तोम्हि, चेतोपरियायकोविदो''ति॥ वङ्गीससंयुत्तं समत्तं।

तस्सुद्दानं– निक्खन्तं अरति चेव, पेसला अतिमञ्ञना।
आनन्देन सुभासिता, सारिपुत्तपवारणा।
परोसहस्सं कोण्डञ्ञो, मोग्गल्लानेन गग्गरा। वङ्गीसेन द्वादसाति॥

(संस्कृतच्छाया) ''स्वागतं वत मे आसीत्, मम बुद्धस्य अन्तिके।
तिस्रः विद्याः अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्''॥
''पूर्वनिवासं जानामि, दिव्यचक्षुं विशोधिताम्।
त्रैविद्यः ऋद्धिप्राप्तः, चेतःपर्यायकोविदः''इति॥ वङ्गीशसंयुक्त समाप्तम्॥

तस्योद्दानम्– निष्क्रान्तम् अरति चैव, पेशला अतिमन्यता।
आनन्देन सुभाषिता, सारिपुत्तप्रवारणा।
परो सहस्रं कौण्डिन्य, मौद्गल्यायेन गग्गरा॥ वङ्गीशेन द्वादशः''इति॥

(हिन्दी) ''बुद्ध के पास पहुँचने पर उन्होंने मुझे अनुकम्पा भाव से देखा। उनसे मैंने तीनों विद्याएं प्राप्त की, तथा उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म का अभ्यास किया। इससे उनको मुझको उपदेश करना सफल हुआ॥

''मैं अब अपने पूर्वजन्मों की बात जानता हूँ। मुझे दिव्य चक्षु प्राप्त हो गया है। मैं अब त्रैविद्य एवं ऋद्धिमान् हूँ। दूसरों के चित्त की बात जानने की सामर्थ मुझमें आ गयी है।''

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में निष्क्रान्तसुत्त, अरतिसुत्त, पेशलसुत्त, आनन्दसुत्त, सुभाषितसुत्त, सारिपुत्रसुत्त, प्रवारणासुत्त, परःसहस्रसुत्त, कौण्डिल्यसुत्त, मौद्गल्यायनसुत्त, गग्गरासुत्त एवं वङ्गीशसुत्त हैं।

******

9. वनसंयुत्तं

9.1. विवेकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो पापके अकुसले वितक्के वितक्केति गेहनिस्सिते। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि अज्झभासि–

''विवेककामोसि वनं पविट्ठो, अथ ते मनो निच्छरती बहिद्धा।
जनो जनस्मिं विनयस्सु छन्दं, ततो सुखी होहिसि वीतरागो॥

''अरतिं पजहासि सतो, भवासि सतं तं सारयामसे।
पातालरजो हि दुत्तरो, मा तं कामरजो अवाहरि॥

''सकुणो यथा पंसुकुन्थितो, विधुनं पातयति सितं रजं।

(संस्कृतच्छाया) 1. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये अन्यतरो भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तत्र खलु पुनः समयेन स भिक्षुः दिवाविहारगतः पापकान् अकुशलान् वितर्कान् वितर्कयति गृहनिःश्रितान्। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः अनुकम्पार्थकामा तं भिक्षुं संवेदयितुकामा यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट–

''विवेककामोऽसि वनं प्रविष्टः, अथ ते मनः निश्चरति बहिर्द्धा।
जनो जनेऽस्मिन् विनयस्व छन्दः, ततः सुखी भवसि वीतरागः॥

''अरतिं प्रजहासि स्मृतः, भव शान्तः त्वं सारयामहै।
पातालरजो हि दुस्तरो, मा त्वं कामरजो अवाहर॥

''शकुनिः यथा पांशुकुण्ठितः, विधूतं पातयति सितं रजः।

(हिन्दी) 1. ऐसा मैंने सुना है– एक समय कोई भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार करता था। उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिए गया हुआ था, परन्तु वह वहाँ बैठकर अशुभ सांसारिक वितर्क में अपना मन लगा बैठा। तब उस वन में निवास करनेवाला कोई वनदेवता, भिक्षु की शुभकामना से उसे सचेत करने के लिए उसके पास आकर इन गाथाओं के माध्यम से यह बोला-

''भिक्षु! तुम एकान्त में साधना की इच्छा से यहाँ वन में आकर बैठे हो, परन्तु तुम्हारा मन बाहर भाग रहा है। दूसरों के प्रति अपनी वासनाओं को दबाओ। तो वीतराग होकर सुखपूर्वक साधना कर सकोगे''।

''स्मृतिमान् रहते हुए, मन के मोह को त्याग दो, ऐसे सत्पुरुष बनो जिसकी सभी प्रशंसा करते हैं। नीच एवं पापमय कामों के प्रति, स्मृतिमान् होकर वहाँ बहक मत जाओ।

''पक्षी जैसे अपने शरीर पर धूल पड़ जाने पर पँख फड़फड़ा कर उसे उड़ा देता है,

एवं भिक्खु पधानवा सतिमा, विधुनं पातयति सितं रजं''ति॥
अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति।

9.2. उपट्ठानसुत्तं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो सुपति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि अज्झभासि–

''उट्ठेहि भिक्खु किं सेसि, को अत्थो सुपितेनते।
आतुरस्स हि का निद्दा, सल्लविद्धस्स रुप्पतो॥
''याय सद्धाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
तमेव सद्धं ब्रूहेहि, मा निद्दाय वसं गमी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) एवं भिक्षुः प्रध्याता स्मृतिमान्, विधूतं पातयति सितं रजः''इति॥
अथ खलु स भिक्षुः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमाप्तवान् इति।

2. एकस्मिन् समये अन्यतरो भिक्षु कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन स भिक्षुः दिवाविहारं गतः शेते। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः अनुकम्पार्थकामा तं भिक्षुं संवेदयितुंकामा यत्र स भिक्षुं तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुः गाथाभिः अध्यभाषिष्ट–

''उत्तिष्ठ भिक्षो! कथं शेषे, कोऽर्थः शयनेन ते।
आतुरस्य हि का निद्रा, शल्यविद्धस्य रूपिणः॥
''यया श्रद्धया प्रव्रजितः, अगारात् अनागार्यम्।
तामेव श्रद्धां ब्रूहि, मा निद्रायाः वशमागमः''इति॥

(हिन्दी) वैसे ही तुम भी उत्साही एवं स्मृतिमान् बन कर अपने मन के राग को मन को फड़फड़ाकर झाड़ दो''। तब देवता द्वारा ऐसे समझाये जाने पर वह भिक्षु स्मृतिमान् होकर सचेत हो गया।

2. एक समय कोई भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार करता था। उस समय वह भिक्षु दिन के विहार के लिये गया सो रहा था। तब, उस वन में वास करने वाला देवता उस भिक्षु पर अनुकंपा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर भिक्षु से गाथाओं में ऐसे बोला-

''उठो! भिक्षु! क्या सो रहे हो! सोने से क्या काम? बाण लगे, घायल एवं उस वेदना से पीड़ित आदमी को निद्रा कैसे आ सकती है? (इस धर्म के प्रति) श्रद्धा के सहारे घर से बेघर हुए हो, उस श्रद्धा को जगाओ, निद्रा के अधीन न होओ। भिक्षु- ''ये सांसारिक पदार्थ सभी अनित्य विनाशी हैं, जिनमें मूर्खजन ही आसक्त हो सकते हैं। परन्तु जो स्वतन्त्र एवं बन्धनमुक्त हैं, उस प्रव्रजित को वे कैसे सता सकते हैं?''

''अनिच्चा अद्धुवा कामा, येसु मन्दोव मुच्छितो।
बद्धेसु मुत्तं असितं, कस्मा पब्बजितं तपे॥
''छन्दरागस्स विनया, अविज्जासमतिक्कमा।
तं ञाणं परमोदानं, कस्मा पब्बजितं तपे॥
''छेत्वा अविज्जं विज्जाय, आसवानं परिक्खया।
असोकं अनुपायासं, कस्मा पब्बजितं तपे॥
''आरद्धवीरियं पहितत्तं, निच्चं दळ्हपरक्कमं।
निब्बानं अभिकङ्खन्तं, कस्मा पब्बजितं तपे''ति॥

9.3. कस्सपगोत्तसुतं

एकं समयं आयस्मा कस्सपगोत्तो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन आयस्मा कस्सपगोत्तो दिवाविहारगतो अञ्ञतरं छेत्तं ओवदति। अथ खो या

(संस्कृतच्छाया) ''अनित्या अध्रुवा कामाः, येषु मन्दो हि मूर्च्छितः।
बद्धेषु मुक्तमसि त्वम्, कस्मात् प्रव्रजितं तापयेत्॥
''छन्दरागस्य विनयात्, अविद्यायाः समतिक्रमात्।
तं ज्ञानं परमावदातम्, कस्मात् प्रव्रजितं तापयेत्॥
''छित्वा अविद्यां विद्यया, आश्रवाणां परिक्षयात्।
अशोकम् अनुप्राप्तम्, कस्मात् प्रव्रजितं तापयेत्॥
''आलब्धवीर्यं प्रहितात्मानं, नित्यं दृढपराक्रमम्।
निर्वाणम् अभिकाङ्क्षन्तं, कस्मात् प्रव्रजितं तापयेत्''इति॥

3. एकस्मिन् समये आयुष्मान् कश्यपगोत्र कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन आयुष्मान् कश्यपगोत्रः दिवाविहारगतः अन्यतरम् छेत्तारं अववदति। अथ खलु या

(हिन्दी) छन्दराग के दब जाने से अविद्या के सर्वथा क्षीण हो जाने से, जो शोक एवं खेद से दूर हो चुका है उस प्रव्रजित को वे क्यों सतावें? ''विद्या के बल से अविद्या को हटा कर, आश्रवों के क्षीण हो जाने से जिस साधक का शोक और परेशानी से छूट गया है, उस प्रव्रजित को वे कैसे सता सकते हैं? ''जो सतत वीर्यवान् है, प्रहितात्मा है, साधना में नित्य दृढ़ पराक्रमशील है, निर्वाण की आकांक्षा रखने वाले उस प्रव्रजित को वे (निंद आदि) दुर्गुण क्यों सतावें?''।

3. एक समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् काश्यपगोत्र दिन के विहार के लिये गये हुए, किसी बहेलिए को उपदेश कर रहे थे। तब उस

तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मन्तं कस्सपगोत्तं संवेजेतुकामा येनायस्मा कस्सपगोत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं कस्सपगोत्तं गाथाहि अज्झभासि–

''गिरिदुग्गचरं छेतं, अप्पपञ्ञं अचेतसं।
अकाले ओवदं भिक्खु, मन्दोव पटिभाति मं॥
''सुणाति न विजानाति, आलोकेति न पस्सति।
धम्मस्मिं भञ्ञमानस्मिं, अत्थं बालो न बुज्झति॥
''सचेपि दस पज्जोते, धारयिस्ससि कस्सप।
नेव दक्खति रूपानि, चक्खु हिस्स न विज्जती''ति॥

अथ खो आयस्मा कस्सपगोत्तो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति।

(संस्कृतच्छाया) तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता आयुष्मन्तं काश्यपगोत्रं संवेदयितुंकामा यत्र आयुष्मान् काश्यपगोत्रः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मान् काश्यपगोत्रः गाथाभिः अध्यभाषिष्ट–

''गिरिदुर्गचरं छेत्तारम्, अल्पप्रज्ञमचेतसम्।
अकालेऽववादं भिक्षो!, मन्द इव प्रतिभाति मे॥
''श्रृणोति न विजानाति, अवलोकयति न पश्यति।
धर्मे भजमानेऽस्मिन्, अर्थं बालः न बुध्यते॥
''सचेदपि दश प्रद्योतान्, धारयिष्यसि काश्यप!
नैव पश्यति रूपाणि, चक्षुर्ह्यस्य न विद्यते''इति॥

अथ खलु आयुष्मान् काश्यपगोत्रः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमासवान्'इति।

(हिन्दी) वन का अधिष्ठाता देवता आयुष्मान् काश्यपगोत्र को उचित मार्ग दिखाने की दृष्टि से...गाथाओं से ऐसा उपदेश करने लगा-

''प्रज्ञाहीन, मूर्ख, दुर्गम पर्वत में वास करने वाले इस बहेलिए को असमय में समझाने के लिये तुम क्या प्रयास कर रहे हो? मुझे तो तुम मूर्ख ज्ञात होते हो!

''यह तो केवल सुन सकता है, उसे समझ नहीं सकता। इसकी आँखें खुली हुई लगती है, परन्तु यह संसार की वास्तविकता को पहचान नहीं सकता। धर्मोपदेश किये जाने पर यह मूर्ख उसका तत्त्व क्या समझेगा?

''हे काश्यपगोत्र भिक्षु! यदि तू इसके सम्मुख दस दीपक लेकर भी खड़ा हो जाय, तो भी यह उन रूपों (विषयों) की निस्सारता नहीं समझ पायेगा; क्योंकि इसके पास उसको समझने में समर्थ ज्ञानचक्षु ही नहीं हैं।'' तब आयुष्मान् काश्यपगोत्र भिक्षु उस देवता द्वारा सावधान किये जाने पर उस बहेलिए की मूर्खता को समझ कर अपने निरर्थक उपदेश से दूर हो गया।

9.4. सम्बहुलसुत्तं

एकं समयं सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु विहरन्ति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। अथ खो ते भिक्खू वस्संवुट्ठा तेमासच्चयेन चारिकं पक्कमिंसु। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता ते भिक्खू अपस्सन्ती परिदेवमाना तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''अरति विय मेञ्ज खायति, बहुके दिस्वान विवित्ते आसने।
ते चित्तकथा बहुस्सुता, कोमे गोतमसावका गता''ति॥

एवं वुत्ते, अञ्ञतरा देवता तं देवतं गाथाय पच्चभासि–

''मागधं गता कोसलं गता, एकच्चिया पन वज्जिभूमिया।
मगा विय असङ्गचारिनो, अनिकेता विहरन्ति भिक्खवो''ति॥

9.5. आनन्दसुत्तं

एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो

(संस्कृतच्छाया) 4. एकस्मिन् समये सम्बहुलाः भिक्षवः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। अथ खलु ते भिक्षवः वर्षावासं त्रिमासात्ययेन चारिकं प्राक्रमिषुः। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता ते भिक्षवः अपश्यन्ती परिदेवमाना तस्यां वेलायां इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

''अरतिः खलु माम् अद्य खादति, बहून् दृष्ट्वा विविक्तान् आसनान्।
ते चित्रकथाः बहुश्रुताः, क्व इमे गौतमश्रावकाः गता''इति॥

एवम् उक्ते, अन्यतरा देवता तं देवं गाथया प्रत्यभाषिष्ट–

''मागधं गताः कौशलं गताः, एकश्चित् पुनः वज्जिभूमिम्।
मृगा इव असङ्गचारिणः, अनिकेताः विहरन्ति भिक्षवः''इति॥

5. एकस्मिन् समये आयुष्मान् आनंदः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु

(हिन्दी) 4. एक समय बहुत से भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार करते थे। तीन मास के बाद, वर्षावास का समय बीतने पर, वे भिक्षु चारिका हेतु वहाँ से चल दिये। तब उस वन का अधिष्ठाता देवता उन भिक्षुओं में सें किसी को भी वहाँ न देखकर उनके लिये विलाप करता हुआ यों बोला-

''आज मुझे यह वन बहुत उदास लग रहा है; क्योंकि आज यहाँ अनेक भिक्षुओं के शयनस्थान खाली है। वे शास्त्र की ऊंची ऊंची बातें करने वाले पण्डित भगवान् बुद्ध के शिष्य आज कहाँ चले गये?''

देवता द्वारा ऐसा कहे जाने पर, दूसरे बुद्धिमान् देवता ने उसको यों गाथाओं में उत्तर दिया- ''उन में से कोई मगध चला गया, तथा कोई कौशल एवं उनमें से कुछ वज्जी प्रदेश चले गये। स्वच्छन्द मृग की तरह विचरण करने वाले ये भिक्षु एक स्थान पर नहीं रहते; क्योंकि इनका कोई स्थायी आवास तो है नहीं। ये तो निरन्तर चारिका ही करते रहते हैं''।

5. एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशल के किसी वनखण्ड में विहार करते थे। ऐसे समय आयुष्मान् आनन्द को इधर-उधर से बहुत से गृहस्थ किसी न किसी कारण से घेरे रहते थे। तब उस वन का

पन समयेन आयस्मा आनन्दो अतिवेलं गिहिसञ्ञत्तिबहुलो विहरति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मतो आनन्दस्स अनुकम्पिका अत्थकामा आयस्मन्तं आनन्दं संवेजेतुकामा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं गाथाय अज्झभासि–

''रुक्खमूलगहनं पसक्किय, निब्बानं हृदयस्मिं ओपिय।
झाय गोतम मा पमादो, किं ते विळिविळिका करिस्सती''ति॥

अथ खो आयस्मा आनन्दो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति।

9.6. अनुरुद्धसुत्तं

एकं समयं आयस्मा अनुरुद्धो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। अथ खो अञ्ञतरा तावतिंसकायिका देवता जालिनी नाम आयस्मतो अनुरुद्धस्स पुराणदुतियिका येनायस्मा अनुरुद्धो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अनुरुद्धं गाथाय अज्झभासि–

(संस्कृतच्छाया) पुनः समयेन आयुष्मान् आनंद अतिवेलं गृहसंज्ञसिबहुलः विहरति। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता आयुष्मन्तस्य आनंदस्य अनुकम्पार्थकामः आयुष्मन्तम् आनन्दं संवेदयितुकामा यत्र आयुष्मान् आनंदः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मन्तम् आनंदम् गाथया अध्यभाषिष्ट– ''वृक्षमूलगहनं प्रविश्य, निर्वाणं हृदि आरोपयेत्।
ध्याय गौतम! मा प्रमाद्य, किन्ते *विलिविलिका* करिष्यति''इति॥

अथ खलु आयुष्मान् आनंदः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमापादि इति।

6. एकस्मिन् समये आयुष्मान् अनुरुद्धः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु अन्यतरा त्रायस्त्रिंशकायिका देवता जालिनी नाम आयुष्मतः अनुरुद्धस्य पुराणद्वितीयका यत्र आयुष्मान् अनुरुद्धः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मन्तम् अनुरुद्धं गाथया अध्यभाषिष्ट–

(हिन्दी) अधिष्ठाता देवता आयुष्मान् आनन्द पर अनुकम्पा करता हुआ उनकी शुभ कामना से उन्हें होश में ले आने के लिये, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहां आया तथा उनसे यह गाथा में बोला-

''इस जङ्गल के झाड़ झंखाड़ में आकर हृदय में निर्वाण की आकांक्षा ही रखो। हे गौतमशिष्य! निरन्तर ध्यानाभ्यास से ही अपना मन लगाये रखो। इन गृहस्थ लोगों के अधिक आने जाने, चहल पहल (विलिविलिका-भीड़) से आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला होगा!''।

देवता का यह सत्परामर्श सुनकर आयुष्मान् आनन्द अपनी धर्मसाधना में सावधान हो गये''।

6. एक समय आयुष्मान् अनुरूद्ध कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार करते थे। तब कोई त्रायस्त्रिशलोकवासिनी जालिनी नामक देवता, जो कि पूर्वजन्म में आयुष्मान् अनुरुद्ध की पत्नी थी, आयुष्मान् अनुरुद्ध के सम्मुख आयी, तथा उनसे गाथाओं में यह बोली-

''तत्थ चित्तं पणिधेहि, यत्थ ते वुसितं पुरे।
तावतिंसेसु देवेसु, सब्बकामसमिद्धिसु।
पुरक्खतो परिवुतो, देवकञ्ञाहि सोभसी''ति॥
''दुग्गता देवकञ्ञायो, सक्कायस्मिं पतिट्ठिता।
ते चापि दुग्गता सन्ता, देवकञ्ञाहि पत्थिता''ति॥
''न ते सुखं पजानन्ति, ये न पस्सन्ति नन्दनं।
आवासं नरदेवानं, तिदसानं यसस्सिनं''ति॥
''न त्वं बाले विजानासि, यथा अरहतं वचो।
अनिच्चा सब्बसङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

(संस्कृतच्छाया) ''तत्र चित्तं प्रणिध्याय, यत्र त्वया उषितं पुरे।
त्रायस्त्रिंशेषु देवेषु, सर्वकामसमृद्धिषु।
पुरस्कृतः परिवृतः, देवकन्याभिः शोभते''इति॥
''दुर्गता देवकन्याः याः, सत्काये प्रतिष्ठिताः।
ते चापि दुर्गताः सत्त्वाः, देवकन्याभिः प्रार्थिताः''इति॥
''न ते सुखं प्रजानन्ति, ये न पश्यन्ति नन्दनम्।
आवासं नरदेवानाम्, त्रिदशानां यशस्विनाम्'' इति॥
''न त्वं बाले! विजानासि, यथा अर्हतः वचः।
अनित्याः सर्वसंस्काराः, उत्पादव्ययधर्मिणः।
उत्पद्य निरुध्यन्ते, तेषां व्युपशमः सुखः॥

(हिन्दी) ''श्रीमन्! कृपया आप अपने पूर्व जन्म के आवास का भी ध्यान कीजिये जहाँ आपने पहले कभी चिरकाल तक वास किया था। जहां सभी प्रकार की सुखसुविधायें थीं। जहां आप निरन्तर देवकन्याओं से घिरे रह कर शोभित होते थे''।

अनुरुद्ध-''अपनी सुख सुविधाओं में लगी देवकन्याओं को धिक्कार है जिनकी पहुंच सत्काय दृष्टि तक ही सीमित है। साथ ही उन प्राणियों को भी धिक्कार है जो उन देवकन्याओं की प्राप्ति हेतु ही सतत प्रयत्नशील हैं''। जालिनी -''वे निरीह प्राणी सुख की विशेषता क्या जाने जिन्होंने नन्दन वन ही न देखा हो। जो कि यशस्वी त्रायस्त्रिशलोकवासियों का स्थायी वासस्थान है''।

अनुरुद्ध- ''अरी मूर्खे! क्या तू नहीं जानती कि ज्ञानियों ने क्या उपदेश किया है? (वे कहते हैं-) 'सभी संस्कार अनित्य हैं। उत्पाद एवं विनाश स्वभाव वाले हैं। ये उत्पन्न होकर विनष्ट होते रहते हैं'। इनका शान्त होना ही वास्तविक सुख है।

''नत्थि दानि पुनावासो, देवकायस्मि जालिनि।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥

9.7. नागदत्तसुत्तं

एकं समयं आयस्मा नागदत्तो कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन आयस्मा नागदत्तो अतिकालेन गामं पविसति, अतिदिवा पटिक्कमति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता आयस्मतो नागदत्तस्स अनुकम्पिका अत्थकामा आयस्मन्तं नागदत्तं संवेजेतुकामा येनायस्मा नागदत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागदत्तं गाथाहि अज्झभासि–

''काले पविस नागदत्त, दिवा च आगन्त्वा अतिवेलचारी।
संसट्ठो गहट्ठेहि, समानसुखदुक्खो॥
''भायामि नागदत्तं सुप्पगब्भं, कुलेसु विनिवद्धं।

(संस्कृतच्छाया) ''नास्तीदानीं पुनर्वासः, देवकाये जालिनि।
विक्षीणः जातिसंसारः, नास्तीदानीं पुनर्भवः''इति॥

7. एकस्मिन् समये आयुष्मान् नागदत्तः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तत्र खलु पुनः समयेन आयुष्मान् नागदत्तोऽतिकालेन ग्रामं प्रविशति, अतिदिवसं प्रतिक्रमति। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता आयुष्मन्तस्य नागदत्तस्य अनुकम्पार्थकामा आयुष्मन्तं नागदत्तं संवेदयितुकामा यत्र आयुष्मान् नागदत्तः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य आयुष्मन्तं नागदत्तं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''काले प्रविष्ट नागदत्त!, दिवा च आगत्य अतिवेलचारी।
संसृष्टः गृहस्थैः, समानसुखदुःखः॥
''बिभेमि नागदत्तं सुप्रगल्भम्, कुलेषु विनिबद्धम्।

(हिन्दी) ''हे जालिनि! अब हमारा किसी भी देवलोक में जन्म नहीं होना है। अब हमारी जन्मपरम्परा (संसार में आने-जाने) का क्रम क्षीण हो गया। अब हमारा कहीं पुनर्जन्म ही नहीं होना है''।

7. एक समय आयुष्मान् नागदत्त कौशल के किसी वनखण्ड में विहार करते थे। वे उस समय प्रातः ही ग्राम में प्रविष्ट होने तथा दिन में बहुत समय वहां बिता कर पुनः लौटते थे। तब उस वनखण्ड- देवता ने, उन पर अनुकम्पा करते हुए, उनकी हितकामना को ध्यान में रखते हुए, आयुष्मान् नागदत्त को सचेत करने के लिये उनके पास आकर उनको गाथाओं के माध्यम से यह कहा- ''नागदत्त! तुम प्रातः ही ग्राम में प्रविष्ट होकर भी बड़ी देर कर के वहाँ से लौटते हो! वहां गृहस्थों से अत्यधिक सम्पर्क करने लगते हो, उनसे उनके सुख दुःख की बातें पूछते- सुनते हो। ''इस तरह गृहस्थ कुलों में अत्यधिक सम्बन्धित रहने वाले नागदत्त के विषय में मुझे भय है कि ये ऐसा करते हुए मृत्युराज के बन्धन में न फंस जायें''।

मा हेव मच्चुरञ्ञो बलवतो, अन्तकस्स वसं उपेसी''ति॥

अथ खो आयस्मा नागदत्तो ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादी ति।।

9.8. कुलघरणीसुत्तं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु अञ्ञतरस्मिं कुले अतिवेलं अज्झोगाळ्हप्पत्तो विहरति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा या तस्मिं कुले कुलघरणी, तस्सा वण्णं अभिनिम्मिनित्वा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि–

''नदीतीरेसु सण्ठाने, सभासु रथियासु च।
जना सङ्गम्म मन्तेन्ति, मञ्च तञ्च किमन्तरं''ति॥
''बहूहि सद्धा पच्चूहा, खमितब्बा तपस्सिना।

(संस्कृतच्छाया) मा ह्येव मृत्युराजः बलवान्, अन्तकस्य वशम् उपनयेत्''इति॥

अथ खलु आयुष्मान् नागदत्तो तया देवतया संप्रेरितः संवेगमापादि''इति॥

8. एकस्मिन् समये कश्चिद् भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन स भिक्षु अन्यतरस्मिन् कुले अतिवेलम् अध्यवगाढप्राप्तः विहरति। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षुण अनुकम्पार्थकामा तान् भिक्षून् संवेदयितुकामा या तस्मिन् कुले कुलगृहिणी, तस्याः वर्णम् अभिनिर्माय यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''नदीतीरेषु संस्थाने, सभासु रथ्यासु च।
जनाः समागत्य मन्त्रयन्ति, मयि च त्वयि च किमन्तरम्''इति॥
''बहवः शब्दाः प्रत्यूहाः, क्षमिन्तव्याः तपस्विना।

(हिन्दी) वह आयुष्मान् नागदत्त देवता के इस सत्परामर्श को मानकर पुनः अपनी साधना में ही सावधानी से लग गया।

8. एक समय कोई भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार कर रहा था। परन्तु वे ग्राम के किसी घर में बहुत समय तक आने जाने तथा रहने लगा। तब उस वन में वास करने वाला देवता उस पर अनुकम्पा कर उसको सामाजिक निन्दा से बचाने के लिये उसे सत्परामर्श देने हेतु उस घर की गृहिणी का रूप बना कर उसके सम्मुख आया, तथा उससे गाथा में यह बोला-

''नदीतट पर धर्मशालाओं में, सभाओं में, ग्राम की गलियों में, मनुष्य एकत्र होकर हमारे तुम्हारे विषय में परस्पर यही बातें करते हैं कि हमारे तुम्हारे में अब क्या भेद रह गया है!'' भिक्षु- ''इस तरह के अफवाहें तपस्वी को सहन करनी चाहिये।

न तेन मङ्कु होतब्बं, न हि तेन किलिस्सति॥
''यो च सद्दपरित्तासी, वने वातमिगो यथा।
लहुचित्तोति तं आहु, नास्स सम्पज्जते वतं''ति॥

9.9. वज्जिपुत्तसुत्तं

एकं समयं अञ्ञतरो वज्जिपुत्तको भिक्खु वेसालियं विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन वेसालियं वज्जिपुत्तको सब्बरत्तिचारो होति। अथ खो सो भिक्खु वेसालिया तूरिय-ताळित-वादित-निग्घोससद्दं सुत्वा परिदेवमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''एकका मयं अरञ्ञे विहराम, अपविद्धं व वनस्मिं दारुकं।
एतादिसिकाय रत्तिया, को सु नामम्हेहि पापियो''ति॥

अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा

(संस्कृतच्छाया) न तेन मूकेन भवितव्यम्, न हि तेन क्लिष्यति॥
''य च शब्दपरित्रासः, वने वातमृगो यथा।
लघुचित्त इति तमाहुः, नास्य सम्पद्यते व्रतम्''इति॥

9. एकस्मिन् समये अन्यतरः वज्जिपुत्रकः भिक्षुः वैशाल्यां विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन वैशाल्यां वज्जिपुत्रकः सर्वरात्रिचारः भवति। अथ खलु सः भिक्षुः वैशाल्यां तुरीय-ताडित-वादित-निर्घोषशब्दं श्रुत्वा परिदेवमानः तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट–

''एकाकाः वयम् अरण्ये विहराम, अपविद्धमिव वनेऽस्मिन् दारुकम्।
एतादृश्यां रात्र्याम्, कः सु नाम अस्मद् इव पापी''इति॥

अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः अनुकम्पार्थकामा

(हिन्दी) उससे स्तब्ध नहीं होना चाहिये। इसमें कष्ट नहीं होगा। ''जो ऐसे शब्द सुनकर जंगल में मृग की तरह चौंक जाते हैं, उसे लोग 'दुर्बलचित्त' (लघुचित्त) कहते हैं। उनका लक्ष्य पूर्ण नहीं होता''।

9. एक समय कोई भिक्षु वैशाली के किसी वनखण्ड में विहार करता था। उस समय वैशाली में सभी वज्जिपुत्र मिलकर कोई रात्रि-उत्सव मना रहे थे। तब वह भिक्षु वैशाली में हो रहे उस रात्रि-उत्सव में प्रयुक्त वाद्यसङ्गीत को सुन कर पछताते हुए उसने इस गाथा के माध्यम से अपनी वेदना कही-

''हम लोग यहां एकाकी इस वन में वैसे ही पड़े हैं, जैसे वन में कोई कटा हुआ लकड़ी का कुन्दा पड़ा हो। आज जैसी इस शुभ रात्रि में हम जैसा अन्य कौन पापी होगा!''

तब उस वन में वास करने वाला कोई देवता उस भिक्षु पर अनुकम्पा करते हुए उसे सत्पथ पर लाने हेतु सत्परामर्श देता हुआ

तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि–

''एककोव त्वं अरञ्ञे विहरसि, अपविद्धं व वनस्मिं दारुकं।
तस्स ते बहुका पिहयन्ति, नेरयिका विय सग्गगामिनं''ति॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति।

9.10. सज्झायसुतं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु यं सुदं पुब्बे अतिवेलं सज्झायबहुलो विहरति सो अपरेन समयेन अप्पोस्सुक्को तुण्हीभूतो सङ्कसायति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो धम्मं असुणन्ती येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि–

''कस्मा तुवं धम्मपदानि भिक्खु, नाधीयसि भिक्खूहि संवसन्तो।

(संस्कृतच्छाया) तं भिक्षुं संवेदयितुकामा यत्र सः भिक्षु तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''एकक इव त्वं अरण्ये विहरसि, अपविद्धमिव वनेऽस्मिन् दारुकम्।
तुभ्यं ते बहुलं स्पृहयन्ति, नैरयिका इव स्वर्गगामिनम्''इति॥

अथ खलु सः भिक्षुः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमापादि" इति।

10. एकस्मिन् समये अन्यतरः भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन स भिक्षुः यं स्विद् पूर्वम् अतिवेलं स्वाध्यायबहुलः विहरति सो अपरेण समयेन अल्पोत्सुकः तूष्णीभूतः शङ्कायते। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः धर्मम् अशृण्वन्ती यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''कस्मात् त्वं धर्मपदानिः भिक्षो, नाधीषे भिक्षुभिः संवसन्।

(हिन्दी) यों बोला- ''यद्यपि आप लोग इस वन में कटे हुए लकड़ी के किसी कुन्दे की तरह अकेले पड़े हैं, फिर भी साधारण लोग आपके पवित्र जीवन से ईर्ष्या ही करते हैं, जैसे नरकवासी लोग स्वर्ग में जाते हुए को देखकर ईर्ष्या किया करते हैं।'' तब वह भिक्षु देवता के इस प्रेरणा से धर्म के प्रति अनुरक्त हुआ।

10. एक समय कोई भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार कर रहा था। उस समय वह भिक्षु, जो पहले कभी स्वाध्याय में बहुत अधिक व्यस्त था अब उसके प्रति उपेक्षाभाव दिखाने लगा। तब उस वन का वासी देवता भिक्षु का स्वाध्याय (धर्मपठन) न सुनकर उसको प्रोत्साहित करने के लिये वहां आया तथा यह गाथा बोला- ''भिक्षु! आप अब उन धर्मपदों को भिक्षुओं के साथ मिलकर क्यों नहीं पढ़ते?

सुत्वान धम्मं लभतिप्पसादं, दिट्ठेव धम्मे लभतिप्पसंसं''ति॥
''अहु पुरे धम्मपदेसु छन्दो, याव विरागेन समागमिम्ह।
यतो विरागेन समागमिम्ह, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
अञ्ञाय निक्खेपनमाहु सन्तो''ति॥

9.11. अकुसलवितक्कसुत्तं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु दिवाविहारगतो पापके अकुसले वितक्के वितक्केति, सेय्यथिदं– कामवितक्कं, ब्यापादवितक्कं, विहिंसावितक्कं। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाहि अज्झभासि–

''अयोनिसो मनसिकारा, सो वितक्केहि खज्जसि।

(संस्कृतच्छाया) श्रुत्वा धर्मं लभते प्रसादम्, दृष्ट इव धर्मे लभते प्रशंसाम्''इति॥
''अभूत् पूर्वं धर्मपदेसु छन्दः, यावत् विरागेण समागमः।
यतो विरागे समागमे, यत् किञ्चित् दृष्टं श्रुतं स्मृतं वा।
अज्ञाय निक्षेपणमाहु शान्तः''इति॥

11. एकस्मिन् समये अन्यतरः भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन अन्यतरः भिक्षुः दिवाविहारं गतः पापकान् अकुसलान् वितर्कान् वितर्कयति, तद्यथेदम् कामवितर्कः, ब्यापादवितर्कः, विहिंसावितर्कः। अथ खलु या तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः अनुकम्पार्थकामा तं भिक्षुं संवेदयितुकामा यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''अयोनिशः मनसिकारः, सः वितर्कैः खजसि।

(हिन्दी) धर्म को पढ़कर मन में सन्तोष होता है, शान्ति मिलती है, तथा ऐसा करनेवाले का संसार में यश फैलता है''।

भिक्षु- ''पहले जब तक वैराग्य नहीं हुआ था तब तो उन धर्मपदों को पढ़ने में सन्तोष मिलता था। परन्तु अब जब हमारे मन में संसार के प्रति पूर्ण वैराग्य हो गया तो ऐसे समय में शान्त (सन्त) जन जो कुछ भी देखा, सुना या स्मरण किया हुआ है उसे जानबूझकर त्याग देना ही उचित कहते हैं''।

11. एक समय कोई भिक्षु कोशल के किसी वनखण्ड में...। उस समय दिन की साधना के समय उस भिक्षु के मन में पापमय अकुशल विचार उठने लगे, जैसे कामविचार, व्यापादविचार या विहिंसाविचार। तब उस वनखण्ड में रहने वाला कोई देवता उस भिक्षु पर अनुकंपा कर, उसकी शुभ कामना से उसे होश में ले आने के लिये, जहाँ वह भिक्षु था वहाँ आया। आकर भिक्षु से गाथाओं में ऐसे बोला-

''अस्थिरचित्त होने के कारण आप पापमय अकुशल विचारों में फंसे हैं।

अयोनिसो पटिनिस्सज्ज, योनिसो अनुचिन्तय॥
''सत्थारं धम्ममारब्भ, सङ्घं सीलानि अत्तनो।
अधिगच्छसि पामोज्जं, पीतिसुखमसंसयं।
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्ससी''ति॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति।

9.12. मज्झन्हिकसुतं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। अथ खो तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तस्स भिक्खुनो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, तं भयं पटिभाति मं''॥

(संस्कृतच्छाया) अयोनिशं प्रतिनिसृज्य, योनिशः अनुचिन्तय॥
''शास्तारं धर्ममारभ्य, सङ्घं शीलानि आत्मनः।
अधिगच्छसि प्रामोद्यम्, प्रीतिसुखमसंशयम्।
ततः प्रामोद्यबहुलः, दुःखस्यान्तं करिष्यसि''इति॥

अथ खलु सः भिक्षुः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमपादि''इति।

12. एकस्मिन् समये अन्यतरः भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। अथ खलु तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तस्य भिक्षोः सान्तिकम् इमा गाथाम् अध्यभाषिष्ट–

स्थिते मध्याह्नकाले, सन्निविष्टेषु पक्षिषु।
स्वनयुक्तं बृहदारण्यम्, तत् भयम् प्रतिभाति मे।

(हिन्दी) इन अकुशल वितर्कों को छोड़कर उचित विचार मन में लावें।

''बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति श्रद्धा रखते हुए शील का पालन करो। तब तुम्हें आनन्द एवं प्रीतिसुख का अनुभव होगा। यों तुम्हारे दुःखों का भी अन्त हो पायेगा।''

इस प्रकार देवता के सत्परामर्श के वह भिक्षु पुनः सत्पथ पर लग गया।

12. एक समय कोई भिक्षु कौशल देश के किसी वनखण्ड में विहार कर रहा था। उन वनखण्ड का वासी कोई देवता उस भिक्षु के पास आया, तथा उससे यह गाथा कहीं-

''इस भयङ्कर नीरव मध्यान्ह काल में, जब कि पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में छिपे बैठे हैं, समस्त जङ्गल सांय सांय कर रहा है, ऐसे में मुझे बहुत भय लग रहा है''।

''ठिते मज्झन्हिके काले, सन्निसीवेसु पक्खिसु।
सणतेव ब्रहारञ्ञं, सा रति पटिभाति मं''ति॥

9.13. पाकतिन्द्रियसुतं

एकं समयं सम्बहुला भिक्खू कोसलेसु विहरन्ति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता पाकतिन्द्रिया। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तेसं भिक्खूनं अनुकम्पिका अत्थकामा ते भिक्खू संवेजेतुकामा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू गाथाहि अज्झभासि–

''सुखजीविनो पुरे आसुं, भिक्खू गोतमसावका।
अनिच्छा पिण्डमेसना, अनिच्छा सयनासनं।
लोके अनिच्चतं ञत्वा, दुक्खस्सन्तं अकंसु ते॥

(संस्कृतच्छाया) ''स्थिते मध्याह्निके काले, सन्निविष्टेषु पक्षिषु।
स्वनयुक्तं बृहदारण्यम्, सा रतिः प्रतिभाति मे''इति॥

13. एकस्मिन् समये सम्बहुलाः भिक्षवः कौशलेषु विहरन्ति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे उद्धताः उद्दण्डाः चपलाः मुखराः विकीर्णवाचा मूढस्मृतिनः असम्प्रज्ञः असमाहिताः विभ्रान्तचित्ताः प्राकृतेन्द्रियाः। अथ खलु तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः अनुकम्पार्थकामः तं भिक्षुं संवेदयितुकामः यत्र स भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथाभिः अध्यभाषिष्ट–

''सुखजीविनः पूर्वे आसन्, भिक्षुः गौतमश्रावकः।
अनिच्छाः पिण्डैषणे, चानिच्छाः शयनासने।
लोकऽनित्यतां ज्ञात्वा, दुःखस्यान्तमकार्षुः॥

(हिन्दी) (इसके उत्तर में भिक्षु बोला-) इस नीरव जङ्गल में, जब कि सब पक्षी भी अपने अपने घोंसलों में छिपे बैठे हैं, और यह समस्त जङ्गल भी सांय सांय कर रहा है (एकान्त होने के कारण) मुझे बहुत सुख मिल रहा है''।

13. एक समय बहुत से भिक्षु कौशल देश में किसी वनखण्ड में उद्धत, उद्दण्ड, चपल, वृथा प्रलापी, परस्पर पापभय संवाद करने वाले, मन्दमति, असम्प्रज्ञ, असमाहित, विभ्रान्तचित्त एवं असंयतेन्द्रिय (दुराचारी) होकर धर्मसाधना के नाम पर एकत्र थे। तब उस वन में रहने वाला कोई देवता, उन भिक्षुओं पर अनुकम्पा करता हुआ, उन की शुभेच्छा से उनको सत्परामर्श देने हेतु उनके पास आया, तथा ये गाथाएं बोला-

''ये गौतम बुद्ध के शिष्य पहले बहुत सुखपूर्वक रहते थे। निर्लोभ रहते हुए भिक्षाटन करते थे। इन्हें अपने शयनासन की भी कोई अपेक्षा (परवाह) नहीं थी। इन्होंने, इस लोक की अनित्यता जान कर, अपने सभी दुःखों का अन्त कर लिया था।

''दुप्पोसं कत्वा अत्तानं, गामे गामणिका विय।
भुत्वा भुत्वा निपज्जन्ति, परागारेसु मुच्छिता॥
''सङ्घस्स अञ्जलिं कत्वा, इधेकच्चे वदामहं।
अपविद्धा अनाथा ते, यथा पेता तथेव ते॥
''ये खो पमत्ता विहरन्ति, ते मे सन्धाय भासितं।
ये अप्पमत्ता विहरन्ति, नमो तेसं करोमहं''ति॥

अथ खो ते भिक्खू ताय देवताय संवेजिता संवेगमापादुन्ति।

9.14.गन्धत्थेनसुत्तं

एकं समयं अञ्ञतरो भिक्खु कोसलेसु विहरति अञ्ञतरस्मिं वनसण्डे। तेन खो पन समयेन सो भिक्खु पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो पोक्खरणिं ओगाहेत्वा पदुमं उपसिङ्घति। अथ खो या तस्मिं वनसण्डे अधिवत्था देवता तस्स भिक्खुनो अनुकम्पिका

(संस्कृतच्छाया) ''दुःष्पोषंकृत्वा आत्मानम्, ग्रामे ग्रामणिका इव।
भुक्त्वा भुक्त्वा निपद्यन्ते, परगृहेषु मूर्च्छिताः॥
''सङ्घस्याञ्जलिं कृत्वा, इहैकत्वे वदाम्यहम्।
अपविद्धा अनाथाः ते, यथा प्रेताः तथैव ते॥
''ये खलु प्रमत्ताः विहरन्ति, तान् मया सन्धाय भाषितम्।
ये अप्रमत्ताः विहरन्ति, नमः तेभ्यः करोम्यहम्''इति॥

अथ खलु सः भिक्षुः तया देवतया संप्रेरितः संवेगमपादि''इति।

14. एकस्मिन् समये अन्यतरः भिक्षुः कौशलेषु विहरति अन्यतरस्मिन् वनखण्डे। तेन खलु पुनः समयेन स भिक्षुः पश्चात् भुक्तं पिण्डपातप्रतिक्रान्तः पुष्करण्याम् अवगाह्य पद्मं उपजिघ्रति। अथ खलु तस्मिन् वनखण्डे अधिवासी देवता तस्य भिक्षोः

(हिन्दी) ''आज के ये भिक्षु भोजन के विषय में स्वयं को भ्रष्ट कर, ग्रामवासियों की तरह गले तक भर कर खाते हैं। तथा इस तरह खा खा कर भी, कुछ और मिल जाने के लोभ में दूसरों के घरो में पड़े रहते हैं।।

''इस सङ्घ में मैं अनेक भिक्षुओं को प्रणाम ही करता हूँ। जो समाजद्वारा परित्यक्त एवं अनाथ के तुल्य, मृत शव के समान, पड़े रहते हैं, इस तरह के भिक्षुओं को लक्ष्य कर के ही मैंने यह बात कही है। अन्यथा जो भिक्षु, अप्रमत्त (सावधान) होकर साधना में लीन हैं, उन्हें मैं वस्तुतः प्रणाम करता हूँ।''

14. एक समय कोई भिक्षु कौशल के किसी वनखण्ड में विहार कर रहा था। वह भिक्षु किसी दिन, भिक्षा करने के बाद, किसी पुष्करणी में उतर कर वहां खिले पद्मपुष्पों की गन्ध लेने लगा। उस समय उस पुष्करणी की अधिष्ठात्री देवता ने, उस भिक्षु पर अनुकम्पा करते हुए, उस भिक्षु को सत्पथ पर लाने के लिये,

अत्थकामा तं भिक्खुं संवेजेतुकामा येन सो भिक्खु तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं भिक्खुं गाथाय अज्झभासि–

''यमेतं वारिजं पुप्फं, अदिन्नं उपसिङ्घसि।
एकङ्गमेतं थेय्यानं, गन्धत्थेनोसि मारिसा''ति॥
''न हरामि न भञ्जामि, आरा सिङ्घामि वारिजं।
अथ केन नु वण्णेन, गन्धत्थेनोति वुच्चति॥
''य्वायं भिसानि खनति, पुण्डरीकानि भञ्जति।
एवं आकिण्णकम्मन्तो, कस्मा एसो न वुच्चती''ति॥
''आकिण्णलुद्धो पुरिसो, धातिचेलंव मक्खितो।
तस्मिं मे वचनं नत्थि, त्वञ्चारहामि वत्तवे॥

(संस्कृतच्छाया) अनुकम्पार्थकामा तं भिक्षुं संवेदयितुकामा यत्र सः भिक्षुः तत्रोपसमक्राम्यत्; उपसङ्क्रम्य तं भिक्षुं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''यदेतं वारिजम् पुष्पम्, अदत्तम् उपजिघ्रसि।
एकाङ्गमेतत् स्तेयम्, गन्धस्तेनोऽसि मारिष!''इति॥
''न हरामि न भञ्जामि, आरात् जिघ्रामि वारिजम्।
अथ केन नु वर्णेन, गन्धस्तेय इति उच्यते॥
''योऽस्य बिसिनीं खनति, पुण्डरीकानि भञ्जति।
एवमाकीर्णकर्मान्तः, कस्मात् एषः न उच्यते''इति॥
''आकीर्णः लुब्धः पुरुषः, धात्र्याः चैलमिव म्लेक्षितः।
तस्मिन् मे वचनं नास्ति, त्वाञ्चार्हामि वक्तुम्॥

(हिन्दी) उस भिक्षु के पास आ कर यह गाथा कही-

''मार्ष! आप जो यहां यह दूसरों के कमलपुष्पों की गन्ध का बिना दिये सूँघ रहे हो, यह भी एक प्रकार की चोरी है। अतः आप 'गन्धचोर' हैं''।

भिक्षु- ''हे देवते! मैं न तो यहां से कुछ ले जा रहा हूँ, न कुछ नष्ट ही कर रहा हूँ, केवल इन पुष्पों की गन्ध दूर से ले रहा हूँ। तब भी किस कारण आप मुझे 'गन्ध चोर' कह रहे हैं?''

''जो इनको मूल से उखाड़ देता है, इनकी कलियों को खा जाता है, ऐसा कार्य करने वाले को आप कुछ क्यों नहीं कहते?''

देवता- ''अतिलोभी पुरुष धात्री के वस्त्रों की तरह मलिन है। उसे कहना या परामर्श देना व्यर्थ है। हाँ! आप को कहा जा सकता है, क्योंकि, नित्य निष्पाप एवं पवित्र आचरण करने वाले पुरुष का बाल की नोंक जितना सूक्ष्म पाप भी बादल जितना बड़ा दिखायी देता है''।

''अनङ्गणस्स पोसस्स, निच्चं सुचिगवेसिनो।
वालग्गमत्तं पापस्स, अब्भामत्तंव खायती''ति॥
''अद्धा मं यक्ख जानासि, अथो मे अनुकम्पसि।
पुनपि यक्ख वज्जासि, यदा पस्ससि एदिसं''ति॥
''नेव तं उपजीवाम, नपि ते भतकाम्हसे।
त्वमेव भिक्खु जानेय्य, येन गच्छेय्य सुग्गतिं''ति॥

अथ खो सो भिक्खु ताय देवताय संवेजितो संवेगमापादीति। **वनसंयुत्तं समत्तं।**

तस्सुद्दानं– विवेकं उपट्ठानञ्च, कस्सपगोत्तेन सम्बहुला।
आनन्दो अनुरुद्धो च, नागदत्तञ्च कुलघरणी॥
वज्जिपुत्तो च वेसाली, सज्झायेन अयोनिसो।
मज्झन्हिकालम्हि पाकतिन्द्रिय, पदुमपुप्फेन चुद्दस भवेति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अनङ्गणस्य पुरुषस्य, नित्यं सुचिगवेशिनः।
बालाग्रमात्रं पापस्य, अभ्रमात्रमिव ख्यायते''इति॥
''अद्धा मम यक्ष! जानासि, अथ मे अनुकम्पसि।
पुनरपि यक्ष! वद्योऽसि, यदा पश्यसि ईदृशम्''इति॥
''नैव तम् उपजीवामि, नापि ते भृतकोहऽम्।
त्वमेव भिक्षो! जानीहि, येन गच्छेत् सुगतिम्''इति॥

अथ खलु सः भिक्षु तया देवतया संप्रेरितः संवेगमपादि" इति।

तस्योद्दानम्– विवेकमुपस्थानञ्च, काश्यपगोत्रेण सम्बहुलाः।
आनन्दोऽनुरुद्धश्च, नागदत्तश्च कुलगृहिणी॥
वज्जिपुत्रश्च वैशाली, स्वाध्यायेन अयोनिशः।
मध्याह्नकाले प्राकृतेन्द्रिय, पद्मपुष्पेन चतुर्दशाः भवन्ति॥

(हिन्दी) भिक्षु- ''अरे! इस देवता ने मेरी वास्तविकता जान ली, इसीलिये यह मुझ पर (मेरा दोष बताकर) अनुकम्पा कर रहा है! हे यक्ष! मेरा ऐसा प्रमाद, तुम आगे भी कभी देखो तो मुझे सावधान करते हुए उससे रोकना''। देवता- ''भिक्षु! मैं आपकी नोकरी नहीं करता, न आपसे मुझे कोई वेजन मिलता है, आप स्वयं जान लें, जिससे आप को सुगति मिले''।

इस वनसंयुक्त में व्याख्यात सूत्रों की सूची- 1. विवेकसूत्र, 2. उपस्थानसूत्र, 3. काश्यपगोत्रसूत्र, 4. सम्बहुल सूत्र, 5. आनन्दसूत्र, 6. अनुरुद्धसूत्र, 7. नागदत्तसूत्र, 8. कुलगृहिणीसूत्र, 9. वैशालीयवज्जिपुत्रसूत्र, 10. स्वाध्यायसूत्र, 11. अकुशलवितर्कसूत्र, 12. मध्याह्निक सूत्र, 13. प्राकृतेन्द्रियसूत्र एवं 14. गन्धस्तेनसूत्र।।

******

10. यक्खसंयुत्तं

10.1. इन्दकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति इन्दकूटे पब्बते, इन्दकस्स यक्खस्स भवने। अथ खो इन्दको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''रूपं न जीवं ति वदन्ति बुद्धा, कथं न्वयं विन्दतिमं सरीरं।
कुतस्स अट्ठीयकपिण्डमेति, कथं न्वयं सज्जति गब्भरस्मिं''ति॥
''पठमं कललं होति, कलला होति अब्बुदं।
अब्बुदा जायते पेसि, पेसि निब्बत्तती घनो।
घना पसाखा जायन्ति, केसा लोमा नखापि च॥
''यञ्चस्स भुञ्जती माता, अन्नं पानं च भोजनं।
तेन सो तत्थ यापेति, मातुकुच्छिगतो नरो''ति॥

1.(संस्कृतच्छाया)- एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति इन्द्रकूटे पर्वते, इन्द्रकस्य यक्षस्य भवने। अथ खलु इन्द्रकः यक्षः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट-

''रूपं न जीव इति वदन्ति बुद्धाः, कथं न्वयं विन्दति इमं शरीरम्?
कुतोऽस्य सः अस्थीयकपिण्डमेति, कथं न्वयं सजति गर्भेऽस्मिन्''इति?
''प्रथमं कललं भवति, कललाद् भवति अर्बुदम्।
अर्बुदात् जायते पेशी, पेश्याः निवर्तते घनः।
घनात् प्रशाखाः जायन्ते, केशाः लोमाः नखाः अपि च॥
''यच्चास्य भुङ्क्ते माता, अन्नं पानं च भोजनम्।
तस्मिन् स तत्र यापयति, मातुः कुक्षिगतः नरः''इति॥

1.(हिन्दी)- ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के इन्द्रकूट पर्वत पर इन्द्रक यक्ष के भवन में विहार कर रहे थे। तब कभी इन्द्रक यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया, आकर भगवान् से यह गाथा बोला-

'''रूप जीव नहीं है'- ऐसा बुद्ध कहते हैं, तो यह शरीर कैसे पाता है? इसका यह अस्थिपिण्ड कैसे पाता है? तथा यह गर्भाग्नि में कैसे पड़ जाता है?''

''यहाँ पहले कलल (कर्दम सदृश गाढ़ा द्रव) होता है, तब कलल से अर्बुद (पिण्डावस्था) बनता है। अर्बुद से पेशी बनती है। पेशी से घन (स्थूल आकार) बनने लगता है। घन से शाखा प्रशाखाएँ तथा केश, लोम, नख आदि बनते हैं।

इसकी माता जो कुछ भी अन्न, पानया भोजन खाती है, पीती है, उसी भोजन से माता के गर्भस्थान में इस मानव शरीर का पोषण होता है।

10.2. सक्कनामसुतं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो सक्कनामको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि –

''सब्बगन्थप्पहीनस्स, विप्पमुत्तस्स ते सतो।
समणस्स न तं साधु, यदञ्ञमनुसाससी''ति॥
''येन केनचि वण्णेन, संवासो सक्क जायति।
न तं अरहति सप्पञ्ञो, मनसा अनुकम्पितुं॥
''मनसा चे पसन्नेन, यदञ्ञमनुसासति।
न तेन होति संयुत्तो, यानुकम्पा अनुद्दया''ति॥

10.3. सूचिलोमसुतं

एकं समयं भगवा गयायं विहरति टङ्कितमञ्चे सूचिलोमस्स यक्खस्स भवने। तेन

2. (संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति गृध्रकूटे पर्वते। अथ खलु शक्रनामकः यक्षः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट -

''सर्वग्रन्थप्रहीणस्य, विप्रमुक्तस्य ते स्मृतः।
श्रमणाय न तत् साधु, यदन्यमनुशास्ति''इति॥
''येन केनचित् वर्णेन, संवासः शक्र जायते।
नरः तम् अर्हति सप्रज्ञः, मनसा अनुकम्पितुम्॥
''मनसा चैव प्रसन्नेन, यदन्यमनुशास्ति।
न तत्र भवति संयुक्तः, यत्र अनुकम्पा अनुदया''इति॥

3. एकस्मिन् समये भगवान् गयायां विहरति टङ्कितमञ्चे सूचिलोमस्य यक्षस्य भवने। तस्मिन्

2.(हिन्दी) एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। तब शक्रनामक यक्ष भगवान् के पास गया। जाकर भगवान् से गाथा के माध्यम से यों बोला-

"जिस के सभी सांसारिक बन्धन कट चुके हैं, आप स्मृतिमान् एवं विमुक्त हैं, अतः आप श्रमण के लिये यह उचित नहीं है कि आप दूसरों को उपदेश देते फिरें।"

"शक्र! किसी भी तरह जब किसी से साथ हो जाता है तो ज्ञानी पुरुष की उस के प्रति मन में अनुकम्पा हो जाती है।"

"अतः प्रसन्न मन से जब ज्ञानी दूसरों को उपदेश देता है तो वह इस कारण किसी बन्धन में नहीं बँधता; क्यों कि वह जिस अनुकम्पा के सहारे उपदेश करने को बाध्य होता है वह अनुकम्पा उसी के हृदय में पैदा होती है, दूसरे के नहीं।"

3. एक समय भगवान् गया के टङ्कितमंच स्थान पर सूचिलोम यक्ष के स्थान पर विहार कर रहे थे। उस समय, खर एवं सूचिलोम नाम के दोनों यक्ष भगवान् के समीप से ही कहीं जा रहे थे।

खो पन समयेन खरो च यक्खो सूचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति। अथ खो खरो यक्खो सूचिलोमं यक्खं एतदवोच– ''एसो समणो''ति! ''नेसो समणो, समणको एसो''। ''याव जानामि यदि वा सो समणो यदि वा पन सो समणको''ति।

अथ खो सूचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगवा कायं अपनामेसि। अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच– ''भायसि मं समणा''ति? ''न ख्वाहं तं, आवुसो, भायामि; अपि च ते सम्फस्सो पापको''ति। ''पञ्हं तं, समण पुच्छिस्सामि। सचे मे न ब्याकरिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी''ति। ''न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय, यो मे चित्तं वा खिपेय्य हृदयं वा फालेय्य पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य; अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदा कङ्खसी''ति।

(संस्कृतच्छाया) खलु पुनः समये खरः च यक्षः सूचिलोमः च यक्षः भगवतः अविदूरे अतिक्राम्यतः। अथ खलु खरः यक्षः सूचिलोमं यक्षमेतदवोचत्— "एषः श्रमणः"इति! "न एषः श्रमणः, श्रमणकः एषः"। "यावत् जानामि यदि वा सः श्रमणः यदि वा पुनः सः श्रमणकः"इति।

अथ खलु सूचिलोमः यक्षः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवतः कायम् उपनमति। अथ खलु भगवान् कायम् अपानामयत्। अथ खलु सूचिलोमः यक्षः भगवन्तम् एतदवोचत्— "बिभेषि मया श्रमण!"इति? "न खल्वहं तत्, आयुष्मन्! बिभेमि; अपि च ते स्पर्शः पापकः"इति। "प्रश्नं त्वाम्, श्रमण! प्रक्ष्यामि। चेत् मे न व्याकरिष्यसि चित्तं वा ते क्षेप्स्यामि, हृदयं वा ते फालयिष्यामि, पादौ वा गृहीत्वा पारेगङ्गं क्षेप्स्यामि"इति। "न खल्वहं तम्, आयुष्मन्! पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सश्रमणब्राह्मणानां प्रजानां सदेवमनुष्याणाम्, यो मे चित्तं क्षिपेत्, हृदयं वा फालेत, पादौ वा गृहीत्वा पारेगङ्गं क्षिपेत्; अपि च त्वम्, आयुष्मन्! पृच्छ यत् काङ्क्षसि"इति।

(हिन्दी) तब खर यक्ष, सूचिलोम यक्ष से बोला- ''अरे! यह श्रमण है।'' ''नहीं यह श्रमण नहीं नकली श्रमण है।'' इसकी मीमांसा करनी चाहिये कि यह वास्तविक श्रमण है कि नहीं?

तब सूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् से अपने शरीर को स्पर्श करना चाहाँ। भगवान् ने अपना शरीर दूर हटा लिया। तब सूचिलोम यक्ष भगवान् से पूछने लगा- ''श्रमण! आप मुझसे डर गये?'' ''नहीं, आयुष्मान्! मैं तुमसे डरा नहीं, किन्तु तुम्हारा स्पर्श शुभ नहीं।'' (सूचिलोम-) ''मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम उत्तर न दे पाये तो मैं तुम्हें विक्षिप्त बना दूँगा। तुम्हारा वक्षःस्थल चीर दूँगा या पैर पकड़कर गंगा के पार फेंक दूँगा।'' (भगवान्-) ''आयुष्मन्! मैं इस संसार में देवतावो के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ,, किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव मनुष्य को नही देखता हूँ कि कोई मुझे पागल बना देगा, मेरा हृदय चीर देगा या वह मेरे पैरो को पकण कर मुझे गंगा के पार फेंक देगा। फिर भी तुम जो प्रश्न पूछना चाहते हो, पूछ सकते हो।''

अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''रागो च दोसो च कुतोनिदाना, अरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धङ्कमिवोस्सजन्ती''ति॥
''रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरती रती लोमहंसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धङ्कमिवोस्सजन्ति॥
''स्नेहजा अत्तसम्भूता, निग्रोधस्सेव खन्धजा।
पुथू विसत्ता कामेसु, मालुवाव विततता वने॥
''ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुणोहि यक्ख।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवाया''ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु सूचिलोमः यक्षः भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''रागश्च द्वेषश्च कुतो निदानाः, अरतिः रतिः रोमहर्षः कुतोजाः।
कुतः समुत्थाय मनोवितर्कः, कुमारकाः ध्वाङ्क्षमिवोत्सृजन्ति''इति॥
''रागश्च द्वेषश्च इतो निदानाः, अरतिः रतिः रोमहर्षः इतोजाः।
इतः समुत्थाय मनोवितर्कः, कुमारका इति ध्वाङ्क्षमिवोत्सृजन्ति॥
''स्नेहजा आत्मसम्भूताः, निग्रोधस्येव स्कन्धजाः।
पृथु विषक्ताः कामेषु, मालुवा इव विततताः वने॥
''ये तं प्रजानन्ति यतोनिदानम्, ते तं विनुदन्ति श्रृणुहि यक्ष।
ते दुस्तरम् ओघमिमं तरन्ति, अतीर्णपूर्वम् अपुनर्भवाय''इति॥

(हिन्दी) तब उस सूचिलोम यक्ष ने भगवान् से यह प्रश्न किया-

''राग एवं द्वेष कहाँ से पैदा होते हैं? उदासी तथा मन का लगना एवं भय से रोमांच होना कैसे पैदा होते हैं? मन के तर्क वितर्क कहाँ से उठाकर खींचकर ले जाते हैं जैसे कौए को पकड़ कर बच्चे ले जाते हैं?''

(भगवान्-) ''राग एवं द्वेष यहीं (मन) से पैदा होते हैं। उदासी, प्रेम, तथा रोमांच भी यहीं से ही पैदा होते हैं। ये तर्क वितर्क भी यहीं से उठकर उसे उसी तरह खींच ले जाते हैं जैसे बच्चे कौए को पकड़कर खींच ले जाते हैं।

''ये सब स्नेहजन्य हैं तथा अपने आप में पैदा होते हैं जैसे वट वृक्ष की शाखाओं से ही जटा पैदा होती हैं तथा पैदा होकर तृष्णा के रूप में अधिक से अधिक विस्तार पाते रहते हैं जैसे जङ्गल में मालुवा लता विस्तार पाती रहती है।

''हे यक्ष! सुनो! जो इसके उत्पाद स्थान को जान लेते हैं वे उस तृष्णा का दमन करते हैं। वे ही उस दुस्तर भवसागर को भी पार कर जाते हैं, जिसको उन्होंने पहले कभी पार नहीं किया था। जिससे उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।

10.4. मणिभद्दसुत्तं

एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति मणिमालिके चेतिये मणिभद्दस्स यक्खस्स भवने। अथ खो मणिभद्दो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि –

''सतीमतो सदा भद्दं, सतिमा सुखमेधति।
सतीमतो सुवे सेय्यो, वेरा च परिमुच्चती''ति॥
''सतीमतो सदा भद्दं, सतिमा सुखमेधति।
सतीमतो सुवे सेय्यो, वेरा न परिमुच्चति॥
''यस्स सब्बमहोरत्तं, अहिंसाय रतो मनो।
मेत्तं सो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची''ति॥

10.5. सानुसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन

4. (संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् मगधे विहरति मणिमालिके चैत्ये मणिभद्रस्य यक्षस्य भवने। अथ खलु मणिभद्रः यक्षः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङक्रम्य भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''स्मृतिमतः सदा भद्रम्, स्मृतिमान् सुखमेधते।
स्मृतिमतः सर्वश्रेष्ठः, वैरात् न परिमुञ्चति"इति॥
''स्मृतिमतः सदा भद्रम्, स्मृतिमान् सुखमेधते।
स्मृतिमतः सर्वश्रेष्ठः, वैरञ्च परिमुञ्चति॥
''यस्य सर्वमहोरात्रम्, अहिंसायां रतं मनः।
मैत्रं सो सर्वभूतेषु, वैरं तस्य न केनचित्"इति॥

5. एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु

4. (हिन्दी) एक समय भगवान् मगध देश में मणिमालिक चैत्य पर मणिभद्र यक्ष के भवन में विहार कर रहे थे। तब मणिभद्र यक्ष जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ आया तथा आकर भगवान् के सम्मुख इस गाथा को कहा-

''स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् सदा सुखी रहता है। स्मृतिमान् ही सर्वश्रेष्ठ है, तथा वह वैर से मुक्त हो सकता है।

(भगवान्-) ''स्मृतिमान् का सदा कल्याण होता है, स्मृतिमान् सदा सुखी रहता है। स्मृतिमान् ही सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु वैर से बिल्कुल मुक्त नहीं हो जाता है।

''हाँ; जिसका चित्त निरन्तर दिन रात अहिंसा में ही मन रमा हुआ है, सभी प्राणियों के प्रति जिसका मैत्रीभाव रहता है, उसका ही किसी के साथ वैरभाव नहीं हो पाता।

समयेन अञ्ञतरिस्सा उपासिकाय सानु नाम पुत्तो यक्खेन गहितो होति। अथ खो सा उपासिका परिदेवमाना तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि –

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥
''उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये।
न तेहि यक्खा कीळन्ति, इति मे अरहतं सुतं।
सा दानि अज्ज पस्सामि, यक्खा कीळन्ति सानुना''ति॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं।
उपोसथं उपवसन्ति, ब्रह्मचरियं चरन्ति ये॥
''न तेहि यक्खा कीळन्ति, साहु ते अरहतं सुतं।

(संस्कृतच्छाया) पुनः समये अन्यतरस्या उपासिकायाः सानु नाम पुत्रः यक्षेन गृहीतो भवति। अथ खलु सा उपासिका परिदेवमाना तस्यां वेलायां इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रतिहार्यपक्षञ्च, अष्टांगसुसमागतम्॥
''उपोसथमुपवसन्ति, ब्रह्मचर्यं चरन्ति ये।
न तैः यक्षाः कीलयन्ति, इति मया अर्हतः श्रुतम्।
सा इदानीम् अद्य पश्यामि, यक्षाः कीलयन्ति सानुना"इति॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रतिहार्यपक्षं च, अष्टांगसुसमागतम्।
उपोसथमुपवसन्ति, ब्रह्मचर्यं चरन्ति ये॥
''न तैः यक्षाः कीलयन्ति, साधु ते अर्हतः श्रुतम्।

5.(हिन्दी) एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय किसी उपासिका का सानु नामक पुत्र यक्ष से गृहीत था। तब वह उपासिका विलाप करती हुई ये गाथाएँ कहने लगी-

चतुर्दशी या पंचदशी (पूर्णिमा या अमावस्या), पक्ष की कोई अष्टमी एवं प्रातिहार्य पक्ष में अष्टाङ्ग व्रत का पालन करती हुई, उपोसथ व्रत रखती हुई तथा अर्हतों का आदेश मानने वाली के पुत्रों को यक्ष पीड़ित नहीं करते- ऐसा मैंने अर्हतों से सुना है; परन्तु आज मैं देख रही हूँ कि मेरे सानु पर यक्ष आरूढ़ हैं''।

''मैंने अर्हतों की पूजा की, मैंने अर्हतों के आदेश का पालन किया। परन्तु आज मैं देख रही हूँ कि यक्षजन सानु पर आरूढ़ हैं।''

(यक्ष-) ''चतुर्दशी, पंचदशी...पूर्ववत्...ऐसा तुमने अर्हतों से सत्य ही सुना है। परन्तु प्रबुद्ध सानु को यक्षों की इस बात को बता दो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई पापकर्म न करना। यदि ऐसा कोई पाप कर्म करोगे

सानुं पबुद्धं वज्जासि, यक्खानं वचनं इदं।
माकासि पापकं कम्मं, आवि वा यदि वा रहो॥
''सचे च पापकं कम्मं, करिस्ससि करोसि वा।
न ते दुक्खा पमुत्यत्थि, उप्पच्चापि पलायतो''ति॥
''मतं वा अम्म रोदन्ति, यो वा जीवं न दिस्सति।
जीवन्तं अम्म पस्सन्ती, कस्मा मं अम्म रोदसी''ति॥
''मतं वा पुत्त रोदन्ति, यो वा जीवं न दिस्सति।
यो च कामे चजित्वान, पुनरागच्छते इध।
तं वापि पुत्त रोदन्ति, पुन जीवं मतो हि सो॥
''कुक्कुळा उब्भतो तात, कुक्कुळं पतितुमिच्छसि।
नरका उब्भतो तात, नरकं पतितुमिच्छसि॥

(संस्कृतच्छाया) सानुं प्रबुद्धं वद्यासि, यक्षाणां वचनम् इदम्।
माकार्षीः पापकं कर्म, आविं वा यदि वा रहः॥
''चेत् च पापकं कर्म, करिष्यसि करोषि वा।
न त्वां दुःखाः प्रमोक्ष्यन्ति, उत्पत्यापि पलायतः"इति॥
''मृतं वा अम्बाः रुदन्ति, यो वा जीवितं न पश्यति।
जीवन्तम् अम्बाः पश्यन्ति, कस्मात् माम् अम्ब रोदिति"इति॥
''मृतं वा अम्बाः रुदन्ति, यो वा जीवितं न पश्यति।
यः च कामे च जित्वा, पुनरागच्छति इह।
तं वा अपि पुत्रं रुदन्ति, पुनः जीवन्नपि मृतो हि सः॥
''कुकुलादुद्गतः तात, कुकुले पतितुमिच्छसि।
नरकादुद्गतः तात, नरके पतितुमिच्छसि॥

(हिन्दी) या करते हो तो तुम्हें दुःख से कभी मुक्ति नहीं मिल सकती। चाहे जहाँ कहीं भी कितना ही उछलो कूदो। उड़कर भले ही आकाश में चले जाओ''।

(सानु-)''मेरा अनुभव तो यह है कि माताएँ या तो पुत्र के मरने पर रोती हैं या जीवित को भी न देखने पर ही रोया करती हैं। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि मेरे जीवित रहने पर भी मेरी माता मेरे लिये रो रही है। माँ तूँ क्यों रो रही है?''

(माता-)''पुत्र के मर जाने या उसके परदेश चले जाने पर तो माताएँ रोती ही हैं, परन्तु माताएँ उस पुत्र के लिए भी रोती हैं जो प्रव्रजित होकर एक बार समस्त कामभोगों को जीत लेता है, किन्तु (दौर्भाग्य से वह) पुनः गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लेता है। माताएँ उसके लिए भी रोती ही हैं; क्यों कि वह जीवित भी मृत के समान ही है। हे तात्! तुम एक विपत्ति से निकलकर दूसरी में पड़ना चाहते हो। जिस नरक से अभी निकले हो उसी में पुनः गिरना चाह रहे हो।

''अभिधावथ भद्दन्ते, कस्स उज्झापयामसे।
आदित्ता नीहतं भण्डं, पुन डय्हितुमिच्छसी''ति॥

10.6. पियङ्करसुत्तं

एकं समयं आयस्मा अनुरुद्धो सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा अनुरुद्धो रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय धम्मपदानि भासति। अथ खो पियङ्करमाता यक्खिनी पुत्तकं एवं तोसेसि –

''मा सद्दं करि पियङ्कर, भिक्खु धम्मपदानि भासति।
अपि च धम्मपदं विजानिय, पटिपज्जेम हिताय नो सिया॥
''पाणेसु च संयमामसे, सम्पजानमुसा न भणामसे।
सिक्खेम सुसील्यमत्तनो, अपि मुच्चेम पिसाचयोनिया''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''अभिधावत भद्रं ते, कस्य उद्ध्यापयामसे।
आदीप्तात् निःश्रृतं भाण्डम्, पुनः दग्धुमिच्छसि"इति॥

6. एकस्मिन् समये आयुष्मान् अनुरुद्धः श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये आयुष्मान् अनुरुद्धः रात्रौ प्रत्यूषसमये प्रत्युत्थाय धर्मपदानि भाषते। अथ खलु प्रियङ्करमाता यक्षिणी पुत्रकम् एवं तुतोषेति-

''मा शब्दं कुरु प्रियङ्कर!, भिक्षुः धर्मपदानि भाषते।
अपि च धर्मपदं विज्ञाय, प्रतिपद्येम हिताय नः स्यात्॥
''प्राणिषु च संयममस्तु, सप्रजानमृषां न भणेत्।
शिक्षेम सुशील्यमात्मनः, अपि मुञ्चेम पिशाचयोनितः"इति॥

(हिन्दी) ''भन्ते! आगे बढ़िये, आप का कल्याण हो! हम किसको कष्ट दें या किसका कष्ट देखें। आप तो अपने शरीर पात्र को, जिस अग्निदाह से मुक्त करा चुके थे उसी अग्नि में पुनः जलना चाह रहे हैं।''

6. एक समय आयुष्मान् अनुरुद्ध श्रावस्ती के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् अनुरुद्ध रात्रि के अन्तिमप्रहर प्रत्यूष समय में उठ कर धर्मपदों का पाठ करते थे। तब प्रियङ्कर माता यक्षिणी अपने पुत्र को यों सन्तोष (आश्वासन) देती थी-

''पुत्र प्रियङ्कर! कोलाहल न करो! ये भिक्षु धर्मपदों का स्वाध्याय कर रहे हैं। हम भी इन धर्मपदों को जान लें तथा इन पर आचरण करें तो हमारा भी हित होगा।

''जीवों के प्रति हम दयाभाव रखें। जानते बूझते हुए असत्यभाषण न करें, तो अवश्य ही इस पिशाचयोनि से मुक्ति पा लेंगे।''

10.7. पुनब्बसुसुत्तं

एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन भगवा भिक्खू निब्बानपटिसंयुत्ताय धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति। ते च भिक्खू अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोता धम्मं सुणन्ति। अथ खो पुनब्बसुमाता यक्खिनी पुत्तके एवं तोसेसि –

''तुण्ही उत्तरिके होहि, तुण्ही होहि पुनब्बसु।
यावाहं बुद्धसेट्ठस्स, धम्मं सोस्सामि सत्थुनो॥
''निब्बानं भगवा आह, सब्बगन्थप्पमोचनं।
अतिवेला च मे होति, अस्मिं धम्मे पियायना॥
''पियो लोके सको पुत्तो, पियो लोके सको पति।
ततो पियतरा मय्हं, अस्स धम्मस्स मग्गना॥

---

7. (संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् भिक्षून् निर्वाणप्रतिसंयुक्ताय धार्मिकया कथया सन्दिशति समादापयति समुत्तेजयति सम्प्रहृष्यति। ते च भिक्षवः आस्थिं कृत्वा मनसि कृत्वा सर्वचेतसा समन्वाहृत्य अवहितस्रोतारः धर्मं शृण्वन्ति। अथ खलु पुनर्वसुमाता यक्षिणी पुत्रकम् एवं तुतोषेति —

''तूष्णीम् उत्तरिके! भव, तूष्णीम् भव पुनर्वसो!।
यावदहं बुद्धश्रेष्ठस्य, धर्मं श्रोष्यामि शास्तुः॥
''निर्वाणं भगवान् आह, सर्वग्रन्थिप्रमोचनम्।
अतिवेला च मे भवति, अस्मिन् धर्मे पारायणे॥
''प्रियः लोके स्वकः पुत्रः, प्रियः लोके स्वकः पतिः।
ततः प्रियतरः मह्यम्, अस्य धर्मस्य मार्गणाम्॥

7.(हिन्दी) एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् भिक्षुओं को निर्वाण की ओर प्रदत्त करने वाली धर्म कथा से साक्षात्कार, समुत्तेजन एवं सम्प्रहर्षण कर रहे थे। वे भिक्षु भी ध्यान लगा कर...उस धर्मकथा को कान लगाकर सुन रहे थे। उसी समय उत्तरिका एवं पुनर्वसु की माता यक्षिणी ने अपने पुत्र को यों कह रही थी-

''उत्तरिके! तुम तब तक शान्त रहो, कोलाहल न करो; पुनर्वसु! तुम भी चुप रहो। कि मैं शास्ता बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्मकथा न सुन लूँ।

''भगवान् सभी सांसारिक ग्रन्थियों से मुक्त कराने वाले निर्वाण का उपदेश कर रहे हैं। इस धर्मश्रवण में मेरी श्रद्धा अधिक से अधिक बदली जा रही है।

''संसार में लोगों को अपना पुत्र सर्वप्रिय होता है, स्त्रियों को अपना पति प्रिय होता है, परन्तु मुझ को

''न हि पुत्तो पति वापि, पियो दुक्खा पमोचये।
यथा सद्धम्मस्सवनं, दुक्खा मोचेति पाणिनं॥
''लोके दुक्खपरेतस्मिं, जरामरणसंयुते।
जरामरणमोक्खाय, यं धम्मं अभिसम्बुधं।
तं धम्मं सोतुमिच्छामि, तुण्ही होहि पुनब्बसू''ति॥
''अम्मा न ब्याहरिस्सामि, तुण्हीभूतायमुत्तरा।
धम्ममेव निसामेहि, सद्धम्मस्सवनं सुखं।
सद्धम्मस्स अनञ्ञाय, अम्मा दुक्खं चरामसे॥
''एस देवमनुस्सानं, सम्मूळ्हानं पभङ्करो।
बुद्धो अन्तिमसारीरो, धम्मं देसेति चक्खुमा''ति॥
''साधु खो पण्डितो नाम, पुत्तो जातो उरेसयो।

(संस्कृतच्छाया) ''न हि पुत्रः पतिः वा अपि, प्रियो दुःखप्रमोचने।
यथा सद्धर्मश्रवणम्, दुःखेभ्यः मोचयति प्राणिनाम्॥
''लोके दुःखपरीते अस्मिन्, जरामरणसंयुते।
जरामरणमोक्षात्, यं धर्मम् अभिसमबोधीत्।
तं धर्मं श्रोतुमिच्छामि, तूष्णीम् भव पुनर्वसो!"इति॥
''अम्ब! न व्याहरिष्यामि, तूष्णीभूतेयमुत्तरा।
धर्ममेव निशम्य एहि, सद्धर्मश्रवणं सुखम्।
सद्धर्मस्य अविज्ञानात्, अम्ब! दुःखं चरामहे॥
''एषां देवमनुष्याणाम्, सम्मूढानां प्रभाकरः।
बुद्धः अन्तिमशरीरम्, धर्मं देशयति चक्षुष्मान्"इति॥
''साधु खलु पण्डितः नाम, पुत्रः जातः औरसः।

(हिन्दी) यह भगवदुपदिष्ट धर्मकथा का सुनना इन दोनों से भी अधिक प्रिय है।

''पुत्र या पति उतना अधिक प्रिय होने पर भी वे उसको सांसारिक बन्धनों से मुक्त नहीं कर सकते; परन्तु इस सद्धर्मश्रमण के प्रभाव से सभी प्राणी दुःखों से मुक्त हो सकते हैं।

''इस दुःखबहुल संसार में, जो कि जरा एवं मृत्यु से सम्प्रयुक्त है, जरा एवं मृत्यु से मुक्ति पाने के लिए जिस धर्म का उदय हुआ है, उस धर्म को मैं सुनना चाहती हूँ। अतः हे पुनर्वसु! तुम चुप ही रहो।

(पुनर्वसु-)''हे माता! मैं कुछ न बोलूँगा, यह उत्तरा भी चुप है। आप धर्मश्रवण करें; क्यों कि यह धर्मश्रवण सुखकर है। सद्धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही हम अपने दुःखों से मुक्ति पा सकेंगे।

'अज्ञानान्धकार से आवृत इन देवता एवं मनुष्यों में सूरज के समान दिखाने वाले ये अन्तिम देहधारी ज्ञानी बुद्ध धर्मोपदेश कर रहे हैं।''

पुत्तो मे बुद्धसेट्ठस्स, धम्मं सुद्धं पियायति॥
''पुनब्बसु सुखी होहि, अज्जाहम्हि समुग्गता।
दिट्ठानि अरियसच्चानि, उत्तरापि सुणातु मे''ति॥

10.8. सुदत्तसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति सीतवने। तेन खो पन समयेन अनाथपिण्डिको गहपति राजगहं अनुप्पत्तो होति केनचिदेव करणीयेन। अस्सोसि खो अनाथपिण्डिको गहपति– ''बुद्धो किर लोके उप्पन्नो''ति। तावदेव च पन भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुकामो होति। अथस्स अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स एतदहोसि– ''अकालो खो अज्ज भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। स्वे दानाहं कालेन भगवन्तं दस्सनाय गमिस्सामी''ति बुद्धगताय सतिया निपज्जि। रत्तिया सुदं तिक्खत्तुं वुट्ठासि पभातन्ति मञ्ञमानो। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन सिवथिकद्वारं तेनुपसङ्कमि।

(संस्कृतच्छाया) पुत्रः मे बुद्धश्रेष्ठस्य, धर्मं शुद्धं प्रिय इति॥
''पुनर्वसो! सुखी भव, अद्याहमपि समग्रताः।
दृष्टानि आर्यसत्यानि, उत्तरे! अपि शृणोतु माम्''इति॥

8. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति शीतवने। तस्मिन् खलु पुनः समये अनाथपिण्डिकः गृहपतिः राजगृहे अनुप्राप्तो भवति केनचिदेव करणीयेन। अशृणोत् खलु अनाथपिण्डिकः गृहपतिः— ''बुद्धः किल लोके उत्पन्नः''इति। तावदेव च पुनः भगवतो दर्शनाय उपसमक्रमितुंकामो भवति। अथास्य अनाथपिण्डिकस्य गृहपतेरेतदभूत्— ''अकालः खलु अद्य भगवतो दर्शनाय उपसमक्रमितुम्। श्वः इदानीमहं काले भगवतो दर्शनाय गमिष्यामि'' इति बुद्धगतस्य स्मृते निपतितः। रात्रौ स्वित् त्रिकृत्वा उत्थितः प्रभातम् इति मन्यमानः। अथ खलु अनाथपिण्डिकः गृहपतिः यत्र शिवथिकद्वारं तत्रोपसमक्रमीत्।

(हिन्दी) (पुनर्वसुमाता-)''मेरी कोंख से उत्पन्न हुए मेरे पण्डित पुत्र! तुम धन्य हो! मेरे पुत्र तुम को यह बुद्धोपदिष्ट धर्म प्रिय लगता है, तुम पण्डित हो। हे पुर्नवसु! तुम सुखी रहो। आज मेरा मस्तक ऊँचा हो गया है। मुझे आज आर्यसत्यों का दर्शन हो गया है। हे उत्तरे! तूँ भी मेरी बात सुन।''

8. एक समय भगवान् राजगृह के शीतवन में विहार कर रहे थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति किसी विशेष कार्य से राजगृह आये हुए थे। अनाथपिण्डिक गृहपति ने जब सुना- ''बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए हैं'' तो उसी समय वह भगवान् के दर्शन के लिये लालायित हो गया। तब अनाथपिण्डिक गृहपति के मन में ऐसा हुआ- ''अभी तो भगवान् के दर्शन के लिये असमय है, कल प्रातः ही भगवान् के दर्शन हेतु चलूँगा।'' यों बुद्ध को याद करते-करते वह शय्या पर लेट गया। रात्रि में वह 'प्रातः काल हुआ' ऐसा समझकर तीन बार उठा। तथा उठकर वह नगर के श्मशान द्वार पर पहुँचा। देवताओं ने द्वार खोल दिया।

अमनुस्सा द्वारं विवरिंसु। अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स नगरम्हा निक्खमन्तस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि, ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि–

''सतं हत्थी सतं अस्सा, सतं अस्सतरीरथा।
सतं कञ्ञासहस्सानि, आमुक्कमणिकुण्डला।
एकस्स पदवीतिहारस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥
''अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति।
अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं''ति॥

अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। दुतियं पि खो अनाथपिण्डिकस्स

(संस्कृतच्छाया) अमनुष्याः द्वारं विवारयामासुः। अथ खलु अनाथपिण्डिकस्य गृहपते नगरात् निष्कान्तस्य आलोकः अन्तर्दधौ, अन्धकारः प्रादुरभूत्, भयं स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षम् उदपद्यत, ततः इव पुनः निर्वृत्तकामः अभूत्। अथ खलु शिवको यक्षः अन्तर्हितः शब्दमनुश्रावयतिस्म-

"शतं हस्तिनः शतम् अश्वाः, शतम् अश्वतररथाः।
शतं कन्यासहस्राणि, आमुक्तामणिकुण्डलेभ्यः।
एकस्य पदवीतिहारस्य, कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
"अभिक्रम गृहपते!, अभिक्रम गृहपते!।
अभिक्रमणं ते श्रेयः, न प्रतिक्रमणम्"इति॥

अथ खलु अनाथपिण्डिकस्य गृहपतेरन्धकारः अन्तर्दधौ, आलोकः प्रादुरभूत्, यदभूत् भयं स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षः, सः प्रतिप्रशन्तः। द्वितीयमपि खलु अनाथपिण्डिकस्य

(हिन्दी) तब अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलते ही प्रकाश लुप्त हो गया, अन्धकार छा गया, अतः वह भय से स्तब्ध हो गया। उसको रोमांच हो गयाँ वहाँ से पुनः पीछे लौटने की इच्छा होने लगी। उस समय श्मशान के देवता शिवक यक्ष ने अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा-

''सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ घोड़ों वाला रथ, मुक्ता एवं माणिक्य से अलंकृत लाखों कन्याएँ आपके एक पदक्रम के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं। अतः हे गृहपति! आगे बढ़ों, गृहपति! तुम आगे बढ़ो! तुम्हारा तो अब आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे रहना शोभा नहीं देगा।''

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया, प्रकाश फैल गया। उसका समस्त भय शान्त हो गया। दूसरी बार भी अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलते हुए ही प्रकाश लुप्त हो गया, अन्धकार छा गया, अतः वह भय से स्तब्ध हो गया। उसको रोमांच हो गयाँ वहाँ से पुनः पीछे लौटने की इच्छा होने लगी। उस समय दूसरी बार भी देवता शिवक यक्ष ने अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा-

गहपतिस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि, ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। दुतियं पि खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि –

''सतं हत्थी सतं अस्सा...पे॰...कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥

''अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति।

अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं''ति॥

अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। ततियं पि खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स आलोको अन्तरधायि, अन्धकारो पातुरहोसि, भयं छम्भितत्तं लोमहंसो उदपादि, ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। ततियं पि खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि– ''सतं हत्थी सतं अस्सा...पे॰...कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥

(संस्कृतच्छाया) गृहपतेः आलोकः अन्तर्दधौ, अन्धकारः प्रादुरभूत्, भयं स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षः उदपद्यत, तत एव पुनः निर्वृत्तकामः अभूत्। द्वितीयमपि खलु शिवको यक्षः अन्तर्हितः शब्दमनुश्रावयतिस्म-

"शतं हस्तिनः शतम् अश्वाः, ...पे॰... कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

"अभिक्रम गृहपते!, अभिक्रम गृहपते!।

अभिक्रमणं ते श्रेयः, न प्रतिक्रमणम्"इति॥

अथ खलु अनाथपिण्डिकस्य गृहपतेरन्धकारः अन्तर्दधौ, आलोकः प्रादुरभूत्, यदभूत् भयं स्तम्भितत्वं लोमहर्षः, सः प्रतिप्रशन्तः। तृतीयमपि खलु अनाथपिण्डिकस्य गृहपतेः आलोकः अन्तर्दधौ, अन्धकारः प्रादुरभूत्, भयं स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षः उदपद्यत, तत एव पुनः निर्वृत्तकामः अभूत्। तृतीयमपि खलु शिवकः यक्षो अन्तर्हितः शब्दमनुश्रावयतिस्म-

"शतं हस्तिनः शतम् अश्वाः, ...पे॰... कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(हिन्दी) ''सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ घोड़ों वाला रथ, मुक्ता एवं माणिक्य से अलंकृत लाखों कन्याएँ आपके एक पदक्रम के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं। अतः हे गृहपति! आगे बढ़ों, गृहपति! तुम आगे बढ़ो! तुम्हारा तो अब आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे रहना शोभा नहीं देगा।''

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया, प्रकाश फैल गया। उसका समस्त भय शान्त हो गया। तीसरी बार भी अनाथपिण्डिक गृहपति के नगर से निकलते हुए ही प्रकाश लुप्त हो गया, अन्धकार छा गया, अतः वह भय से स्तब्ध हो गया। उसको रोमांच हो गयाँ वहाँ से पुनः पीछे लौटने की इच्छा होने लगी। उस समय तीसरी बार भी देवता शिवक यक्ष ने अप्रत्यक्ष रूप से ही शब्द सुनाने लगा-

''सौ हाथी, सौ घोड़े, सौ घोड़ों वाला रथ, मुक्ता एवं माणिक्य से अलंकृत लाखों कन्याएँ आपके एक पदक्रम के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं।

''अभिक्कम गहपति, अभिक्कम गहपति।
अभिक्कमनं ते सेय्यो, नो पटिक्कमनं''ति॥

अथ खो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स अन्धकारो अन्तरधायि, आलोको पातुरहोसि, यं अहोसि भयं छम्भितत्तं लोमहंसो, सो पटिप्पस्सम्भि। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन सीतवनं येन भगवा तेनुपसङ्कमि।

तेन खो पन समयेन भगवा रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय अब्भोकासे चङ्कमति। अद्दसा खो भगवा अनाथपिण्डिकं गहपतिं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वान चङ्कमा ओरोहित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा अनाथपिण्डिकं गहपतिं एतदवोच– ''एहि सुदत्ता''ति। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति, नामेन मं भगवा आलपतीति, हट्ठो उदग्गो तत्थेव भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''कच्चि, भन्ते, भगवा सुखमसयित्था''ति?

(संस्कृतच्छाया) "अभिक्रम गृहपते!, अभिक्रम गृहपते!।
अभिक्रमणं ते श्रेयः, न प्रतिक्रमणम्"इति॥

अथ खलु अनाथपिण्डिकस्य गृहपतेरन्धकारः अन्तर्दधौ, आलोकः प्रादुरभूत्, यदभूत् भयं स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षः, सः प्रतिप्रशन्तः। अथ खलु अनाथपिण्डिकः गृहपतिः यत्र सीतवनं यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्।

तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् रात्रेः प्रत्यूषसमयं प्रत्युत्थाय अभ्याकाशे चङ्क्रमति। अपश्यत् खलु भगवान् अनाथपिण्डिकं गृहपतिं दूरतः आगच्छन्तम्। दृष्ट्वा चंक्रमनः अवरुह्य प्रज्ञापिते आसने न्यसीदत्। निषद्य खलु भगवान् अनाथपिण्डिकं गृहपतिम् एतदवोचत्— "एहि सुदत्त!" इति। अथ खलु अनाथपिण्डिकः गृहपति, 'नाम्ना माम् भगवान् आलपति"इति, हृष्टः उदग्रः तत्रैव भगवतः पादयोः शिरसा निपत्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "कच्चित्, भदन्त! भगवान् सुखमशयिता"इति?

(हिन्दी) अतः हे गृहपति! आगे बढ़ो, गृहपति! तुम आगे बढ़ो! तुम्हारा तो अब आगे बढ़ना ही अच्छा है, पीछे रहना शोभा नहीं देगा।''

तब, अनाथपिण्डिक गृहपति के सामने से अन्धकार हट गया, प्रकाश फैल गया। उसका समस्त भय शान्त हो गया। तब अनाथपिण्डिक गृहपति क्रमशः शीतवन में, जहाँ भगवान् विराजमान थे, पहुँचा।

उस समय भगवान् रात्रि के अन्तिम प्रहर में शयनासन त्याग कर खुले आकाश के नीचे चंक्रमण कर रहे थे। भगवान् ने अनाथपिण्डिक गृहपति को आते हुए दूर से ही देख लिया था। उसे देखकर भगवान् चंक्रमणस्थान से उतरकर अपने आसन पर विराजमान हो गये। विराजमान होकर भगवान् ने गृहपति को यह कहा- ''आओ, सुदत्त!''कहकर बुलाया। तब वह गृहपति, 'भगवान् मुझको नाम लेकर बुला रहे हैं- यह सोचकर बहुत प्रसन्न हुआ। तथा उसी समय भगवान् के श्रीचरणों में गिर कर उन्हें प्रणाम करता हुआ यों बोला-

''सब्बदा वे सुखं सेति, ब्राह्मणो परिनिब्बुतो।
यो न लिम्पति कामेसु, सीतिभूतो निरूपधि॥
''सब्बा आसत्तियो छेत्वा, विनेय्य हृदये दरं।
उपसन्तो सुखं सेति, सन्तिं पप्पुय्य चेतसा''ति॥

10.9. पठमसुक्कासुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सुक्का भिक्खुनी महतिया परिसाय परिवुता धम्मं देसेति। अथ खो सुक्काय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि –

''किं मे कता राजगहे मनुस्सा, मधुपीताव सेयरे।
ये सुक्कं न पयिरुपासन्ति, देसेन्तिं अमतं पदं॥

(संस्कृतच्छाया) "सर्वदा यः सुखं शेते, ब्राह्मणः परिनिर्वृत्तः।
यो न लिम्पति कामेषु, शान्तभूतः निरूपधिः॥
"सर्वामासतिं छित्वा, विनीय हृदयाद् दरम्।
उपशान्तः सुखं शेते, शान्तिं प्राप्यचेतसा"इति॥

9. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन् खलु पुनः समये शुक्रा भिक्षुणी महापरिषदा परिवृता धर्मं दिशति। अथ खलु शुक्रायै भिक्षुण्यै अभिप्रसन्नः यक्षः राजगृहे रथिकायाः रथिकां श्रृङ्गाटकात् श्रृङ्गाटकम् उपसङ्क्रम्य तस्यां वेलायां इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"किं मे कृतं राजगृहे मनुष्यैः, मधुंपीत्वा इव शेरते।
ये शुक्रां न पर्युपास्यन्ते, दिशन्तीम् अमृतं पदम्॥

(हिन्दी) ''भन्ते! आप रात्रिपर्यन्त सुखपूर्वक सोये?'' भगवान् ने उत्तर दिया-
''जो निष्पाप एवं विमुक्त है वह सदा ही सुख से सोता है। जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता जो चित्तविकारों के प्रशमन होने से शान्त हो गया है।

जो सभी आसक्तियों को छिन्न भिन्न कर, हृदय में स्थित सांसारिक भय को निकाल कर शान्त हो गया है। वह चित्त की शान्ति प्राप्त कर सुख से ही सोता है।''

9. एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन में स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। उस समय शुक्रा नाम की भिक्षुणी जिज्ञासुओं की विशाल सभा में धर्मोपदेश कर रही थी। तब उस शुक्रा भिक्षुणी पर कोई श्रद्धालु यक्ष राजगृह की एक गली से दूसरी गली या एक चैराहे से दूसरे चैराहे पर जाकर, उस प्रसङ्ग में, ये गाथाएँ कहने लगा-
''ओ! राजगृह के वासियों! क्या कर रहे हो? सुरापायी के समान उन्मत्त होकर क्या सो रहे हो। जो इस शुक्रा

''तञ्च पन अप्पटिवानीयं, असेचनकमोजवं।
पिवन्ति मञ्ञे सप्पञ्ञा, वलाहकमिव पन्थगू''ति ॥

10.10. दुतियसुक्कासुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अञ्ञतरो उपासको सुक्काय भिक्खुनिया भोजनं अदासि। अथ खो सुक्काय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''पुञ्ञं वत पसवि बहुं, सप्पञ्ञो वतायं उपासको।
यो सुक्काय अदासि भोजनं, सब्बगन्थेहि विप्पमुत्तिया''ति ॥

10.11. चीरासुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन

(संस्कृतच्छाया) "तं च पुनः अप्रतिवाणीयम्, असेचनकमोजवत्।
पिबन्ति अन्ये सप्रज्ञाः, वलाहकमिव पथगः"इति॥

10. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेणुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन् खलु पुनः समये अन्यतरः उपासकः शुक्रायै भिक्षुण्यै भोजनम् अदात्। अथ खलु शुक्रायै भिक्षुण्यै अभिप्रसन्नः यक्षः राजगृहे रथिकायाः रथिकां शृङ्गाटकात् शृङ्गाटकम् उपसङ्क्रम्य तस्यां वेलायां इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"पुण्यं वत प्रसूतं बहु, सप्रज्ञः वतायम् उपासकः।
यः शुक्रायै अदात् भोजनम्, सर्वग्रन्थैः विप्रमुक्तः"इति॥

10- एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे। तस्मिन्

(हिन्दी) भिक्षुणी द्वारा किया जा रहा धर्मोपदेश क्यों नहीं सुनते! जो अमृत रस का बखान कर रही।

''जो पीछे हटने वाला नहीं है, जो बिना सेचे ओज से परिपूर्ण है। जिसे कोई ज्ञानिजन ही पीते है, जैसे कोई यात्री मेघ का जल पी लेता है।''

10. एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन में स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। उस समय कोई उपासक शुक्रा भिक्षुणी को भोजनदान कर रहा था। तब उस शुक्रा भिक्षुणी पर कोई श्रद्धालु यक्ष राजगृह की एक गली से दूसरी गली या एक चैराहे से दूसरे चैराहे पर जाकर, उस प्रसङ्ग में, ये गाथाएँ कहने लगा-

''इस प्रज्ञावान् उपासक ने शुक्रा भिक्षुणी को भोजनदान कर बहुत पुण्य का अर्जन किया। इस पुण्य के प्रभाव से यह उपासक सभी सांसारिक ग्रन्थियों से पूर्णतः मुक्त हो गया।''

11. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवन में स्थित कलन्दकनिवाप में विहार कर

खो पन समयेन अञ्ञतरो उपासको चीराय भिक्खुनिया चीवरं अदासि। अथ खो चीराय भिक्खुनिया अभिप्पसन्नो यक्खो राजगहे रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं उपसङ्कमित्वा तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''पुञ्ञं वत पसवि बहुं, सप्पञ्ञो वतायं उपासको।
यो चीराय अदासि चीवरं, सब्बयोगेहि विप्पमुत्तिया''ति ॥

10.12. आळवकसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा आळवियं विहरति आळवकस्स यक्खस्स भवने। अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''निक्खम, समणा''ति। ''साधावुसो''ति भगवा निक्खमि। ''पविस, समणा''ति। ''साधावुसो''ति भगवा पाविसि। दुतियम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच– ''निक्खम, समणा''ति। ''साधावुसो''ति भगवा निक्खमि। ''पविस, समणा''ति।

(संस्कृतच्छाया) खलु पुनः समये अन्यतरः उपासकः चीरायै भिक्षुण्यै चीवरम् अदात्। अथ खलु चीरायै भिक्षुण्यै अभिप्रसन्नो यक्षः राजगृहे रथिकायाः रथिकां शृङ्गाटकात् शृङ्गाटकम् उपसङ्क्रम्य तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"पुण्यं वत प्रसूतं बहु, सप्रज्ञः वतायम् उपासकः।
यः चीरायै अदात् चीवरम्, सर्वयोगैः विप्रमुक्तः"इति॥

12. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् आलव्यां विहरति आळवकस्य यक्षस्य भवने। अथ खलु आळवको यक्षो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्, उपसंक्रम्य भगवन्तम् एतदवोचत्— "निष्क्रम, श्रमण!" इति। साधु, आयुष्मन्! इति भगवान् निरक्रमीत्। "प्रविश, श्रमण!" इति। साधु, आयुष्मन्! इति भगवान् प्राविशत्। द्वितीयमपि खलु आळवको यक्षः भगवन्तम् एतदवोचत्—"निष्क्रम, श्रमण" इति। "साधु आयुष्मन्!" इति भगवान् निरक्रमीत्। "प्रविश, श्रमण!" इति।

(हिन्दी) रहे थे। उस समय कोई उपासक चीरा नामक भिक्षुणी को चीवरदान कर रहा था। तब उस शुक्रा भिक्षुणी पर कोई श्रद्धालु यक्ष राजगृह की एक गली से दूसरी गली या एक चैराहे से दूसरे चैराहे पर जाकर, उस प्रसङ्ग में, ये गाथाएँ कहने लगा- ''इस प्रज्ञावान् उपासक ने चीरा भिक्षुणी को चीवरदान कर बहुत पुण्यार्जन किया। इस पुण्य के प्रभाव से यह उपासक समस्त सांसारिक ग्रन्थियों से पूर्णतः विमुक्त हो गया।''

12. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् आलवी के आलवक यक्ष के भवन में विहार कर रहे थे। तब वह आलवक यक्ष भगवान् पास गया तथा उनसे बोला- ''श्रमण! यहाँ से बाहर निकलो।'' भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर भवन से बाहर निकल गये।''श्रमण! प्रवेश करो। भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर प्रवेश किये।दूसरी बार भी आलवक यक्ष भगवान् से बोला ''श्रमण! यहाँ से बाहर निकलो।'' भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर बाहर निकल गये।''श्रमण! प्रवेश करो।

''साधावुसो''ति भगवा पाविसि। ततियं पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच– ''निक्खम, समणा''ति। ''साधावुसो''ति भगवा निक्खमि। ''पविस, समणा''ति। ''साधावुसो''ति भगवा पाविसि। चतुत्थं पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच– ''निक्खम, समणा''ति। ''न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि। यं ते करणीयं तं करोही''ति। ''पञ्हं तं, समण, पुच्छिस्सामि। सचे मे न ब्याकरिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हृदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी''ति। ''न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय, ये मे चित्तं वा खिपेय्य हृदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदा कङ्खसी''ति। अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथा अज्झभासि—

''किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किंसु सुचिण्णं सुखमावहाति।
किंसु हवे सादुतरं रसानं, कथंजीविं जीवितमाहु सेट्ठं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "साधु आयुष्मन्!" इति भगवान् प्राविशत्। तृतीयमपि खलु आळवको यक्षः भगवन्तम् एतदवोचत्— "निष्क्रम, श्रमण!" इति। "साधु आयुष्मन्!" इति भगवान् निरक्रमीत्। "प्रविश, श्रमण!" इति साधु आयुष्मन्!" इति भगवान् प्राविशत्। चतुर्थमपि आळवको यक्षो भगवन्तम् एतदवोचत्— "निष्क्रम, श्रमण!" इति। "न खल्वहं तम्, आयुष्मन्!, निष्क्रमिष्यामि यत् ते करणीयं तत् कुरु" इति। "प्रश्नं त्वाम्, श्रमण! प्रक्ष्यामि, सचेत् मां न व्याकरिष्यसि चित्तं वा ते क्षेप्स्यामि, हृदयं वा ते फालयिष्यामि, पादौ वा गृहीत्वा पारेगङ्गं क्षेप्स्यामि इति। "न खल्वहं तम्, आयुष्मन्! पश्यामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मणे सश्रमण-ब्राह्मण्यां प्रजायां सदेवमनुष्यायां यो मे चित्तं वा क्षिपेत् हृदयं वा फालेत् पादौ वा गृहीत्वा पारेगङ्गं क्षिपेत्। अपि च त्वम्, आयुष्मन्!, पृच्छ यदा आकांक्षसि इति"। अथ खलु आळवको यक्षो भगवन्तं गाथामध्यभाषिष्ट—

"किंस्विदिह वित्तं पुरुषस्य श्रेष्ठम्, किंस्वित् सुचीर्णं सुखमावहति।
किस्वित् हवै स्वादुतरं रसानाम्, कथंजीविनं जीवितमाहु श्रेष्ठम्"इति॥

(हिन्दी) भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर प्रवेश किये। तीसरी बार बार भी आलवक यक्ष भगवान् से बोला ''श्रमण! यहाँ से बाहर निकलो।'' भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर बाहर निकल गये।''श्रमण! प्रवेश करो। भगवान् ''आयुष्मन्! बहुत अच्छा'' कहकर प्रवेश किये। परन्तु चौथी बार भी जब यक्ष बोला-''श्रमण! बाहर निकल जाओ!'' तो भगवान् ने कहा-''आयुष्मन्! मैं बाहर नही जाउगा तुम्हे जो करना हो करों। श्रमण! मैं आप से प्रश्न पुछुगां यदि उसका उत्तर नहीं दिये तो मुझे पागल कर दुंगा, हृदय को फाड़ दुंगा, पैरो को पकड़कर गड्गा के पार फैंक दुंगा। आयुष्मन्! मैं नहीं देखता इस देवता सहित ब्राह्मण, श्रमण मनुष्यो में जो मुझे पागल कर दे, हृदय को फाड़ दे, पैरो को पकड़कर गड्गा के पार फैंक दे, फिर तुम्हें जो प्रश्न पूछना

''सद्धीध वित्तं पुरिस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं''ति॥
''कथंसु तरति ओघं, कथंसु तरति अण्णवं।
कथंसु दुक्खमच्चेति, कथंसु परिसुज्झती''ति॥
''सद्धाय तरति ओघं, अप्पमादेन अण्णवं।
वीरियेन दुक्खमच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झती''ति॥
''कथंसु लभते पञ्ञं, कथंसु विन्दते धनं।
कथंसु कित्तिं पप्पोति, कथं मित्तानि गन्थति।
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच्च न सोचती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "श्रद्धा इह वित्तं पुरुषस्य श्रेष्ठम्, धर्मः सुचीर्णः सुखमावहति।
सत्यं ह्वै स्वादुतरं रसानाम्, प्रज्ञाजीविनं जीवितमाहु श्रेष्ठम्॥
"कथं सु तरति ओघम्, कथं सु तरति अर्णवम्।
कथं सु दुःखम् अत्येति, कथं सु परिशुध्यति"इति॥
"श्रद्धया तरति ओघम्, अप्रमादेन अर्णवम्।
वीर्येन दुःखमत्येति, प्रज्ञया परिशुध्यति"इति॥
"कथं सु लभते प्रज्ञाम्, कथं सु विन्दते धनम्।
कथं सु कीर्तिं प्राप्नोति, कथं मित्राणि ग्रन्थति।
अस्माल्लोकात् परं लोकम्, कथं प्रेत्य न शोचति"इति॥

(हिन्दी) हो, पूछ लो। तब आलवक यक्ष ने भगवान् से यह गाथा कहते हुए प्रश्न किया-

''पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन क्या है? क्या संचित किया हुआ सुखदायक होता है? रसों में सबसे स्वादिष्ट रस कौन है? तथा कैसा जीवन श्रेष्ठ कहलाता है''?

''श्रद्धा ही पुरुष का सर्वश्रेष्ठ धन है। संचित किया हुआ धर्म ही सुखदायक होता है। सत्य का रस सब रसों में श्रेष्ठ है। एवं प्रज्ञामय जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है।''

''संसार की बाढ़ को कैसे पार किया जा सकता है? समुद्र को कैसे तैरा जा सकता है? दुःखों का अन्त कैसे किया जा सकता है? तथा मनुष्य कैसे परिशुद्ध हो सकता है?''

''संसार की बाढ़ को श्रद्धा से पार किया जा सकता है। साधना में अप्रमाद से भवसागर को तैरा जा सकता है। वीर्य से दुःखों का अन्त किया जा सकता है तथा प्रज्ञा से मनुष्य का चित्त शुद्ध हो जाता हैं।

''साधक प्रज्ञा का लाभ कैसे कर सकता है? धन कैसे प्राप्त किया जा सकता है? साधक द्वारा यश कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मित्रों को कैसे अपना बनाया जा सकता है। देहपात के बाद मनुष्य को इस लोक से परलोक जाने पर कैसे शोक नहीं करना पड़ता?''

''सद्दहानो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया।
सुस्सूसं लभते पञ्ञं, अप्पमत्तो विचक्खणो॥
''पतिरूपकारी धुरवा, उट्ठाता विन्दते धनं।
सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति।
अस्मा लोका परं लोकं, एवं पेच्च न सोचति॥
''यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति॥
''इङ्घ अञ्ञेपि पुच्छस्सु, पुथू समणब्राह्मणे।
यदि सच्चा दम्मा चागा, खन्त्या भिय्योध विज्जती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) "श्रद्दधानः अर्हन्तम्, धर्मं निर्वाणप्राप्तये।
शुश्रूषमाणः लभते प्रज्ञाम्, अप्रमत्तो विचक्षणः॥
"प्रतिरूपकारी धुरवान्, उत्थाता विन्दते धनम्।
सत्येन कीर्तिं प्राप्नोति, ददन् मित्राणि ग्रन्थति।
अस्मात् लोकात् परं लोकम्, एवं प्रेत्य न शोचति॥
"यस्येते चत्वारो धर्माः, श्रद्धस्य गृहमेषिणः।
सत्यं धर्मः धृतिः त्यागः, स वै प्रेत्य न शोचति॥
"अङ्ग! अन्यानपि पृच्छ, पृथून् श्रमणब्राह्मणान्।
यदि सत्यात् दमात् त्यागात्, क्षान्त्याः भूयसा इह विद्यते"इति॥

(हिन्दी) निर्वाण की प्राप्ति के लिये अर्हत् एवं धर्म पर श्रद्धा रखता हुआ अप्रमत्त एवं विचक्षण पुरुष ही, उनकी सेवा शुश्रूषा कर प्रज्ञा का लाभ कर सकता है। कार्य करने वाले परिश्रमी एवं उत्साही पुरुष द्वारा ही अर्थ का उपार्जन किया जा सकता है।

''सत्य आचरण से ही साधक द्वारा यश प्राप्त किया जा सकता है। मित्रों को निरन्तर कुछ देते रहने से ही उनको अपना बनाये रखा जा सकता है। इतना सब करके ही देहपात के बाद इस लोक से परलोक जाने के बाद मनुष्य को शोक नहीं करना पड़ता।

''जो श्रद्धालु गृहस्थ इन चारों धर्मों को पूर्ण करने का प्रयास करता है; जैसे- सत्य, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य एवं त्याग; वही परलोक जाकर कोई शोक नहीं करता।

''इस विषय में तुम अन्य ज्ञानी श्रमण ब्राह्मणों से भी पूछ सकते हो कि क्या सत्य, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य एवं त्याग एवं क्षमा के अतिरिक्त भी कोई श्रेष्ठ धर्म है?''

''कथं नु दानि पुच्छेय्यं, पुथू समणब्राह्मणे।
योहं अज्ज पजानामि, यो अत्थो सम्परायिको॥
''अत्थाय वत मे बुद्धो, वासायाळविमागमा।
योहं अज्ज पजानामि, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥
''सो अहं विचरिस्सामि, गामा गामं पुरा पुरं।
नमस्समानो सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतं''ति॥

यक्खसंयुत्तं समत्तं।

तस्सुद्दानं–

इन्दको सक्क सूचि च, मणिभद्दो च सानु च।
पियङ्कर पुनब्बसु सुदत्तो च, द्वे सुक्का चीरआळवीति द्वादस॥

(संस्कृतच्छाया)

"कथं नु इदानीं पृच्छेयम्, पृथून् श्रमणब्राह्मणान्।
योऽहम् अद्य प्रजानामि, यो अर्थो साम्परायिकः॥
"अर्थाय वत मे बुद्धः, वासायालविमागमत्।
योऽहम् अद्य प्रजानामि, यत्र दत्तं महाफलम्॥
"सोऽहं विचरिष्यामि, ग्रमात् ग्रामं पुरात् पुरम्।
नमस्यमानः सम्बुद्धम्, धर्मस्य च सुधर्मताम्"इति॥

तस्योद्दानम्-

इन्द्रकः शक्रः सूचिश्च, मणिभद्रः च सानु च।
प्रियङ्कर पुनर्वसु सुदत्तश्च, द्वे शुक्रा चीराआळवीति द्वादशाः॥

(हिन्दी) ''भन्ते! अब दूसरे ज्ञानी श्रमण ब्राह्मणों से क्यों और क्या पूछने जाऊँगा जब कि मैं स्वयं ही जान चुका हूँ कि पारलौकिक परमार्थ क्या है?

''मेरे कल्याण के लिये ही आज आप बुद्ध इस आलवी में पधारे हैं। आज हम जान गये हैं कि किसको दान करने का महाफल होता है।

''अब मैं ग्राम ग्राम तथा नगर नगर घूम घूमकर बुद्ध और धर्म को प्रणाम करते हुए उनके महत्व एवं वैशिष्ट्य का प्रचार करूँगा।''

इस वर्ग का उदान– इस वर्ग में इन्द्रकसुत्त, शक्रनामसुत्त, सूचिलोमसुत्त, मणिभद्रसुत्त, सानुसुत्त, प्रियङ्करसुत्त, पुनर्वसुसुत्त, सुदत्तसुत्त, प्रथम शुक्रासुत्त, द्वितीयशुक्रासुत्त, चीरासुत्त एवं आलवकसुत्त हैं।

******

11. सक्कसंयुत्तं

1. पठमवग्गो

11.1.1. सुवीरसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, असुरा देवे अभियंसु। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि– 'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्चुय्याही'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा पमादं आपादेसि। दुतियं पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि– 'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्चुय्याही'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा दुतियम्पि पमादं आपादेसि। ततियम्पि खो, भिक्खवे, सक्को

1. (संस्कृतच्छाया) एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत- ''भिक्षवः!''इति। ''भदन्त''इति ते भिक्षवः भगवन्तं प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

भूतपूर्वम्, भिक्षवः! असुराः देवान् अभ्ययासिषुः। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुवीरं देवपुत्रम् आमन्त्रयत— एते, तात सुवीर! असुराः देवान् अभियान्ति। गच्छ, तात सुवीर! असुरे प्रत्युद्याहि' इति। 'एवं भद्रं ते' इति खलु, भिक्षवः! सुवीरो देवपुत्रः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य प्रमादम् आपादि। द्वितीयमपि खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुवीरं देवपुत्रम् आमन्त्रयत— एते तात सुवीर! असुराः देवान् अभियान्ति। गच्छ, तात सुवीर! असुरे प्रत्युद्याहि' इति। 'एवं भद्रं ते' इति खलु, भिक्षवः! सुवीरो देवपुत्रः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य द्वितीयमपि प्रमादम् आपादि। तृतीयमपि खलु, भिक्षवः! शक्रः,

1.(हिन्दी) ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डिक के आराम में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर यह कहा- भिक्षुओं!। हाँ ''भदन्त'' उन भिक्षुओं ने प्रति उत्तर में कहा। भगवान् ने कहा-

''भिक्षुओं! पहले कभी असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया था। उस समय, भिक्षुओं देवराज शक्र ने सुवीर देवपुत्र को बुलाया- ''तात सुवीर! ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। तात सुवीर! तुम जाओ और इन असुरों पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुवीर देवपुत्र ने देवराज इन्द्र का आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। अतः दूसरी बार भी देवराज शक्र ने सुवीर देवपुत्र को बुलाकर कहा- ''तात सुवीर! ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। तात सुवीर! तुम जाओ और इन असुरों पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुवीर देवपुत्र ने देवराज इन्द्र का आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। भिक्षुओं! तीसरी बार भी देवराज शक्र ने सुवीर देवपुत्र को

देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं आमन्तेसि– 'एते, तात सुवीर, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुवीर, असुरे पच्चुय्याही'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, सुवीरो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा ततियम्पि पमादं आपादेसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुवीरं देवपुत्तं गाथाय अज्झभासि–

''अनुट्ठहं अवायामं, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुवीर तत्थ गच्छाहि, मञ्च तत्थेव पापया''ति॥
''अलस्वस्स अनुट्ठाता, न च किच्चानि कारये।
सब्बकामसमिद्धस्स, तं मे सक्क वरं दिसा''ति॥
''यत्थालसो अनुट्ठाता, अच्चन्तं सुखमेधति।
सुवीर तत्थ गच्छाहि, मं च तत्थेव पापया''ति॥
''अकम्मुना देवसेट्ठ, सक्क विन्देमु यं सुखं।

(संस्कृतच्छाया) देवानामिन्द्रः सुवीरं देवपुत्रम् आमन्त्रयत— एते, तात सुवीरः! असुराः देवान् अभियान्ति। गच्छ, तात सुवीर! असुरे प्रत्युद्याहि' इति। 'एवं भद्रं ते' इति खलु, भिक्षवः! सुवीरः देवपुत्रः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य तृतीयमपि प्रमादम् आपादि। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः सुवीरं देवपुत्रं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''अन्वतिष्ठमहम् अव्यावमन्, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुवीर तत्र गच्छ, मां च तत्रैव प्रापय''इति॥
''आलसः स्यात् अनुत्थाता , न च कृत्यानि कुर्यात्।
सर्वकामसमृद्धः स्यात्, तं मह्यं शक्र वरं दिश'' इति॥
''यत्रालसोऽनुत्थाता, अत्यन्तं सुखमेधते।
सुवीर तत्र गच्छ, मां च तत्रैव प्रापय''इति॥
''अकर्मणा देवश्रेष्ठ, शक्रः विन्देम यत् सुखम्।

(हिन्दी) बुलाकर कहा- ''तात सुवीर! ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। तात सुवीर! तुम जाओ और इन असुरों पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुवीर देवपुत्र ने देवराज इन्द्र का आदेश सुन कर तीसरी बार भी उपेक्षा कर दी। तब, भिक्षुओं! देवराज शक्र ने सुवीर देवपुत्र को इस गाथा के माध्यम से यह कहा-

'तात सुवीर! कोई अनुष्ठान या उद्यम किये बिना जहाँ सुख मिलता हो, तुम वहाँ चले जाओ तथा मुझको भी वहीं ले चलो'।

'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष जो कुछ भी नहीं कर पाता वैसे मुझे हे शक्र! सभी अभीष्ट कार्य पूर्ण होने का वर दें।

'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष भी सुख पा सकता हो, सुवीर! वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'। 'हे देवश्रेष्ठ! कर्म किये बिना ही, आलसी बने रहते भी मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण होती चलें- मुझे ऐसा वर

असोकं अनुपायासं, तं मे सक्क वरं दिसा''ति॥
''सचे अत्थि अकम्मेन, कोचि क्वचि न जीवति।
निब्बानस्स हि सो मग्गो, सुवीर तत्थ गच्छाहि।
मं च तत्थेव पापया''ति॥

''सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो उट्ठानवीरियस्स वण्णवादी भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ, यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना उट्ठहेय्याथ घटेय्याथ वायमेय्याथ अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया''ति।

11.1.2. सुसीमसुत्तं

सावत्थियं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

(संस्कृतच्छाया) अशोकम् अनुपायासम्, तं मह्यं शक्र वरं दिश"इति॥
''सचेद् अस्ति अकर्मणा, कश्चित् क्वचित् न जीवति।
निर्वाणस्य हि सो मार्गः, सुवीर! तत्र गच्छ।
मां च तत्रैव प्रापय"इति॥

सः हि नाम, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः स्वकीयं पुण्यफलम् उपजीवमानः देवानां त्रायस्त्रिंशानां ऐश्वर्याधिपत्यं राज्यं कुर्वन् उत्थानवीर्यस्य वर्णवादी भविष्यति। इह खलु तत्, भिक्षवः, शोभेत, यत् युष्माकमेवं स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजिताः समानाः उत्तिष्ठेत घटेत व्यायमेत अप्राप्तस्य प्राप्त्यै अनधिगतस्य अधिगमाय असाक्षात्कृतस्य साक्षात्क्रियायै"इति।

2. श्रावस्त्याम्। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत- ''भिक्षवः!"इति। ''भदन्त!"इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

(हिन्दी) दो।'

'कर्म किये बिना भी यदि कोई कहीं सुख पा सकता है तो वह एकमात्र निर्वाण का मार्ग है। सुवीर! तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'।

''भिक्षुओं! वह देवराज शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य प्राप्त कर राज्य करते हुए उत्साह एवं उद्यम का प्रशंसक है। भिक्षुओं! तुम्हारी भी इसी में शोभा है कि तुम भी इस भली भाँति आख्यात धर्म में प्रव्रजित होकर उत्साहपूर्वक, साहस के साथ अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, दुर्गम स्थान पर जाने के लिये तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये परिश्रम करो।

2. श्रावस्ती में। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर यह कहा- भिक्षुओं!। हाँ ''भदन्त'' उन भिक्षुओं ने प्रत्युत्तर में कहा। तब भगवान् ने कहा-

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, असुरा देवे अभियंसु। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि– 'एते, तात सुसीम, असुरा देवे अभियन्ति। गच्छ, तात सुसीम, असुरे पच्चुय्याही'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, सुसीमो देवपुत्तो सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा पमादं आपादेसि। दुतियम्पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि...पे०... दुतियम्पि पमादं आपादेसि। ततियम्पि खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं आमन्तेसि...पे०... ततियम्पि पमादं आपादेसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुसीमं देवपुत्तं गाथाय अज्झभासि–

''अनुट्ठहं अवायामं, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुसीम तत्थ गच्छाहि, मञ्च तत्थेव पापया''ति॥
''अलस्वस्स अनुट्ठाता, न च किच्चानि कारये।
सब्बकामसमिद्धस्स, तं मे सक्क वरं दिसा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) भूतपूर्वम्, भिक्षवः! असुराः देवान् अभ्ययासिषुः। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुसीमं देवपुत्रम् आमन्त्रयत— एते, तात सुसीम! असुराः देवान् अभियान्ति। गच्छ, तात सुसीम! असुरे प्रत्युद्याहि' इति। 'एवं भद्रं ते' इति खलु, भिक्षवः! सुसीमः देवपुत्रः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य प्रमादम् आपादि। द्वितीयमपि खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुसीमं देवपुत्रम् आमन्त्रयत- ...पे०...द्वितीयमपि प्रमादम् आपादि। तृतीयमपि खलु, भिक्षवः! शक्रः, देवानामिन्द्रः सुसीमं देवपुत्रम् आमन्त्रयत— ...पे०... तृतीयमपि प्रमादम् आपादि। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुसीमं देवपुत्रं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''अन्वतिष्ठमहम् अव्यावमन्, सुखं यत्राधिगच्छति।
सुसीम तत्र गच्छ, मां च तत्रैव प्रापय''इति॥
''आलस्यः स्यात् अनुत्थाता, न च कृत्यानि कुर्यात्।
सर्वकामसमृद्धः स्यात्, तं मह्यं शक्र वरं दिश''इति॥

(हिन्दी) ''भिक्षुओं! पहले कभी असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया था। उस समय, भिक्षुओं! देवराज शक्र ने सुसीम देवपुत्र को बुलाकर यह आदेश दिया- ''तात सुसीम! ये असुर देवताओं पर आक्रमण कर रहे हैं। अतः तुम जाओ और इन पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुसीम ने देवराज इन्द्र का आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। अतः दूसरी बार भी देवराज ने सुसीम को बुलाकर कहा-...पूर्ववत्... आक्रमण कर रहे हैं। अतः तुम जाओ और इन पर प्रत्याक्रमण करो।'' सुसीम ने देवराज इन्द्र का दूसरी बार भी आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। तीसरी बार भी देवराज ने सुसीम को बुलाकर कहा-...पूर्ववत्... तीसरी बार भी आदेश सुन कर उसकी उपेक्षा कर दी। तब, भिक्षुओं! देवराज शक्र ने सुसीम देवपुत्र को गाथा के माध्यम से यह कहा-

'तात सुसीम! कोई अनुष्ठान या उद्यम किये बिना जहां सुख मिल पाता हो, तुम वहां चले जाओ तथा मुझको भी वहीं ले चलो'।

''यत्थालसो अनुट्ठाता, अच्चन्तं सुखमेधति।
सुसीम तत्थ गच्छाहि, मञ्च तत्थेव पापया''ति॥
''अकम्मुना देवसेट्ठ, सक्क विन्देमु यं सुखं।
असोकं अनुपायासं, तं मे सक्क वरं दिसा''ति॥
''सचे अत्थि अकम्मेन, कोचि क्वचि न जीवति।
निब्बानस्स हि सो मग्गो, सुसीम तत्थ गच्छाहि।
मं च तत्थेव पापया''ति॥

''सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो उट्ठानवीरियस्स वण्णवादी भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ, यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना

(संस्कृतच्छाया)

''यत्रालसोऽनुत्थाता, अत्यन्तं सुखमेधते।
सुसीम तत्र गच्छ, मां च तत्रैव प्रापय''इति॥
''अकर्मणा देवश्रेष्ठ, शक्रः विन्देम यत् सुखम्।
अशोकम् अनुपायासम्, तं मह्यं शक्र वरं दिश''इति॥
''सचेद् अस्ति अकर्मणा, कश्चित् क्वचित् न जीवति।
निर्वाणस्य हि सः मार्गः, सुसीम! तत्र गच्छ।
मां च तत्रैव प्रापय''इति॥

सः हि नाम, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः स्वकीयं पुण्यफलम् उपजीवमानः देवानां त्रायस्त्रिंशानाम् ऐश्वर्याधिपत्यं राज्यं कुर्वन् उत्थानवीर्यस्य वर्णवादी भविष्यति। इह खलु तत्, भिक्षवः! शोभेत, यत् युष्माकमेवं स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजिताः समानाः

(हिन्दी) 'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष जो कुछ भी नहीं कर पाता वैसे मेरे सभी अभीष्ट कार्य पूर्ण होने का वर दें। 'जहाँ आलसी एवं उद्यमरहित पुरुष भी सुख पा सकता हो, तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'।

हे देवश्रेष्ठ! कर्म किये बिना ही, आलसी बने रहते भी मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण होती चलें-मुझे ऐसा वर दो।' कर्म किये बिना भी यदि कोई कहीं सुख पा सकता है तो वह एकमात्र निर्वाण का मार्ग है। सुवीर! तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'।

हे देवश्रेष्ठ! कर्म किये बिना ही, आलसी बने रहते भी मेरी सभी कामनाएँ पूर्ण होती चलें-मुझे ऐसा वर दो।' 'कर्म किये बिना भी यदि कोई कहीं सुख पा सकता है तो वह एकमात्र निर्वाण का मार्ग है। सुवीर! तुम वहीं चले जाओ, तथा मुझे भी वहीं ले चलो'।

''भिक्षुओं! वह देवराज शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य प्राप्त कर राज्य करते हुए उत्साह एवं उद्यम का प्रशंसक है। भिक्षुओं! तुम्हारी भी इसी में शोभा है कि तुम भी इस भली भाँति आख्यात

उट्ठहेय्याथ घटेय्याथ वायमेय्याथ अप्पत्तस्स पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया''ति।

11.1.3. धजग्गसुत्तं

सावत्थियं। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि–

सचे, मारिसा, देवानं सङ्गामगतानं उप्पज्जेय्य भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, ममेव तस्मिं समये धजग्गं उल्लोकेय्याथ। ममञ्हि वो धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति'।

'नो चे मे धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ पजापतिस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ।

(संस्कृतच्छाया) उत्तिष्ठेत् घटेत व्यायमेत अप्राप्तस्य प्राप्त्यै, अनधिगतस्य अधिगमाय, असाक्षात्कृतस्य साक्षात्क्रियायै"इति।

3. श्रावस्त्याम्। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत— भिक्षवः! इति। भदन्त"इति ते भिक्षवः भगवन्तं प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्—

भूतपूर्वम्, भिक्षवः, देवासुरसङ्ग्रामः समुपव्यूढोऽभूत्। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः देवान् त्रायस्त्रिंशान् आमन्त्रयत—

सचेत्, मार्षाः! देवानां सङ्ग्रामगतानाम् उत्पद्येत भयं वा स्तम्भितत्वं वा लोमहर्षो वा, ममैव तस्मिन् समये ध्वजाग्रम् उल्लोकयत। मम हि वो ध्वजाग्रम् उल्लोकयतां यद् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्वं वा लोमहर्षो वा सः प्रहास्यति।"

'नो चेत् मे ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, अथ प्रजापतेः देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत।

(हिन्दी) धर्म में प्रव्रजित होकर उत्साहपूर्वक, साहस के साथ अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, दुर्गम स्थान पर जाने के लिये तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार लिये परिश्रम करो।"

3. श्रावस्ती में। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाया- भिक्षुओं!। हाँ ''भदन्त'' उन भिक्षुओं ने प्रति उत्तर में कहा। तब भगवान् ने कहा-

भिक्षुओं! पहले कभी देवताओं एवं असुरों में भयङ्कर संग्राम आरम्भ हुआ। तब भिक्षुओं! देवराज शक्र ने त्रायस्त्रिंशलोकवासी देवताओं को एकत्र कर यह कहा-

'मार्ष! यदि संग्राम में शत्रु से युद्ध करते हुए देवताओं को भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष होने लगे तो उस समय उन्हें मेरे रथ की ध्वजा के अग्रभाग को देख लेना चाहिये, उससे उनका वह भय, स्तब्ध एवं रोमहर्ष- सभी कुछ प्रहीण हो जायेगा।

'वे मेरा ध्वजाग्र न देख पावें तो उन्हें प्रजापति देवराज ध्वजाग्र को देख लेना चाहिये, उससे उनका

पजापतिस्स हि वो देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति'।

'नो चे पजापतिस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ वरुणस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ। वरुणस्स हि वो देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति'।

'नो चे वरुणस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ, अथ ईसानस्स देवराजस्स धजग्गं उल्लोकेय्याथ। ईसानस्स हि वो देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सती'''ति।

''तं खो पन, भिक्खवे, सक्कस्स वा देवानमिन्दस्स धजग्गं उल्लोकयतं, पजापतिस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं, वरुणस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं, ईसानस्स वा देवराजस्स धजग्गं उल्लोकयतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयेथापि नोपि पहीयेथ।

(संस्कृतच्छाया) प्रजापतेः हि वो देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयतां यत् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्वं वा लोमहर्षः वा, सः प्रहास्यति।"

'नो चेत् प्रजापतेः देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, अथ वरुणस्य देवराजस्य ध्वजाग्रम्, उल्लोकयत। वरुणस्य हि वो देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयतां यत् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्वं वा लोमहर्षो वा सः प्रहास्यति।"

'नो चेत् वरुणस्य देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, अथ ईशानस्य देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत। ईशानस्य हि वो देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयतां यत् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा लोमहर्षो वा सः प्रहास्यति"इति।

'तत् खलु पुनः, भिक्षवः! शक्रस्य वा देवानामिन्द्रस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, प्रजापतेर्वा देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, वरुणस्य वा देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत, ईशानस्य वा देवराजस्य ध्वजाग्रम् उल्लोकयत यत् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा लोमहर्षः वा, सः प्रहीयेत् अपि न अपि प्रहीयेत्।

(हिन्दी) वह भय, स्तब्ध एवं रोमहर्ष- सभी कुछ प्रहीण हो जायेगा।

वे प्रजापति देवराज का ध्वजाग्र न देख पावें तो वरुणदेवराज का ध्वजाग्र देखना चाहिये, उससे उनका वह भय...पूर्ववत्.. प्रहीण हो जायेगा।

'वे वरुण देवराज का ध्वजाग्र भी न देख पावें तो उन्हें ईशान देवराज का ध्वजाग्र देखना चाहिये, उससे उनका भय...पूर्ववत्.. प्रहीण हो जायेगा'।

''भिक्षुओं! हो सकता है उन देवताओं का शक्र देवराज का, प्रजापति देवराज का, वरुणदेवराज का, ईशान

''तं किस्स हेतु? सक्को हि, भिक्खवे, देवानमिन्दो अवीतरागो अवीतदोसो अवीतमोहो भीरु छम्भी उत्रासी पलायीति।

''अहं च खो, भिक्खवे, एवं वदामि– 'सचे तुम्हाकं, भिक्खवे, अरञ्ञगतानं वा रुक्खमूलगतानं वा सुञ्ञागारगतानं वा उप्पज्जेय्य भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, ममेव तस्मिं समये अनुस्सरेय्याथ– इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा'ति। ममं हि वो, भिक्खवे, अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

''नो चे मं अनुस्सरेय्याथ, अथ धम्मं अनुस्सरेय्याथ– 'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'ति। धम्मञ्हि वो, भिक्खवे, अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

(संस्कृतच्छाया) तत् कस्मात् हेतोः? शक्रो हि, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः अवीतरागः अवीतद्वेषः अवीतमोहः भीरुः स्तम्भी उत्त्रासी पलायीति।

अहं च खलु, भिक्षवः! एवं वदामि— सचेत् युष्माकम्, भिक्षवः! अरण्यगतानां वा वृक्षमूलगतानां वा शून्यागारगतानां वा उत्पद्येत भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा लोमहर्षो वा, मामेव तस्मिन् समये अनुस्मरेत्— इति अपि सः भगवान् अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धो विद्याचरणसम्पन्नः सुगतः लोकविद् अनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्' इति। मामपि वः, भिक्षवः! अनुस्मरतां यद् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा लोमहर्षो वा सः प्रहास्यति।

नो चेत् माम् अनुस्मरेत, अथ धर्मम् अनुस्मरेत्— स्वाख्यातो भगवता धर्मः संदृष्टिकः अकालिकः एहिपश्यिकः औपनेयिकः प्रत्यात्मं वेदितव्यः विजानीहि' इति। धर्मं हि वः, भिक्षवः! अनुस्मरता यद् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा लोमहर्षो वा सः प्रहास्यति।

(हिन्दी) देवराज का ध्वजाग्र देखने से भय....पूर्ववत्...प्रहीण हो भी सकता है, या नहीं भी हो सकता है।

वह किस कारण? क्योंकि देवराज शक्र राग द्वेष मोह से दूर नहीं हुआ है, वह स्वयं भी डरपोक, स्तब्ध, उद्विग्न होने वाला तथा रणक्षेत्र से भाग जाने वाला है।

''भिक्षुओं! मैं तो इसका उपाय तुम्हें यह बताता हूँ- यदि, भिक्षुओं! तुम्हें अरण्य में, वृक्षों के नीचे, शून्य भवनों में भय स्तब्धता एवं रोमांच होने लगे तो उस समय तुम्हें मेरा अनुस्मरण करना चाहिये-'भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...इस लोक में मनुष्यों एवं देवताओं के शास्ता हैं।' भिक्षुओं! मेरे अनुस्मरण से तुम्हारा भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष प्रहीण हो जायेगा।

यदि मेरा स्मरण न कर सको तो, धर्म का अनुस्मरण करना चाहिये- भगवान् का धर्म अच्छी तरह से वर्णित, देखते ही देखते फल देनेवाला, बिना देरी के सफल होने वाला, किसी की भी जाँच में खरा उतरने

''नो चे धम्मं अनुस्सरेय्याथ, अथ सङ्घं अनुस्सरेय्याथ– 'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो, आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'ति। सङ्घञ्हि वो, भिक्खवे, अनुस्सरतं यं भविस्सति भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा, सो पहीयिस्सति।

''तं किस्स हेतु? तथागतो हि, भिक्खवे, अरहं सम्मासम्बुद्धो वीतरागो वीतदोसो वीतमोहो अभीरु अच्छम्भी अनुत्रासी अपलायी''ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था–

''अरञ्ञे रुक्खमूले वा, सुञ्ञागारेव भिक्खवो।
अनुस्सरेथ सम्बुद्धं, भयं तुम्हाक नो सिया॥

(संस्कृतच्छाया)- नो चेत् धर्मम् अनुस्मरेत, अथ सङ्घम् अनुस्मरेत— सुप्रतिपन्नः भगवतः श्रावकसंघः ऋजुप्रतिपन्नः भगवतः श्रावकसंघः न्यायप्रतिपन्नः भगवतः श्रावकसंघः सामीचिप्रतिपन्नः भगवतः श्रावकसंघः, यदिदं चत्वारि पुरुषयुगानि अष्ट पुरुषपुद्गलाः एष भगवतः श्रावकसंघः आह्वनीयः प्राह्वणीयः दाक्षिणीयः अञ्जलिकरणीयः अनुत्तरं पुण्यक्षेत्रं लोकस्य' इति। सघं हि वो भिक्षवः, अनुस्मरतां यत् भविष्यति भयं वा स्तम्भितत्त्वं लोमहर्षः वा, सः प्रहास्यते।

तत् कस्मात् हेतोः? तथागतः हि भिक्षवः, अर्हन् सम्यक्सम्बुद्धः वीतरागः वीतद्वेषः वीतमोहः अभीरुः अस्तम्भि अनुत्त्रासी अपलायी'इति। इदमवोचत् भगवान्। इदम् उक्त्वा सुगतः अर्थमपरम् एतदवोचत् शास्ताः—

''अरण्ये वृक्षमूले वा, शून्यागारे वा भिक्षवः।
अनुस्मरेत सम्बुद्धं, भयं युष्माकं नो स्यात्॥

(हिन्दी) वाला, निर्वाण तक ले जानेवाला और विज्ञों के द्वारा अपने भीतर ही भीतर जाना जाने योग्य है। भिक्षुओं! धर्म का अनुस्मरण करते ही तुम्हारा भय... प्रहीण हो जायेगा।

''यदि तुम किसी कारण, धर्म का भी अनुस्मरण न कर सको तो मेरे द्वारा संचालित भिक्षुसङ्घ का अनुस्मरण करना चाहिये- 'भगवान् द्वारा संचालित भिक्षु सङ्घ सरल साधना मार्ग वाला है व्यवस्थित है, सुपथगामी है ज्ञान के मार्ग पर आरूढ है, जो यह पुरुषों का चार जोड़ा, आठ पुरुष है। यही भगवान् का श्रावक संघ निमन्त्रण करने योग्य है, सत्कार करने योग्य है, दान देने योग्य है, प्रणाम करने योग्य है, संसार का अनुत्तर पुण्य क्षेत्र है। अद्वितीय पुण्य का स्थान है'। भिक्षुओं! सङ्घ का अनुस्मरण करते ही तुम्हारा भय... प्रहीण हो जायेगा।

वह किस लिये? भिक्षुओ! क्योंकि भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध वीतराग, वीतद्वेष वीतमोह, अभय और दृढ हैं। भगवान् ने यह कहा। साथ ही गाथाओं के माध्यम से भी यह कहा-

''नो चे बुद्धं सरेय्याथ, लोकजेट्ठं नरासभं।
अथ धम्मं सरेय्याथ, निय्यानिकं सुदेसितं॥
''नो चे धम्मं सरेय्याथ, निय्यानिकं सुदेसितं।
अथ सङ्घं सरेय्याथ, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं॥
''एवं बुद्धं सरन्तानं, धम्मं सङ्घञ्च भिक्खवो।
भयं वा छम्भितत्तं वा, लोमहंसो न हेस्सती''ति॥

11.1.4. वेपचित्तिसुतं

सावत्थिनिदानं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो असुरे आमन्तेसि– 'सचे, मारिसा, देवानं असुर सङ्गामे समुपब्यूळ्हे असुरा जिनेय्युं देवा पराजिनेय्युं, येन नं सक्कं देवानमिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा मम सन्तिके आनेय्याथ

(संस्कृतच्छाया)
''नो चेत् बुद्धं स्मरेत, लोकज्येष्ठं नरर्षभम्।
अथ धर्मं स्मरेत, नैर्याणिकं सुदेशितम्॥
''नो चेत् धर्मं स्मरेत, नैर्याणिकं सुदेशितम्।
अथ संघं स्मरेत, पुण्यक्षेत्रम् अनुत्तरम्॥
''एवं बुद्धं स्मरताम्, धर्मं संघं च भिक्षवः।
भयं वा स्तम्भितत्त्वं वा, लोमहर्षः न भविष्यति''इति।

4. श्रावस्तीनिदानम्। भूतपूर्वं, भिक्षवः! देवासुरसंग्रामः समुपब्यूढः अभूत्। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्ति असुरेन्द्रः असुरान् आमन्त्रयत- सचेत्, मार्षाः! देवानां असुरसंग्रामे समुपब्यूढे असुराः जयेयुः देवाः पराजयेयुः, यत्र तं शक्रं देवानामिन्द्रं कण्ठपंचभिः बन्धनैः बद्ध्वा मम समीपे आनयेत

(हिन्दी) ''किसी अरण्य में, किसी वृक्ष के नीचे, किसी शून्य भवन में भिक्षुओं! यदि तुम्हें भय ज्ञात हो तो उस समय बुद्ध का स्मरण करो, तुम्हारा भय दूर हो जायेगा।

''यदि तुम इन लोक में अद्वितीय एवं नरश्रेष्ठ बुद्ध का अनुस्मरण न कर पाओ तो उन के द्वारा स्वाख्यात, िनर्वाण तक पहुँचाने वाले सूपदिष्ट धर्म का अनुस्मरण करो।

''यदि तुम, किसी कारण, स्वाख्यात, िनर्वाण तक पहुँचाने वाले धर्म का भी स्मरण न कर पाओ तो भगवान् द्वारा संचालित सङ्घ का, जो कि अद्वितीय पुण्य का स्थान है, स्मरण करो।

''इस तरह, भिक्षुओं! बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ का स्मरण करते हुए तुम्हारा सर्वविध भय, स्तब्धता एवं रोमहर्ष- सब कुछ दूर हो जायेगा।"

4. श्रावस्ती के जेतवन मे। भिक्षुओं! पहले कभी देवताओं तथा असुरों में परस्पर युद्ध हो रहा था। तब वेपचित्ति नामक असुरेन्द्र ने असुरों को अपने पास बुलाकर यों कहा- 'मार्ष! इस देवासुर संग्राम के समाप्त होने पर असुरों की विजय हो तथा देवताओं की पराजय हो तो तुम लोग देवराज शक्र को हाथ, पैर तथा

असुरपुरं'ति। सक्कोपि खो, भिक्खवे, देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि– 'सचे, मारिसा, देवानं असुरसङ्गामे समुपब्यूळ्हे देवा जिनेय्युं असुरा पराजिनेय्युं, येन नं वेपचित्तिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा मम सन्तिके आनेय्याथ सुधम्मसभ'''न्ति। तस्मिं खो पन, भिक्खवे, सङ्गामे देवा जिनिंसु, असुरा पराजिनिंसु। अथ खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा वेपचित्तिं असुरिन्दं कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बन्धित्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स सन्तिके आनेसुं सुधम्मसभं। तत्र सुदं, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो कण्ठपञ्चमेहि बन्धनेहि बद्धो सक्कं देवानमिन्दं सुधम्मसभं पविसन्तञ्च निक्खमन्तञ्च असब्भाहि फरुसाहि वाचाहि अक्कोसति परिभासति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाहि अज्झभासि–

''भया नु मघवा सक्क, दुब्बल्या नो तितिक्खसि।
सुणन्तो फरुसं वाचं, सम्मुखा वेपचित्तिनो''ति॥

(संस्कृतच्छाया) असुरपुरम्' इति। शक्रः अपि खलु, भिक्षवः देवानामिन्द्रः देवान् त्रायस्त्रिंशान् आमन्त्रयत— सचेत्, मार्षाः! देवानाम्, असुरसंग्रामे समुपब्यूढे देवाः जयेयुः असुराः पराजयेयुः, यत्र तं वेपचित्तिम् असुरेन्द्रं कण्ठपञ्चमैः बन्धनैः बद्ध्वा मम समीपे आनयेत सुधर्मां सभाम्''इति। तस्मिन् खलु पुनः, भिक्षवः! संग्रामे देवाः अजयन्, असुराः पराजयन्। अथ खलु भिक्षवः! देवाः त्रायस्त्रिंशात् वेपचित्तिम् असुरेन्द्रं कण्ठपञ्चमैः बन्धनैः बद्ध्वा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य समीपे सुधर्मसभाम्। तत्र स्वित् इदं भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः कण्ठपञ्चमैः बन्धैनैः बद्धः शक्रं देवानामिन्द्रं सुधर्मसभां प्रविशन्तं च निष्क्रमन्तम् असभ्याभिः परूषाभिः वाचाभिः आक्रोशति परिभाषते। अथ खलु, भिक्षवः! मातलिः संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथाभि अध्यभाषिष्ट—

''भयात् नु मघवन् शक्र, दौर्बल्यात् नो तितिक्षसि।
श्रृण्वन्तः परुसां वाचाम्, सम्मुखं वेपचित्ते''इति॥

(हिन्दी) कण्ठ- इन पाँच स्थानों से बाँध कर मेरे सम्मुख इस असुरपुर में ले जाओ।'

''असुरों देवराज शक्र ने भी देवताओं को त्रायस्त्रिंश लोक में बुलाया- ''मार्ष! इस देवासुर संग्राम के समाप्त होने पर देवताओं की विजय हो तथा असुरों की पराजय हो तो तुम लोग यदि देवताओं की विजय हो तो तुम वेपचित्ति असुरेन्द्र को हाथ, पैर तथा कण्ठ- पाँच स्थानों से बाँध कर मेरे सम्मुख इस देवसभा में ले आओ।''उस समय, भिक्षुओं! उस संग्राम में देवताओं की विजय हुई, असुर पराजित हो गये, अतः त्रायत्रिंश लोकवासी देवता उस असुरेन्द्र वेपचित्ति को, हाथ पैर बाँध कर, देवराज के सम्मुख सुधर्मा देवसभा में ले आये। भिक्षुओं! उस समय वहाँ वह असुरेन्द्र वैपचित्ति पाँच स्थानों से बंधा हुआ, देवताओं द्वारा सुधर्मा देवसभा में लाया जाता हुआ, सुधर्मा देवसभा में प्रविष्ट होने वाले देवराज शक्र को असभ्य एवं कठोर तथा रूखी वाणी का प्रयोग कर रहा था। भिक्षुओं! उस समय मातलि सारथि देवराज शक्र को ये गाथाएँ बोला-

'हे शक्र! आप आपको इस असुरेन्द्र से भय लग रहा है कि आप इसकी ऐसी असभ्य कठोर एवं रुक्ष

''नाहं भया न दुब्बल्या, खमामि वेपचित्तिनो।
कथञ्हि मादिसो विञ्ञू, बालेन पटिसंयुजे''ति॥
''भिय्यो बाला पभिज्जेय्युं, नो चस्स पटिसेधको।
तस्मा भुसेन दण्डेन, धीरो बालं निसेधये''ति॥
'एतदेव अहं मञ्ञे, बालस्स पटिसेधनं।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मती''ति॥
''एतदेव तितिक्खाय, वज्जं पस्सामि वासव।
यदा नं मञ्ञति बालो, भया म्यायं तितिक्खति।
अज्झारुहति दुम्मेधो, गोव भिय्यो पलायिनं''ति॥
''कामं मञ्ञतु वा मा वा, भया म्यायं तितिक्खति।

(संस्कृतच्छाया) ''नाहं भयात् न दौर्बल्यात्, क्षमे वेपचित्तिम्।
कथं हि मादृशः विज्ञः, बालेन प्रतिसंयुज्येत्'इति॥
''भूयो बालाः प्रभिद्येयुः, न चास्य प्रतिषेधकः।
तस्मात् भूयसा दण्डेन, धीरो बालं निषेधयेत्'इति॥
''एतदेव अहं मन्ये, बालस्य प्रतिषेधनम्।
परं संकुपितं ज्ञात्वा, यः स्मृतिमान् उपशाम्यति'इति॥
''एतदेव तितिक्षायाः, वयं पश्यामि वासव।
यदा तं मन्यते बालः, भयात् मामयं तितिक्षति।
अध्यारोहति दुर्मेधः, गौः इव भूयः पलायिनम्'इति॥
''कामं मन्यतां वा मा वा, भयात् मामयं तितिक्षति।

(हिन्दी) वाणी सुन रहे हैं? क्या आप स्वयं को इससे दुर्बल समझ रहे हैं?

'मैं इस असुरेन्द्र वेपचित्ति के ये अपशब्द किसी भय या अपनी किसी दुर्बलता के कारण नहीं सह रहा हूँ, ऐसा नहीं है। मैं तो यह समझ रहा हूँ कि मेरे जैसा विज्ञ इस मूर्ख को क्या मुँह लगावे!''

'मूर्ख और भी आगे बढ़ जाते हैं, यदि उन्हें आरम्भ में ही दबा देने वाला कोई न मिले। अतः धैर्यवान् पुरुष को ऐसे मूर्खों के प्रति कठोर दण्ड की व्यवस्था करनी चाहिये कि ये आगे न बढ़ने पावें॥

'मूर्ख को दण्ड देने का सबसे सरल उपाय यही समझता हूँ कि उसे क्रोधोन्मत्त देख कर स्वयं स्मृतिमान् रहता हुआ शान्त बना रहे'॥

हे वासव! आप का उस मूर्ख को यों सह लेना मैं अनुचित समझता हूँ। क्योंकि मूर्ख तो आप की इस तितिक्षा के विषय में यही समझेगा कि ये मेरे भय के कारण ही मेरे अपशब्द सहन कर रहे हैं, और वह इस कारण और अधिक आप के शिर चढ़ जायेगा तथा विशेष उद्दण्डता करने लगेगा, जैसे मरकहा बैल सामने भागने वाले पर किया करता है'॥

सदत्थपरमा अत्था, खन्त्या भिय्यो न विज्जति॥
''यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्तिं, निच्चं खमति दुब्बलो॥
''अबलं तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं।
बलस्स धम्मगुत्तस्स, पटिवत्ता न विज्जति॥
''तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
''उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
''उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालोति, ये धम्मस्स अकोविदा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) सदर्थपरमाः अर्थाः, क्षान्त्याः भूयो न विद्यन्ते॥
''यः ह्वै बलवान् सन्, दुर्बलं तितिक्षति।
तामाहुः परमां क्षान्तिं, नित्यं क्षमते दुर्बलः॥
''अबलं तं बलम् आहुः, यस्य बालबलं बलम्।
बलस्य धर्मगुप्तस्य, प्रतिवर्न्ता न विद्यते॥
''तस्यैव तेन पापी स्यात्, यः कुद्धं प्रतिक्रुध्यति।
क्रुद्धं अप्रतिक्रुध्यन्, संग्रामं जयति दुर्जयम्॥
''उभयोः अर्थं चरति, आत्मनश्च परस्य च।
परं संकुपितं ज्ञात्वा, यः स्मृतिमान् उपशाम्यति''इति
''उभयोः तितिक्षमानान्, आत्मनश्च परस्य च।
जनाः मान्यन्ते बालः इति, ये धर्मस्य अकोविदा''इति॥

(हिन्दी) 'वह भले ही यह समझता रहे कि मेरे भय के कारण ये मेरी उद्दण्डता सहन कर रहे हैं, परन्तु परमार्थ सत्य इसके विपरीत है। वह यह है- क्षमा से बढ़कर दूसरा कोई अच्छा गुण नहीं है॥

'जो स्वयं बली होकर दूसरे दुर्बल पुरुष की बातें सहन कर लेता है उसी को सर्वोच्च शान्ति कहते हैं; दुर्बल तो निरन्तर ही बलवान् की बातें सहन करते रहते हैं॥ 'वह बली तो वस्तुतः निर्बल ही है; क्योंकि उसके पास मूर्खों का बल है; वस्तुतः धर्मरक्षित सन्त के बल का कोई प्रतिद्वन्द्वी है ही नहीं॥

'जो क्रुद्ध के प्रति क्रोध करता है वह उसका अपराध ही है। हाँ, क्रोधी के प्रति भी क्रोध न करने वाला वस्तुतः संग्रामविजयी कहलाता है॥

'वह शान्तात्मा तो दोनों का ही हित करता है- अपना भी, दूसरे का भी कि जो दूसरे को क्रोध करता देखकर भी स्वयं शान्त ही रहता है॥

''सो हि नाम, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सकं पुञ्ञफलं उपजीवमानो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेन्तो खन्तिसोरच्चस्स वण्णवादी भविस्सति। इध खो तं, भिक्खवे, सोभेथ यं तुम्हे एवं स्वाक्खाते धम्मविनये पब्बजिता समाना खमा च भवेय्याथ सोरता चा''ति।

11.1.5. सुभासितजयसुत्तं

सावत्थिनिदानं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच– 'होतु, देवानमिन्द, सुभासितेन जयो'ति। 'होतु, वेपचित्ति, सुभासितेन जयो'ति। अथ खो, भिक्खवे, देवा च असुरा च पारिसज्जे ठपेसुं– 'इमे नो सुभासितदुब्भासितं आजानिस्सन्ती'ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्तिं असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच– 'भण, देवानमिन्द, गाथं'ति।

(संस्कृतच्छाया) सः हि नाम, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः स्वकीयं पुण्यफलम् उपजीवमानः देवानां त्रायस्त्रिंशानां ऐश्वर्याधिपत्यं राज्यं कुर्वन् क्षान्तिसौरत्यस्य वर्णवादी भविष्यति। इह खलु तत्, भिक्षवः! शोभेत, यत् युष्माकमेवं स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजिताः समानाः क्षमाः च भवेयुः सौरताः च''इति।

5. श्रावस्तीनिदानम्। भूतपूर्वम्, भिक्षवः! देवासुरसंग्रामः समुपब्यूढः अभूत्। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्दः शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचत्— भवतु, देवानामिन्द्र! सुभाषितेन जयः' इति। भवतु, वेपचित्ते!, सुभाषितेन जयः''इति। अथ खलु, भिक्षवः! देवाः च असुराः च पारिषदि स्थापयामासुः— इमे नः सुभाषितदुर्भाषितम् आज्ञापयिष्यन्ति इति। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचत्— 'भण, देवानामिन्द्र! गाथाम्''इति।

(हिन्दी) 'अपना तथा दूसरे दोनों का हित करने वाले ऐसे हितकारी मनुष्य को भले ही साधारण लोग 'मूर्ख' समझते रहें; क्योंकि वे धर्म के मर्मज्ञ नहीं हैं'॥

भिक्षुओं! वे देवराज शक्र अपने पुण्य के प्रताप से त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्य प्राप्त कर शासन करते हुए क्षान्ति एवं विनम्रता के प्रशंसक हैं। भिक्षुओं! यहाँ इस साधनाक्षेत्र में तुम लोगों को भी यही कर्म शोभा देता है कि तुम इस स्वाख्यात धर्म में प्रव्रजित होकर दूसरों के प्रति क्षमाशील बनो तथा उनके प्रति सुखमयता का व्यवहार करो''॥

5. श्रावस्ती में। ''भिक्षुओं! पूर्वकाल में एक बार देवताओं एवं असुरों में संग्राम हो रहा था। भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र को कहा- 'देवेन्द्र शक्र! शुभ वचन बोलने वाले की ही जय हो।' देवेन्द्र शक्र ने भी स्वीकृति देते हुए कहा-'हाँ, वेपचित्ति! शुभ बोलने वाले की ही जय हो।'

''भिक्षुओं! तब उन देवों तथा असुरों ने उनके सुभाषित का निर्णय करने के लिये मध्यस्थ (निर्णायक) का चुनाव किया।

''भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र से कहा-' देवेन्द्र शक्र! आप पहले कोई सुभाषित करें'।

एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्ति असुरिन्दं एतदवोच– 'तुम्हे ख्वेत्थ, वेपचित्ति, पुब्बदेवा। भण, वेपचित्ति, गाथं'ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो इमं गाथं अभासि–

''भिय्यो बाला पभिज्जेय्युं, नो चस्स पटिसेधको।
तस्मा भुसेन दण्डेन, धीरो बालं निसेधये''ति॥

''भासिताय खो पन, भिक्खवे, वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथाय असुरा अनुमोदिंसु, देवा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच– 'भण, देवानमिन्द, गाथं'ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो इमं गाथं अभासि–

''एतदेव अहं मञ्ञे, बालस्स पटिसेधनं।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) एवमुक्ते, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः वेचपित्तिम् असुरेन्द्रम् एतदवोचत्— त्वं खलु अत्र, वेपचित्ते! पूर्वदेवाः। भण, वेपचित्ते!, गाथाम् इति। एवमुक्ते, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''भूयो बालाः पभिद्येयुः, नः चास्य प्रतिषेधकः।
तस्मात् भूयसा दण्डेन, धीरो बालं निषेधयेत्''इति॥

''भाषितया खलु पुनः, भिक्षवः! विपचित्तिना असुरेन्द्रेण गाथया असुराः अनुमोदिषत, देवाः तूष्णीम् अभूवन्। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचत्— भण, देवानामिन्द्र! गाथाम्' इति। एवमुक्ते, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''एतदेव अहं मन्ये, बालस्य प्रतिषेधनम्।
परं संकुपितं ज्ञात्वा, यः स्मृतिमान् उपशाम्यति''इति॥

(हिन्दी) ''परन्तु देवेन्द्र शक्र इसके उत्तर में बोले- 'नहीं हे वेपचित्ति! तुम ही हमसे पूर्व देव हो, अतः आप ही पहले सुभाषित सुनावें।' भिक्षुओं! ऐसा कहने पर असुरेन्द्र वेपचित्ति यह गाथा बोले-

''मूर्खजन और भी अधिक शिर पर चढ़ जाते हैं, यदि उनका दमन करने वाला कोई न हो। अतः बुद्धिमान् द्वारा अपराध के अनुसार पूर्णतः दण्डित करना चाहिये, वहीं रोक देना चाहिये।''

''भिक्षुओं! असुरेन्द्र वेपचित्ति द्वारा यह गाथा कही जाने पर असुरों ने उसका अनुमोदन किया, परन्तु देवतागण चुप रहे। भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र से कहा- 'अब आप कुछ सुभाषित सुनाइये। भिक्षुओं! ऐसा कहने पर देवेन्द्र ने उस सभा में यह गाथा कही-

'मैं तो उस मूर्ख को पीछे हटाने का एक ही उपाय उचित मानता हूँ कि उसे क्रोध करते देखकर भी बुद्धिमान् पुरुष सावधानीपूर्वक शान्त ही रहे, उसके क्रोध का कोई उत्तर न दे॥'

''भासिताय खो पन, भिक्खवे, सक्केन देवानमिन्देन गाथाय, देवा अनुमोदिंसु, असुरा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्तिं असुरिन्दं एतदवोच– 'भण, वेपचित्ति, गाथं'ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो इमं गाथं अभासि–

''एतदेव तितिक्खाय, वज्जं पस्सामि वासव।
यदा नं मञ्ञति बालो, भया म्यायं तितिक्खति।
अज्झारुहति दुम्मेधो, गोव भिय्यो पलायिनं''ति॥

''भासिताय खो पन, भिक्खवे, वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथाय असुरा अनुमोदिंसु, देवा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच– 'भण, देवानमिन्द, गाथं'ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो इमा गाथायो अभासि–

''कामं मञ्ञतु वा मा वा, भया म्यायं तितिक्खति।
सदत्थपरमा अत्था, खन्त्या भिय्यो न विज्जति॥

(संस्कृतच्छाया) भाषितया खलु पुनः, भिक्षवः! शक्रेण देवानामिन्द्रेण गाथया, देवाः अनुमोदिषत, असुराः तुष्णीम् अभूवन्। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः वेपचित्तिम् असुरेन्द्रम् एतदवोचत्- भण, वेपचित्ते!, गाथाम्' इति। एवमुक्ते, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''एतदेव तितिक्षायाः, वद्यं पश्यामि वासव।
यदा तं मन्यते बालो, भयात् मामयं तितिक्षति।
अध्यारोहति दुर्मेधः गौः इव भूयः पलायिनम्'इति॥

''भाषितया खलु पुनः, भिक्षवः! वेपचित्तिना असुरेन्द्रेण गाथया असुराः अनुमोदिषत, देवाः तूष्णीम् अभूवन्। अथ खलु भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः, शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचत्- भण, देवानामिन्द्र! गाथाम्' इति। एवमुक्ते, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः इमां गाथाम् अभाषिष्ट-

''कामं मन्यतां वा मा वा, भयात् मामयं तितिक्षति।
सदर्थपरमाः अर्थाः, क्षान्त्याः भूयो न विद्यन्ते॥

(हिन्दी) ''भिक्षुओं! देवेन्द्र शक्र द्वारा यह गाथा कही जाने पर देवताओं ने उनका अनुमोदन किया, परन्तु असुरगण शान्त रहो। ''भिक्षुओं! तब देवेन्द्र शक्र ने असुरेन्द्र से कहा- 'अब आप अन्य कोई सुभाषित सुनाइये।' भिक्षुओं! ऐसा कहने पर असुरेन्द्र वेपचित्ति ने यह गाथा सुनायी-

'हे वासव! आपकी इस तितिक्षा वाली बात से मैं सहमत नहीं हूँ; क्योंकि वह मूर्ख इस तितिक्षा की बात को विपरीत अर्थ में लेता हुआ उस क्षमाशील को पहले की अपेक्षा अधिक दबाने का प्रयास करेगा, जैसे मरकहा बैल पीछे हटने वाले पुरुष का पहले की अपेक्षा अधिक पीछा करने लगता है'॥

''भिक्षुओं! असुरेन्द्र वेपचित्ति के ऐसा कहने पर यह गाथा कही जाने पर असुरों ने उसका अनुमोदन किया, परन्तु देवतागण चुप रहे। ''भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवेन्द्र शक्र से कहा- 'अब आप कुछ सुभाषित सुनाइये।' भिक्षुओं! ऐसा कहने पर देवेन्द्र ने उस सभा में यह गाथा कही-

''यो हवे बलवा सन्तो, दुब्बलस्स तितिक्खति।
तमाहु परमं खन्तिं, निच्चं खमति दुब्बलो॥
''अबलं तं बलं आहु, यस्स बालबलं बलं।
बलस्स धम्मगुत्तस्स, पटिवत्ता न विज्जति॥
''तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥
''उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥
''उभिन्नं तिकिच्छन्तानं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालोति, ये धम्मस्स अकोविदा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''यः ह्वै बलवान् सन्, दुर्बलं तितिक्षति।
तामाहुः परमां क्षान्तिम्, नित्यं क्षमते दुर्बलः॥
''अबलं तं बलम् आहुः, यस्य बालबलं बलम्।
बलस्य धर्मगुप्तस्य, प्रतिवर्त्ता न विद्यते॥
''तस्यैव तेन पापी स्यात्, यः कुद्धं प्रतिक्रुध्यति।
क्रुद्धं अप्रतिक्रुध्यन्, संग्रामं जयति दुर्जयम्॥
''उभयोः अर्थं चरति, आत्मनश्च परस्य च।
परं संकुपितं ज्ञात्वा, यः स्मृतिमान् उपशाम्यति''इति॥
''उभयोः तितिक्षमानान्, आत्मनश्च परस्य च।
जनाः मन्यन्ते बालः इति, ये धर्मस्य अकोविदाः''इति॥

(हिन्दी) 'वह मूर्ख भले ही यह समझता रहे कि यह मेरे भय के कारण ही मेरी उद्दण्डता सहन कर रहे हैं; परन्तु परमार्थ सत्य इसके विपरीत है। वह यह है- क्षमा से बढ़कर कोई अन्य गुण नहीं है'॥

वह भले ही यह समझता रहे कि मेरे भय के कारण ये मेरी उद्दण्डता सहन कर रहे हैं, परन्तु परमार्थ सत्य इसके विपरीत है। वह यह है- क्षमा से बढ़कर दूसरा कोई अच्छा गुण नहीं है॥

'जो स्वयं बली होकर दूसरे दुर्बल पुरुष की बातें सहन कर लेता है उसी को सर्वोच्च शान्ति कहते हैं; दुर्बल तो निरन्तर ही बलवान् की बातें सहन करते रहते हैं॥

'वह बली तो वस्तुतः निर्बल ही है; क्योंकि उसके पास मूर्खों का बल है; वस्तुतः धर्मरक्षित सन्त के बल का कोई प्रतिद्वन्द्वी है ही नहीं॥ 'जो क्रुद्ध के प्रति क्रोध करता है वह उसका अपराध ही है। हाँ, क्रोधी के प्रति भी क्रोध न करने वाला वस्तुतः संग्रामविजयी कहलाता है॥

'वह शान्तात्मा तो दोनों का ही हित करता है- अपना भी, दूसरे का भी कि जो दूसरे को क्रोध करता देख कर भी स्वयं शान्त ही रहता है॥

''भासितासु खो पन, भिक्खवे, सक्केन देवानमिन्देन गाथासु, देवा अनुमोदिंसु, असुरा तुण्ही अहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, देवानञ्च असुरानञ्च पारिसज्जा एतदवोचुं– 'भासिता खो वेपचित्तिना असुरिन्देन गाथायो। ता च खो सदण्डावचरा ससत्थावचरा, इति भण्डनं इति विग्गहो इति कलहो। भासिता खो सक्केन देवानमिन्देन गाथायो। ता च खो अदण्डावचरा असत्थावचरा, इति अभण्डनं इति अविग्गहो इति अकलहो। सक्कस्स देवानमिन्दस्स सुभासितेन जयो'ति। इति खो, भिक्खवे सक्कस्स देवानमिन्दस्स सुभासितेन जयो अहोसी''ति।

11.1.6. कुलावकसुत्तं

सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। तस्मिं खो पन, भिक्खवे, सङ्गामे असुरा जिनिंसु, देवा पराजिनिंसु। पराजिता च खो, भिक्खवे, देवा अपायंस्वेव उत्तरेनमुखा, अभियंस्वेव ने असुरा। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो

4.(संस्कृतच्छाया) ''भाषितासु खलु पुनः, भिक्षवः! शक्रेण देवानामिन्द्रेण गाथासु, देवाः अन्वमोदिषत, असुराः तूष्णीम् अभूवन्। अथ खलु, भिक्षवः! देवानाञ्च असुराणाञ्च पारिषद्याः एतदवोचन्– 'भाषिताः खलु वेपचित्तिना असुरेन्द्रेण गाथाः। ताः च खलु सदण्डावचराः सशस्त्रावचराः, इति भण्डनम् इति विग्रहः इति कलहः। भाषिताः खलु शक्रेण देवानामिन्द्रेण गाथाः। ताः च खलु अदण्डावचरा अशस्त्रावचरा, इति अभण्डनम् इति अविग्रहः इति अकलहः। शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य सुभाषितेन जयः' इति। इति खलु, भिक्षवः! शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य सुभाषितेन जयः अभूत्' इति।

6. श्रावस्त्याम्। भूतपूर्वम्, भिक्षवः! देवासुरसंग्रामः समुपब्यूढः अभूत्। तस्मिन् खलु पुनः, भिक्षवः! संग्रामे असुराः जयेयुः देवाः पराजयेयुः। पराजिताः च खलु, भिक्षवः! देवाः अपायासिषुः उत्तरमुखाः, अभ्ययासिषुः ते असुराः। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः

(हिन्दी) 'अपना तथा दूसरे दोनों का हित करने वाले ऐसे हितकारी मनुष्य को भले ही साधारण लोग 'मूर्ख' समझते रहें; क्योंकि वे धर्म के मर्मज्ञ नहीं हैं'।

''भिक्षुओं! देवेन्द्र शक्र द्वारा ये गाथाएँ कही जाने पर देवताओं ने इसका अनुमोदन किया, परन्तु असुरगण उस समय शान्त ही रहे।''तब भिक्षुओं! देवताओं और असुरों के निर्णायकों ने निर्णय दिया- 'असुरेन्द्र वेपचित्ति ने यहाँ जो सुभाषित कहे हैं, उनमें हिंसा का समर्थन ज्ञात होता है या कलह बढ़ाने का अनुमोदन प्रकट होता है। तथा इसके विपरीत, देवेन्द्र शक्र ने जो सुभाषित कहे हैं उनसे अहिंसा एवं सौमनस्य का समर्थन एवं अनुमोदन प्रकट होता है। अतः देवेन्द्र शक्र के सुभाषित की तय हो। ''भिक्षुओं! इस तरह देवेन्द्र शक्र के सुभाषित ही श्रेष्ठ घोषित हुए।''

6. श्रावस्ती में। ''भिक्षुओं! पहले कभी देवताओं एवं असुरों में संग्राम हो रहा था। भिक्षुओं! उस समय, उस संग्राम में असुरों की विजय हो गयी, देवता पराजित हो गये। भिक्षुओं! ये पराजित देवता उत्तर दिशा की ओर भाग चले, असुरों ने उनका पीछा किया। भिक्षुओं! तब देवराज शक्र ने मातलि सारथि से गाथा के द्वारा कहा-

मातलि सङ्गाहकं गाथाय अज्झभासि–

कुलावका मातलि सिम्बलिस्मिं, ईसामुखेन परिवज्जयस्सु।
कामं चजाम असुरेसु पाणं, मायिमे दिजा विकुलावका अहेसुं''ति॥

'''एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं पच्चुदावत्तेसि। अथ खो, भिक्खवे, असुरानं एतदहोसि– 'पच्चुदावत्तो खो दानि सक्कस्स देवानमिन्दस्स सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो। दुतियं पि खो देवा असुरेहि सङ्गामेस्सन्तीति भीता असुरपुरमेव पाविसिंसु। इति खो, भिक्खवे, सक्कस्स देवानमिन्दस्स धम्मेन जयो अहोसी'''ति।

11.1.7. नदुब्भियसुत्तं

सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्कस्स देवानमिन्दस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि– 'योपि मे अस्स सुपच्चत्थिको तस्सपाहं न दुब्भेय्यं'ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कस्स देवानमिन्दस्स चेतसा

4.(संस्कृतच्छाया) मातलिं संवाहकं गाथया अध्यभाषिष्ट–

कुलायकान् मातले शाल्मलौ, ईषामुखेन परिवर्जयस्व।
कामं त्यजामः असुरेषु प्राणान्, मा इमे द्विजाः विकुलायका अभूवन्"इति॥

"एवं भद्रं ते" इति खलु, भिक्षवः! मातलिः संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य सहस्रयुक्तम् आजन्यरथं प्रत्युदावृत्तः। अथ खलु, भिक्षवः! असुराणाम् एतदभूत्– प्रत्युदावृत्तः खलु इदानीं शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य सहस्रयुक्तः आजन्यरथः। द्वितीयमपि खलु देवाः असुरैः, संग्रामं करिष्यन्ति इति ते भीताः असुरपुरे एव प्रविविशुः। इति खलु, भिक्षवः, शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य धर्मेण जयः अभूत्'इति।

7. श्रावस्त्याम्। भूतपूर्वम्, भिक्षवः! शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य रहोगतस्य प्रतिसल्लीनस्य एवं चेतसः परिवितर्कः उदपद्यत– 'योऽपि मे स्यात् सुप्रत्यर्थिकः तस्मै अपि अहं न द्रभ्नुयाम्' इति। अथ खलु भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य चेतसा

(हिन्दी) 'हे मातलि! सेमल के वृक्षों में लगे ये पक्षियों के घोंसले रथों के धुरों से टकरा कर टूट न जाय, इस लिये पीछे लौट चलो, भले ही इसके कारण असुरों ने हमें अपने प्राण ही क्यों न खोने पड़े।''

अच्छा, श्रीमन्!' कह कर, भिक्षुओं! मालति ने हजार घोड़े जुते हुए रथ को पुनः पीछे लौटा दिया। भिक्षुओं! असुरों को यह विचार हुआ- 'अवश्य यह देवराज शक्र कुछ विशेष सहायता प्राप्त कर पुनः हम पर आक्रमण करने आ रहे हैं।' अतः वे भयभीत होकर असुरपुर में जा कर छिप गये। इस तरह, भिक्षुओं! देवराज शक्र की धर्मपूर्वक आचरण से विजय हो गयी।

7. श्रावस्ती में। पहले कभी, भिक्षुओं! देवराज शक्र को एकान्त में बैठे हुए यह विचार हुआ- 'भले ही मेरे

चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय येन सक्को देवानमिन्दो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेपचित्तिं असुरिन्दं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वान वेपचित्तिं असुरिन्दं एतदवोच– 'तिट्ठ, वेपचित्ति, गहितोसी''ति।

'यदेव ते, मारिस, पुब्बे चित्तं, तदेव त्वं मा पजहासी''ति।

''सपस्सु च मे, वेपचित्ति, अदुब्भाया''ति।

''यं मुसा भणतो पापं, यं पापं अरियूपवादिनो।
मित्तद्दुनो च यं पापं, यं पापं अकतञ्ञुनो।
तमेव पापं फुसतु, यो ते दुब्भे सुजम्पती''ति॥

11.1.8. वेरोचनअसुरिन्दसुत्तं

सावत्थियं जेतवने। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सक्को च देवानमिन्दो वेरोचनो च असुरिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु;

(संस्कृतच्छाया) चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय यत्र शक्रः देवानामिन्द्रः तत्रोपसमक्रमीत्। अपश्यत् खलु, भिक्षवः! शक्रो देवामिन्द्रः वेपचित्तिम् असुरेन्द्रं दूरत एव आगच्छन्तम्। दृष्ट्वा वेपचित्तिम् असुरेन्दम् एतदवोचत्— तिष्ठ, वेपचित्ते! गृहीतोऽसि"इति।

''यदेव ते, मार्ष! पूर्वं चित्तम्, तदेव त्वं मा प्रजहासि"इति।

''शपस्व च मे, वेपचित्ते, अदम्भाय''इति।

''यत् मृषा भणतः पापम्, यत् पापम् आर्योपवादिनः।
दम्भस्य च यत् पापम्, यत् पापम् अकृतज्ञस्य।
तमेव पापं स्पृशतु, यः ते दृभ्नुयात् सुजाम्पते"इति॥

8. श्रावस्त्यां जेतवने। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् दिवाविहारगतो भवति प्रतिसल्लीनः। अथ खलु शक्रः च देवानामिन्द्रो वैरोचनश्च असुरेन्द्रः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः;

(हिन्दी) साथ कोई मेरा बड़े से बड़ा मित्र कितना ही बड़ा धोखा क्यों न करे, मैं उसके साथ धोखा नहीं करूँगा।' तब भिक्षुओं! असुरेन्द्र विपचित्ति, देवराज के ये मानसिक विचार अपने मन से जान कर, देवराज के पास पहुँचा। भिक्षुओं! देवेन्द्र शक्र ने असुरराज वेपचित्ति को आते हुए दूर से ही देख लिया। तब देवराज ने असुरराज वेपचित्ति से कहा-'ठहरो! वेपचित्ति! तुम निगृहीत (गिरफ्तार) हो गये हो। देवराज! तुम अपने मन में पहले विचारी हुई बात पर दृढ रहो। तो, तुम आगे कभी धोखा न करने की शपथ लो।'

''हे सुजापति! देवराज! जो पाप असत्यभाषण में लगता है, जो पाप सज्जनों की निन्दा करने में लगता है, जो पाप मित्रद्रोह में लगता है वही पाप उसे भी लगे जो तुम्हें धोखा दे।''

8. श्रावस्ती में। उस समय भगवान् दिन की साधना में विराजमान थे। उसी समय असुरेन्द्र वैरोचन तथा देवराज शक्र भगवान् के पास आये। आकर द्वार के स्तम्भ के पास खड़े हो गये। और उनमें वैरोचन ने

उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो वेरोचनो असुरिन्दो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''वायमेथेव पुरिसो, याव अत्थस्स निप्फदा।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, वेरोचनवचो इदं''ति॥
''वायमेथेव पुरिसो, याव अत्थस्स निप्फदा।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, खन्त्या भिय्यो न विज्जती''ति॥
''सब्बे सत्ता अत्थजाता, तत्थ तत्थ यथारहं।
संयोगपरमा त्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिनं।
निप्फन्नसोभनो अत्थो, वेरोचनवचो इदं''ति॥
''सब्बे सत्ता अत्थजाता, तत्थ तत्थ यथारहं।
संयोगपरमा त्वेव, सम्भोगा सब्बपाणिनं।

(संस्कृतच्छाया) उपसङ्क्रम्य प्रत्येकं द्वारवाहं निःश्राय अस्थुः। अथ खलु वैरोचनः असुरेन्द्रः भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

"व्यायमेदेव पुरुषः, यावत् अर्थस्य निष्पत्तिः।
निष्पन्नशोभनः अर्थः, वैरोचनवच इदम्"इति॥
"व्यायमेदेव पुरुषः, यावत् अर्थस्य निष्पत्तिः।
निष्पन्नशोभनोऽर्थः, क्षान्त्याः भूयो न विद्यते"इति॥
"सर्वे सत्त्वाः अर्थजाताः, तत्र-तत्र यथार्हम्।
संयोगपरमाः त्वेव, सम्भोगाः सर्वप्राणिनाम्।
निष्पन्नशोभनः अर्थः, वैरोचनवच इदम्''इति॥
"सर्वे सत्त्वाः अर्थजाताः, तत्र तत्र यथार्हम्।
संयोगपरमाः त्वेव, सम्भोगाः सर्वप्राणिनाम्।

(हिन्दी) पहले भगवान् से यह गाथा कही- ''मनुष्य को तब तक श्रम करते रहना चाहिये जब तक कि उसका वह प्रयोजन सिद्ध न हो जाय। कोई भी प्रयोजन तभी अच्छा लगता है जब वह सिद्ध हो जाय- यह मुझ विरोचन का मानना है।''

''पुरुष को तब तक श्रम करते रहना चाहिये जब तक उसका लक्ष्य सिद्ध न हो जाय। सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है, क्षमा से बढ़कर कोई अन्य वस्तु नहीं है।''

''सभी प्राणी जहाँ तहाँ अपने अपने लक्ष्य में बंधे हुए हैं। अत्यावश्यक भोग तो सभी प्राणियों को भोगने पड़ते हैं। सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है, मेरा तो यही मत है।''

''सभी प्राणी जहाँ तहाँ अपने अपने लक्ष्य से बँधे हुए हैं। अत्यावश्यक भोग तो सभी प्राणियों को भोगने पड़ते ही हैं। सफल होने से ही उद्देश्य का महत्त्व है। शान्ति से बढ़कर दूसरा कोई महान् गुण नहीं है।

निप्फन्नसोभनो अत्थो, खन्त्या भिय्यो न विज्जती''ति॥

11.1.9. अरञ्ञायतनइसिसुत्तं

सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सम्बहुला इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा अरञ्ञायतने पण्णकुटीसु सम्मन्ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को च देवानमिन्दो वेपचित्ति च असुरिन्दो येन ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा तेनुपसङ्कमिंसु। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो पटलियो उपाहना आरोहित्वा खग्गं ओलग्गेत्वा छत्तेन धारियमानेन अग्गद्वारेन अस्समं पविसित्वा ते इसयो सीलवन्ते कल्याणधम्मे अपब्यामतो करित्वा अतिक्कमि। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो पटलियो उपाहना ओरोहित्वा खग्गं अञ्ञेसं दत्वा छत्तं अपनामेत्वा द्वारेनेव अस्समं पविसित्वा ते इसयो सीलवन्ते कल्याणधम्मे अनुवातं पञ्जलिको नमस्समानो अट्ठासि''। अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासिंसु–

''गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं, काया चुतो गच्छति मालुतेन।

(संस्कृतच्छाया) निष्पन्नशोभनोऽर्थः, क्षान्त्याः भूयो न विद्यते''इति॥

9 श्रावस्त्याम्। भूतपूर्वम्, भिक्षवः! सम्बहुला ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः अरण्यायतने पर्णकुटीषु शाम्यन्ति। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रश्च देवानामिन्द्रः वेपचित्तिश्च असुरेन्द्रः यत्र ते ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः तत्रोपसमक्रमिषुः। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्तिः असुरेन्द्रः पटलिकाः उपानहौ आरुह्य खड्गम् अवलग्य छत्रेन धार्यमानेन अग्रद्वारेण आश्रमं प्रविश्य तान् ऋषीन् शीलवतः कल्याणधर्मेण अपव्यामतः कृत्वा अत्यक्रमीत्। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः पटलिकाः उपानहौ अवरुह्य खड्गम् अन्येभ्यः दत्वा छत्रम् अपनाम्य द्वारेणैव आश्रमं प्रविश्य ते ऋषयः शीलवतः कल्याणधर्मेण अनुवातं प्राञ्जलिको नमस्यमानः अस्थात्''। अथ खलु, भिक्षवः! ते ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथया अध्यभाषिषत—

"गन्धः ऋषीणां चिरदीक्षितानाम्, कायच्युतो गच्छति मारुतेन।

9.(हिन्दी) श्रावस्ती में। ''भिक्षुओं! पूर्वकाल में कुछ शीलवान् एवं धर्माचरण सम्पन्न ऋषि अरण्य में पर्णकुटी बनाकर साधना कर रहे थे। ''भिक्षुओं! तब कभी देवराज शक्र एवं असुरेन्द्र वेपचित्ति तहा वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि थे वहाँ गये। भिक्षुओं! तब, असुरेन्द्र वेपचित्ति तो पैरों में लम्बे जूते पहने, पार्श्व में तलवार लटकाये, छत्र के नीचे चलते हुए उस आश्रम के अग्रद्वार में प्रविष्ट होकर उन शीलवान् एवं धार्मिक ऋषियों का अनादर एवं उपेक्षा करता हुआ उनके पास से आगे बढ़ गया। ''परन्तु, भिक्षुओं! देवेन्द्र शक्र जूते उतार कर अपनी तलवार अपने अनुचर को देकर, अपने ऊपर से छत्र हटवाकर, द्वार से आश्रम में प्रविष्ट होकर उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों को प्रणाम कर उनका सम्मान करते हुए वायु का रुख देखकर उन के सम्मुख बैठ गया। भिक्षुओं! तब, उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों ने देवेन्द्र शक्र को गाथा में कहा-

''चिरकाल से व्रत पालन करने वाले ऋषियों की गन्ध उनके शरीर से निकल कर वायु के साथ बहती

इतो पटिक्कम्म सहस्सनेत्त, गन्धो इसीनं असुचि देवराजा''ति॥
'गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं, काया चुतो गच्छतु मालुतेन,
सुचित्रपुप्फं सिरस्मिंव मालं।
गन्धं एतं पटिकङ्खाम भन्ते, न हेत्थ देवा पटिकूलसञ्ञिनो''ति॥

11.1.10. समुद्दकसुतं

सावत्थियं। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सम्बहुला इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा समुद्दतीरे पण्णकुटीसु सम्मन्ति। तेन खो पन समयेन देवासुरसङ्गामो समुपब्यूळ्हो अहोसि। अथ खो, भिक्खवे, तेसं इसीनं सीलवन्तानं कल्याणधम्मानं एतदहोसि– 'धम्मिका खो देवा, अधम्मिका असुरा। सियापि नो असुरतो भयं। यंनून मयं सम्बरं असुरिन्दं उपसङ्कमित्वा अभयदक्खिणं याचेय्यामा'''ति। ''अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य

(संस्कृतच्छाया) इतः प्रत्यक्रमीत् सहस्रनेत्र, गन्धः ऋषीणामसुचि देवराजा"इति॥
"गन्धः ऋषीणां चिरदीक्षितानाम्, कायच्युतः गच्छति मारुतेन,
सुचित्रपुष्पं शिरसीव मालाम्।
गन्धम् एतं प्रतिकाक्षामः भदन्त, न ह्यत्र देवा प्रतिकूलसञ्ज्ञिनः"इति॥

10. श्रावस्त्याम्। भूतपूर्वम्, भिक्षवः! सम्बहुला ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः समुद्रतीरे पर्णकुटीषु शाम्यन्ति। तस्मिन् खलु पुनः समये देवासुरसंग्रामः समुपब्यूढः अभूत्। अथ खलु, भिक्षवः! तेषां ऋषीणां शीलवतां कल्याणधर्माणाम् एतदभूत्— धार्मिकाः खलु देवाः, अधार्मिकाः असुराः। स्यादपि नः असुरतः भयम्। यन्नूनं वयं सम्बरम् असुरेन्द्रम् उपसङ्क्रम्य अभयदक्षिणां याचेम"इति। अथ खलु भिक्षवः! ते ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः— तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम्

(हिन्दी) है। हे सहस्रनाक्ष! यहाँ से हट जा, क्योंकि ऋषियों की गन्ध घ्राण को सुखद नहीं होती।''

''चिरकाल से व्रती इन ऋषियों की गन्ध इनके शरीर से निकल कर वायु के साथ भले ही जाय, शिर पर धारण की हुई सुगन्धित पुष्पमाला के समान इसकी इच्छा हमको भी होती है। देवता इस गन्ध से कभी उदासीन नहीं होते।''

10. श्रावस्ती में। पहले कभी भिक्षुओं! बहुत से शीलवान् एवं धार्मिक ऋषि समुद्रतट पर पर्णकुटी बना कर धर्मसाधना में लगे हुए थे। भिक्षुओं! उसी समय देवताओं एवं असुरों में भी संग्राम आरम्भ हो गया। भिक्षुओं! तब उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों को यह विचार हुआ- ''ये देवता तो धार्मिक हैं, परन्तु असुर अधार्मिक हैं, तो इन असुरों से हमें भय हो सकता है। क्यों न हम, इसलिये, असुरराज शम्बर के पास जा कर

एवमेव– समुद्दतीरे पण्णकुटीसु अन्तरहिता सम्बरस्स असुरिन्दस्स सम्मुखे पातुरहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सम्बरं असुरिन्दं गाथाय अज्झभासिंसु–

''इसयो सम्बरं पत्ता, याचन्ति अभयदक्खिणं।
कामंकरो हि ते दातुं, भयस्स अभयस्स वा''ति॥
''इसीनं अभयं नत्थि, दुट्ठानं सक्कसेविनं।
अभयं याचमानानं, भयमेव ददामि वो''ति॥
''अभयं याचमानानं, भयमेव ददासि नो।
पटिग्गण्हाम ते एतं, अक्खयं होतु ते भयं॥
''यादिसं वपते बीजं, तादिसं हरते फलं।
कल्याणकारी कल्याणं, पापकारी च पापकं।
पवुत्तं तात ते बीजं, फलं पच्चनुभोस्ससी''ति॥

(संस्कृतच्छाया) एवमेव— समुद्रतीरे पर्णकुटीषु अन्तर्हिताः सम्बरस्य असुरेन्द्रस्य सम्मुखे प्रादुरभूवन्। अथ खलु, भिक्षवः! ते ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः सम्बरम् असुरेन्द्रं गाथया अध्यभाषिषत—

"ऋषयः सम्बरं प्राप्ताः, याचन्ति अभयदक्षिणाम्।
कामंकरो हि त्वं दातुम्, भयं हि अभयं हि वा"इति॥
"ऋषीभ्यः अभयं नास्ति, दुष्टेभ्यः शक्रसेविभ्यः।
अभयं याचमानेभ्यः, भयमेव ददामि वः"इति॥
"अभयं याचमानेभ्यः, भयमेव ददासि नो।
प्रतिगृह्णाम ते एतम्, अक्षयं भवतु ते भयम्॥
"यादृशं वपते बीजम्, तादृशं हरते फलम्।
कल्याणकारी कल्याणम्, पापकारी च पापकम्।
प्रवसं तात ते बीजम्, फलं प्रत्यनुभविष्यसि"इति॥

(हिन्दी) अपने लिये अभय वर माँग लें''। तब, भिक्षुओं! वे ऋषिगण जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे- समुद्र के तट पर उन पर्ण-कुटी में अन्तर्धान हो असुरेन्द्र शम्बर के सामने प्रकट हुये। भिक्षुओं! उन ऋषियों ने असुरेन्द्र को गाथा में कहा-

'हम ऋषिजन अभय दक्षिणा माँगने के लिये शम्बर असुरेन्द्र के पास आये हैं। आप जैसा चाहें, हमें भय या अभयदान दें।

तुम, शक्र की सहायता करने के कारण, दुष्ट हो, अतः तुम्हें अभयदान नहीं दिया जा सकता। यद्यपि तुम अभय दान माँग रहे हो, परन्तु तुम्हें भय ही देता हूँ।

अभय माँगने आये हम को तू भय ही दे रहा है, ठीक हैं तुम्हारा दिया हुआ यह दान हम ले लेते हैं। तुम्हारा भय कभी न मिटे।

''अथ खो, भिक्खवे, ते इसयो सीलवन्तो कल्याणधम्मा सम्बरं असुरिन्दं अभिसपित्वा– सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव– सम्बरस्स असुरिन्दस्स सम्मुखे अन्तरहिता समुद्दतीरे पण्णकुटीसु पातुरहेसुं। अथ खो, भिक्खवे, सम्बरो असुरिन्दो तेहि इसीहि सीलवन्तेहि कल्याणधम्मेहि अभिसपितो रत्तिया सुदं तिक्खत्तुं उब्बिज्जी''ति।

पठमो वग्गो।

तस्सुद्दानं–

सुवीरं सुसीमञ्चेव, धजग्गं वेपचित्तिनो।
सुभासितं जयञ्चेव, कुलावकं नदुब्भियं।
वेरोचन असुरिन्दो, इसयो अरञ्ञकञ्चेव।
इसयो च समुद्दकाति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु भिक्षवः, ते ऋषयः शीलवन्तः कल्याणधर्माणः सम्बरम् असुरेन्दम् अभिशप्य– तद्यथापि नाम बलवान् पुरुषः समेजितं वा बाहुं प्रसारयेत्, प्रसारितं वा बाहुं समेजेयम् एवमेव— समुद्रतीरे पर्णकुटीषु अन्तर्हिताः सम्बरस्य असुरेन्द्रस्य सम्मुखे प्रादुरभूवन्। अथ खलु, भिक्षवः! सम्बर असुरेन्द्रः तै ऋषिभिः शीलवद्भिः कल्याणधर्मै अभिशप्तः रात्रौ स्वित् इदं त्रिकृत्वा उद्विग्नः''इति।

प्रथमः वर्गः।

तस्योद्दानम्–

सुवीरं सुसीमञ्चैव, ध्वजाग्रं वेपचित्तिनः।
सुभाषितं जयञ्चैव, कुलायकम् अदुर्भयम्॥
वेरोचन असुरेन्द्रः, ऋषयः आरण्यकञ्चैव।
ऋषयः च समुद्रका इति॥

(हिन्दी) 'क्यों कि जो जैसा बीज बोता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। शुभ करने वाले को शुभ फल मिलता है तथा अशुभ करने वाले को अशुभ। तात! यह बीज बोया है, अतः इसका फल भी तुम ही पाओगे।'

तब, भिक्षुओं! वे बलवान् धार्मिक ऋषि असुरेन्द्र शम्बर को यूँ शाप देकर, एक बलवान् पुरुष की तरह...पुनः समुद्र तट पर अपनी कुटियाओं में जाकर प्रकट हुए। तब से, भिक्षुओं! वह असुरेन्द्र शम्बर उन ऋषियों द्वारा अभिशप्त होने के कारण प्रत्येक रात्रि में तीन बार उद्विग्न होने लगा''॥

प्रथम वर्ग समाप्त॥

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में सुवीरसुत्त, सुसीमसुत्त, ध्वजाग्रसुत्त, सुभाषितसुत्त, जायसुत्त, कुलावकसुत्त, नद्रोहिसुत्त, वैरोचन असुरेन्द्रसुत्त, आरण्यकऋषिसुत्त एवं सामुद्रिकसुत्त हैं।

2. दुतियवग्गो

11.2.1. वतपदसुत्तं

सावत्थियं। ''सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्त वतपदानि? यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसेय्यं मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं, यावजीवं अक्कोधनो अस्सं– सचेपि मे कोधो उप्पज्जेय्य, खिप्पमेव नं पटिविनेय्यं''ति। ''सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा''ति।

''मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं।

1.(संस्कृतच्छाया) श्रावस्त्याम्। ''शक्रस्य, भिक्षवः! देवानामिन्द्रस्य पूर्वे मनुष्यभूतस्य सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्। कतमानि सप्त व्रतपदानि? यावज्जीवनं मातृपितृम्भरः स्याम्, यावज्जीवनं कुले ज्येष्ठापचायी स्याम्, यावज्जीवनं श्लक्ष्णवाचः स्याम्, यावज्जीवनम् अपिशुनवाचः स्याम्, यावज्जीवनं विगतमलमासर्येन चेतसा आगारम् अध्यावसेयं मुक्तत्यागः प्रयतपाणिः व्यवसर्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतः, यावज्जीवनं सत्यवाक् स्याम्, यावज्जीवनम् अक्रोधनः स्याम्– चेदपि मे क्रोधः उत्पद्येत, क्षिप्रमेव तं प्रतिविनयेयम्''इति। ''शक्रस्य, भिक्षवः! देवानामिन्द्रस्य पूर्वे मनुष्यभूतस्य इमानि सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्''इति।

''मातृपितृम्भरं जन्तुम्, कुले ज्येष्ठापचायिनम्।

1.(हिन्दी) श्रावस्ती में। भिक्षुओं! देवराज शक्र जब पहले कभी मनुष्ययोनि में थे तब उन्होंने सात व्रत पूर्णतः पालन किये थे, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र पद पर आरूढ हुआ है। कौन से सात व्रत? जीवनपर्यन्त माता पिता का पालन पोषण तथा उनकी सेवा करूँगा। जीवनपर्यन्त परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान व पूजा करूँगा। जीवनपर्यन्त दूसरों से बातचीत में मृदुवाणी का व्यवहार करूँगा। जीवनपर्यन्त ऐसी वाणी नहीं बोलूँगा जिससे दूसरों में कलह हो जाय। जीवनपर्यन्त निर्विकार चित्त से गृहस्थ का पालन करूँगा, न कंजूसी करूँगा, न दान करने से हिचकूँगा, दूसरों को कुछ भी माँगने पर वह उन्हें दे दूँगा, परिवार में प्रत्येक वस्तु का विभाजन करके ही उपभोग करूँगा, अकेले नहीं। जीवनपर्यन्त सत्य भाषण ही करूँगा। जीवनपर्यन्त क्रोधरहित व्यवहार करूँगा, यदि कभी क्रोध करूँगा तो उसे तत्काल शान्त करने का प्रयास करूँगा। ''भिक्षुओं! देवराज शक्र ने पहले अपने मनुष्य जन्म में इन सात व्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन किया था, जिनके पुण्य प्रभाव से शक्र त्रायस्त्रिंश लोक में जाकर देवराजपद प्राप्त कर सका।

''जो माता पिता का पालन पोषण करता है, परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान करता है, जो मृदुवाणी एवं

सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
''मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभुं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती''ति॥

11.2.2. सक्कनामसुत्तं

सावत्थियं जेतवने। तत्र खो भगवा भिक्खू एतदवोच– ''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मघो नाम माणवो अहोसि, तस्मा मघवाति वुच्चति।

''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो पुरे दानं अदासि, तस्मा पुरिन्ददोति वुच्चति।

''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सक्कच्चं दानं अदासि, तस्मा सक्कोति वुच्चति।

''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो आवसथं अदासि, तस्मा वासवोति वुच्चति।

(संस्कृतच्छाया) श्लक्ष्णं सखिलसम्भाषम्, पैशुन्यप्रहायिनम्॥
''मात्सर्यविनये युक्तम्, सत्यं क्रोधाविभुं नरम्।
तं वै देवाः त्रायस्त्रिंशाः, आहुः सत्पुरुषः इती''ति॥

2. श्रावस्त्यां जेतवने। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् एतदवोचत्– ''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः पूर्वस्मिन् मनुष्यभूतः समान मघः नाम माणवः अभूत्, तस्मात् मघवान् इति उच्यते।

''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः पूर्वस्मिन् मनुष्यभूतः समानः पुरः दानमदात्, तस्मात् पुरेदद इति उच्यते।

''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः पूर्वस्मिन् मनुष्यभूतः समानः सत्कृत्यं दानम् अदात्, तस्मात् शक्रः इति उच्यते।

''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः पूर्वस्मिन् मनुष्यभूतः समानः आवसथम् अदात्, तस्मात् वासवः इति उच्यते।

(हिन्दी) सार्थक वाणी ही बोलता है, जो व्यवहार में पिशुनता (दूसरों की निन्दा या चुगली) नहीं करता।

''जो दान आदि में कंजूसी नहीं करता, सत्यभाषण ही करता है, किसी से क्रोध नहीं करता, त्रायस्त्रिंश लोकवासी देवता ऐसे पुरुष को 'सत्पुरुष' कहते हैं।

2. श्रावस्ती के जेतवन में । वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को यह बताया- भिक्षुओं! देवराज शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में मघ नामक माणवक था, अतः वह मघवान् कहलाया।

भिक्षुओं! देवराज शक्र पहले मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर पुर-पुर में दान देता था, अतः उसका नाम पुरिन्दद हुआ। भिक्षुओं! देवराज शक्र पहले मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर सत्कारपूर्वक दान करता था अतः

''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो सहस्सं पि अत्थानं मुहुत्तेन चिन्तेति, तस्मा सहस्सक्खोति वुच्चति।

''सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स सुजा नाम असुरकञ्ञा पजापति, तस्मा सुजम्पतीति वुच्चति।

''सक्को, भिक्खवे, देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, तस्मा देवानमिन्दोति वुच्चति।

''सक्कस्स, भिक्खवे देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्त वतपदानि? यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसेय्यं

(संस्कृतच्छाया) ''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः सहस्रमपि अर्थानां मुहूर्ते चिन्तयति, तस्मात् सहस्राक्ष इति उच्यते।

''शक्रस्य, भिक्षवः! देवानामिन्द्रस्य सुजा नाम असुरकन्या प्रजापतिः, तस्मात् सुजाम्पति इति उच्यते।

''शक्रः, भिक्षवः! देवानामिन्द्रः देवानां त्रायस्त्रिंशानाम् ऐश्वर्याधिपत्यं राज्यं कारयति, तस्मात् देवानामिन्द्रः इति उच्यते।

''शक्रस्य, भिक्षवः! देवानामिन्द्रस्य पूर्वं मनुष्यभूतस्य सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वं अध्यगात्। कतमानि सप्त व्रतपदानि? यावज्जीवनं मातृपितृम्भरः स्याम्, यावज्जीवनं कुले ज्येष्ठापचायी स्याम्, यावज्जीवनं श्लक्ष्णवाचः स्याम्, यावज्जीवनं अपिशुनवाचः स्याम्, यावज्जीवनं विगतमलमात्सर्येण चेतसा आगारम् अध्यावसेयम्

(हिन्दी) वह शक्र नाम से प्रख्यात हुआ।

भिक्षुओं! देवराज शक्र आवश्यकता वाले पुरुषों को रहने के लिए घर देता था, अतः उसका नाम वासव हुआ। भिक्षुओं! देवराज शक्र सहस्र बातों को भी एक साथ ही सोच विचार लेता था, अतः वह सहस्राक्ष कहलाया। भिक्षुओं! देवराज शक्र इस देवराज इन्द्र की असुरकन्या सुजा नाम की भार्या थी, अतः यह 'सुजापति' कहलाता था। भिक्षुओं! देवराज शक्र वह शक्र त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्याधिपत्य पूर्वक राज्य करता था अतः वह देवेन्द्र कहलाया।

भिक्षुओं! देवराज शक्र जब पहले कभी मनुष्य योनि में थे तब उन्होंने सात व्रत पूर्णतः पालन किये थे, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र पद पर आरूढ हुआ है। कौन से सात व्रत?

जीवनपर्यन्त माता पिता का पालन पोषण तथा उनकी सेवा करूँगा। जीवनपर्यन्त परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान व पूजा करूँगा। जीवनपर्यन्त दूसरों से बातचीत में मृदुवाणी का व्यवहार करूँगा। जीवनपर्यन्त ऐसी वाणी नहीं बोलुँगा जिससे दूसरों में कलह हो जाय। जीवनपर्यन्त निर्विकार चित्त से गृहस्थ का पालन करूँगा,

मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं, यावजीवं अक्कोधनो अस्सं– सचेपि मे कोधो उप्पज्जेय्य, खिप्पमेव नं पटिविनेय्य''न्ति। ''सक्कस्स, भिक्खवे, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा''ति।

''मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं।
सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
''मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभुं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती''ति॥

11.2.3. महालिसुत्तं

एवं मे सुतं– एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं।

(संस्कृतच्छाया) मुक्तत्यागः प्रयतपाणिः व्यवसर्गरतः याचयोगः दानसंविभागरत, यावज्जीवनं सत्यवाक् स्याम्, यावज्जीवनं अक्रोधनः स्याम्– चेदपि मे क्रोधः उत्पद्येत, क्षिप्रमेव तं प्रतिविनयेयम्''इति। ''शक्रस्य, भिक्षवः! देवानामिन्द्रस्य पूर्वे मनुष्यभूतस्य इमानि सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्''इति।

''मातृपितृम्भरं जन्तुम्, कुले ज्येष्ठापचायिनम्।
श्लक्ष्णं सखिलसम्भाषम्, पैशुन्यप्रहायिनम्॥
''मात्सर्यविनये युक्तम्, सत्यं क्रोधाविभुं नरम्।
तं वै देवाः त्रायस्त्रिंशाः, आहुः सत्पुरुषः इति''इति॥

3. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्यां विहरति महावने कूटागारशालायाम्।

(हिन्दी) सम्मान व पूजा करूँगा। जीवनपर्यन्त दूसरों से बातचीत में मृदुवाणी का व्यवहार करूँगा। जीवनपर्यन्त ऐसी वाणी नहीं बोलुँगा जिससे दूसरों में कलह हो जाय। जीवनपर्यन्त निर्विकार चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करूँगा, न कंजूसी करूँगा, न दान करने से हिचकुँगा, दूसरों को कुछ भी मागने पर वह उन्हें दे दूँगा, परिवार में प्रत्येक वस्तु का विभाजन करके ही उपभोग करूँगा, अकेले नहीं। जीवनपर्यन्त सत्य भाषण ही करूँगा। जीवनपर्यन्त क्रोधरहित व्यवहार करूँगा, यदि कभी क्रोध करूँगा तो उसे तत्काल शान्त करने का प्रयास करूँगा। ''भिक्षुओं! देवराज शक्र ने पहले अपने मनुष्य जन्म में इन सात व्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन किया था, जिनके पुण्य प्रभाव से शक्र त्रायस्त्रिंश लोक में जाकर देवराजपद प्राप्त कर सका।

''जो माता पिता का पालन पोषण करता है, परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान करता है, जो मृदुवाणी एवं सार्थक वाणी ही बोलता है, जो दूसरों की निन्दा या चुगली नहीं करता।

''जो दान आदि में कंजूसी नहीं करता, सत्यभाषण ही करता है, किसी से क्रोध नहीं करता, त्रायस्त्रिंश लोकवासी देवता ऐसे पुरुष को 'सत्पुरुष' कहते हैं।

3. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् वैशाली के महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे। तब,

अथ खो महालि लिच्छवी येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो महालि लिच्छवी भगवन्तं एतदवोच– ''दिट्ठो खो, भन्ते, भगवता सक्को देवानमिन्दो''ति?

''दिट्ठो खो मे, महालि, सक्को देवानमिन्दो''ति।

''सो हि नून, भन्ते, सक्कपतिरूपको भविस्सति। दुद्दसो हि, भन्ते, सक्को देवानमिन्दो''ति।

''सक्कञ्च ख्वाहं, महालि, पजानामि सक्ककरणे च धम्मे, येसं धम्मानं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा, तञ्च पजानामि।

''सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मघो नाम माणवो अहोसि, तस्मा मघवाति वुच्चति।''सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो सक्कच्चं दानं अदासि, तस्मा सक्कोति वुच्चति।

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु महालि लिच्छवी यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्, उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसदत्। एकान्ते निषण्णः खलु महालि लिच्छवी भगवन्तम् एतदवोचत्–

''दृष्टः खलु, भदन्त! भगवता शक्रो देवानामिन्द्रः''इति?

''दृष्टः खलु मया, महाले! शक्रः देवानामिन्दः''इति।

''सः हि नूनं, भदन्त! शक्रप्रतिरूपको भविष्यति। दुर्दर्शः हि, भदन्त! शक्रः देवानामिन्दः''इति।

''शक्रञ्च खल्वहं महाले! प्रजानामि शक्रकरणां च धर्मान्, येषां धर्माणां समादत्तत्वात् शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्, तञ्च प्रजानामि।

''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः पूर्वेस्मिन् मनुष्यभूतः समानः मघः नाम माणवः अभूत्, तस्मात् मघवा इति उच्यते।''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः पूर्वेस्मिन् मनुष्यभूतः समानः सत्कृत्यं दानम् अदात्, तस्मात् शक्र इति उच्यते।

(हिन्दी) महालि नामक लिच्छवि भगवान् के सम्मुख पहुँचा। तथा उनका अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे महालि लिच्छवि ने भगवान् से पूछा- ''भन्ते! क्या आप ने भगवान् देवेन्द्र शक्र को देखा है?''

''हाँ, महालि मैंने देवेन्द्र शुक्र को देखा है।''

''भन्ते! वह कोई शक्रवेशधारी अन्य होगा। भन्ते! वास्तविक शक्र का दर्शन तो बहुत दुर्लभ है।''

''महालि! मैं शक्र को जानता हूँ, तथा उसके पालन किये हुए सात धर्मों को भी जानता हूँ जिनके पालन करने से वह इस ऐन्द्र पद तक पहुँचा है।''

महालि! देवराज शक्र अपने पहले मनुष्य-जन्म में मघ नामक माणवक था, अतः वह मघवान् कहलाया। महालि! देवराज शक्र पहले मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर सत्कारपूर्वक दान करता था अतः वह शक्र नाम से प्रख्यात हुआ।

''सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो पुरे दानं अदासि, तस्मा पुरिन्ददोति वुच्चति।

''सक्को, महालि, देवानमिन्दो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो आवसथं अदासि, तस्मा वासवोति वुच्चति।

''सक्को, महालि, देवानमिन्दो सहस्सम्पि अत्थानं मुहुत्तेन चिन्तेति, तस्मा सहस्सक्खोति वुच्चति।

''सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स सुजा नाम असुरकञ्ञा पजापति, तस्मा सुजम्पतीति वुच्चति।''सक्को, महालि, देवानमिन्दो देवानं तावतिंसानं इस्सरियाधिपच्चं रज्जं कारेति, तस्मा देवानमिन्दोति वुच्चति।

''सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा। कतमानि सत्त वतपदानि?

(संस्कृतच्छाया) ''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः पूर्वेस्मिन् मनुष्यभूतः समानः पुरः दानमदात्, तस्मात् पुरेदद इति उच्यते।

''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः पूर्वेस्मिन् मनुष्यभूतः समानः आवसथम् अदात्, तस्मात् वासवः इति उच्यते।

''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः सहस्रमपि अर्थानां मुहूर्ते चिन्तयतिः, तस्मात् सहस्राक्ष इति उच्यते।

''शक्रस्य, महाले! देवानामिन्द्रस्य सुजा नाम असुरकन्या प्रजापतिः, तस्मात् सुजाम्पति इति उच्यते। ''शक्रः, महाले! देवानामिन्द्रः देवानां त्रायस्त्रिंशानाम् ऐश्वर्याधिपत्यं राज्यं कारयति, तस्मात् देवानामिन्द्रः इति उच्यते।

''शक्रस्य, महाले! देवानामिन्द्रस्य पूर्वे मनुष्यभूतस्य सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्। कतमानि सप्त व्रतपदानि?

(हिन्दी) महालि! देवराज शक्र पहले मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर पुर-पुर में दान देता था, अतः उसका नाम पुरिन्दद हुआ। महालि! देवराज शक्र आवश्यकता वाले पुरुषों को रहने के लिए घर देता था, अतः उसका नाम वासव हुआ। महालि! देवराज शक्र सहस्र बातों को भी एक साथ ही सोच विचार लेता था, अतः वह सहस्राक्ष कहलाया। महालि! देवराज शक्र इस देवराज इन्द्र की असुरकन्या सुजा नाम की भार्या थी, अतः यह 'सुजापति' कहलाता था। महालि! देवराज शक्र वह शक्र त्रायस्त्रिंश देवों पर ऐश्वर्याधिपत्य पूर्वक राज्य करता था अतः वह देवेन्द्र कहलाया।

''महालि! देवराज शक्र जब पहले कभी मनुष्य योनि में थे तब उन्होंने सात व्रत पूर्णतः पालन किये थे, जिनके पालन करने के कारण शक्र इस इन्द्र पद पर आरूढ हुआ है। कौन से सात व्रत?

यावजीवं मातापेत्तिभरो अस्सं, यावजीवं कुले जेट्ठापचायी अस्सं, यावजीवं सण्हवाचो अस्सं, यावजीवं अपिसुणवाचो अस्सं, यावजीवं विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसेय्यं मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो, यावजीवं सच्चवाचो अस्सं, यावजीवं अक्कोधनो अस्सं– सचेपि मे कोधो उप्पजेय्य, खिप्पमेव नं पटिविनेय्यं''ति। ''सक्कस्स, महालि, देवानमिन्दस्स पुब्बे मनुस्सभूतस्स इमानि सत्त वतपदानि समत्तानि समादिन्नानि अहेसुं, येसं समादिन्नत्ता सक्को सक्कत्तं अज्झगा''ति।

''मातापेत्तिभरं जन्तुं, कुले जेट्ठापचायिनं।
सण्हं सखिलसम्भासं, पेसुणेय्यप्पहायिनं॥
''मच्छेरविनये युत्तं, सच्चं कोधाभिभुं नरं।
तं वे देवा तावतिंसा, आहु सप्पुरिसो इती''ति॥

(संस्कृतच्छाया) यावज्जीवनं मातृपितृम्भरः स्याम्, यावज्जीवनं कुले ज्येष्ठापचायी स्याम्, यावज्जीवनं श्लक्ष्णवाचः स्याम्, यावज्जीवनं अपिशुनवाचः स्याम्, यावज्जीवनं विगतमलमात्सर्येण चेतसा आगारम् अध्यावसेयं मुक्तत्यागः प्रयतपाणिः व्यवसर्गरतो याचयोगः दानसंविभागरतः, यावज्जीवनं सत्यवाक् स्याम्, यावज्जीवनं अक्रोधनः स्याम्– चेदपि मे क्रोधः उत्पद्येत, क्षिप्रमेव तं प्रतिविनयेयम्''इति। ''शक्रस्य, महाले! देवानामिन्द्रस्य पूर्वे मनुष्यभूतस्य इमानि सप्त व्रतपदानि समाप्तानि समादत्तानि अभूवन्, येषां समादनतया शक्रः शक्रत्वम् अध्यगात्''इति।

''मातृपितृम्भरं जन्तुम्, कुले ज्येष्ठापचायिनम्।
श्लक्ष्णं सखिलसम्भाषम्, पैशुन्यप्रहायिनम्॥
''मात्सर्यविनये युक्तम्, सत्यं क्रोधाविभुं नरम्।
तं वै देवाः त्रायस्त्रिंशाः, आहुः सत्पुरुषः इति''इति॥

(हिन्दी) जीवनपर्यन्त माता पिता का पालन पोषण तथा उनकी सेवा करूँगा। जीवनपर्यन्त परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान व पूजा करूँगा। जीवनपर्यन्त दूसरों से बातचीत में मृदुवाणी का व्यवहार करूँगा। जीवनपर्यन्त ऐसी वाणी नहीं बोलूँगा जिससे दूसरों में कलह हो जाय। जीवनपर्यन्त निर्विकार चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करूँगा, न कंजूसी करूँगा, न दान करने से हिचकूँगा, दूसरों को कुछ भी माँगने पर वह उन्हें दे दूँगा, परिवार में प्रत्येक वस्तु का विभाजन करके ही उपभोग करूँगा, अकेले नहीं। जीवनपर्यन्त सत्य भाषण ही करूँगा। जीवनपर्यन्त क्रोधरहित व्यवहार करूँगा, यदि कभी क्रोध करूँगा तो उसे तत्काल शान्त करने का प्रयास करूँगा। ''महालि! देवराज शक्र ने पहले अपने मनुष्य जन्म में इन सात व्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन किया था, जिनके पुण्य प्रभाव से शक्र त्रायस्त्रिंश में जाकर देवराजपद प्राप्त कर सका।

''जो माता पिता का पालन पोषण करता है, परिवार में बड़े बूढ़ों का सम्मान करता है, जो मृदुवाणी एवं सार्थक वाणी ही बोलता है, जो दूसरों की निन्दा या चुगली नहीं करता।

11.2.4. दलिद्दसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि– ''भिक्खवो''ति। ''भदन्ते''ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच–

''भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरो पुरिसो इमस्मिंयेव राजगहे मनुस्सदलिद्दो अहोसि मनुस्सकपणो मनुस्सवराको। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियि, सीलं समादियि, सुतं समादियि, चागं समादियि, पञ्ञं समादियि। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियित्वा सीलं समादियित्वा सुतं समादियित्वा चागं समादियित्वा पञ्ञं समादियित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जि देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च। तत्र सुदं, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति– 'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो! अयं हि देवपुत्तो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो मनुस्सदलिद्दो अहोसि मनुस्सकपणो

4. (संस्कृतच्छाया) एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयत- ''भिक्षवः!''इति। ''भदन्त''इति ते भिक्षवः भगवतः प्रत्यश्रौषुः। भगवान् एतदवोचत्— ''भूतपूर्वम्, भिक्षवः! अन्यतरः पुरुषः अस्मिनेव राजगृहे मनुष्यदरिद्रः अभूत् मनुष्यकृपणः मनुष्यवराकः। सः तथागतप्रवेदिते धर्मविनये श्रद्धां समादात्, शीलं समादात्, श्रुतं समादात्, त्यागं समादात्, प्रज्ञां समादात्। सः तथागतप्रवेदिते धर्मविनये श्रद्धां समादाय, शीलं समादाय, श्रुतं समादाय, त्यागं समादाय, प्रज्ञां समादाय कायस्य भेदात् परं मरणात् सुगतिं स्वर्गे लोके उदपादि देवानां त्रायस्त्रिंशानां सहव्यताम्। सः अन्येभ्यः देवेभ्यः अतिरोचते वर्णेन चैव यशसा च। तत्र स्विदम्, भिक्षवः! देवाः त्रायस्त्रिंशाः उज्झयन्ति क्षिप्यन्ति विपाचयन्ति– 'आश्चर्यं वत भो, अद्भुतं वत भो! अयं हि देवपुत्रः पूर्वे मनुष्यभूतः समानः मनुष्यदरिद्रः अभूत् मनुष्यकृपणः

(हिन्दी) ''जो दान आदि में कंजूसी नहीं करता, सत्यभाषण ही करता है, किसी से क्रोध नहीं करता, त्रायस्त्रिंश लोकवासी देवता ऐसे पुरुष को 'सत्पुरुष' कहते हैं।

4. एक समय भगवान् राजगृह में वेणुवन के कलन्दकनिवाप में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर यह कहा- भिक्षुओं!। हाँ ''भदन्त'' उन भिक्षुओं ने प्रति उत्तर में कहा। तब भगवान् ने कहा-

''भिक्षुओं! पहले कभी इसी राजगृह में हीनतम दुःखी एवं दरिद्र पुरुष रहता था। उसे तथागतोपदिष्ट धर्म में श्रद्धा हो गयी, उसने तदनुसार शील का आचरण किया, धर्म श्रवण किया, न्याय किया, प्रज्ञा का अभ्यास किया। यह सब कर वह इस देहपात के बाद त्रायस्त्रिश देवलोक में उत्पन्न होकर सुगति को प्राप्त हुआ। वहाँ वह अन्य देवताओं को अपेक्षा वर्ण (रूप) एवं यश में विशेष लगता था। भिक्षुओं! उससे त्रायस्त्रिंश के देव इसको देखकर खिन्न रहते थे, द्वेष करते थे- ''अरे! यह कितना आश्चर्य ही है, बड़ा अद्भुत है। कि मनुष्य लोक

मनुस्सवराको; सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा चा'''ति।

''अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे आमन्तेसि– 'मा खो तुम्हे, मारिसा, एतस्स देवपुत्तस्स उज्झायित्थ। एसो खो, मारिसा, देवपुत्तो पुब्बे मनुस्सभूतो समानो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियि, सीलं समादियि, सुतं समादियि, चागं समादियि, पञ्ञं समादियि। सो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये सद्धं समादियित्वा सीलं समादियित्वा सुतं समादियित्वा चागं समादियित्वा पञ्ञं समादियित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नो देवानं तावतिंसानं सहब्यतं। सो अञ्ञे देवे अतिरोचति वण्णेन चेव यससा चा'''ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''यस्स सद्धा तथागते, अचला सुप्पतिट्ठिता।
सीलं च यस्स कल्याणं, अरियकन्तं पसंसितं॥

(संस्कृतच्छाया) मनुष्यवराकः; सः कायस्य भेदात् परं मरणात् सुगतौ स्वर्गे लोके उपपन्नः देवानां त्रायस्त्रिंशानां सहव्यताम्। सः अन्येभ्यः देवेभ्यः अतिरोचते वर्णेन चैव यशसा च'''इति।

''अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः देवान् त्रायस्त्रिंशान् आमन्त्रयत– 'मा खलु यूयम्, मार्षाः! एतस्य देवपुत्रस्य उज्झायत्। एषः खलु, मार्षाः! देवपुत्रः पूर्वे मनुष्यभूतः समानः तथागतप्रवेदिते धर्मविनये श्रद्धां समादात्, शीलं समादात्, श्रुतं समादात्, त्यागं समादात्, प्रज्ञां समादात्। सः तथागतप्रवेदिते धर्मविनये श्रद्धां समादाय, शीलं समादाय, श्रुतं समादाय, त्यागं समादाय, प्रज्ञां समादाय, कायस्य भेदात् परं मरणात् सुगतिं स्वर्गे लोके उदपादि देवानां त्रायस्त्रिंशानां सहव्यताम्। सः अन्येभ्यो देवेभ्यः अतिरोचते वर्णेन चैव यशसा च इति। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो देवे त्रायस्त्रिंशे अनुनयमानः तस्यां वेलायां इमाः गाथाः अभाषिष्ट–

''यस्य श्रद्धा तथागते, अचला सुप्रतिष्ठिता।
शीलञ्च यस्य कल्याणम्, आर्यकान्तं प्रशंसितम्॥

(हिन्दी) में सबसे हीन व दरिद्र के रूप में रहने वाला आज इस लोक में वर्ण एवं यश की दृष्टि से सर्वाधिक शोभायमान हो रहा है।

तब भिक्षुओं! देवराज शक्र ने त्रायस्त्रिंश लोक के देवताओं को एकत्र कर कहा- ''मार्ष! यह देवता जब पहले मनुष्ययोनि में था तब इसने तथागत के धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कर तदनुसार शील का आचरण किया,िवद्या, त्याग और प्रज्ञा का अभ्यास किया। इसी शुभ कर्म कर के फलस्वरुप वहाँ से देहपात के पश्चात् यहाँ उत्पन्न होकर आप लोगों से अधिक वर्ण एवं यश को प्राप्त हुआ है। भिक्षुओं! देवराज शक्र ने त्रायस्त्रिंश लोक के देवताओं को समझाते हुये यह गाथा बोला-

''सङ्घे पसादो यस्सत्थि, उजुभूतं च दस्सनं।
अदलिद्दोति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥
''तस्मा सद्धं च सीलं च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं''ति॥

11.2.5. रामणेय्यकसुत्तं

सावत्थियं जेतवने। अथ खो सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं एतदवोच–

''किं नु खो, भन्ते, भूमिरामणेय्यकं''ति?

''आरामचेत्या वनचेत्या, पोक्खरञ्ञो सुनिम्मिता।
मनुस्सरामणेय्यस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥

(संस्कृतच्छाया) ''संघे प्रसादो यस्यास्ति, ऋजुभूतञ्च दर्शनम्।
अदरिद्रः इति तं आहुः, अमोघं तस्य जीवितम्॥
''तस्मात् श्रद्धाञ्च शीलञ्च, प्रसादं धर्मदर्शनम्।
अनुयुञ्ज्यात् मेधावी, स्मरन् बुद्धानां शासनम्''इति॥

5 श्रावस्त्यां जेतवने। अथ खलु शक्र देवानामिन्द्रो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकस्मिन् अन्ते अस्थात्। एकस्मिन् अन्ते स्थितः खलु शक्रो देवानामिन्द्रः भगवन्तम् एतदवोचत्—

''किं नु खलु, भदन्त! भूमिरामणीयकम्''इति?

''आरामचैत्यानि वनचैत्यानि, पौष्करिण्यः सुनिर्मिताः।
मनुष्यरामणीयकस्य, कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(हिन्दी) ''जिसकी तथागत में अचल श्रद्धा हो गयी है जिसका शील आर्यजनों को प्रिय है, उनके द्वारा प्रशस्त है। ''जिसकी सङ्घ में अचल श्रद्धा प्रतिष्ठित है, धर्मदर्शन में जो अत्यधिक प्रगति कर चुका है, वह दरिद्र नहीं है, उसका जीवन सार्थक है।

''अतः धर्म दर्शन के प्रति श्रद्धा एवं शील प्रदर्शित करते हुए बुद्धिमान् पुरुष को बुद्धानुशासन का स्मरण करते हुए आचरण करना चाहिये।''

5. श्रावस्ती के जेतवन में। उस समय देवराज शक्र ने जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े होकर देवराज शक्र भगवान् से यह निवेदन किया-''भन्ते! कौन सी जगह रमणीय है?''

''आरामों के पूजा स्थान, वनों के पूजा स्थल, अच्छी भली पुष्करणियाँ भी मनुष्य की रमणीयता से सोलहवें भाग का भी समानता नहीं कर सकतीं।

''गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं''ति॥

11.2.6. यजमानसुत्तं

एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, कत्थ दिन्नं महप्फलं''ति॥
''चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस सङ्घो उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो॥
''यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, सङ्घे दिन्नं महप्फलं''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''ग्रामे वा यदि वारण्ये, निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्र अर्हन्तः विहरन्ति, तं भूमिरामणीयकम्''इति॥

6. एकस्मिन् समये भगवान् राजगृहे विहरति गृध्रकूट पर्वते। अथ खलु शक्रो देवानामिन्द्रो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकस्मिन् अन्ते अस्थात्। एकस्मिन् अन्ते स्थितः खलु शक्रो देवानामिन्द्रो भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''यजमानानां मनुष्याणाम्, पुण्यप्रेक्षणं प्राणिनाम्।
कुर्वन्त उपधिकं पुण्यम्, कुत्र दत्तं महाफलम्''इति॥
''चत्वारः च प्रतिपन्नाः, चत्वारः च फले स्थिताः।
एष सङ्घो ऋजुभूतः, प्रज्ञाशीलसमाहितः॥
''यजमानानां मनुष्याणाम्, पुण्यप्रेक्षणं प्राणिनाम्।
कुर्वन्त उपधिकं पुण्यम्, सङ्घाय दत्तं महाफलम्''इति॥

(हिन्दी) ग्राम या वन में, किसी नीची या समतल भूमि पर जहाँ अर्हत् विहार करते हैं वही भूमि रमणीय हैं।

6. एक समय भगवान् राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। उस समय देवराज शक्र ने जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ खड़ा हो गया। एक तरफ खड़े होकर देवराज शक्र भगवान् से यह निवेदन किया-

''जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, पुण्य के आकांक्षी हैं, मानसिक चित्त विकारों से रहित होकर पुण्य करते हैं उनका किया हुआ दान कितना पुण्य फल देता है ?''

''चार मार्ग-प्राप्त और चार फल प्राप्त हुए प्रज्ञा, शील एवं समाधियुक्त यही ऋजुभूत 'सङ्घ' कहलाते हैं।

11.2.7. बुद्धवन्दनासुत्तं

सावत्थियं जेतवने। तेन खो पन समयेन भगवा दिवाविहारगतो होति पटिसल्लीनो। अथ खो सक्को च देवानमिन्दो ब्रह्मा च सहम्पति येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा पच्चेकं द्वारबाहं निस्साय अट्ठंसु। अथ खो सक्को देवानमिन्दो भगवतो सन्तिके इमं गाथं अभासि–

''उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, पन्नभार अनण विचर लोके।
चित्तं च ते सुविमुत्तं, चन्दो यथा पन्नरसाय रत्तिं''ति॥

न खो, देवानमिन्द, तथागता एवं वन्दितब्बा। एवं च खो, देवानमिन्द, तथागता वन्दितब्बा–

''उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम, सत्थवाह अनण विचर लोके।
देसस्सु भगवा धम्मं, अञ्ञातारो भविस्सन्ती''ति॥

---

7. (संस्कृतच्छाया) श्रावस्त्यां जेतवने। तस्मिन् खलु पुनः समये भगवान् दिवाविहारगतो भवति प्रतिसल्लीनः। अथ खलु शक्रः च देवानामिन्द्रः ब्रह्मा च सहम्पति यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः; उपसङ्क्रम्य प्रत्येकं द्वारबाहं निःश्राय अस्थुः। अथ खलु शक्रो देवानामिन्द्रो भगवतः अन्तिके इमां गाथाम् अभाषिष्ट– ''उत्तिष्ठ वीर विजितसङ्ग्राम,प्रणतभार अनृण विचर लोके।
चित्तञ्च ते सुविमुक्तम्, चन्द्रः यथा पंचदश्यां रात्रौ''इति॥

न खलु, देवानामिन्द्र! तथागता एवं वन्दितव्या। एवञ्च खलु, देवानामिन्द्र! तथागता वन्दितव्या– ''उत्तिष्ठ वीर विजितसङ्गाम,सार्थवाह अनृण विचर लोके।
दिशतु भगवन् धर्मम्, आज्ञातारो भविष्यन्ति''इति॥

(हिन्दी) ''जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, जो पुण्य की अपेक्षा रखने वाले हैं, शुद्ध मन से, पुण्य करने वालों को, संघ के लिये दिये गये दान का महाफल होता है।

7. श्रावस्ती के जेतवन में। उस समय भगवान् दिन की साधना में बैठे थे। तब देवेन्द्र शक्र तथा सहम्पति ब्रह्मा जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। वहाँ आकर एक-एक किवाड़ से लगे खड़े हो गये। देवराज शक्र ने भगवान् के सम्मुख यह गाथा कही-

''हे वीर, हे संग्रामविजयी! आप उठें, आप का सांसारिक भार उतर चुका है। आप पर किसी प्रकार का कोई भी ऋण नहीं रह गया है। इस लोक में विचरण करें, आप का चित्त विकारों से उसी तरह मुक्त हो चुका है जैसे पूर्णिमा का निर्मल चन्द्रमा हो।''

देवेन्द्र! तथागत की वन्दना इस प्रकार नहीं की जाती। देवेन्द्र! बुद्ध की वन्दना ऐसे की जानी चाहिये-

''हे वीर, हे संग्रामविजयी! आप उठें, आपका सांसारिक भार उतर चुका है। आप पर किसी प्रकार का कोई भी ऋण नहीं रह गया है। इस लोक में विचरण करें। आप भगवान् धर्म का उपदेश करें। उस उपदेश के सुनने वाले अधिकारी पुरुष मिलेंगे।''

11.2.8. गहट्ठवन्दनासुत्तं

सावत्थियं। तत्र...पे॰...एतदवोच– ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि– 'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं। उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि– 'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो। यस्स दानि कालं मञ्ञसी'''ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेजयन्तपासादा ओरोहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं पुथुद्दिसा नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि–

''तं नमस्सन्ति तेविज्जा, सब्बे भुम्मा च खत्तिया।
चत्तारो च महाराजा, तिदसा च यसस्सिनो।
अथ को नाम सो यक्खो, यं त्वं सक्क नमस्ससी''ति॥

---

8. (संस्कृतच्छाया) श्रावस्त्याम्। तत्र...पे॰... एतदवोचत्– ''भूतपूर्वम्, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः मातलिं संवाहकम् आमन्त्रयत– 'युङ्ग्धि, समं मातले! सहस्रयुक्तम् आजानेयरथम्। उद्यानभूमिं गच्छामः सुभूमिं दर्शनाय'इति। 'एवं भद्रं ते'इति खलु, भिक्षवः! मातलि संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य सहस्रयुक्तम् आजानेयरथं युक्त्वा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य प्रतिवदति– 'युक्तः खलु ते, मार्ष! सहस्रयुक्तः आजानेयरथः। यस्य इदानीं कालं मन्यसे'''इति। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रः देवानामिन्द्रः वेजयन्तप्रासादात् अवरुहन्तः अञ्जलिं कृत्वा स्विदं पृथुदिशा नंस्यति। अथ खलु, भिक्षवः! मातलिः संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''तं नंस्यन्ति त्रैविद्याः, सर्वे भौम्याः च क्षत्रियाः।
चत्वारः च महाराजाः, त्रिदशा च यशस्विनः।
अथ को नाम सः यक्षः, यं त्वं शक्र नंस्यसि''इति॥

8.(हिन्दी) श्रावस्ती में। वहाँ...पूर्ववत्... यह बोले। पहले कभी भिक्षुओं! देवराज शक्र ने मातलि सारथि को आमन्त्रित किया- 'भद्र मातलि! हजार सिखाये हुये घोड़ों से युक्त रथ को तैयार करो। उद्यानभूमि का सौन्दर्य देखने चलेंगे।' महाराज! जैसी आज्ञा कह मातलि संग्राहक ने देवेन्द्र शक्र को उत्तर दे हजार घोड़ो को जोड़कर कुछ समय बाद रथ सन्नद्ध होने की सूचना दी- मारिष! रथ तैयार है, अब आप जो चाहे। तब, भिक्षुओं! देवराज शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुये, सभी दिशाओं को प्रणाम किया। भिक्षुओं! यह देखकर मातलि संग्राहक ने देवराज से गाथा में बोला-

'हे शक्र! संसार के सभी ज्ञानी त्रैविध, सभी राजा महाराजा, चारों दिक्पाल तथा बड़े बड़े यशस्वी देवता- सभी आपको ही प्रणाम करते हैं, अब, हे शक्र! आप यह किसको प्रणाम कर रहे हैं?''

''मं नमस्सन्ति तेविज्जा, सब्बे भुम्मा च खत्तिया।
चत्तारो च महाराजा, तिदसा च यसस्सिनो॥
''अहञ्च सीलसम्पन्ने, चिररत्तसमाहिते।
सम्मापब्बजिते वन्दे, ब्रह्मचरियपरायने॥
''ये गहट्ठा पुञ्ञकरा, सीलवन्तो उपासका।
धम्मेन दारं पोसेन्ति, ते नमस्सामि मातली''ति॥
''सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहम्पि ते नमस्सामि, ये नमस्ससि वासवा''ति॥
''इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
पुथुद्दिसा नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''मां नंस्यन्ति त्रैविद्याः, सर्वे भौम्याः च क्षत्रियाः।
चत्वारः च महाराजानः, त्रिदशञ्च यशस्विनः॥
''अहञ्च शीलसम्पन्ने, चिररत्तसमाहिते।
सम्यक्प्रव्रजिते वन्दे, ब्रह्मचर्यपरायणे॥
''ये गृहस्थाः पुण्यकराः, शीलवन्तः उपासकाः।
धर्मेण दारान् पोषयन्ति, ते नंस्यन्ति मातलि''इति॥
''श्रेष्ठाः हि किल लोके, ये त्वं शक्र नंस्यसि।
अहमपि ते नंस्यामि, ये नंस्यसि वासव''इति॥
''इदमुक्त्वा मघवा, देवराजा सुजम्पतिः।
पृथुदिशाः नत्वा, प्रमुखो रथमारुक्षत्''इति॥

(हिन्दी) 'मातलि! संसार के सभी ज्ञानी त्रैविध, सभी राजा महाराजा, चारों दिक्पाल तथा बड़े बड़े यशस्वी देवता सभी, ये सभी मुझको प्रणाम करते हैं; परन्तु मैं संसार में उन शीलसम्पन्नों को, जो सदैव समाहितचित्त रहते हैं, जो सम्यक् रूप से प्रव्रजित हो चुके हैं, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ, जो ब्रह्मचर्य-व्रत की पराकाष्ठा तक पहुँच चुके हैं।

'जो पुण्यात्मा गृहस्थ हैं, शीलवान् उपासक हैं, धर्मपूर्वक अपने बालबच्चों का पोषण करते हैं, हे मातलि! मैं उनको प्रणाम करता हूँ'।

'लोक में उन्हें महान् ही समझना चाहिए, शक्र जिन्हें आप भी नमस्कार करते हैं। मैं भी उन्हें नमस्कार करूँगा, वासव! आप जिन्हे नमस्कार करते हैं।

''मातलि से यह संवाद होने के बाद सुजापति देवराज शक्र सभी दिशाओं को नमस्कार करता हुआ आगे बढ़कर रथ पर आरूढ़ हो गया'।

11.2.9. सत्थारवन्दनासुत्तं

सावत्थियं जेतवने। ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि– 'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं, उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि– 'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो। यस्स दानि कालं मञ्ञसी'''ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेजयन्तपासादा ओरोहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं भगवन्तं नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि–

''यञ्हि देवा मनुस्सा च, तं नमस्सन्ति वासव।
अथ को नाम सो यक्खो, यं त्वं सक्क नमस्ससी''ति॥
''यो इध सम्मासम्बुद्धो, अस्मिं लोके सदेवके।
अनोमनामं सत्थारं, तं नमस्सामि मातलि॥

9.(संस्कृतच्छाया) श्रावस्त्यां जेतवने। ''भूतपूर्वम्, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो मातलिं संवाहकम् आमन्त्रयत– 'युङ्ग्धि, समं मातले! सहस्रयुक्तम् आजानेयरथम्। उद्यानभूमिं गच्छामः सुभूमिं दर्शनाय"इति। "एवं भद्रं ते"इति खलु, भिक्षवः! मातलि संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य सहस्रयुक्तम् आजानेयरथं युक्त्वा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य प्रत्यविदत्– 'युक्तः खलु ते, मार्ष! सहस्रयुक्तः आजानेयरथः। यस्य इदानीं कालं मन्यसे''इति। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो वेजयन्तप्रासादात् अवरुहन्तः अञ्जलिं कृत्वा स्विदं भगवन्तं नंस्यति। अथ खलु, भिक्षवः! मातलिः संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथया अध्यभाषिष्ट–

''यं हि देवाः मनुष्याश्च, तं नंस्यन्ति वासव!।
अथ को नाम सः यक्षः, यं त्वं शक्र नंस्यसि''इति॥
''य इह सम्यक्सम्बुद्धः, अस्मिन् लोके सदेवके।
अनोमनाम शास्तारम्, तं नंस्यामि मातले!॥

9.(हिन्दी) श्रावस्ती के जेतवन में। पहले कभी भिक्षुओं! देवराज शक्र ने मातलि सारथि से को आमन्त्रित किया- 'भद्र मातलि! हजार सिखाये हुये घोड़ों से युक्त रथ को तैयार करो। उद्यानभूमि का सौन्दर्य देखने चलेंगे।' महाराज! जैसी आज्ञा कह मातलि संग्राहक ने देवेन्द्र शक्र को उत्तर दे हजार घोड़ो को जोड़कर कुछ समय बाद रथ सन्नद्ध होने की सूचना दी- मारिष! रथ तैयार है, अब आप जो चाहे। तब, भिक्षुओं! देवराज शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुये, सभी दिशाओं को प्रणाम किया। भिक्षुओं! यह देखकर मातलि संग्राहक ने देवराज से गाथा में बोला- हे वासव! जिस आपको देव और मनुष्य नमस्कार करते हैं, भला वह कौन जीव है, हे शक्र! जिसे आप नमस्कार करते हैं?

''येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
खीणासवा अरहन्तो, ते नमस्सामि मातलि॥
''ये रागदोसविनया, अविज्जासमतिक्कमा।
सेक्खा अपचयारामा, अप्पमत्तानुसिक्खरे।
ते नमस्सामि मातली''ति॥
''सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहम्पि ते नमस्सामि, ये नमस्ससि वासवा''ति॥
''इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
भगवन्तं नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही''ति॥

11.2.10. सङ्घवन्दनासुत्तं

सावत्थियं जेतवने। तत्र खो...पे.... एतदवोच– ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को

(संस्कृतच्छाया) ''येषां रागश्च द्वेषश्च, अविद्या च विरञ्जिता।
क्षीणास्रवाः अर्हन्तः, ते नंस्यामि मातले॥
''ये रागद्वेषविनयाः, अविद्यासमतिक्रमाः।
शैक्ष्या अपचयारामाः, अप्रमत्ता अनुशिशिक्षिरे।
तान् नंस्यामि मातले''इति॥
''श्रेष्ठाः हि किल लोके, ये त्वं शक्र नंस्यसि।
अहमपि तान् नंस्यामि, यान् नंस्यसि वासव''इति॥
''इदमुक्त्वा मघवा, देवराजा सुजम्पतिः।
भगवन्तं नत्वा, प्रमुखो रथमारुभिः''इति॥

10. श्रावस्त्यां जेतवने। तत्र खलु ....पे..... एतदवोचत्— भूतपूर्वम्, भिक्षवः शक्रः

(हिन्दी) "भिक्षुओं! जो देवताओं सहित इस लोक में सम्यक्सम्बुद्ध हैं उन अनोम नामक शास्ता को मैं प्रणाम करता हूँ।

"भिक्षुओं! जिनका राग, द्वेष एवं अविद्या आदि दोष विनष्ट हो चुके हैं, जो क्षीणाश्रव एवं अर्हत् हो चुके हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

"जिन्होंने अपने राग द्वेष को दबा दिया है, अविद्या को विनष्ट कर दिया है, जो अप्रमत्त शैक्ष्य हैं, सावधानी से धर्मसाधना में रत हैं, मातलि! मैं उन्हीं को प्रणाम कर रहा हूँ।"

"लोक में वे बड़े महान हैं शक्र जिन्हें आप प्रणाम कर रहे है तो हे वासव! मैं भी उन्हें प्रणाम करूँगा' जिन्हें आप प्रणाम करते है।

"मातलि से यह संवाद होने के बाद सुजापति देवराज शक्र सभी दिशाओं को नमस्कार करता हुआ आगे बढ़कर रथ पर आरूढ़ हो गया।"

देवानमिन्दो मातलिं सङ्गाहकं आमन्तेसि– 'योजेहि, सम्म मातलि, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं, उय्यानभूमिं गच्छाम सुभूमिं दस्सनाया'ति। 'एवं भद्दन्तवा'ति खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिस्सुत्वा, सहस्सयुत्तं आजञ्ञरथं योजेत्वा सक्कस्स देवानमिन्दस्स पटिवेदेसि– 'युत्तो खो ते, मारिस, सहस्सयुत्तो आजञ्ञरथो, यस्स दानि कालं मञ्ञसी'''ति। अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो वेजयन्तपासादा ओरोहन्तो अञ्जलिं कत्वा सुदं भिक्खुसङ्घं नमस्सति। अथ खो, भिक्खवे, मातलि सङ्गाहको सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि–

''तं हि एते नमस्सेय्युं, पूतिदेहसया नरा।
निमुग्गा कुणपम्हेते, खुप्पिपाससमप्पिता॥
''किं नु तेसं पिहयसि, अनागारान वासव।
आचारं इसिनं ब्रूहि, तं सुणोम वचो तवा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) देवानामिन्द्रो मातलिं संवाहकम् आमन्त्रयत— 'युङ्ग्धि, समं मातले! सहस्रयुक्तम् आजानेयरथम्। उद्यानभूमिं गच्छामः सुभूमिं दर्शनाय'इति। 'एवं भद्रं ते'इति खलु, भिक्षवः! मातलि संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं प्रतिश्रुत्य सहस्रयुक्तम् आजानेयरथं युक्त्वा शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य प्रत्यविदत्– 'युक्तः खलु ते, मार्ष! सहस्रयुक्तः आजानेयरथः। यस्य इदानीं कालं मन्यसे'इति। अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो वेजयन्तप्रासादात्, अवरुहन्तः अञ्जलिं कृत्वा स्विद् भिक्षुसङ्घं नंस्यति। अथ खलु, भिक्षवः! मातलिः संवाहकः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथया अध्यभाषिष्ट-

''तं हि एते नमेयुः, पूतिदेहश्रयाः नराः।
निमग्नाः कुणपे एते, क्षुत्पिपासासमर्पिताः॥
''किं नु तेभ्यः स्पृहयसि, अनागारेभ्यः वासव।
आचारम् ऋषिणां ब्रूहि, तत् शृणुयाम् वचः तव''इति॥

10.(हिन्दी) श्रावस्ती जेतवन में। पहले कभी भिक्षुओं! देवराज शक्र ने मातलि सारथि को आमन्त्रित किया- 'भद्र मातलि! हजार सिखाये हुये घोड़ों से युक्त रथ को तैयार करो। उद्यानभूमि का सौन्दर्य देखने चलेंगे।' महाराज! जैसी आज्ञा कह मातलि संग्राहक ने देवेन्द्र शक्र को उत्तर दे हजार घोड़ो को जोड़कर कुछ समय बाद रथ सन्नद्ध होने की सूचना दी- मारिष! रथ तैयार है, अब आप जो चाहे। तब, भिक्षुओं! देवराज शक्र वैजयन्त प्रासाद से उतरते हुये, सभी दिशाओं को प्रणाम किया। भिक्षुओं! यह देखकर मातलि संग्राहक ने देवराज से गाथा में बोला-

''अच्छा तो यह होता कि ये मलिन शरीर धारण करने वाले आपको प्रणाम करते। ये पुरुष दश मास तक मलिन गर्भाशय में पड़े रहते हैं, भूख और प्यास से जो खिन्न रहते हैं।

''हे वासव! उन आवासरहित लोगों में आप ऐसा क्या गुण देख रहे हैं कि उनको आप प्रणाम करते हैं? उन ऋषियों के आचार का कुछ वर्णन करें, मैं आप से उसको सुनना चाहूँगा।''

''एतं तेसं पिहयामि, अनागारान मातलि।
यम्हा गामा पक्कमन्ति, अनपेक्खा वजन्ति ते॥
''न तेसं कोट्ठे ओपेन्ति, न कुम्भि न कळोपियं।
परनिट्ठितमेसाना, तेन यापेन्ति सुब्बता॥
''सुमन्तमन्तिनो धीरा, तुण्हीभूता समञ्चरा।
देवा विरुद्धा असुरेहि, पुथु मच्चा च मातलि॥
''अविरुद्धा विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुता।
सादानेसु अनादाना, ते नमस्सामि मातली''ति॥
''सेट्ठा हि किर लोकस्मिं, ये त्वं सक्क नमस्ससि।
अहं पि ते नमस्सामि, ये नमस्ससि वासवा''ति॥

(संस्कृतच्छाया) ''एतं तेषां स्पृहयामि, अनागारात् मातले।
यस्मात् ग्रामात् प्रक्रामन्ति, अनपेक्षाद् व्रजन्ति ते॥
''न तेषां कोष्ठे उपयन्ति, न कुम्भे न कलशे।
परनिष्ठितमेषाणाः, तेन यापयन्ति सुव्रताः॥
''सुमन्तमंत्रियः धीराः, तुष्णीभूताः समं चराः।
देवाः विरुद्धाः असुरैः, पृथुमर्त्याः च मातले॥
''अविरुद्धाः विरुद्धेषु, आत्मदण्डेषु निर्वृताः।
सादानेषु अनादानाः, तान् नंस्यामि मातले''इति॥
''श्रेष्ठाः हि किल लोके, यान् त्वं शक्र नंस्यसि।
अहमपि तान् नंस्यामि, यान् नंस्यसि वासव''इति॥

(हिन्दी) ''हे मातलि! मैं इन आवासरहित अकिंचनों से इनकी त्यागभावना पर मैं ईर्ष्या करता हूँ। जिस ग्राम से ये चारिका कर देते हैं तो वे उसको निरपेक्ष भाव से सदा के लिये छोड़ देते हैं॥

''न वे कोठी में कुछ संग्रह करते हैं, न किसी घड़े में न किसी छोटे मोटे पात्र में। वे तो जीवनपर्यन्त दूसरों से जो कुछ रूखा सूखा पा जाते हैं उसी से वे कठोर व्रतधारी अपना जीवननिर्वाह करते हैं।

''ये सभी को अच्छी बातो की मन्त्रणा देने वाले, चुप चाप शान्त रहकर साधना में रत रहने वाले, लोक से सम व्यवहार करने वाले हैं; जबकि देवताओं तथा असुरों में विरोध चलता है तथा मनुष्य से मनुष्य वैर रखते हैं।

परन्तु ये विरोधियों के साथ निर्वैर व्यवहार करते हैं, शस्त्र उठाये हुओं पर भी हिंसा की कोई चेष्टा नहीं करते। इसे लेने की इच्छा रखने वाले संसार में भी स्वयं किसी से कुछ नहीं लेते।''

''लोक में वे बड़े महान हैं शक्र जिन्हें आप प्रणाम कर रहे है तो हे वासव! मैं भी उन्हें प्रणाम करूँगा' जिन्हें आप प्रणाम करते है।

''इदं वत्वान मघवा, देवराजा सुजम्पति।
भिक्खुसङ्घं नमस्सित्वा, पमुखो रथमारुही''ति॥

तस्सुद्दानं– देवा पन तयो वुत्ता, दलिद्दं च रामणेय्यकं।
यजमानं च वन्दना, तयो सक्कनमस्सनाति॥

3. ततियवग्गो

11.3.1. छेत्वासुत्तं

सावत्थियं जेतवने। अथ खो सक्को देवानमिन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सक्को देवानमिन्दो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि–

''किंसु छेत्वा सुखं सेति, किंसु छेत्वा न सोचति।
किस्सस्सु एकधम्मस्स, वधं रोचेसि गोतमा''ति॥
''कोधं छेत्वा सुखं सेति, कोधं छेत्वा न सोचति।

(संस्कृतच्छाया) ''इदम् उक्त्वा मघवा, देवराजा सुजम्पतिः।
िभक्षुसंघं नत्वा, प्रमुखः रथमारुभि''इति॥

तस्योद्दानम्– देवाः पुनः त्रयः उक्ताः, दलिद्रं च रामणीयकम्।
यजमानञ्च वन्दना, त्रयः शक्रनमस्यनाति॥

1. श्रावस्त्यां जतवने। अथ खलु शक्रो देवानामिन्द्रो यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते अतिष्ठत्। एकान्ते स्थितः खलु शक्रो देवानामिन्दो भगवन्तं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''किं छित्वा सुखं शेते, किं छित्वा न शोचति।
कस्यास्य एकधर्मस्य, वधं रोचते गौतम'? इति॥
''क्रोधम् छित्वा सुखं शेते, क्रोधं छित्वा न शोचति।

(हिन्दी) ''मातलि से यह संवाद होने के बाद सुजापति देवराज शक्र सभी दिशाओं को नमस्कार करता हुआ आगे बढ़कर रथ पर आरूढ हो गया।"

इस वर्ग की सूची- तीन में देवसूत्र, दरिद्रसूत्र, रमणीयकसूत्र, यजमानसूत्र, बुद्धवन्दनासूत्र, गृहस्थवन्दनासूत्र, शास्तृवन्दनासूत्र एवं सङ्घवन्दनासूत्र- ये दश सूत्र व्याख्यात हैं।

1. श्रावस्ती के जेतवन में। उस समय देवराज शक्र ने जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम कर एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े होकर देवराज शक्र भगवान् से यह निवेदन किया-

''साधक क्या नष्ट कर सुख से सोता है? क्या नष्ट कर वह वीतशोक हो जाता है? हे गौतम! आपको किस एक धर्म का वध करना उत्तम लगता है?''

कोधस्स विसमूलस्स, मधुरग्गस्स वासव।
वधं अरिया पसंसन्ति, तञ्हि छेत्वा न सोचती''ति॥

11.3.2. दुब्बण्णियसुत्तं

सावत्थियं जेतवने। तत्र खो...पे॰... एतदवोच– ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, अञ्ञतरो यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो अहोसि। तत्र सुदं, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति– 'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत, भो! अयं यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो'''ति! यथा यथा खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति, तथा तथा सो यक्खो अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो च।

''अथ खो, भिक्खवे, देवा तावतिंसा येन सक्को देवानमिन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सक्कं देवानमिन्दं एतदवोचुं– 'इध ते, मारिस, अञ्ञतरो यक्खो दुब्बण्णो

(संस्कृतच्छाया) क्रोधस्य विषमूलस्य, मधुराग्रस्य वासव!।
वधम् आर्याः प्रशंसन्ति, तं हि छित्वा न शोचति''इति॥

2. श्रावस्त्यां जेतवने। तत्र खलु....पे॰..... एतदवोचत्— ''भूतपूर्वम्, भिक्षवः! अन्यतरो यक्षो दुर्वर्णः अवकोटिमकः शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य आसने निषण्णः अभूत्। तत्र स्विद्, भिक्षवः! देवाः त्रायस्त्रिंशाः उद्ध्यायन्ति क्षिप्यन्ति विपाचयन्ति— 'आश्चर्यं वत भो, अद्भुतं वत भो! अयं यक्षः दुर्वर्णः अवकोटिमकः शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य आसने निषण्णः' इति। यथा यथा खलु, भिक्षवः! देवाः त्रायस्त्रिंशाः उद्ध्यायन्ति क्षिप्यन्ति विपाचयन्ति, तथा तथा सः यक्षः अभिरूपतरः चैव भवति दर्शनीयतरः च प्रासादिकतरः च।

अथ खलु, भिक्षवः! देवाः त्रायस्त्रिंशाः यत्र शक्रः देवानामिन्द्रः तत्रोपसमक्रमिषुः, उपसङ्क्रम्य शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचन्— इह ते मार्ष! अन्यतरो यक्षः दुर्वर्णः

(हिन्दी) ''साधक क्रोध का नाश कर सुख से सोता है, क्रोध का नाश करने वाले को किसी प्रकार का शोक नहीं करना पड़ता। हे वासव! पहले मीठा लगने वाले विष के मूल क्रोध का वध करना पण्डितों से प्रशंसित है। उस क्रोध को नष्ट करने पर साधक को कोई शोक नहीं करना पड़ता है।''

2. श्रावस्ती के जेतवन में। वहाँ...भगवान् ने यह बताया- ''भिक्षुओं! पहले कभी कोई बौना, विरूप यक्ष देवराज शक्र के सिंहासन के पास खड़ा था। भिक्षुओं! उसे देखकर वहाँ उपस्थित त्रायस्त्रिंश देव कूढते थे, झिझकते थे और उसकी खिल्ली उड़ाते थे- ''आश्चर्य है, अद्भुत है कि यह दुर्वण विरूप यक्ष देवराज शक्र के सिंहासन के पास कैसे और क्यों खड़ा है?'' भिक्षुओं! ज्यों ज्यों त्रायस्त्रिंश लोक के देवता उस यक्ष को देखकर कूढ़ते थे, झिझकते थे और उसकी खिल्ली उड़ाते थे त्यों त्यों वह यक्ष देखने में सुन्दर रूप तथा सुन्दराकृति होता जा रहा था।

''तब, भिक्षुओं! त्रायस्त्रिंशवासी देवराज शक्र के पास गये तथा उनसे यों बोले- 'मार्ष! यह कोई कोई

ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नो। तत्र सुदं, मारिस, देवा तावतिंसा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति– अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! अयं यक्खो दुब्बण्णो ओकोटिमको सक्कस्स देवानमिन्दस्स आसने निसिन्नोति। यथा यथा खो, मारिस, देवा उज्झायन्ति खिय्यन्ति विपाचेन्ति, तथा तथा सो यक्खो अभिरूपतरो चेव होति दस्सनीयतरो च पासादिकतरो चाति। सो हि नून, मारिस, कोधभक्खो यक्खो भविस्सती''ति।

''अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो येन सो कोधभक्खो यक्खो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणजाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येन सो कोधभक्खो यक्खो तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं नामं सावेति– 'सक्कोहं मारिस, देवानमिन्दो, सक्कोहं, मारिस, देवानमिन्दो'ति। यथा यथा खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो नामं सावेसि, तथा तथा सो यक्खो दुब्बण्णतरो चेव अहोसि ओकोटिमकतरो च। दुब्बण्णतरो चेव हुत्वा ओकोटिमकतरो च तत्थेवन्तरधायी''ति।

(संस्कृतच्छाया) अवकोटिकः शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य आसने निषण्णः। तत्र स्विद्, मार्ष! देवाः त्रायस्त्रिंशाः उद्ध्यायन्ति क्षिप्यन्ति विपाचयन्ति— आश्चर्यं वत भो! अद्भुतं वत भो! अयं यक्षः दुर्वर्णः अवकोटिमकः शक्रस्य देवानामिन्द्रस्य आसने निषण्णः"इति। यथा यथा खलु, मार्ष! देवाः त्रायस्त्रिंशाः उद्ध्यायन्ति क्षिप्यन्ति विपाचयन्ति, तथा तथा सः यक्षः अभिरूपतरः चैव भवति दर्शनीयतरः च प्रासादिकतरः च इति। सः हि नूनम्, मार्ष! क्रोधभक्षः यक्षो भविष्यति"इति।

अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो यत्र सः क्रोधभक्षो यक्षः तत्रोपसमक्रमीत्; उपसङ्क्रम्य एकांसम् उत्तरासंगं कृत्वा दक्षिणजानुमण्डलं पृथिव्यां निहत्य यत्र सः क्रोधभक्षो यक्षः तत्राञ्जलिं प्रणम्य त्रिकृत्वः नाम श्रावयति— शक्रोऽहं मार्ष! देवानामिन्द्रः, शक्रोऽहम्, मार्ष! देवानामिन्द्रः' इति। यथा यथा खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रो नाम श्रावयति, तथा तथा सः यक्षः दुर्वर्ण्यतरः चैव अभूत् अवकोटिमकतरः च। दुर्वण्यतरः चैव भूत्वा अवकोटिमकतरः च तत्रैवान्तर्दधौ"इति।

(हिन्दी) बौना, विरूप यक्ष आप के आसन पर बैठा है। मारिष! सो उससे त्रायस्त्रिंश देव कूढ़ते थे, झिझकते थे और उसकी खिल्ली उड़ाते थे- ''आश्चर्य है, अद्भुत है कि यह दुर्वण विरूप यक्ष देवराज शक्र के सिंहासन पर बैठा है। मारिष! ज्यों ज्यों त्रायस्त्रिंश लोक के देवता उस यक्ष को देखकर कूढ़ते थे, झिझकते थे और उसकी खिल्ली उड़ाते थे त्यों त्यों वह यक्ष देखने में सुन्दर रूप तथा सुन्दराकृति होता जा रहा था। मारिष! तो क्या वह क्रोध-भक्ष यक्ष है।

''भिक्षुओं! यह सुनकर वह देवराज शक्र उस क्रोधभक्षा यक्ष के पास गया तथा वहाँ जाकर उत्तरासङ्घ को एक कन्धे पर कर अपने दक्षिण जानु को भूमि पर टिका कर, उसको तीन बार अपना नाम सुनाया-'मैं देवराज शक्र हूँ।' यहाँ भी यह आश्चर्यजनक हुआ कि ज्यों ज्यों उस देवता को शक्र अपना नाम सुना रहा था त्यों त्यों वह यक्ष दुर्वर्ण एवं विरूप होने लगा। तथा वैसा होते होते वह वहाँ अन्तर्हित हो गया।

अथ खो, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सके आसने निसीदित्वा देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमा गाथायो अभासि–

''न सूपहतचित्तोम्हि, नावत्तेन सुवानयो।
न वो चिराहं कुज्झामि, कोधो मयि नावतिट्ठति॥
''कुद्धाहं न फरुसं ब्रूमि, न च धम्मानि कित्तये।
सन्निग्गण्हामि अत्तानं, सम्पस्सं अत्थमत्तनो''ति॥

11.3.3. सम्बरिमायासुतं

सावत्थियं...पे.... भगवा एतदवोच– ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो आबाधिको अहोसि दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो येन वेपचित्ति असुरिन्दो तेनुपसङ्कमि गिलानपुच्छको। अद्दसा खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वान सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच– 'तिकिच्छ मं देवानमिन्दा'ति। 'वाचेहि

(संस्कृतच्छाया) अथ खलु, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः स्वकीये आसने निषद्य देवान् त्रायस्त्रिंशान् अनुनयमानः तस्यां वेलायाम् इमाः गाथाः अभाषिष्ट—

''न सूपहतचित्तः अस्मिन्, नावृत्तेन स्वानेय।
न वः चिरादहं क्रुध्यामि, क्रोधः मयि नावतिष्ठति॥
''क्रुद्ध अहं न परुषं ब्रवीमि, न च धर्माणि कीर्तये।
सन्निगृह्णामि आत्मानम्, संपश्यन् अर्थमात्मनः''इति॥

3. श्रावस्त्यां....पे....भगवान् एतदवोचत्— भूतपूर्वम्, भिक्षवः! वेपचित्ति असुरेन्द्रः आबाधिकः अभूत् दुःखितः बाढग्लानः। अथ खलु भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः यत्र वेपचित्ति असुरेन्द्रः तत्रोपसक्रमीत् ग्लानपृच्छकः। अद्राक्षीत् खलु, भिक्षवः! वेपचित्ति असुरेन्द्रः शक्रं देवानामिन्द्रं दूरत एव आगच्छन्तम्। दृष्ट्वा शक्रं देवानामिन्द्रम् एतदवोचत्— चिकित्स मां देवानामिन्द्रः"इति। वाचय

(हिन्दी) भिक्षुओं! वह देवराज शक्र उस समय ये गाथायें बोला-

''मेरा चित्त कभी इतना शीघ्र उद्विग्न नहीं होता, भ्रम में पड़कर मैं जल्दी भ्रान्त भी नहीं होता। मुझे क्रोध से उद्विग्न हुए बहुत समय बीत गया। सच तो यह है कि अब मेरे चित्त में क्रोध रह ही नहीं गया॥

''न क्रोध करता और न मैंने किसी को कठोर वचन कहें, न मैं अपने गुणों का वृथा महत्त्व ज्ञापित करता हूँ। मैं अपनी इन्द्रियों को संयत रखता हूँ, क्योंकि मुझे इसी में अपना परमार्थ सिद्ध होता दीखता है।''

3. श्रावस्ती में ....पूर्ववत... भगवान् ने यह कहा- 'भिक्षुओं! पहले कभी एक बार वेपचित्ति असुरेन्द्र किसी रोग से ग्रस्त हो गया था। ''भिक्षुओं! देवराज शक्र असुरेन्द्र का कुशलमङ्गल पूछने उसके पास गया। भिक्षुओं! तब उस असुरेन्द्र ने देवराज को दूर से आते ही देख लिया। देखकर वह देवराज से बोला- ''देवराज! आप मेरी चिकित्सा करें।'' देवराज ने कहा- ''वेपचित्ति! यदि आप मुझे शाम्बरी माया सिखा दें तो मैं आपके रोग की

मं, वेपचित्ति, सम्बरिमायं'ति। 'न तावाहं वाचेमि, यावाहं, मारिस, असुरे पटिपुच्छामी''ति। ''अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो असुरे पटिपुच्छि– 'वाचेमहं, मारिसा, सक्कं देवानमिन्दं सम्बरिमायं'ति? 'मा खो त्वं, मारिस, वाचेसि सक्कं देवानमिन्दं सम्बरिमायं''ति। अथ खो, भिक्खवे, वेपचित्ति असुरिन्दो सक्कं देवानमिन्दं गाथाय अज्झभासि–

''मायावी मघवा सक्क, देवराज सुजम्पति।
उपेति निरयं घोरं, सम्बरोव सतं समं''ति॥

11.3.4. अच्चयसुत्तं

सावत्थियं...पे.... आरामे। तेन खो पन समयेन द्वे भिक्खू सम्पयोजेसुं। तत्रेको भिक्खु अच्चसरा। अथ खो सो भिक्खु तस्स भिक्खुनो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेति; सो भिक्खु नप्पटिग्गण्हाति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु;

(संस्कृतच्छाया) माम्, वेपचित्ते! सम्बरिमायाम्"इति। "न तावदहं वाचयामि यावदहम्, मार्ष! असुरान् प्रतिपृच्छामि"इति । अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्ति असुरेन्द्रः असुरान् प्रत्यपृच्छत्— वाचयाम्यहम् मार्षाः! शक्रं देवानामिन्द्रं शाम्बरिमायाम्"इति? मा खलु त्वम्, मार्षः! वाचयसि शक्रं देवानामिन्द्रं शाम्बरिमायाम्"इति। अथ खलु, भिक्षवः! वेपचित्ति असुरेन्द्रः शक्रं देवानामिन्द्रं गाथया अध्यभाषिष्ट—

''मायावी मघवन् शक्रः, देवराज सुजम्पते।
उपैति निरयं घोरम्, शम्बर एव शतं समम्"इति॥

4. श्रावस्त्यां....पे...आरामे। तस्मिन् खलु पुनः समये द्वौ भिक्षू सम्प्रायौक्ताम्। तत्रैको भिक्षुः अत्यसरत्। अथ खलु सः भिक्षुः तस्य भिक्षोः अन्तिके अत्ययं अत्ययतो देशयति; सः भिक्षुः न प्रतिगृह्णाति। अथ खलु सम्बहुलाः भिक्षवः यत्र भगवान् तत्रोपसमक्रमिषुः;

(हिन्दी) चिकित्सा कर दूँ''। असुरेन्द्र ने कहा- ''मैं असुरों से परामर्श करके ही इस विषय में कुछ निश्चित कह पाऊँगा।''

''भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र ने असुरों के पास जाकर पूँछा-' मार्ष! क्या मैं देवराज को शाम्बरी माया सिखा दूँ?' असुरों ने कहा- 'नहीं, मार्ष! उन्हें यह माया न सिखाना।'

''भिक्षुओं! तब असुरेन्द्र वेपचित्ति ने देवराज से यह गाथा कही-

'हे माधवन्, देवराज, सुजाम्पति! माया करने वाला घोर नरक में गिरता है। उसे वहाँ सैकड़ों वर्ष तक वह नरक, शम्बर की तरह, भोगना पड़ता है।''

4. श्रावस्ती में। उस समय दो भिक्षुओं में किसी बात पर कलह हो गया। तब उनमें से एक भिक्षु को अपना अपराध समझ में आ गया। तब, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु से क्षमा माँगने गया; परन्तु उस दूसरे भिक्षु ने उसको क्षमा करना स्वीकार नहीं किया। तब कुछ भिक्षुओं ने जहाँ भगवान् थे वहाँ आये और भगवान् का

उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं– ''इध, भन्ते, द्वे भिक्खू सम्पयोजेसुं, तत्रेको भिक्खु अच्चसरा। अथ खो सो, भन्ते, भिक्खु तस्स भिक्खुनो सन्तिके अच्चयं अच्चयतो देसेति, सो भिक्खु नप्पटिग्गण्हाती''ति।

''द्वेमे, भिक्खवे, बाला। यो च अच्चयं अच्चयतो न पस्सति, यो च अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं नप्पटिग्गण्हा''ति– इमे खो, भिक्खवे, द्वे बाला। ''द्वेमे, भिक्खवे, पण्डिता। यो च अच्चयं अच्चयतो पस्सति, यो च अच्चयं देसेन्तस्स यथाधम्मं पटिग्गण्हा''ति– इमे खो, भिक्खवे, द्वे पण्डिता। 'भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुधम्मायं सभायं देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''कोधो वो वसमायातु, मा च मित्ते हि वो जरा।
अगरहियं मा गरहित्थ, मा च भासित्थ पेसुणं।

(संस्कृतच्छाया) उपसङ्क्रम्य भगवन्तम् अभिवाद्य एकान्ते न्यसीदन्। एकान्ते निषण्णाः खलु ते भिक्षवः भगवन्तम् एतदवोचन्— इह, भदन्त! द्वौ भिक्षू सम्प्रायौक्ताम्, तत्रैको भिक्षुः अत्यसरत्। अथ खलु सः, भदन्त! भिक्षुः तस्य भिक्षोः अन्तिके अत्ययम् अत्ययतो देशयति, सः भिक्षुः न प्रतिगृह्णाति''इति।

द्वौ इमौ, भिक्षवः! बालौ। यश्च अत्ययम् अत्ययतः न पश्यति, यश्च अत्ययं देशयतः यथाधर्मं न प्रतिगृह्णाति— इमौ खलु भिक्षवः! द्वौ बालौ। द्वौ इमौ, भिक्षवः! पण्डितौ। यश्च अत्ययम् अत्ययतः पश्यति, यः च अत्ययं देशयतः यथाधर्म प्रतिगृह्णाति— इमौ खलु, भिक्षवः! द्वौ पण्डितौ। भूतपूर्वं, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुधर्मायां सभायां देवान् त्रायस्त्रिंशान् अनुनयमानः तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

''क्रोधो वः वशमायातु, मा च मित्रे हि वः जरा।
अगर्ह्यं मा गर्हताम्, मा च भाषितां पैशुन्यम्।

(हिन्दी) अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे, उन भिक्षुवों ने भगवान् से कहा- 'भन्ते! यहाँ दो भिक्षुओं में किसी बात पर कलह हो गयी। तब उनमें से एक भिक्षु को अपना अपराध समझ में आ गया। तब, वह भिक्षु दूसरे भिक्षु से क्षमा माँगने गया; परन्तु उस दूसरे भिक्षु ने उसको क्षमा करना स्वीकार नहीं किया। ''ये दोनों ही भिक्षु मूर्ख हैं। जो पहले अपराध को अपराध नहीं मानता तथा जो बाद में दूसरे द्वारा क्षमा माँगने पर क्षमा नहीं करता। इसके विपरीत ये दोनों बुद्धिमान कहलाते हैं- जो अपराध को पहले ही अपराध की तरह स्वीकार कर लेता है तथा जो दूसरे के द्वारा क्षमा माँगने पर क्षमा कर देता है। ''भिक्षुओं! पहले कभी देवराज शक्र ने अपनी सुधर्मा देवसभा में देवों द्वारा पूँछे जाने पर यह गाथा कही-

'आप लोग अपने क्रोध को वश में रखें। मित्रों के साथ व्यर्थ क्रोध नहीं करना चाहिये कि तुम्हारी मित्रता में कलङ्क लग जाय। अनिन्दनीय पुरुष की निन्दा नहीं करनी चाहिये। तथा किसी की झूठी चुगली

अथ पापजनं कोधो, पब्बतोवाभिमद्दती''ति॥

11.3.5. अक्कोधसुत्तं

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू...पे॰... भगवा एतदवोच– ''भूतपुब्बं, भिक्खवे, सक्को देवानमिन्दो सुधम्मायं सभायं देवे तावतिंसे अनुनयमानो तायं वेलायं इमं गाथं अभासि–

''मा वो कोधो अज्झभवि, मा च कुज्झित्थ कुज्झतं।
अक्कोधो अविहिंसा च, अरियेसु च पटिपदा।
अथ पापजनं कोधो, पब्बतोवाभिमद्दती''ति॥

ततियो वग्गो।

तस्सुद्दानं–

छेत्वा दुब्बण्णियमाया, अच्चयेन अकोधनो।
देसितं बुद्धसेट्ठेन, इदं हि सक्कपञ्चकं ति॥

(संस्कृतच्छाया) अथ पापजनं क्रोधः, पर्वतः इव अभिमर्दति''इति॥

5. एवं मया श्रुतम्। एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डकस्य आरामे। तत्र खलु भगवान् भिक्षून्...पे॰...भगवान् एतदवोचत्— भूतपूर्वम्, भिक्षवः! शक्रो देवानामिन्द्रः सुधर्मायां सभायां देवान् त्रायस्त्रिंशान् अनुनयमानः तस्यां वेलायाम् इमां गाथाम् अभाषिष्ट—

मा वः क्रोधः अध्यभवत्, मा च अक्रुध्यत् क्रुध्यन्तम्।
अक्रोधः अविहिंसा च, आर्येषु च प्रतिपदाः।
अथ पापजनं क्रोधः, पर्वत इव अभिमृद्राति''इति॥

तस्योद्दानम्– छित्वा दुर्वर्णिन्माया, अत्ययेन अक्रोधनः।
देशितं बुद्धश्रेष्ठेन, इदं हि शक्र पञ्चकम् इति॥

(हिन्दी) भी नहीं करनी चाहिये। यह क्रोध तो असंयत पुरुष को पर्वत की तरह दबा देता है।''

5. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे थे।.... भगवान् ने कहा- भिक्षुओं! पूर्वकाल में देवेन्द्र शक्र ने सुधर्मा सभा में दो त्रायिस्त्रंश देवों के कलह का निपटारा करते हुए यह गाथा कही-

"तुम्हें क्रोध अपने वश में न कर ले। क्रोध करने वाले पर भी तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। अक्रोध एवं अहिंसा ये दोनों आर्यों के परम्परागत गुण हैं। क्रोध तो क्रोधी पुरुष को पर्वत की तरह दबा देता है।''

इस वर्ग का उदान- इस वर्ग में छित्वासूत्र, दुर्वर्णसूत्र, मायासूत्र, अक्षयसूत्र एवं अक्रोधसूत्र। यह वर्ग शक्रपंचक कहलाता है; क्योंकि इसमें सभी सूत्रों में शक्र के साथ हुआ संवाद वर्णित है।

तस्सुद्दानं–

देवता देवपुत्तो च, राजा मारो च भिक्खुनी।
ब्रह्मा ब्राह्मण व वनयक्खेन वासवो ति॥

सगाथवग्गसंयुत्तपालि निट्ठिता।

(संस्कृतच्छाया)

तस्योद्दानम्–

देवता देवपुत्तश्च, राजा मारश्च भिक्षुणी।
ब्रह्मा ब्राह्मण व वनयक्षेण वासवः"इति॥

सगाथवग्गसंयुत्तपालि निष्ठिता।

(हिन्दी) सगाथ वग्ग के संयुत्तो की सूची- देवतासंयुत्त, देवपुत्रसंयुत्त, कोसलसंयुत्त, मारसंयुत्त, भिक्षुणीसंयुत्त, ब्रह्मसंयुत्त, ब्राह्मणसंयुत्त, वङ्गीशसंयुत्त, वनसंयुत्त, यक्षसंयुत्त एवं शक्रसंयुत्त।

सक्कसंयुत्तं समत्तं।

सगाथवग्गो पठमो

******

परिशिष्ट-

संयुत्तनिकायपालि

गाथानुक्कमणिका (सुत्त संख्या निर्दिष्ट है)

अकतं दुक्कटं सेय्यो	2.1.8	अद्धा पजानासि ममेतमायुं	6.1.4
अकम्पितं अपज्जलितं	5.1.7	अद्धा मं यक्ख जानासि	9.1.14
अकम्मुना देवसेट्ठ	11.1.1,11.1.2	अद्धा सुयिट्ठं सुहुतं मम यिदं	7.1.9
अक्कोधस्स कुतो कोधो	7.1.2	अनघो वे अहं यक्ख	2.2.8
अक्खेय्यसञ्ञिनो सत्ता	1.2.10	अनङ्गणस्स पोसस्स	9.1.14
अघजातस्स वे नन्दी	2.2.8	अनत्थसंहितं ञत्वा	4.1.1
चिरस्सं वत पस्सामि	2.2.8	अनन्तदस्सी भगवाहमस्मि	6.1.4
अच्चन्तं मतपुत्ताम्हि	5.1.3	अनागतप्पजप्पाय	1.1.10
अच्चयं देसयन्तीनं	1.4.5,1.4.5	अनिच्चा अद्धुवा कामा	9.1.2
अच्चयन्ति अहोरत्ता	4.1.10	अनिच्चा वत सङ्खारा	6.2.5
अच्चयो चे न विज्जेथ	1.4.5	अनिमित्तञ्च भावेहि	8.4
अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो	1.1.4,2.3.7	अनुट्ठहं अवायामं	11.1.1,11.1.2
अच्छरागणसङ्घुट्ठं	1.5.6	अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं	1.5.5
अच्छेज्ज तण्हं गणसङ्घचारी	4.3.5	अन्तकेनाधिपन्नस्स	3.1.4
अजेळका च गावो च	3.1.9	अन्तलिक्खचरो पासो	4.2.5
अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया	8.7	अन्तो जटा बहि जटा	1.3.3,7.1.6
अज्जापि ते आवुसो सा दिट्ठि	6.1.5	अन्धकारे पुरे होति	7.2.4,7.2.4
अञ्ञथा सन्तमत्तानं	1.4.5	अन्नं पानं खादनीयं	3.3.4
अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं	7.1.8,7.1.9,7.2.1	अन्नदो बलदो होति	1.5.2
अड्ढो चे पुरिसो राज	3.3.1,3.3.1	अन्नमेवाभिनन्दन्ति	2.3.3
अतीतं नानुसोचन्ति	1.1.10	अन्नमेवाभिनन्दन्ति	1.5.3
अत्तानं न ददे पोसो	1.8.8	अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा	6.1.1
अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा	3.1.4	अपुञ्ञं पसवि मारो	4.2.8
अत्थस्स पतिं हदयस्स सन्तिं	4.3.5	अप्पञ्हि एतं न हि दीघमायु	6.1.4
अत्थाय वत मे बुद्धो	10.12	अप्पमत्तको अयं कलि	6.1.10,6.1.9
अत्थि निस्सरणं लोके	5.1.1	अप्पमत्तो उभो अत्थे	3.2.8
अत्थि सक्यकुले जातो	5.1.8	अप्पमादं पसंसन्ति	3.2.7
अथ अग्गि दिवारत्तिं	1.3.6,2.1.4	अप्पमायु मनुस्सानं	4.1.9
अथ अन्तेन जहति	1.5.1	अप्पमेय्यं पमिनन्तो	6.1.7,6.1.8
अथ सट्ठिनिस्सिता सवितक्का	8.2	अप्पस्मेके पवेच्छन्ति	1.4.2,1.4.3
अथायं इतरा पजा	6.2.3	अबलं तं बलं आहु	11.1.4,11.1.5

गाथानुक्रमणिका
गाथायोस

अकतं दुक्कटं सेय्यो 2.1.8
अकम्पितं अपज्जलितं 5.1.7
अकम्मुना देवसेट्ठ 11.1.1, 11.1.2
अक्कोधस्स कुतो कोधो 7.1.2
अक्खेय्यसञ्ञिनो सत्ता 1.2.10
अघजातस्स वे नन्दी 2.2.8
चिरस्सं वत पस्सामि 2.2.8
अच्चन्तं मतपुत्ताम्हि 5.1.3
अच्चयंदेसयन्तीनं 1.4.5,1.4.5
अच्चयन्ति अहोरत्ता 4.1.10
अच्चयो चे न विज्जेथ 1.4.5
अच्चेन्तिकालातरयन्तिरत्तियो 1.1.4,2.3.7
अच्छरागणसङ्घुट्ठं 1.5.6
अच्छेज्ज तण्हं गणसङ्घचारी 4.3.5
अजेळका च गावो च 3.1.9
अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया 8.7
अज्जापि ते आवुसो सा दिट्ठि 6.1.5
अञ्ञथा सन्तमत्तानं 1.4.5
अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं 7.1.8,7.1.9, 7.2.1
अड्ढो चे पुरिसो राज 3.3.1,3.3.1
अतीतं नानुसोचन्ति 1.1.10
अत्तानं न ददे पोसो 1.8.8
अत्तानञ्चे पियं जञ्ञा 3.1.4
अत्थस्स पत्तिं हृदयस्स सन्तिं 4.3.5
अत्थाय वत मे बुद्धो 10.12
अत्थि निस्सरणं लोके 5.1.1
अत्थित्थ सक्यकुले जातो 5.1.8
अथ अग्गि दिवारत्तिं 1.3.6,2.1.4
अथ अन्तेन जहति 1.5.1
अथ सट्ठिनिस्सिता सवितक्का 8.2
अथायं इतरा पजा 6.2.3
अद्धा पजानासि ममेतमायुं 6.1.4
अद्धा मं यक्ख जानासि 9.1.14
अद्धा सुयिट्ठं सुहुतं मम यिदं 7.1.9
अनघो वे अहं यक्ख 2.2.8
अनङ्गणस्स पोसस्स 9.1.14
अनत्थसंहितं ञत्वा 4.1.1
अनन्तदस्सी भगवाहमस्मि 6.1.4
अनागतप्पजप्पाय 1.1.10
अनिच्चा अद्धुवा कामा 9.1.2
अनिच्चा वत सङ्खारा 6.2.5
अनिमित्तञ्च भावेहि 8.4
अनुट्ठहंअवायामं 11.1.1,11.1.2
अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं 1.5.5
अन्तकेनाधिपन्नस्स 3.1.4
अन्तलिक्खचरो पासो 4.2.5
अन्तो जटा बहि जटा 1.3.3,7.1.6
अन्धकारे पुरे होति 7.2.4,7.2.4
अन्नं पानं खादनीयं 3.3.4
अन्नदो बलदो होति 1.5.2
अन्नमेवाभिनन्दन्ति 2.3.3
अन्नमेवाभिनन्दन्ति 1.5.3
अपारुता तेसं अमतस्स द्वारा 6.1.1
अपुञ्ञं पसवि मारो 4.2.8
अप्पञ्हि एतं न हि दीघमायु 6.1.4
अप्पमत्तको अयं कलि 6.1.10,6.1.9
अप्पमत्तो उभो अत्थे 3.2.8
अप्पमादं पसंसन्ति 3.2.7
अप्पमायु मनुस्सानं 4.1.9
अप्पमेय्यं पमिनन्तो 6.1.7,6.1.8
अप्पस्मेके पवेच्छन्ति 1.4.2,1.4.3
अबलं तं बलं आहु 11.1.4,11.1.5
अभयं याचमानानं 11.1.10
अभिक्कम गहपति 10.8
अभिधावथ भद्दन्ते 10.5

अभयं याचमानानं 11.1.10
अभिक्कम गहपति 10.8
अभिधावथ भद्दन्ते 10.5
अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु 1.2.10,1.2.10
अमच्चुधेय्यं पुच्छन्ति 4.3.4
अमनुस्सट्ठाने उदकंव सीतं 3.2.9
अम्मा न ब्याहरिस्सामि 10.7
अयोनिसो मनसिकारा 9.1.11
अरञ्ञे रुक्खमूले वा 11.1.3
अरञ्ञे विहरन्तानं 1.1.10
अरतिं पजहासि सतो 9.1.1
अरति विय मेज्ज खायति 9.1.4
अरतिञ्च रतिञ्च पहाय 8.2
अरहं सुगतो लोके 4.3.5, 7.2.3
अरहन्ते सीतीभूते 7.2.5
अलद्धा तत्थ अस्सादं 4.3.4
अलस्वस्स अनुट्ठाता 11.1.1,11.1.2
अविरुद्धा विरुद्धेसु 11.2.10
अविहं उपपन्नासे 1.5.10,2.3.4
असन्ता किर मं जम्मा 7.2.4, 7.2.4
असल्लीनेन चित्तेन 6.2.5
असुद्धो मञ्ञसि सुद्धो 4.1.1
असुभाय चित्तं भावेहि 8.4
अस्समेधं पुरिसमेधं 3.1.9
अस्सोव जिण्णो निब्भोगो 7.2.4,7.2.4
अहञ्च सीलसम्पन्ने 11.2.8
अहु पुरे धम्मपदेसु छन्दो 9.1.10
आकिण्णलुद्दो पुरिसो 9.1.14
आदित्तस्मिं अगारस्मिं 1.5.1
आमोदमानो पकिरेति 3.3.4
आयुं अरोगियं वण्णं 3.2.7
आरद्धवीरियं पहितत्तं 9.1.2
आरम्भथ निक्कमथ 6.2.4
आरामचेत्या वनचेत्या 11.2.5
आरामरोपा वनरोपा 1.5.7
आहुनेय्यो वेदगु भावितत्तो 6.1.3
इङ्घ अञ्ञेपि पुच्छस्सु 10.12
इच्छाय बज्झती लोको 1.7.9
इतिहेतं विजानाम 1.5.9
इतो बहिद्धा पासण्डा 5.1.8
इत्थिभावो किं कयिरा 5.1.2
इत्थीपि हि एकच्चिया 3.2.6
इदं वत्वान मघवा 11.2.10,11.2.8,11.2.9
इदञ्हि जातु मे दिट्ठं 6.2.3
इदञ्हि तं जेतवनं 1.5.8,2.2.10
इध छिन्दितमारिते 2.3.10
इधागमा विज्जुपभासवण्णा 1.4.10
इमिना पूतिकायेन 5.1.4
इसयो सम्बरं पत्ता 11.1.10
इसीनं अभयं नत्थि 11.1.10
इस्सत्तं बलवीरियञ्च 3.3.4
उग्गपुत्ता महिस्सासा 8.1
उच्चावचेहि वण्णेहि 3.1.1
उजुको नाम सो मग्गो 1.5.6
उट्ठेहि भिक्खु किं सेसि 9.1.2
उट्ठेहि वीर विजितसङ्गाम 6.1.1,11.2.7
उद्धं अधो च तिरियं 4.3.3,2.3.4
उपको पलगण्डो च 1.5.10
उपधीसु जना गधितासे 8.2
उपधीहि नरस्स सोचना 4.1.8
उपनीयति जीवितमप्पमायु 2.2.9,1.1.3
उपोसथं उपवसन्ति 10.5
उभिन्नं तिकिच्छन्तानं 11.1.4,11.1.5,7.1.2, 7.1.3

उभिन्नमत्थं चरति 11.1.4,11.1.5,7.1.2, 7.1.3
उभो पुञ्ञञ्च पापञ्च 3.1.4
उम्मग्गपथं मारस्स अभिभुय्य 8.8
एकका मयं अरञ्ञे विहराम 9.1.9
एककोव त्वं अरञ्ञे विहरसि 9.1.9
एकमूलं द्विरावट्टं 1.5.4
एको विवित्ते सयनासनम्हि 4.2.3
एणिजङ्घं किसं वीरं 1.3.10
एतं तेसं पिहयामि 11.2.10
एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा 3.1.10
एतं यजेथ मेधावी 3.1.9
एतञ्च समतिक्कम्म 4.2.7
एतदेव अहं मञ्ञे 11.1.4,11.1.5
एतदेव तितिक्खाय 11.1.4,11.1.5
एताहि तीहि विज्जाहि 7.1.8
एत्थ दज्जा देय्यधम्मं 7.2.3
एवं आदित्तको लोको 1.5.1
एवं खन्धा च धातुयो 5.1.9
एवं जरा च मच्चु च 3.3.5
एवं धम्मा अपक्कम्म 2.3.2
एवं बुद्धं सरन्तानं 11.1.3
एवं विजितसङ्गामं 8.7
एवं विरत्तं खेमत्तं 4.2.6
एवं सतं सहस्सानं 1.4.2
एवं सुदेसिते धम्मे 8.8
एवंविहारीबहुलोध भिक्खु 4.3.5
एवञ्चे मं विहरन्तं 8.1
एवञ्हि धीरा कुब्बन्ति 4.3.3
एवमेतं तदा आसि 2.3.4,1.5.10
एवमेतं पुराणानं 2.3.4,1.5.10
एवमेसा कसी कट्ठा 7.2.1
एस देवमनुस्सानं 10.7
एसा अन्तरधायामि 5.1.5
एसूपमा दामलि ब्राह्मणस्स 2.1.5
एसो हि ते ब्राह्मणि ब्रह्मदेवो 6.1.3
ओघस्स नित्थरणत्थं 8.8
कं नु उद्दिस्स मुण्डासि 5.1.8
कच्चि ते कुटिका नत्थि 1.2.9
कच्चि त्वं अनघो भिक्खु 2.2.8
कति छिन्दे कति जहे 1.1.5
कति जागरतं सुत्ता 1.1.6
कति लोकस्मिं छिद्दानि 1.8.6
कति लोकस्मिं पज्जोता 1.3.6,2.1.4
कतिहं चरेय्य सामञ्ञं 1.2.7
कत्थ दज्जा देय्यधम्मं 7.2.3
कथं त्वं अनघो भिक्खु 2.2.8
कथं नु दानि पुच्छेय्यं 10.12
कथं विहारीबहुलोध भिक्खु 4.3.5
कथंसु तरति ओघं 2.2.5,10.12
कथंसु लभते पञ्ञं 10.12
कथञ्हि भगवा तुय्हं 4.3.3
कप्पो च ते बद्धचरो अहोसिं 6.1.4
कम्मं विज्जा च धम्मो 2.2.10,1.5.8
कयिरा चे कयिराथेनं 2.1.8
करणीयमेतं ब्राह्मणेन 2.1.5
कस्मा तुवं धम्मपदानि भिक्खु 9.1.10
कस्सच्चया न विज्जन्ति 1.4.5
कामं मञ्ञतु वा मा वा 11.1.4,11.1.5
कामरागेन डय्हामि 8.4
कायगुत्तो वचीगुत्तो 7.2.1
कायेन संवरो साधु 3.1.5

कालं वोहं न जानामि 1.2.10,1.2.10
काले पविस नागदत्त 9.1.7
कावेय्यमत्ता विचरिम्ह पुब्बे 8.12
किं जीरति किं न जीरति 1.8.6
किं नु जातिं न रोचेसि 5.1.6
किं नु तेसं पिहयसि 11.2.10
किं नु त्वं मतपुत्ताव 5.1.3
किं नु सत्तोति पच्चेसि 5.1.10
किं नु सन्तरमानोव 2.1.10, 2.1.9
किं मे कता राजगहे मनुस्सा 10.9
किं सोप्पसि किं नु सोप्पसि 4.1.7
किंददो बलदो होति 1.5.2
किंसु अजरसा साधु 1.6.2
किंसु अलसं अनलसञ्च 1.8.10
किंसु इस्सरियं लोके 1.8.7
किंसु उप्पततं सेट्ठं 1.8.4
किंसु उप्पथो अक्खातो 1.6.8
किंसु छेत्वा सुखं सेति 1.8.1,11.3.1,2.1.3, 7.1.1
किंसु जनेति पुरिसं 1.6.5,1.6.6,1.6.7
किंसु दुतिया पुरिसस्स होति 1.6.9
किंसु निदानं गाथानं 1.6.10
किंसु पवसतो मित्तं 1.6.3
किंसु बन्धति पाथेय्यं 1.8.9
किंसु माता पिता भाता 1.8.11
किंसु याव जरा साधु 1.6.1
किंसु रथस्स पञ्ञाणं 1.8.2
किंसु लोकस्मि पज्जोतो 1.8.10
किंसु वत्थु मनुस्सानं 1.6.4
किंसु संयोजनो लोको 1.7.4
किंसु सब्बं अद्धभवि 1.7.1
किंसु सम्बन्धनो लोको 1.7.5
किंसु हरन्तं वारेन्ति 1.8.7
किंसूध भीता जनता अनेका 1.8.5
किंसूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं 1.8.3,10.12
किच्छेन मे अधिगतं 6.1.1
किञ्चापि ते तं जलते विमानं 6.1.6
किन्ताहं कुटिकं ब्रूमि 1.2.9
किन्नु सीहोव नदसि 4.2.2
किमत्थकामो न ददे 1.8.8
किस्मिं लोको समुप्पन्नो 1.7.10
कीदिसो तेसं विपाको 1.5.9
कुक्कुळा उब्भतो तात 10.5
कुतो सरा निवत्तन्ति 1.3.7
कुद्धाहं न फरुसं ब्रूमि 11.3.2
कुम्भकारो पुरे आसिं 2.3.4,1.5.10
कुम्मोव अङ्गानि सके कपाले 1.2.7
कुलाकुलं पिण्डिकाय चरन्तो 6.2.3
कुलावका मातलि सिम्बलिस्मिं 11.1.6
कुसली भाससी तेसं 1.5.10,2.3.4
कुसोयथादुग्गहितो 2.1.8
के च ते अतरुं पङ्कं 2.3.4,1.5.10
के नु कम्मन्ता करीयन्ति 7.2.7
केनस्सु उड्डितो लोको 1.7.7
केनस्सु नीयति लोको 1.7.2,1.7.3
केनस्सु पिहितो लोको 1.7.8
केनस्सु बज्झती लोको 1.7.9
केनस्सुब्भाहतो लोको 1.7.6
केनायं पकतो सत्तो 5.1.10
केनासि दुम्मनो तात 4.3.5
केनिदं पकतं बिम्बं 5.1.9
केनेस यञ्ञो विपलो महग्गतो 1.4.2

केसं दिवा च रत्तो च 1.5.7
केसु न मानं कयिराथ 7.2.5
केसूध अरणा लोके 1.8.11
कोधं छेत्वा सुखं सेति 1.8.1,11.3.1,2.1.3, 7.1.1
कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं 1.4.6,1.4.4
कोधो वो वसमायातु 11.3.4
खत्तियं जातिसम्पन्नं 3.1.1
खत्तियो द्विपदं सेट्ठो 1.2.4
खत्तियो ब्राह्मणो वेस्सो 7.1.7
खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं 6.2.1
गङ्गाय सोतस्मिं गहीतनावं 6.1.4
गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं 11.1.9
गमनेन न पत्तब्बो 2.3.6
गम्भीरं भाससी वाचं 1.5.10,2.3.4
गम्भीरपञ्ञो मेधावी 8.6
गम्भीररूपे बहुभेरवे वने 7.2.8
गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं 7.1.8, 7.1.9, 7.2.1
गामे वा यदि वा रञ्ञे 3.1.1,11.2.5
गिरिदुग्गचरं छेतं 9.1.3
चक्कवत्ती यथा राजा 8.7
चतुचक्कं नवद्वारं 2.3.8,1.3.9
चत्तारो च पटिपन्ना 11.2.6
चत्तारो लोके पज्जोता 1.3.6,2.1.4
चन्दो यथा विगतवलाहके नभे 8.11
चरका बहू भेरवा बहू 4.1.6
चरन्ति बाला दुम्मेधा 2.3.2
चातुद्दसिं पञ्चदसिं 10.5
चातुद्दसिं पञ्चदसिं 10.5
चित्तस्मिं वसीभूताम्हि 5.1.5
चित्तेन नीयति लोको 1.7.2
चिरस्सं वत पस्सामि 1.1.1
चोरं हरन्तं वारेन्ति 1.8.7
चोळं पिण्डो रती खिड्डा 1.5.9
छ लोकस्मिं छिद्दानि 1.8.6
छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं 1.4.4
छन्दरागस्स विनया 9.1.2
छन्दो निदानं गाथानं 1.6.10
छसु लोको समुप्पन्नो 1.7.10
छिन्द सोतं परक्कम्म 2.1.8
छेत्वा अविज्जं विज्जाय 9.1.2
छेत्वा खीलं छेत्वा पलिघं 1.4.7
छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च 2.3.8,1.3.9
जग्गं न सङ्के नपि भेमि सोतुं 4.2.3
जयं वे मञ्ञति बालो 7.1.3
जयं वेरं पसवति 3.2.4
जातस्स मरणं होति 5.1.6
जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता 3.1.3
जेगुच्छी निपको भिक्खु 2.3.10
जेत्वान मच्चुनो सेनं 4.3.3
ठानञ्हि मञ्ञति बालो 3.2.5
ठानञ्हि सो मनुजिन्दो 3.1.1
ठिते मज्झन्हिके काले 1.2.5,9.1.12
तं चे हि नाद्दक्खुं तथाविमुत्तं 1.4.4
तं नमस्सन्ति तेविज्जा 11.2.8
तग्घ मे कुटिका नत्थि 1.2.9
तञ्च कम्मं कतं साधु 2.3.2
तञ्च पन अप्पटिवानीयं 10.9
तञ्हि एते नमस्सेय्युं 11.2.10
तञ्हि तस्स न होतीति 1.2.10
तञ्हि तस्स सकं होति 3.2.10

तण्हा जनेति पुरिसं 1.6.5,1.6.6,1.6.7
तण्हाधिपन्ना वतसीलबद्धा 1.4.8
तण्हाय उड्डितो लोको 1.7.7
तण्हाय नीयति लोको 1.7.3
तत्थ चित्तं पणिधेहि 9.1.6
तत्र भिक्खवो समादहंसु 1.4.7
तथागतं अरहन्तं 2.1.10, 2.1.9
तथागतस्स बुद्धस्स 1.4.5
तथाविधं सीलवन्तं वदन्ति 2.2.4
तथेव खन्तिसोरच्चं 3.3.4
कारये अस्समे रम्मे 3.3.4
तथेव सद्धो सुतवा 3.3.4
तदासि यं भिंसनकं 6.2.5
तपोकम्मा अपक्कम्म 4.1.1
तपोजिगुच्छाय आयुत्ता 2.3.10
तपोजिगुच्छाय सुसंवुतत्तो 2.3.10
तमेव वाचं भासेय्य 8.5
तयो सुपण्णा चतुरो च हंसा 6.1.6
तस्मा अखिलोध पधानवा 8.3
तस्मा करेय्य कल्याणं 3.1.4,3.2.10,3.3.2
तस्मा विनेय्य मच्छेरं 1.4.2,1.5.3,2.3.3
तस्मा सतञ्च असतं चरे 1.4.2,1.4.2
तस्मा सद्धञ्च सीलञ्च 11.2.4
तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो 2.3.6
तस्मा हि अत्तकामेन 6.1.2
तस्मा हि पण्डितो पोसो 1.5.8,2.2.10
सारिपुत्तोव पञ्ञाय 2.2.10
तस्मा हि पण्डितो पोसो 3.1.1,3.3.5
तस्मिं पसन्ना अविकम्पमाना 6.1.3
तस्स तं देसयन्तस्स 8.6
तस्स सोकपरेतस्स 4.3.3
तस्सा यो जायति पोसो 3.2.6
तस्सेव तेन पापियो 11.1.4,11.1.5,7.1.2, 7.1.3
तावतिंसा च यामा च 5.1.7
तीहि विज्जाहि सम्पन्नो 7.1.8
तुण्ही उत्तरिके होहि 10.7
तुण्हीभूतो भवं तिट्ठं 7.2.3
ते चेतसा अनुपरियेति 8.10
एवं सब्बङ्गसम्पन्नं 8.10
ते मतेसु न मीयन्ति 1.4.2
ते हि पारं गमिस्सन्ति 2.2.1
ते हि सोत्थिं गमिस्सन्ति 2.2.1
तेविज्जा इद्धिपत्ता च 6.1.5
तेसं दिवा च रत्तो च 1.5.7
तेसु उस्सुक्कजातेसु 1.3.8
दण्डोव किर मे सेय्यो 7.2.4
ददन्ति हेके विसमे निविट्ठा 1.4.2
ददमानं न वारेति 3.3.1
ददमानं निवारेति 3.3.1
दद्दल्लमाना आगञ्छुं 4.3.5
दब्बो चिररत्तसमाहितो 8.2
दलिद्दो पुरिसो राज 3.3.1
दहरा त्वं रूपवती 5.1.4
दानञ्च युद्धञ्च समानमाहु 1.4.3
दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो 3.2.7
दिन्नं सुखफलं होति 1.5.1
दिवाविहारा निक्खम्म 8.8
दीघमायु मनुस्सानं 4.1.9
दुक्करं दुत्तितिक्खञ्च 1.2.7
दुक्करं भगवा 2.1.6
दुक्खमेव हि सम्भोति 5.1.10

दुग्गता देवकञ्ञायो 9.1.6
दुद्ददं ददमानानं 1.4.2
दुप्पोसं कत्वा अत्तानं 2.3.5, 9.1.13
दुल्लभा भगवा यदिदं 2.1.6
दुस्समादहं भगवा यदिदं 2.1.6
दुग्गमो भगवा विसमो 2.1.6
दूरे इतो ब्राह्मणि ब्रह्मलोको 6.1.3
द्वासत्तति गोतम पुञ्ञकम्मा 6.1.4
धजो रथस्स पञ्ञाणं 1.8.2
धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं 3.2.10
धम्मो रहदो ब्राह्मण सीलतित्थो 7.1.9,7.2.11
धीरो च विञ्ञू अधिगम्म भोगे 3.2.9
न अञ्ञत्र भगवता 2.3.4,1.5.10
न तं कम्मं कतं साधु 2.3.2
न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा 3.1.10
न तत्थ हत्थीनं भूमि 3.3.5
न तस्स पच्छा न पुरत्थमत्थि 6.1.3
विसेनिभूतो उपसन्तचित्तो 6.1.3
न ते कामा यानि चित्रानि 1.4.4
न ते सुखं पजानन्ति 1.2.1,9.1.6
न तेन भिक्खको होति 7.2.10
न तेसं कोट्ठे ओपेन्ति 11.2.10
न तेहि यक्खा कीळन्ति 10.5
न त्वं बाले पजानासि 1.2.1
न त्वं बाले विजानासि 9.1.6
न पच्चनीकसातेन 7.2.6
न ब्राह्मणो सुज्झति कोचि 7.1.7
न मन्दिया सयामि नापि 4.2.3
न मानं ब्राह्मण साधु 7.2.5
न मानकामस्स दमो इधत्थि 1.1.9,1.4.8
न मे मारिस सा दिट्ठि 6.1.5
न मे वनस्मिं करणीयमत्थि 7.2.7
न यत्थ गीतं नपि यत्थ वादितं 7.2.8
न यिदं भासितमत्तेन 1.4.5
न वण्णरूपेन नरो सुजानो 3.2.1
न वे धीरा पकुब्बन्ति 1.4.5
न सन्ति कामा मनुजेसु 1.4.4
न सब्बतो मनो निवारये 1.3.4
न सूपहतचित्तोम्हि 11.3.2
न हरामि न भञ्जामि 9.1.14
न हि नूनिमस्स समणस्स 7.1.10
न हि पुत्तो पति वापि 10.7
न हि मय्हं ब्राह्मण 7.1.10
कस्सको पटिजानासि 7.2.1
सद्धा बीजं तपो वुट्ठि 7.2.1
न हि सोचति भिक्खु कदाचि 8.3
नगस्स पस्से आसीनं 8.10
नत्थि अत्तसमं पेमं 1.2.3
नत्थि किच्चं ब्राह्मणस्स 2.1.5
नत्थि दानि पुनावासो 9.1.6
नत्थि निस्सरणं लोके 5.1.1
नत्थि पुत्तसमं पेमं 1.2.3
नदन्ति वे महावीरा 4.2.2
नदीतीरेसु सण्ठाने 9.1.8
नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा 1.2.2, 4.1.8
नन्दीसंयोजनो लोको 1.7.4
नन्दीसम्बन्धनो लोको 1.7.5
नभं फलेय्य पथवी चलेय्य 4.1.6
नमो तस्स भगवतो 7.1.1
नमो ते बुद्ध वीरत्थु 2.1.10, 2.1.9
नयन्ति वे महावीरा 4.3.5
नयिदं अत्तकतं बिम्बं 5.1.9

नागनामोसि भगवा	8.8
नाच्चयन्ति अहोरत्ता	4.1.10
नाञ्ञत्र बोज्झा तपसा	2.2.7
नाफुसन्तं फुसति च	1.3.2
नामं सब्बं अद्धभवि	1.7.1
नाहं भया न दुब्बल्या	11.1.4
नाहु अस्सासपस्सासो	6.2.5
निक्खन्तं वत मं सन्तं	8.1
निच्चं उत्रस्तमिदं चित्तं	2.2.7
निद्दं तन्दिं विजम्भितं	1.2.6
निद्दा तन्दी विजम्भिता	1.2.6
निब्बानं भगवा आह	10.7
निरयं तिरच्छानयोनिं	1.5.9
नेतं तव पतिरूपं	4.2.4
नेव तं उपजीवाम	9.1.14
नेसा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो	7.2.11
नो चे धम्मं सरेय्याथ	11.1.3
नो चे बुद्धं सरेय्याथ	11.1.3
पकुधको कातियानो निगण्ठो	2.3.10
पज्जोतकरो अतिविज्झ	8.8
पञ्च कामगुणा लोके	1.3.10
पञ्च छिन्दे पञ्च जहे	1.1.5
पञ्च जागरतं सुत्ता	1.1.6
पञ्चवेदा सतं समं	1.4.8
पञ्ञा लोकस्मि पज्जोतो	1.8.10
पटिकच्चेव तं कयिरा	2.3.2
पटिसोतगामिं निपुणं	6.1.1
पठमं कललं होति	10.1
पण्डितोति समञ्ञातो	2.3.9
पतिरूपकारी धुरवा	10.12
पतिरूपको मत्तिकाकुण्डलोव	3.2.1
पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं	3.2.2
पब्बतस्स सुवण्णस्स	4.2.10
पमादमनुयुञ्जन्ति	1.4.6
परसम्भतेसु भोगेसु	1.5.9
परोसहस्सं भिक्खूनं	8.8
पसंसिया तेपि भवन्ति भिक्खू	1.4.4
पस्सद्धकायो सुविमुत्तचित्तो	4.3.5
पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा	1.2.10
पहासि सङ्खं न विमानमज्झगा	1.4.4
पहीनमानस्स न सन्ति गन्था	1.3.5
पहूतभक्खं जालिनं	3.1.1
पाणेसु च संयमामसे	10.6
पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे	6.1.1
पापं न कयिरा वचसा मनसा	1.2.10,1.4.10
पियवाचंव भासेय्य	8.5
पियो लोके सको पुत्तो	10.7
पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ	2.2.4
पुञ्ञं वत पसवि बहुं	10.10, 10.11
पुत्ता वत्थु मनुस्सानं	1.6.4
पुनप्पुनं खीरनिका दुहन्ति	7.2.2
पुनप्पुनं जायति मीयति च	7.2.2
पुनप्पुनं याचका याचयन्ति	7.2.2
पुनप्पुनञ्चेव वपन्ति बीजं	7.2.2
पुनब्बसु सुखी होहि	10.7
पुब्बेनिवासं जानामि	8.12
पुब्बेनिवासं यो वेदी	7.2.3,7.1.8
पुरिसस्स हि जातस्स	6.1.10,6.1.9
पूजितो पूजनेय्यानं	7.2.3
फलं वे कदलिं हन्ति	6.2.2
बद्धोसि मारपासेन	4.1.4
बद्धोसि सब्बपासेहि	4.1.5

बहुनापि खो तं विभजेय्यं 1.4.10
बहुन्नं वत अत्थाय 8.12
बहुम्पि पलपं जप्पं 7.1.7, 7.1.8
बहूहि सद्दा पच्चूहा 9.1.8
बाला कुमुदनाळेहि 4.3.5
बीजं उप्पततं सेट्ठं 1.8.4
बुद्धानुबुद्धो सो थेरो 8.9
बुद्धे पसन्ना धम्मे च 1.5.9
बुद्धो धम्ममदेसेसि 5.1.6
भद्दियो खण्डदेवो च 1.5.10
भया नु मघवा सक्क 11.1.4
भायामि नागदतं सुप्पगब्भं 9.1.7
भिक्खु सिया झायी विमुत्तचित्तो 2.1.2, 2.2.3
भिय्यो पञ्चसता सेक्खा 6.2.3
भिय्यो बाला पभिज्जेय्युं 11.1.4, 11.1.5
भुञ्जतु भवं गोतमो 7.1.8
भोगे पत्थयमानेन 3.2.8
मं नमस्सन्ति तेविज्जा 11.2.8
मक्खेन मक्खिता पजा 8.3
मच्चुना पिहितो लोको 1.7.8
मच्चुनाब्भाहतो लोको 1.7.6
मच्छेरविनये युत्तं 11.2.1,11.2.2 ,11.2.3
मच्छेरा च पमादा च 1.4.2
मञ्ञामहं लोकाधिपतिसहब्यतं 7.2.8
मतं वा अम्म रोदन्ति 10.5
मतं वा पुत्त रोदन्ति 10.5
मनसा चे पसन्नेन 10.2
मनुजस्स सदा सतीमतो 3.2.3
मन्दिया नु खो सेसि उदाहु 4.2.3
ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्य 1.3.5
महद्धना महाभोगा 1.3.8
महानुभावो तेविज्जो 8.9
महावीर महापञ्ञ 4.3.3
महासमयो पवनस्मिं 1.4.7
मा जातिं पुच्छ चरणञ्च पुच्छ 7.1.9
मा पमादमनुयुञ्जेथ 1.4.6
मा ब्राह्मण दारु समादहानो 7.1.9
मा वो कोधो अज्झभवि 11.3.5
मा सद्दं करि पियङ्कर 10.6
मागधं गता कोसलं गता 9.1.4
मातरं कुटिकं ब्रूसि 1.2.9
मातरि पितरि चापि 7.2.5
मातापेत्तिभरं जन्तुं 11.2.1, 11.2.2, 11.2.3
मातापेत्तिभरो आसि 2.3.4
मानं पजहस्सु गोतम 8.3
मानं पहाय सुसमाहितत्तोअ 1.1.9,1.4.8
मानो हि ते ब्राह्मण खारिभारो 7.1.9
मायावी मघवा सक्क 11.3.3
मुत्ताहं मारपासेन 4.1.4
मुत्ताहं सब्बपासेहि 4.1.5
यो सुञ्ञगेहानि सेवति 4.1.6
मेदवण्णञ्च पासाणं 4.3.4
यं एणिकूलस्मिं जनं गहीतं 6.1.4
यं किञ्चि सिथिलं कम्मं 2.1.8
यं तं इसीहि पत्तब्बं 5.1.2
यं त्वं अपायेसि बहू मनुस्से 6.1.4
यं बुद्धो भासते वाचं 8.5
यं मुसा भणतो पापं 11.1.7
यं वदन्ति न तं मय्हं 4.2.9, 4.3.4
यं वदन्ति मम यिदन्ति 4.2.9
यं सावकेन पत्तब्बं 8.9
यजमानानं मनुस्सानं 11.2.6,11.2.6

यञ्च खो सीलसम्पन्नो 3.1.1
यञ्चस्स भुञ्जती माता 10.1
यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे 1.4.5
यञ्हि देवा मनुस्सा च 11.2.9
यतो यतो मनो निवारये 1.3.4
यत्थ आपो च पथवी 1.3.7
यत्थ नामञ्च रूपञ्च 2.3.4, 1.3.3, 1.5.10, 7.1.6
यत्थ भेरवा सरीसपा 6.2.3
यत्थालसो अनुट्ठाता 11.1.1, 11.1.2
यथा अञ्ञतरं बीजं 5.1.9
यथा नामं तथा चस्स 7.1.5
यथा साकटिको मट्ठं 2.3.2
यथा हि अङ्गसम्भारा 5.1.10
यथा हि मेघो थनयं 3.3.4
यथापि सेला विपुला 3.3.5
यदेव ते, मारिस 11.1.7
यमिध पथविञ्च वेहासं 8.2
यमेतं वारिजं पुप्फं 9.1.14
यस्स जालिनी विसत्तिका 4.1.7
यस्स नून सिया एवं 5.1.2
यस्स सद्धा तथागते 11.2.4
यस्स सब्बमहोरत्तं 10.4
यस्सेते चतुरो धम्मा 10.12
यस्सेव भीतो न ददाति मच्छरी 1.4.2
या काचि कङ्खा अभिनन्दना वा 7.2.8
यादिसं वपते बीजं 11.1.10
याय सद्धाय पब्बजितो 9.1.2
ये केचि अरियं धम्मं 1.4.9
ये केचि बुद्धं सरणं गतासे 1.4.7
ये केचि रूपा इध वा हुरं वा 2.3.10
ये खो पमत्ता विहरन्ति 2.3.5,9.1.13
ये गहट्ठा पुञ्ञकरा 11.2.8
ये च अतीता सम्बुद्धा 6.1.2
ये च कायेन वाचाय 4.1.3
ये च खो अरिये धम्मे 1.4.9
ये च यञ्ञा निरारम्भा 3.1.9
ये च रूपूपगा सत्ता 5.1.4, 5.1.6
ये नं ददन्ति सद्धाय 2.3.3, 1.5.3
ये नं पजानन्ति यतोनिदानं 10.3
ये मे पवुत्ते सिट्ठिपदे 2.2.2
ये रागदोसविनया 11.2.9
येध मच्छरिनो लोके 1.5.9
येध लद्धा मनुस्सत्तं 1.5.9
येन केनचि वण्णेन 10.2
येसं धम्मा अप्पटिविदिता 1.1.7,1.1.7
येसं धम्मा असम्मुट्ठा 1.1.8,1.1.8
येसं रागो च दोसो च 1.3.3, 7.1.6, 1.2.9
येसम्पि सल्लं उरसि पविट्ठं 4.2.3
येहि जातेहि नन्दिस्सं 7.2.4, 7.2.4
यो अन्धकारे तमसि पभङ्करो 2.1.10
यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति 7.1.4
यो अप्पदुट्ठस्स 1.3.2
यो इध सम्मासम्बुद्धो 11.2.9
यो इमस्मिं धम्मविनये 6.2.4
यो च विनेय्य सारम्भं 7.2.6
यो च सद्दपरित्तासी 9.1.8
यो दुक्खमद्दक्खि यतोनिदानं 4.2.10, 4.3.1
यो धम्मं चरि कायेन 3.3.5
यो धम्मलद्धस्स ददाति 1.4.3
यो धीरो धितिसम्पन्नो 4.3.3
यो निन्दियं पसंसति 6.1.10, 6.1.9

यो मातरं पितरं वा 7.2.9
यो सीलवा पञ्ञवा भावितत्तो 2.2.4
यो हवे बलवा सन्तो 11.1.4, 11.1.5
यो होति भिक्खु अरहं कतावी 1.3.5
योध पुञ्ञञ्च पापञ्च 7.2.10
य्वायं भिसानि खनति 9.1.14
रागो उप्पथो अक्खातो 1.6.8
रागो च दोसो च इतोनिदाना 10.3
रागो च दोसो च कुतोनिदाना 10.3
रुक्खमूलगहनं पसक्किय 9.1.5
रूपं जीरति मच्चानं 1.8.6
रूपं न जीवन्ति वदन्ति बुद्धा 10.1
रूपं वेदयितं सञ्ञा 4.2.6
रूपा सद्दा रसा गन्धा 4.2.5,4.2.7, 5.1.4
लद्धा हि सो उपादानं 3.1.1
लोके दुक्खपरेतस्मिं 10.7
लोभो दोसो च मोहो च 3.1.2, 3.3.3
लोभो धम्मानं परिपन्थो 1.8.6
वनं यदग्गि डहति 3.1.1
वसो इस्सरियं लोके 1.8.7
वाचं मनञ्च पणिधाय सम्मा 1.8.5
वायमेथेव पुरिसो 11.1.8
विचेय्य दानं सुगतप्पसत्थं 1.4.3
विचेय्य दानम्पि साहु दानं 1.4.3
विञ्ञा उप्पततं सेट्ठा 1.8.4
विपुलो राजगहीयानं 2.3.10
विरतो कामसञ्ञाय 2.2.5
विरतो मेथुना धम्मा 2.3.4,1.5.10,1.5.10
विलुम्पतेव पुरिसो 3.2.5
विवेककामोसि वनं पविट्ठो 9.1.1
वीरियं मे धुरधोरय्हं 7.2.1
वुट्ठि अलसं अनलसञ्च 1.8.10
वेसालियं वने विहरन्तं 1.4.9
संखित्तेनपि देसेति 8.6
संसरं दीघमद्धानं 4.1.2, 4.1.3
सकुणो यथा पंसुकुन्थितो 9.1.1
सक्खी हि मे सुतं एतं 8.1
सङ्खारे परतो पस्स 8.4
सङ्घस्स अञ्जलिं कत्वा 2.3.5, 9.1.13
सङ्घे पसादो यस्सत्थि 11.2.4
सचे अत्थि अकम्मेन 11.1.1, 11.1.2
सचे एन्ति मनुस्सत्तं 1.5.9
सचे च पापकं कम्मं 10.5
सचे मग्गं अनुबुद्धं 4.3.4
सचेपि एततो भिय्यो 8.1
सचेपि केवलं सब्बं 4.2.1
सचेपि दस पज्जोते 9.1.3
सच्चं धम्मो संयमो ब्रह्मचरियं 7.1.9
सच्चं वे अमता वाचा 8.5
सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो 7.1.9
सञ्ञाय विपरियेसा 8.4
सतं सहस्सानं निरब्बुदानं 6.1.10
सतं सहस्सानिपि धुत्तकानं 5.1.5
सतं हत्थी सतं अस्सा 10.8
सतीमतो सदा भद्दं 10.4
सत्तधा मे फले मुद्धा 2.1.9,2.1.10
सत्तिया विय ओमट्ठो 2.2.6,1.3.1
सत्तिसूलूपमा कामा 5.1.1
सत्थारं धम्ममारब्भ 9.1.11
सत्थो पवसतो मित्तं 1.6.3
सद्दहानो अरहतं 10.12
सद्धा दुतिया पुरिसस्स होति 1.4.6,1.6.9

सद्धा बन्धति पाथेय्यं 1.8.9
सद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं 1.4.3
सद्धाय तरति ओघं 10.12
सद्धायाहं पब्बजितो 4.3.2
सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं 1.8.3,10.12
सब्बं नादाय गन्तब्बं 3.2.10
सब्बगन्थप्पहीनस्स 10.2
सब्बत्थ मुत्तो असितो 5.1.8
सब्बत्थ विहता नन्दी 5.1.3
सब्बदा वे सुखं सेति 10.8
सब्बदा सीलसम्पन्नो 2.2.5
सब्बा आसत्तियो छेत्वा 10.8
सब्बा दिसा अनुपरिगम्म चेतसा 3.1.8
सब्बे भगवतो पुत्ता 8.7
सब्बे सत्ता अत्थजाता 11.1.8
सब्बे सत्ता मरिस्सन्ति 3.3.2
सब्बे सद्धम्मगरुनो 6.1.2
सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति 6.2.5
सब्बो आदीपितो लोको 5.1.7
सब्भिरेव समासेथ 1.4.1, 2.3.1
समणं माता पिता भाता 1.8.11
समणीध अरणा लोके 1.8.11
समणे ब्राह्मणे वापि 3.3.1,3.3.1, 3.3.1, 3.3.1
समुद्दो उदधिनं सेट्ठो 2.3.1
समो विसेसी उद वा निहीनो 1.2.10
सम्बाधे वत ओकासं 2.1.7
सम्बाधे वापि विन्दन्ति 2.1.7
सम्बुद्धो द्विपदं सेट्ठो 1.2.4
सहाचरितेन छवो सिगालो 2.3.10
साधु खो पण्डितो नाम 10.7
साधु खो, मारिस 1.4.3
सारत्ता कामभोगेसु 3.1.6,3.1.7
सारिपुत्तोव पञ्ञाय 1.5.8
सावको ते महावीर 4.3.3
साहु ते कुटिका नत्थि 1.2.9
सीलं अजरसा साधु 1.6.2
सीलं याव जरा साधु 1.6.1
सीलं समाधि पञ्ञञ्च 4.1.1
सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो 1.3.3,7.1.6
सुखजीविनो पुरे आसुं 2.3.5,9.1.13
सुखिताव ते मनुजा 2.2.2
सुणन्ति धम्मं विमलं 8.8
सुणाति न विजानाति 9.1.3
सुतमेव पुरे आसि 1.4.9
सुपुप्फितग्गं उपगम्म भिक्खुनि 5.1.5
सुभासितं उत्तममाहु सन्तो 8.5
सुभासितस्स सिक्खेथ 2.1.1
सुमन्तमन्तिनो धीरा 11.2.10
सुसुखं वत जीवाम 4.2.8
सेट्ठा हि किर लोकस्मिं 11.2.10,11.2.8, 11.2.9
सेलंव सिरसूहच्च 4.3.5
सेले यथा पब्बतमुद्धनिट्ठितो 6.1.1
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि 6.2.3
सो अहं विचरिस्सामि 10.12
सो च सब्बददो होति 1.5.2
सो मे धम्ममदेसेसि 8.12
सोकस्स मूलं पलिखाय सब्बं 4.3.4
यं वदन्ति मम यिदन्ति 4.3.4
सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि 4.3.4
सोकावतिण्णो नु वनम्हि झायसि 4.3.5
सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा 1.2.2

सोहमेते पजानामि	2.3.4,1.5.10
स्नेहजा अत्तसम्भूता	10.3
स्वागतं वत मे आसि	8.12
स्वाहं अकङ्खो असितो अनूपयो	7.2.8
हन्ता लभति हन्तारं	3.2.5
हितानुकम्पी सम्बुद्धो	4.2.4
हित्वा अगारं पब्बजिता	1.3.8
हित्वा अहं ब्राह्मण दारुदाहं	7.1.9
हिरी तस्स अपालम्बो	1.5.6
हिरीनिसेधा तनुया	1.2.8
हिरीनिसेधो पुरिसो	1.2.8

******